हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

(सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में)

डॉ. एल. सुनीता बाय



हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

(सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में)

डॉ. एल. सुनीता बाय

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से चलाई गई बृहत् शोध-परियोजना (२००७ - २०१०) के अन्तर्गत संपन्न शोधकार्य

प्रकाशक : **डॉ. एल. सुनीता बाय**
रिटायेर्ड प्रोफेसर
वृन्दावन, काक्कनाड पी. ओ.
कोच्चि --६८२०३०
फोन ; ९८४६० ४८४२८
e-mail : suneethabai@yahoo.com

संस्करण : २०१०

शब्दांकन : **श्रेयस कंप्यूटर सेंटर**
साउथ चेरलाय, कोच्चि - ६८२००२

मुद्रक : **वसन्त इंडस्ट्रीस**
टाउनहाल रोड, कोच्चि -६८२००२

मूल्य : ५००.००

उपक्रम

प्रत्येक देश की प्राचीन संस्कृति , सामाजिक व्यवस्था, रीतिरिवाज़ धार्मिक अनुष्ठान, कला, साहित्य आदि में कुछ ऐसी बातें अवश्य मिलती हैं जो समान रहती हैं। थोड़े बहुत अन्तरों के बावजूद भारत के प्रत्येक प्रदेश की संस्कृति एक दूसरे से जुडी हुई रही है। इसका कारण मूलतः दो प्रकार से हो सकता है

१. विभिन्न प्रदेश के लोगों के विचारों में स्वतंत्र रीति से एक ही प्रकार के विचारों का आना

२. दोनों प्रदेशों के लोगों का आपसी मेल जोल

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने पर दूसरी बात ही अधिक संगत दिखाई देती है। भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन से यह बात साबित होती है कि बहुत प्राचीन काल से ही यहाँ पर एक ऐसी संपन्न संस्कृति वर्तमान थी जो मानव मात्र के कल्याण को लक्ष्य बनाकर विकसित हुई थी। इस महान संस्कृति का प्रभाव भारत के हर प्रदेश की संस्कृति पर पड़ा हुआ मिलता है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य के संदर्भ में इसी प्राचीन संस्कृति का बड़ा महत्व रहा है क्योंकि इतिहास के पन्ने उलटने पर हमारे सामने ऐसा एक चिरन्तन सत्य खड़ा हो जाता है कि प्राचीन काल में इन दोनों भाषाओं से संबद्ध संस्कृति का विकास एक ही जगह, याने भारत के उत्तरी प्रदेशों में हुआ था। आज भी यह प्राचीन संबन्ध इन संस्कृतियों एवं उनसे संबन्धित समाज, साहित्य एवं कला में प्राप्त होता है। इस पर विचार करने के लिए हमें अपने प्राचीन इतिहास को ही आधार मानना पड़ेगा।

भारत का लोकसाहित्य यहाँ की संस्कृति का अच्छा खासा ज्ञान प्रदान करता है। जीवन के सहज लक्ष्यों को लेकर रचे गए इस साहित्य में जो ऐतिहासिक वर्णन आते हैं वे सत्य मात्र को लेकर चलते हैं। इस दृष्टि

से लोकसाहित्य का ऐतिहासिक संदर्भ बड़े ही महत्व का हो सकता है इतिहास से संबन्धित अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ जो साधारणत:ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं मिलतीं, इस साहित्य में प्राप्त होती हैं। यह साहित्य लोकजीवन की परंपरागत विरासत है। किसी वर्ग की भावनाओं, आस्थाओं या संस्कारों को जानने में लोकसाहित्य ही सहायक बनता है। लोकजीवन की सही तसवीर लोकसाहित्य में ही मिलती है। इसका प्रभावक्षेत्र बहुत व्यापक रहता है। इसके अन्तर्गत लोकगीत, लोककथाएँ , लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ आदि आती हैं। जब यह अध्ययन दो भाषाओं से संबन्धित रहता है तो कहने की आवश्यकता नहीं कि इसकी व्याप्ति और प्रभाव और भी व्यापक रहता है। लोकसाहित्य, वह किसी भी भाषा का क्यों न हो उसमें उस भाषा को बोलनेवाले वर्ग की संस्कृति का चित्रण रहता है। उसके समाज का संपूर्ण स्वरूप इस साहित्य में प्रतिफलित रहता है। हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य में प्रतिफलित इस मूल संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन दोनों संस्कृतियों की समानताओं और विषमताओं का चित्र प्रस्तुत करता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकगीतों में उन समाजों का स्वत:स्फूर्त उल्लासमय संगीत मिलता है। इन भाषाओं की लोककथाओं में वहाँ की पूरी संस्कृति सरसता के साथ उभर आई है और कहावतों और पहेलियों में अनुभव एवं ज्ञान का भण्डार पड़ा हुआ है। हिन्दी की बोलियों में बड़े प्रमाण में लोकसाहित्य मिलता है। लोकसाहित्य की दृष्टि से कोंकणी भी संपन्न रही है। हिन्दी लोकसाहित्य की व्यापकता कोंकणी में नहीं है। फिर भी कई समान तत्व दोंनों लोकसाहित्यों में समान रूप से प्राप्त होते हैं जो दोनों भाषाओं की मूल संस्कृति से संबद्ध हैं। यों तो कोंकणी की संस्कृति एवं साहित्य पुर्तगालियों के आगमन के साथ नष्ट हो गया, या यों कहें कि उन्होंने जलाकर भस्म कर डाला। इस समय उनके दु:ख की अभिव्यक्ति के साथ साथ प्राचीन संपन्न परंपरा की रक्षा लोकसाहित्य के ज़रिए ही की गई जो लोगों के मन मे एवं मुँह में समाए रहा और मौखिक रूप में जीवित

रहा। कोंकणी लोकसाहित्य में इस संस्कृति का व्यापक रूप देखा जा सकता है।

हिन्दी और कोंकणी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं और दोनों का उद्भव और विकास भारत के उत्तरी प्रदेशों में ही हुआ है। दोनों भाषाएँ साथ साथ विकसित हुई हैं। दोनों में कई समान ध्वनियाँ, शब्दरूप एवं लोकसाहित्य का अस्तित्व देखा जा सकता है। यह साहित्य इन संस्कृतियों के प्राचीन संबन्ध को उजागर करता है। *सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन* नामक प्रस्तुत शोधकार्य इसी पक्ष को सामने लाने का एक छोटा सा प्रयास है। लोकसाहित्य का यह अध्ययन हिन्दी एवं कोंकणी, दो भाषाओं के साहित्य को आपस में मिलाता है और उनकी प्राचीन अखंड परंपरा एवं समान स्रोत का ज्ञान दिलाता है। यह कार्य भारत की भावात्मक एकता में अत्यधिक सहायक हो सकता है। भारत की अखण्डता के लिए आवश्यक है कि भिन्न प्रदेशों के बीच नियमित रूप से व्यापक पैमाने पर आदान प्रदान हो। भाषा एवं साहित्य ही , चाहे वह लोकसाहित्य हो या शिष्ट साहित्य इन भिन्न संसक्तियों को मिला सकता है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और उसको प्रादेशिक भाषाओं से जोड़ना अत्यन्त आवश्यक है। यह काम बड़े पैमाने पर चल रहा है। प्रस्तुत शोधकार्य में भी इसीको संपन्न करने का प्रयत्न हुआ है।

लोकसाहित्य लोगों के जीवन के अनुभव एवं अनुभूतियों को लेकर आगे बढ़ता है। जनजीवन में व्याप्त इस प्रकृत साहित्य का शोधपरक अध्ययन हिन्दी में कई विश्वविद्यालयों में हुआ है। डॉ. रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी आदि ने विशेष लगन के साथ यह कार्य किया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का *भोजपुरी लोकगीत, भोजपुरी लोकसंस्कृति , हिन्दी प्रदेश के लोकगीत* आदि लोकसाहित्य के शोध के क्षेत्र में प्रामाणिक उपलब्धियाँ हैं। डॉ. सत्यव्रत सिंह, प्रो. श्रीचन्द्र जैन आदि ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। राम और कृष्ण से संबन्धित लोकसाहित्य का अध्ययन डॉ. जयनारायण कौशिक ने सफलता के साथ किया है। *दिल्ली*

अंचल की लोकसंस्कृति में लोकसाहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया है। *अवधी का लोकसाहित्य, खड़ी बोली का लोकसाहित्य* आदि हिन्दी लोकसाहित्य में किए गए शोध का ही परिचय देते हैं। कई तुलनात्मक अध्ययन भी इस दिशा में हो चुके हैं। किसी ने लोकगीतों पर तुलनात्मक शोध प्रस्तुत किया है तो और किसी का कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन सामने आया है। एक ओर हिन्दी और गुजराती लोरियों का तुलनात्मक अध्ययन मिलता है तो दूसरी ओर मलयालम लोकगीतों का हिन्दी लोकगीतों से समानता दिखाई गई है। लेकिन हिन्दी और कोंकणी का जो चिरकालीन संबन्ध रहा है , उसकी ओर आज तक किसी की दृष्टि नहीं गई। यह पहला शोधकार्य है जो इस दिशा में किया गया है। इसमें हिन्दी तथा कोंकणी के लोकसाहित्य तथा संस्कृति का ज्ञान बढ़ाने के साथ साथ दोनों की तुलना भी की गई है। विषय विस्तार को कम करने के लिए संक्षिप्त ब्योरा ही दिया गया है जिससे कई बातें अनकही रह गई हैं। फिर भी प्रमुख तत्वों को यथासंभव जोड़ने का प्रयास किया गया है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहला अध्याय *हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि* में हिन्दी और कोंकणी के अन्त:संबन्ध को समान सांस्कृतिक , सामाजिक एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर चित्रित किया गया है। दूसरा एवं तीसरा अध्याय क्रमश: *हिंदी और कोंकणी लोकसाहित्य (लोकगीत एवं लोककथाएँ)* तथा *हिंदी और कोंकणी लोकसाहित्य (लोकनाट्य, कहावतें एवं पहेलियाँ)* है। दूसरे अध्याय में हिन्दी तथा कोंकणी के लोकगीतों और लोककथाओं का और तीसरे अध्याय में लोकनाट्य, कहावतों और पहेलियों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। *हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में समाज का स्वरूप* नामक चौथा अध्याय दोनों साहित्यों में मिलनेवाले पारिवारिक संबन्धों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करता है। इस अध्याय में लोकसाहित्य

के अन्तर्गत विभिन्न संस्कृतियों के संगम पर भी प्रकाश डाला है। हिन्दी तथा कोंकणी कथाओं में चित्रित नागसंस्कृति एवं राक्षस संस्कृति और कोंकणी लोकसाहित्य में चित्रित ईसाई संस्कृति का विस्तृत अध्ययन यहाँ किया गया है। कोंकणी समाज में दिखाई पड़नेवाली हिन्दू संस्कृति और ईसाई संस्कृति का मेल इस अध्याय की विशेषता रही है। पाँचवाँ अध्याय *हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में धर्म एवं नीति* हिन्दी एवं कोंकणी समाज में पाये जानेवाले उत्सव, व्रत, अनुष्ठान, संस्कार आदि का परिचय देता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार *आचारलक्षणो धर्मः* कहा गया है। इसका विस्तृत विश्लेषण दोनों लोकसाहित्यों के आधार पर चित्रित करने का प्रयास यहाँ हुआ है। *उपसंहार* में यह बताने का प्रयास हुआ है कि नागरीकरण एवं भौतिकवाद के झपेटे में पड़े आधुनिक समाज का उद्धार केवल लोकसाहित्य के अध्ययन के द्वारा ही संभव हो सकता है।

अन्त में मैं उन विद्वानों तथा सहायकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूँ जिनसे इस ग्रंथ के निर्माण में दिशानिर्देशन एवं सहायता प्राप्त हुई है। सर्वप्रथम मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके आर्थिक अनुदान के अभाव में यह शोधकार्य संपन्न ही नहीं हो सकता था। इसके बाद मैं पंडितवर डॉ. सुरेश गौतम के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने पुस्तकें और मूल्यवान सुझाव देकर इस कार्य में मेरी सहायता की है। गोवा के प्रो. श्याम वेरेंकार, डॉ. जयन्ती नायक आदि ने मुझे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करते हुए इस कार्य के लिए सहारा एवं बल प्रदान किया है। गोवा विशवविद्यालय के कोंकणी विभाग की अध्यक्षा डॉ. चन्द्रलेखा डिसूसा ने इस परियोजना के अन्तर्गत कोचिन आकर कोंकणी लोकसाहित्य की ईसाई संस्कृति से संबन्धित मूल्यवान सामग्री देकर मेरी सहायता की है। मैं इन लोगों की कृतज्ञ रही हूँ। इस संदर्भ में गोवा के रिवण प्रदेश में रहनेवाले लोकसाहित्य के ज्ञाता महान बुजुर्ग श्रीनिवास प्रभू देसाय का मैं स्मरण करती हूँ जिनके मूल्यवान उपदेशों के अभाव में मेरा कार्य अधूरा ही रह जाता। यहाँ पर मैं विष्णुविनायक

खेडेकार की लोकसरिता नामक पुस्तक का विशेष उल्लेख करती हूँ जिससे मैंने कोंकणी लोकसाहित्य से संबन्धित काफी सामग्री प्राप्त की। मंगळूर और कोचीन के क्षेत्रीय कार्य से संबद्ध होकर मेरी सहायता करनेवाले लोगों के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ। उनके नाम हैं श्रीमती सुशीला त्रिविक्रम भट (कोची), श्री गोपाल गौड़ा (मंगलूर), श्रीमती वत्सला आर शेणाय, श्रीमती सूर्या अशोक (कोची), श्रीमती मालती यु. कामत (मंगलूर), श्रीमती सुशीला हरिभट (कोची) । डॉ. ए. के. बिन्दु और श्रीमती रम्या पी. आर ने इस परियोजना के अन्तर्गत शोधकार्य के लिए सामग्री संकलन करते हुए मेरी सहायता की है। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय पुस्तकालय, गोवा, गोवा कोंकणी एकेडेमी का पुस्तकालय, गोवा विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, कोंकणी भाषा मंडल, गोवा, कोंकणी इन्स्टिटट्यूट, मंगलूर, विश्वकोंकणी केन्द्र, कोंकणी भास आनी संस्कृती प्रतिष्ठान, मंगलूर, सुकृतीन्द्र प्राच्य विद्या शोध- संस्थान, कोची आदि संस्थाओं के सौजन्य से मैं कोंकणी लोकसाहित्य से संबन्धित सामग्री पा सकी हूँ । इन सब के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से इस बृहद् शोध परियोजना को चलाने में कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने मेरी खूब सहायता की है। इस परियोजना के लिए प्रशासनिक एवं आर्थिक निर्देशन प्रदान करनेवाली हिन्दी विभाग की रीडर, डॉ. के वनजा के प्रति आंभार व्यक्त करने में शब्द कम पड़ते हैं। समय समय पर इस शोधकार्य के लिए सहायता प्रदान करते हुए उन्होंने मेरी बडी सहायता की है। हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, डॉ. शमीम अलियार , एवं डॉ. एन. मोहनन ने सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करते हुए इस शोधकार्य को विघ्नरहित समाप्त करने में मेरी सहायता की है। उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

- डॉ. एल. सुनीता बाय

वेषयानुक्रम

पहला अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि

लोकसाहित्य एवं संस्कृति -- - *लोक* शब्द --हिन्दी और कोंकणी का अन्त: संबन्ध ---हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि -हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य - ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -- सामाजिक पृष्ठभूमि -- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि --नैतिक पृष्ठभूमि

पृ. 13-84

दूसरा अध्याय

हिंदी और कोंकणी लोकसाहित्य (लोकगीत एवं लोककथाएँ)

भारतीय लोकसाहित्य के विकास की परंपरा - लोकसाहित्य का वर्गीकरण - हिन्दी के लोकगीत - पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत - संस्कार गीत - जन्म गीत - विवाह गीत - मृत्युगीत - बालगीत - धार्मिक गीत - ऋतु त्योहार संबन्धी गीत - श्रमगीत - जातिगीत - कोंकणी लोकगीत पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत जन्मगीत - यज्ञोपवीत - मृत्युगीत - बालगीत - धार्मिक गीत - ऋतु त्योहार संबन्धी गीत - श्रमगीत - जातिगीत तुलनात्मक विवेचन

लोककथाएँ - लोककथाओं की भारतीय परंपरा - हिन्दी लोककथाएँ - राजा रानी संबन्धी कथाएँ - पशु पक्षी संबन्धी कथाएँ - नीति या उपदेशात्मक कथाएँ - धार्मिक कथाएँ - बाल कथाएँ - कोंकणी लोककथाएँ - राजा-रानी संबन्धी कथाएं - पशु पक्षियों से संबन्धित कथाएँ - नीतिसंबन्धी या उपदेशात्मक कथाएँ - धार्मिक कथाएँ - अलौकिक कथाएँ - बालकथाएँ - तुलनात्मक विवेचन

पृ. 85-198

तीसरा अध्याय

हिंदी और कोंकणी लोकसाहित्य
(लोकनाट्य, कहावतें एवं पहेलियाँ)

लोकनाट्य - लोकनाट्य की भारतीय परंपरा - हिन्दी लोकनाट्य - रामलीला - रासलीला - माच - भगत - नौटंकी - स्वांग - ख्याल - नाचा - विदेसिया - कोंकणी लोकनाट्य - पेरणी जागर - गावडी जागर - शिवोली जागर - काला - गोपाळ काला - गौळण काला - लळीत - -खेळ (हिन्दू) - दशावतारी खेळ - रणमालें - खेळ त्रियात्र - त्रियात्र - तुलनात्मक विवेचन

कहावतें - कहावतों की परंपरा - हिन्दी कहावतें - सामाजिक कहावतें - धार्मिक कहावतें - नैतिक कहावतें - कोंकणी कहावतें -- सामाजिक कहावतें - धार्मिक कहावतें - नैतिक कहावतें - तुलनात्मक विवेचन -

पहेलियाँ - पहेलियों की परंपरा - हिन्दी पहेलियाँ - घरेलू उपादान से संबन्धित पहेलियाँ - प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ - शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ - कोंकणी पहेलियाँ - घरेलू उपादान से संबन्धित पहेलियाँ - प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ - शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ - तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का शिल्पसौन्दर्य - शब्दसंपदा - अलंकार वैभव - प्रतीकयोजना

पृ. 199-283

चौथा अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में समाज का स्वरूप

समाज और संस्कृति - प्राचीन भारतीय समाज - विभिन्न स्तर

ब्राह्मण, -जातिप्रथा - सामाजिक जीवन - पारिवारिक संबन्ध - पतिपत्नी संबन्ध - माता-पिता-पुत्र-संबन्ध - माता-पिता-पुत्री-संबन्ध -सास-बहू- - संबन्ध - भाई-बहन - संबन्ध - ननद-भौजाई -संबन्ध -- हिन्दी और कोंकणी समाज में स्त्री का स्वरूप - नारी जीवन की व्यथा-कथा -बाँझ को नागिन भी डसती नहीं - विधवा - संस्कृतियों का संगम -- नागसंस्कृति - नाग शब्द -राक्षस संस्कृति - ईसाई संस्कृति

पृ. 284-353

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में धर्म एवं नीति

धर्म - ईश्वर की कल्पना - गणेश - शिव - शक्ति - सरस्वती - विष्णु - तुलसी - लक्ष्मी - हनुमान - लोकदेवता - भय्यां - खुंटी माया - भैरव - साँझी - सांतेर - ब्रह्मो - लोकविश्वास - पीपल - नीम - अंजीर -गंगा - गाय - कौआ - सूर्य और चन्द्र - स्वर्ग - नरक - मृत्यु - पुनर्जन्म -भूतप्रेत - दृष्टिदोष - व्रत एवं उत्सव - विजयादशमी - दीवाली - धालो - होली - नागपंचमी - रक्षाबंधन - श्रीकृष्णजन्माष्टमी - गणेश-चतुर्थी - करवाचौथ - महाशिवरात्री - शिगमो - सत्यनारायणव्रत - इंत्रूज - सांज्यांव- लोकनृत्य एवं लोकवाद्य -संस्कार - जन्मोत्सव - उपनयन - विवाह - अन्त्येष्टि - आचारलक्षणो धर्मः

पृ. 354-480

उपसंहार पृ. 481-494

संदर्भ ग्रंथ सूची पृ. 495-516

पहला अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि

लोकसाहित्य एवं संस्कृति-- *लोक* शब्द --हिन्दी और कोंकणी का अन्त:संबन्ध ----हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि -हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य -- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -- सामाजिक पृष्ठभूमि -- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि --नैतिक पृष्ठभूमि

पहला अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि

लोकसाहित्य में लोकजीवन की बहुरंगी गतियाँ रहती हैं । यह साहित्य मानव सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान कराता है। मानव मन की निकटतम वृत्तियाँ इसमें अंकित रहती हैं और भौतिकता के साथ साथ अध्यात्मिकता को लेकर चलनेवाली मानव की सहज वृत्ति इसमें निहित रहती है। आज के युग में इसकी प्रमुखता इसलिए है कि इससे संबद्ध होकर ही मानव सफलता प्राप्त कर सकता है। इसी साहित्य में मानव जीवन का सार अपनी गहराइयों के साथ लहराता रहता है । इस लोकसाहित्य में मानव समूह का इतिहास, भूगोल, समाज और संस्कृति की मौलिकता के दर्शन होते हैं। इसमें मनुष्यत्व का साक्षीत्व निहित रहता है, भूत, वर्तमान, भविष्य सब कुछ समाया रहता है और लोकमंगल की भावना निहित रहती है। यहाँ पर भाषाभेद और स्थानभेद एक समस्या नहीं बनते। सब कहीं भाव खुले हुए आसमान के जैसे स्वच्छ, सुन्दर एवं फैले हुए रहते हैं। मनुष्य संकुचित मनवाला न रहकर जब एक दूसरे को संपन्न करनेवाले उदार मन से युक्त होता है वहीं पर सुख एवं संपन्नता की शुरूआत होती है। लोकसाहित्य में यही संपन्नता देखने को मिलती है। *सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु , मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।* यही लोकसाहित्य का लक्ष्य रहता है। भाषागत भिन्नता के परे यह कल्याणकारी उद्देश्य लोकसाहित्य की जान है। और समानता के इस उद्देश्य के कारण प्रादेशिक भिन्नता के रहते हुए भी एकता का वाहक बन जाता है।

संस्कृत में *लोक* शब्द का अर्थ *देखना* होता है। इस देखने में शास्त्रीयता या व्याकरण की आवश्यकता नहीं है। यह केवल व्यावहारिक जीवन को निरख परख कर समझने की प्रक्रिया रहती है। इस आसमान के नीचे जो भी देखा जाता है वह सब *लोक* के अन्दर आ जाता है। लोकसाहित्य को पढकर हमारा यह विचार और भी दृढ हो जाता है। लोकसाहित्य में हम देखते हैं कि तरह तरह के पशु पक्षी मानव के सहायक होते हैं। ये सब जीवन में देखने की वस्तुएँ हैं। इनमें हाथी है, सियार है, सिंह है, बाघ है, साँप है, तरह तरह की चिडियाँ हैं और न जाने कैसे कैसे जन्तु इनमें आते हैं। मानव का इनसे जितना अधिक संबन्ध रहता है उतना इनके लिए समग्र जीवन की गहराई सामने आ जाती है। यहाँ जीवन बँटा हुआ नहीं है । यहाँ पर वर्गभेद नहीं मिलता। केवल जीवन का प्रवाह रहता है। इसकी एक लंबी परंपरा रहती है और जीवन की समग्रता यहाँ देखने को मिलती है। पक्षी, पशु, मानव, नदी, वृक्ष, पर्वत यहाँ अलग अलग नहीं हैं। लोकसाहित्य की यही विशेषता है कि इसमें मानव है, पशु है, पक्षी है, पर्वत है ; प्रकृति है, देव और देवियाँ हैं। यही इसका स्वरूप है। जब आपसी रिश्ते इतने व्यापक बन जाते हैं यहाँ पर स्वार्थ के लिए स्थान नहीं रहता। स्वार्थ भी परार्थ का रूप ग्रहण कर लेता है । *वसुधैव कुटुम्बकम्* की भावना इस प्रकार लोकसाहित्य में स्थान पा जाती है।

लोकसाहित्य एवं संस्कृति

सम् उपसर्गपूर्वक *कृञ्* धातु से *क्ति* जोड़कर *संस्कृति* शब्द का निर्माण होता है। इसका अर्थ है - सम्यक् शोभन कृति। जिस प्रकार खान से उत्पन्न हीरा, माणिक्य की संस्कार द्वारा शोभावृद्धि होती है उसी प्रकार आत्मा की संस्कार द्वारा शोभा बढाई जाती है। इस प्रक्रिया में लौकिक,

पारलौकिक, नैतिक, धार्मिक, वैयक्तिक, सामूहिक अभ्युत्थान के अनुकूल देह, इंद्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार की शोभन कृति ही संस्कृति है। इस संस्कार का बड़ा महत्व है। इसमें से उद्‌भूत संस्कृति आचरण में ढलकर सभ्यता बन जाती है। संस्कृति की चिरन्तनता कभी क्षय नहीं होती। वह मानव मन में जम जाती है। इसका ध्येय रहता है मनुष्य को उच्चतम जीवन मूल्यों, आध्यात्मिक आदर्शों तथा उदात्त संस्कारों की ज्योति से आलोकित करना। लोकसाहित्य में यह खूब-चलता है। यहाँ पर राम भारतीयता और सांस्कृतिकता का संपूर्णत्व है।

लोकसाहित्य में परंपरा का बड़ा महत्व रहा है। परंपरा असल में संस्कृति का वह भाग है जिसमें भूतकाल से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य तक एक निरंतरता बनी रहती है। संस्कृति के मूल्यों और व्यवहार प्रकारों को जिनकी जड़ें इतिहास में बहुत गहरी हैं, परंपरा कहा जाता है। संस्कृति की परिधि में मानव और प्रकृति, मानव और समाज और मानव एवं अदृश्य जगत् की शक्तियों के सभी अन्तःसंबन्ध आते हैं। लोकसाहित्य इनसे भरा हुआ है। कुछ लोगों का विचार है कि लोकसंस्कृति सिर्फ परंपरागत नाचगीत, रंगे चेहरे, किस्से कहावतें और पर्व त्योहारों में रहती है। यह ठीक नहीं है। इसमें लोक के द्वारा विकसित एक उन्नत जीवनशैली रहती है।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी संस्कृति को मानव की साधनाओं की परिणति मानते हैं।[१] दिनकरजी के शब्दों में यह जिन्दगी का एक तरीका है।[२] संस्कृति असल में समाज के उच्चतम मूल्यों की चेतना होती है जो चित्तवृत्तियों, भावनाओं और विभिन्न सामाजिक प्रथाओं में अभिव्यक्त होती है। रेनाल्ड विलियम्स इसे संपूर्ण जीवनशैली मानते हैं। जिसका समाज के ठोस भौतिक व्यवहारों में ऐतिहासिक रूप से अनुसरण और विकास रहता है।[३] नोर्बर्ट रोस संस्कृति के सिद्धांत एवं प्रविधि के बारे में कहते हुए इन

सभी बातों को संस्कृति का भाग मानते हैं। उनका कहना है --Cultur describes all the mental processes that are (or can be) subjec to social transmission, as well as other elements of huma behaviours that help to establish and form our mental processes These different elements (mental, behavioural and material) ca often only be understood as a set of interrelated features, on causing and forming the other and are in constant relation wit the (social, historical and natural) environment.[४] समाज के ठोस भौतिक व्यवहारों में ऐतिहासिक रूप से अनुसरण और विकास रहता है हमारे लोकसाहित्य में संस्कृति इसी अर्थ में उभरती है और इसी अर्थ मे हिन्दी और कोंकणी साहित्य में हम भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक एव व्याख्यात्मक स्वरूप पा जाते हैं।

लोक साहित्य का जन्म मानव संस्कृति के उद्भव के बराबर हुआ है। एक समय ऐसा भी था कि लोकसाहित्य को अशिक्षित जनता के समाज में प्राप्त मौखिक साहित्य माना जाता था। लेकिन सत्य इसके ठीक विपरीत है। असल में लोकसाहित्य मनुष्य जीवन का मार्गदर्शक रहा है। इसमें चित्रित लोकमन की अभिव्यक्ति आचार विचारों और रीति रिवाजों के जरिए ही होती रहती है। इस प्रकार लोकसाहित्य मानव संस्कृति का भण्डार रहा है। किसी भी देश, समाज, या संस्कृति की मूल परिचालिका धुरी लोकचेतना है। यह लोकचेतना या लोकमानस व्यक्तियों को उत्तराधिकार में प्राप्त हो जाता है। भले ही लोकसाहित्य किसी के द्वारा गढा हुआ हो फिर भी उसमें युग युग की वाणी और साधना समाहित रहती है जिसमें लोकमानस प्रतिबिंबित रहता है। यह लोकमानस संस्कृति की स्वर्ण मंजूषा है जिसमें लोकजीवन से संबन्धित समस्त आचार विचार, विधि निषेध,

विश्वास प्रथाएँ, धर्म परम्पराएँ , रीति नीतियाँ, उपासना, अनुष्ठान, व्रत, त्योहार, विद्या, कलाएँ आदि पूर्ण तथा व्यावहारिक अनुभवसिद्ध स्वरूप के साथ समाहित हैं।

लोकसाहित्य की सामग्री परंपरा के साथ साथ सामुदायिक जीवन की समकालीन वास्तविकता को चित्रित करती है। वह समुदाय विशेष के व्यक्त और अव्यक्त भौतिक और मानसिक जीवन को अद्‌भुत रूप से उजागर करता है। भारतीय लोकसाहित्य के आवर्तक उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यापक रूप में इस देश के महान देवता राम, कृष्ण, शिव एवं शक्ति रहे हैं। आनुष्ठानिक जीवन की समृद्धि के प्रमाण इनके साथ जुडे हुए रहते हैं। हिन्दी एवं कोंकणी लोकसाहित्य इसे स्पष्ट रूप में प्रकट करते हैं।

वेद भारतीय संस्कृति के भंडार रहे हैं। लोकसाहित्य के संदर्भ में वेदों का बडा महत्व है। प्रथम दृष्टि में यह विरोधाभास लग सकता है। लेकिन गहराई से देखने पर इस कथन मैं अतिशयोक्ति नहीं है। यों तो वैदिक साहित्य तत्कालीन जनभाषा का साहित्य कहा जा सकता है। इसे हम उस काल का लोकसाहित्य भी मानें तो अनुचित न होगा। यह साहित्य हमारी संस्कृति का मूलाधार रहा है। यही वैदिक संस्कृति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य के माध्यम से हिन्दी तथा कोंकणी में परंपरागत रूप में आई है। वैदिक साहित्य प्राकृतिक शक्तियों से संबद्ध रहा है। प्रकृति से मानव का यह अविच्छिन्न संबन्ध वैदिक साहित्य को लोकसाहित्य के अन्तर्गत रखने में सहायक रहता है। वैदिक साहित्य पर धार्मिकता का जो आवरण चढाया गया है, वह परवर्ती प्रवृत्तियें का परिणाम है। असल में वैदिक साहित्य उस समय का साहित्य है जब लोग पशुचारण से जीवन

यापन करते थे। साथ ही कृषि का विकास भी हो चला था. प्रकृति की इस गोद का स्वाभाविक चित्रण जो वैदिक साहित्य में मिलता है वह निस्सन्देह इसमें लोकसाहित्य की प्रवृतियों का अस्तित्व दिखाता है। इस संदर्भ में लोकसाहित्य के लिए कोंकणी में प्रचलित *लेकवेद* शब्द बडे महत्व का रहा है। यहाँ पर *लोक* और *वेद* का संगम दिखाया गया है जो केवल शब्द प्रवृत्ति में ही सही लोक एवं वेद के संबन्ध को उजागर करता है। वेदों को श्रुति कहते हैं तो लोकसाहित्य भी मौखिक परंपरा में ही गिना जाता है। वेदमंत्रों के उद्गाता ऋषि व्यक्ति न होकर समूह का ही प्रतिनिधित्व करते थे।

लोकसाहित्य भी सामूहिक धरोहर होता है। जहाँ तक कोंकणी का संबन्ध है उसकी ओवियां वेदकालीन गायत्री छन्द का प्रतिरूप मानी जाती हैं।[5] जात पांत धर्मभेद से परे कोंकणी लोग एक उच्च संस्कृति के मालिक थे। वे सारस्वत प्रदेश के निवासी थे जो उत्तर भारत में फैला था। यहीं से कोंकणी लोकसाहित्य ने प्रेरणा ग्रहण की। हिन्दी की अवस्था भी इससे भिन्न नहीं है। उत्तरभारतीय आवास दोनों भाषाओं एवं समाजों को एक दूसरे के निकट रहने में बडा सहायक हुआ। वेदों के बाद संस्कृति के वाहक बनकर उपनिषद, धर्मसूत्र आदि सामने आए। इनमें आत्मज्ञान, मोक्ष, ब्रह्मज्ञान आदि का विस्तृत वर्णन सामाजिक मर्यादाओं के साथ साथ अंकित हुआ है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्यों में अनेक अनुष्ठान जो चित्रित हुए हैं, संस्कारों का जो वर्णन हुआ है, वह इन्हीं के आधार पर हुआ है। जातककथाओं में भी लोकजीवन का स्वरूप झलकता है। इस साहित्य में नगरों, महलों, साधारण घरों, वनों, ह्रदों के दृश्य जीवन को उसके सभी रूपों में प्रदर्शित करते हैं बौद्ध साहित्य जनवादी चेतना की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है । उस समय ग्रामसाहित्य भारतीय समाजव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु था । यहाँ पर चित्रित जुए का खेल, नृत्य, गीत, नाटक, मूक

अभिनय, सब कुछ लेकसाहित्य के अस्तित्व को ही सूचित करता है। कई लोकविश्वासों का चित्रण भी इस साहित्य में हुआ है। मंत्रविद्या, जादू टोने का प्रयोग यहाँ पर सर्वसाधारण है। लोकजीवन से संबन्धित अनेक लोक उत्सवों का उल्लेख यहाँ मिलता है। व्रत, त्योहार,पर्व एवं उत्सव इस साहित्य की विशेषता रही है। परमात्म चिन्तन, पूजा अर्चना, उपवास आदि का अनुष्ठान जीवन की अगम धारा को पार करने की नौका का काम करता था। वेदों से भिन्न लोकसाहित्य विभिन्न शाखा प्रशाखाओं से होता हुआ विकसित होता रहा । लोकसाधारण में उस समय कुलदेवियों और स्थानीय ग्रामीण देवी देवताओं का भी पूजन प्रचलित था। इन्हें प्रसन्न करने के लिए टोना टोटका भी होता था।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति एवं लोकसाहित्य का आत्मिक संबन्ध रहा है। भारतीय संस्कृति में यहाँ के लौकिक जीवन एवं नैतिक आदर्शों की भावभूमि को देखा जा सकता है। यह हज़ारों वर्षों की साधना के फलस्वरूप भारतीय समाज को मिली है। संपूर्ण मानव समाज का आधारस्तंभ यही संस्कृति रही है। यही संस्कृति विरासत के रूप में हमारे लोकसाहित्य को भी मिली है। इस मूल्यवान संस्कृति से जुड़े रहने के कारण लोकसाहित्य का मूल स्रोत इसी भारतीय संस्कृति में देखा जा सकता है। इसमें स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता, सरलता और पवित्रता मिलती है जो इस साहित्य को अर्थवान बनाती है। मांगलिक अवसरों, उत्सवों और अनुष्ठानों में हमें भारतीय संस्कृति की छाप मिलती है जिसका सही सही अंकन उस समय के गीतों, कलाओं और अन्य प्रकार के क्रियाकलापों में मिलता है। यह साहित्य प्रत्येक भारतीय के रग रग में समाया हुआ है।

लोक शब्द

लोकसाहित्य लोक एवं साहित्य दो शब्दों के योग से बना है। लोकसाहित्य से संबन्धित विस्तृत विश्लेषण करने के पहले *लोक* शब्द पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। मूल रूप से इसके चार प्रकार के अर्थ निर्धारित किए जा सकते हैं। शब्दकोशीय अर्थ, व्युत्पत्तिपरक अर्थ, प्रयोगपरक अर्थ एवं सामान्य व्यवहार में आनेवाला अर्थ। संस्कृत एवं हिन्दी के कई प्रमुख कोशों में *लोक* शब्द के कई अर्थ मिलते हैं। इनमें *लोक* शब्द के संसार, पृथकस्थान, लोग, देखना, प्रकाशित होना आदि अर्थ दिए गए हैं। अमरकोश में इसका अर्थ जन (लोग) दिया गया है [६] जो लोकसाहित्य की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होता है। लोगों का साहित्य ही लोकसाहित्य कहा जा सकता है. *वाचस्पत्यम* में लोक शब्द की व्युत्पत्ति लोक्यतेऽसौ लोक - घञ् दी गई है.[७] वी एस. आप्ते ने भी इसी व्युत्पत्ति को माना है.[८] शब्दकल्पद्रुम के अनुसार इस शब्द के अर्थ देखना, प्रकाशित होना आदि दिया गया है।[९] शब्दकल्पद्रुम के अनुसार लोक्यते इति लोकः(लोक् घञ्) के रूप में इस शब्द की व्युत्पत्ति मिलती है जिसके अर्थ संसार और जीवन बताया गया है।[१०] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में *लोक* का पर्यायवाची *फोक* शब्द के विषय में बताया गया है कि आदिम समाज के समस्त सदस्य फोक (लोग) कहे जाते हैं। ऋग्वेद में *लोक* शब्द एक विराट समाज की ओर संकेत करता है । लेकिन यहां *लोक* शब्द का अभिप्रेत अर्थ जनसमाज ही ह। जनसामान्य के अर्थ में इस शब्द का अर्थ सर्वप्रचिलत है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस पर बल देते हुए कहा है - *लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं.*[११]

प्रायोगिक अर्थ में *लोक* साधारण जनसमाज है, जिसमें भूभाग पर फैले हुए समस्त मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द इतना व्यापक है कि अपने में प्राचीन परंपराओं के साथ अर्वाचीन सभ्यता और संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतन करता है। [१२] डॉ. सत्येन्द्र की लोकविषयक अवधारणा के अनुसार *लोक* मनुष्यसमाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।[१३] लोकवार्ता, लोकव्यवहार, लोकापवाद, लोकनीति, लोकपथ, लोकाचार, लोकलाज, लोकरीति, लोकहित, लोकमंगल, लोकमर्यादा, लोकप्रसिद्ध, लोकप्रिय, लोकतंत्र आदि शब्दों में आए हुए *लोक* शब्द की अतिरिक्त व्याख्या यहाँ अनावश्यक है। ये शब्द सर्वसाधारण जनसमुदाय का सहजावबोध कराते हैं।

लेकिन आजकल *लोक* शब्द के संदर्भ बदल गए हैं। आज लोग उसे *फोक* का पर्याय मानते हैं। इस प्रकार *लोक* शब्द का अर्थ संकुचित हो गया है। इसे शास्त्र के साथ संपृक्त नहीं किया जाता है और लोक से संबन्धित साहित्य में शिक्षित या अभिजात वर्ग का कोई संबन्ध नहीं माना जाता। इसमें लोग चिन्तन के बदले इस शब्द में परंपरागत रूढ धारणाओं की प्रमुखता को ही *लोक* मानते हैं । लेकिन यह धारणा गलत है । इसमें मानव जीवन के भौतिक विकास के विभिन्न सोपानों, अनुभवों, विश्वासों, आस्थावों एवं जीवन मूल्यों की रक्षा के प्रति प्रोत्साहन रहता है। इस संदर्भ में श्री विद्यानिवास मिश्र का कहना है –लोगों के मन में *लोक* के बारे में कुछ भ्रान्त धारणाएँ हैं, लोग समझते हैं कि परंपरा या लोकसंस्कृति कोई अजूबा या तमाशे की चीज है जो इस युग की नहीं है. वह संग्रहालय में रहने योग्य अवश्य है । दूसरी भ्रान्त धारणा यह है कि *लोक* केवल गाँव और लोकसाहित्य केवल ग्रामसाहित्य है । तीसरी भ्रान्त धारणा यह है कि *लोक* से अभिप्राय

साधारण और विशिष्ट लोगों का होता है, पढे लिखे अभिजात लोगों का नहीं है. वे लोक से ऊपर हैं । ये तीनों धारणाएँ इसलिए इतनी फैली हुई हैं कि हम ने *लोक* को *फोक* के अनुवाद के रूप में लिया है। हम *लोक* के व्यापक अर्थ के भूल गए हैं।[१४] भारत में प्राचीन काल से ही *लोक* शब्द सामान्य जन जीवन की कार्यविधियों के संवाहक के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। गीता के लोकसंग्रह शब्द में *लोक* शब्द का यही भाव आया है। लोकाः समस्ताःसुखिनो भवन्तु में भी यही अर्थ ध्वनित होता है। डॉ. सत्येन्द्र ने *लोक* को मनुष्य समाज के अर्थ में प्रयुक्त किया है जो समाज,आभिजात्य, शास्त्रीयता, पांडित्य और अहंकार से रहित सहजता को दिखाता है। [१५] इस साहित्य में संस्कृतियों के अवशेषों की उपस्थिति रहती है। इस अर्थ में *लोक* परंपरा का सहज एवं अनुभूति की संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति का सतत संवाहक रहा है।

हिन्दी और कोंकणी का अन्तः संबन्ध

इतिहास को साक्षी बनाकर कहा जा सकता है कि भारत की सभी भाषाएँ प्राचीन काल में एक संपन्न संस्कृति की छाया में पली हैं जिसे हम भारतीय संस्कृति कह सकते हैं। यों तो भाषाएँ परंपरा से अर्जित साधनों को अपने में समेटकर निरंतर बहती रहती हैं। जहाँ तक हिन्दी और कोंकणी का संबन्ध है, यह तथ्य बिलकुल सत्य है। दोनों का मूल उत्स बहुत ही प्राचीन रहा है और विकास की अवस्थाएँ सामान्य रूप से समानता दिखाती हैं। हमारी संस्कृति हमेशा बदलती रहती है। इसका कारण हमारे समाज पर बाहरी प्रभाव का परिणाम है।संस्कृति के साथ भाषा भी नया रूप लेती चलती है। इस के बावजूद भी हमारी अंतःसत्ता नहीं बदलती । इसीको हम भारतीयता कहते हैं। भारतीयता का यह तत्व हिन्दी और

कोंकणी को विरासत में मिला है और इस दृष्टि से दोनों भाषाएँ समानता दिखाती हैं। यही नहीं हिन्दी और कोंकणी भाषाओं से संबन्धित संस्कृति प्राचीन काल में एक ही प्रदेश से जुडी हुई थी। इस कारण से इन दोनों भाषाओं से संबन्धित संस्कृतियों की अन्त:सत्ता समान रही है। बाहरी रूप सज्जा में भिन्नताएँ तो अवश्य आई हैं, लेकिन अंत:सत्ता एक ही रही है। वैदिक साहित्य में पाये जानेवाले उल्लेख के अनुसार आर्यें का प्रारंभिक निवास स्थान मध्यदेश की पश्चिमोत्तर सीमा पर सरस्वती नदी के निकटवर्ती प्रदेश में था। बाद में यहाँ से वे पूर्व की ओर फैले। ये प्रदेश बाद में कुरु पाँचाल नाम से प्रसिद्ध हुए। कुरुदेश की भूमि इतनी सुन्दर थी और यहाँ की जलवायु इतनी अनुकूल थी कि यहाँ के लोग बडे बुद्धिमान और विद्याव्यसनी बने। यहाँ की पनिहारियाँ भी पनघट पर पहुँचकर गंभीर धर्म और आदर्श की चर्चा करती थीं।[१६] कुरु जनपद की राष्ट्रीय भूमि गंगा और यमुना की घाटियों के ऊपरी भाग में थी। इसकी राजधानी मेरठ के निकट गंगा के किनारे हस्तिनापुर थी। बाद में पश्चिम कुरु की पृथक राजधानी इन्द्रप्रस्थ के रूप में यमुना के किनारे प्रकट हुई। यह प्रदेश हिन्दी के लिए बडा ही प्रसिद्ध रहा है। इस जनपद की बोली, रहन सहन तथा उपजातियों का एक विशेष व्यक्तित्व रहा है। ब्राह्मण, विशेषकर गौड ब्राह्मण कुरु जनपद से संबन्ध रखते हैं। पांचाल, काशी तथा मगध जनपदों के शासक इस कुरु जनपद से संबद्ध थे।[१७] भारत के इतिहास से जाना जा सकता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक कोंकणी बोलनेवाले गौड सारस्वत ब्राह्मण इन प्रदेशों में रहते थे। इन सबका प्रभाव हिन्दी और कोंकणी भाषाओं और साहित्यों, विशेषकर लोकसाहित्यों पर पडा है। हिन्दी और कोंकणी का प्राचीन विरासत गणसमाजों से जनपदों और उसके बाद विशिष्ट भाषागुटों में विकसित होता रहा है। भरत, कोसल एवं मगध,

पश्चिम में, कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में मगध तक ये भाषिक गुट फैले थे। इन भरतगण वैदिक भाषा संस्कृति और यज्ञप्रधान जीवनशैली का गुट था कोसल मुख्यत: मध्यदेश याने गंगा, सरयू और यमुना के आसपास क इलाका विरोधी जीवन शैलियों का विलक्षण समन्वय लेकर आया था। इसका प्रभाव भाषा पर भी देखा गया। जब गणसमाज टूट गये इसके बदले वर्ग और समाज सामने आए। संस्कृत प्राकृत एवं आगे हिन्दी की प्राकृतोद्भूत बोलियाँ एवं कोंकणी इस विकास की गवाह हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने इन गणसमाजों और भाषिक गुटों का जिक्र किया है और कहा है कि वैदिक भाषा भी इन्हीं गणभाषाओं से रूपायित हुई थी। [१८]

वैदिक काल में या उसके पहले बहुत सी ऐसी बोलियाँ वर्तमान थीं जो स्वतंत्र रूप से अपनी अपनी राहों पर चलती थीं । प्रदेशानुसार इन बोलियों के अपने अलग अलग प्रयोग भी थे। कोसल, मगध, विदेह, कुरु, पांचाल, अंग, कामरूप और काशी इनमें प्रमुख थे। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने मध्यदेश की इन बोलियों पर इस प्रकार संकेत किया है। कुरु (खडी बोली), पांचाल (कनौजी), शूरसेन (व्रजभाषा), कोसल (अवधी), काशी (भोजपुरी), विदेह (मैथिली), मगध (मगही), दक्षिण कोसल (छत्तीसगढी), वत्स (बघेली), चेदि (बुंदेली), अवन्ती (मालवी), मत्स्य (जयपुरी).[१९] भाषा की ध्वनियों एवं शब्दरूपों के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि कोंकणी का प्राचीन रूप जिसे विद्वानों ने सरस्वती बालभाषा और सरस्वती प्राकृत नाम से अभिहित किया है,[२०] इनके साथ वर्तमान था।

हिन्दी और कोंकणी में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जो ऊपर कही हुई बोलियें या भाषाओं में प्राप्त होते हैं। ये शब्द प्राचीन मध्यदेश में प्रचलित थे। ११वीं शती में दक्षिण कोसली के रचनाकार रोड कवि

द्वारा रचे गए प्रेमकाव्य में प्रयुक्त शब्दावली का हिन्दी और कोंकणी शब्दावली से बहुत साम्य देखा जा सकता है। ध्वनि एवं अर्थ की दृष्टि से कहीं कहीं छोटे मोटे परिवर्तन अवश्य परिलक्षित होते हैं फिर भी शब्दावली का रूप ज्यादातर प्राचीन रूप से मेल खाता है। उदा :

कोसली	**हिन्दी**	**कोंकणी**
पाआ	पाँव	पाय
पुनिव	पूनम	पुन्नव
भिज्ज	भीजना	भिज्ज
पाँव	पाना	पावँ
पातल	पतला	पत्तळ [२१]

कस कस कसमर किना मगहिया का भोजपुरिया की तिरहुतिया वाली पंक्तियों में यह आपसी संबन्ध और भी स्पष्ट होकर सामने आता है। मगही भाषा में जहाँ *किना* का प्रयोग होता है वहाँ भोजपुरी में *का* और तिरहुती में *की* का व्यवहार होता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि प्राचीन काल में कोंकणी के प्राचीन रूप का प्रयोग करनेवाले लोग बहुत समय तक तिरहुत में वास करते थे। हिन्दी की इन बोलियों में लिखे गए लोकसाहित्य में कई ऐसे शब्द मिलते हैं जो कोंकणी रूपों से मेल खाते हैं। उदाहरण के लिए गंडा (बिहारी) गोंडो (कोंकणी), अयलइ (मैथिली) अयला (कोंकणी), कइल (भोजपुरी) केल(कोंकणी), गइली (भोजपुरी) गेली (कोंकणी) पीढा(खडी बोली) फोडुआ (कोंकणी), कुम्हार (हिन्दी) कुम्भोरु (कोंकणी)।

प्राचीन काल से ही हिन्दी का क्षेत्र मध्यदेश रहा है । यह प्रदेश अनेक जनपदों में बंटा था जिसके व्यक्त प्रमाण आज भी हिन्दी की प्रधान बोलियों की सीमाओं के रूप में स्पष्ट दिखाई पडते हैं। बोलियों के

अतिरिक्त ये विशेषताएँ प्रादेशिक जातियों, रस्म रिवाजों, रहन सहन, खान पान आदि में भी दिखाई पडती हैं। भारतवर्ष में मध्यदेश अर्थात् वर्तमान हिन्दी प्रदेश एक ऐसी इकाई है जिसका देश के इतिहास में बडा ही महत्व रहा है। कोंकणी ध्वनियों के ऐतिहासिक विकास पर विचार करें तो यह बात सामने आती है कि इन ध्वनियों की उत्पत्ति एवं विकास का मूल मध्यदेश में ही रहा है। यहाँ पर विभिन्न प्रदेशों में पाई जानेवाली ध्वनिप्रवृत्तियाँ भी दिखाई पडती हैं। कोसली इनमें सर्वप्रथम कही जा सकती है। शौरसेनी और मागधी पूर्वी बोलियों में आती हैं जिनसे कोंकणी अत्यधिक प्रभावित हुई है। जहाँ पर संस्कृत और हिन्दी *ल* का प्रयोग करती हैं वहाँ पर कोंकणी *र* का प्रयोग करती है जो मध्यदेश का प्राचीनतम रूप कहा जा सकता है। संस्कृत *लकुट*, हिन्दी *लकडी* और कोंकणी *रक्कूड* उदाहरण के रूप में दिया जा सकता है। यही प्रवृत्ति संस्कृत और हिन्दी *शाप* और कोंकणी *सिराप* में पाई जाती है। *श* के बदले यहाँ *स* का प्रयोग मध्यदेश की प्राचीन ध्वनिप्रवृत्ति को दिखाता है। मध्यदेश के ध्वनिरूप इस प्रकार आज भी कोंकणी में सुरक्षित हैं। इनसे कोंकणी का मध्यदेश से संबन्ध और भी स्पष्ट हो जाता है। इसके अलावा मागधी की ध्वनियों का प्रभाव भी कोंकणी में देखा जा सकता है। ध्वनियों एवं शब्दों में ही नहीं, भावों,गीतों एवं अनुभूतियों में भी हिन्दी और कोंकणी का यह संबन्ध रहा है। हिन्दी और कोंकणी का लोकसाहित्य इसका स्पष्ट प्रमाण है।

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास में विहार का योगदान बडे ही महत्व का रहा। हिन्दी साहित्य के इतिहास की नींव यहीं पर पडी। संस्कृत की गोद से निकली हुई हिन्दी पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का सहारा पाकर

आज जिस उच्च स्थान पर विराजमान है उसका मूल कारण बिहार ही रहा है। कोंकणी भी अपने विकासकाल की प्रारंभिक अवस्था में बिहार का ही ऋणी रही है। ब्रह्मावर्त से निकलकर सारस्वत ब्राह्मण बिहार के तिरहुत में ही आकर बसे थे। हिन्दी का प्रथम कवि सरहपा बिहार की ही देन रहा। कवि कोकिल विद्यापति जो हिन्दी के आदिकाल के कवि के रूप में विख्यात हैं, बिहार की मैथिली भाषा के ही कवि रहे। परवर्ती भारतीय साहित्य पर विद्यापति की प्रवृत्ति और शैली का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। केवल उन्हीं की प्रतिभा से उत्तर भारत की समस्त साहित्यिक धाराओं को नवीन उन्मेष मिला। बिहार में निर्गुण और सगुण भक्ति का भी प्रचार रहा है। बिहार की पुण्यभूमि मिथिला ने अपनी विशिष्ट सारस्वत प्रवृत्ति के कारण वैष्णव, शैव और शाक्त तीनों संप्रदायों का समाहार ही उपस्थित किया है।

हिन्दी का प्रारंभिक युग एक ओर मैथिली से और दूसरी ओर राजस्थानी से संबद्ध है। विद्यापति की रचनाओं का प्रचार स्पष्टतः लोकगीतों के रूप में होता था। उनकी वाणी में जनता की भाषा थी, इसी कारण मिथिला में लोकगीतों का प्रचार ज्यादा रहा। मैथिली से कोंकणी का संबन्ध कुछ कम नहीं है। प्राचीन काल में कोंकणी लोग त्रिहोत्र के ही निवासी थे। कोंकणी भाषा पर मैथिली का प्रभाव काफी रहा भी है। राजस्थानी साहित्य एक प्रकार से लोकजीवन का ही साहित्य रहा है जिसमें भारतीय जीवन की अनेकानेक साहसपूर्ण कथाओं और घटनाओं का उल्लेख उपलब्ध है। इसमें चित्रित जीवन की सरसता जीवनपथ की जटिलताओं सं उद्भूत रहती है। ढूला मारूरा दोहा लोकसाहित्य के प्रभाव को भली भाँति व्यक्त करता है। कबीर, सूर ओर तुलसी के काव्यों में भी लोकतत्व भरे पडे हैं राधाकृष्ण की प्रेमलीला से संबद्ध व्रजमंडल के लोकगीत ही सूरकाव्य की

पमुख प्रेरणा रहे हैं। हर भाषा का साहित्य उसके मौखिक साहित्य या लोकसाहित्य को ही आधार बनाकर आगे बढता है.। कोंकणी भी इसव अपवाद नहीं है। कोंकणी का आधुनिक साहित्य उसके संपन्न लोकसाहित की पृष्ठभूमि में ही पनपा है। यह लोकसाहित्य के महत्व को ही दिखाता है

हिन्दी और कोंकणी दोनों भाषाओं का मूल स्थान उत्तर भारत ह रहा है। दोनों भारतीय आर्य परिवार की दो भाषाएँ रही हैं। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और कोंकणी गोवा की राजभाषा। हिन्दी का मुख्य क्षेत्र आज भी उत्तर भारत ही रहा है तो कोंकणी वहाँ से निकलकर सुदूर दक्षिण में गोवा, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं केरल तक फैली हुई है। फिर भी अपन प्राचीन उत्सों को वह कभी नहीं भूली। कोंकणी लोग प्रारंभ से ही नदीतट -संस्कृति के वाहक रहे। रवरेंड एम.ए. शेरींग के अनुसार ये भारत की प्राचीनतम संस्कृति के वाहक थे ।[२२] सरस्वती नदी के तट पर ब्रह्मावर्त इनका मूल स्थान रहा। वहां पर अकाल पडने से इस स्थान को छोडकर वे चारों ओर फैल गए। कुछ लोग बिहार के तिरहुत में, कुछ मध्यप्रदेश में, और कुछ गुजरात में चले गए। जहाँ जहाँ वे चले गए वहाँ वहाँ वे अपनी भाषा का प्रयोग करते थे। जो लोग तिरहुत में गए वे ई. पू. ७ वीं सदी में गोमंतक (गोवा) पहुँचे।[२३] यहीं पर यह भाषा फली फूली। कोंकण देश की होने के कारण यहाँ आकर उसका नाम कोंकणी पड गया जो तिरहुत में सरस्वती प्राकृत के नाम से जानी जाती थी। कोंकणी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि का गहराई से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि इसका इतिहास वेदों तक फैला पडा है। जात पाँत और धर्मभेद से परे कोंकणी लोग एक उच्च संस्कृति के मालिक थे। प्राचीनकाल में सारस्वत प्रदेश से इनका संबन्ध था जो कश्मीर, पंजाब और उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ था। इन सभी प्रदेशों से कोंकणी लोकसाहित्य ने प्रेरणा ग्रहण की है। कोंकणी

के उत्तर भारत के आवास ने उसके लोकसाहित्य का कई अर्थों में हिन्दी लोकसाहित्य के निकट ला रखा है। हिन्दी तथा कोंकणी इस प्रकार एक ही मूल से उत्पन्न होकर समीपवर्ती प्रदेशों में विकसित हुई है जिसके कारण दोनों भाषाओं में समान प्रवृत्तियाँ और साहित्यों में समान अनुभूतियाँ एवं भावसौन्दर्य देखने को मिलता है ।हिन्दी की बोलियों में प्राचीनता की दृष्टि से मैथिली का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। मिथिला बिहार राज्य का भूभाग है जो गंगा नदी के उत्तर में स्थित है। यहाँ की भाषा मैथिली है। मिथिला का प्राचीनतम नाम तिरहुत भी है जो संस्कृत के तिरभुक्ति शब्द का अपभ्रंश रूप है। मिथिला देश प्राचीन काल में संस्कृत विद्याध्ययन का केन्द्र था। यहाँ के सरस एवं प्रेम भरे लोकगीत बडे ही प्रसिद्ध हैं । क्योंकि इनमें विविधता पाई जाती है । मिथिला के प्रेम भरे गीतों में तिरहुती गीत बडे अनुराग के माने जाते हैं । हिमालय के पादप्रदेश, गंगा से उत्तर काशी से पश्चिम और गण्डक के पूर्व का भूभाग सांस्कृतिक मिथिला के नाम से इतिहास प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में कोंकणी समुदाय के लोग इस प्रदेश में वास करते थे। इसके प्रमाण कई ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। यों तो कोंकणी भाषा पर मैथिली का खूब प्रभाव भी देखा जा सकता है। भाषागत मनोहारिता में मैथिली और कोंकणी समानता रखती हैं। मैथिली के आईल, गेल आदि सामान्य भूतकाल के रूप बिना किसी परिवर्तन के कोंकणी में भी मिलते हैं। मैथिली लोकसाहित्य में मिथिला की जिस लोकसंस्कृति के सारस्वत स्वरूप और कलात्मक भंगिमाओं की जो अभिव्यंजना हुई है वह कोंकणी में भी पाई जाती है।मिथिला की अधिकांश लोककथाएँ कोंकणी में भी पाई जाती हैं। यहाँ का सांस्कृतिक क्षितिज अधिक व्यापक, विशेष लोकरंजक तथा आनुष्ठानिक भंगिमाओं से युक्त है। ये गुण कोंकणी लोकसाहित्य में भी पाये जाते हैं। इन लोकगीतों का ताल और लय कोंकणी लोकगीतों में

भी मिलता है।

भोजपुरी हिन्दी की एक प्रधान बोली है। डॉ. सुनीतिकुमार चाटर्ज ने मागध भाषाओं का वर्गीकरण तीन भागों में करते हुए पश्चिमी समुदार से इसका संबन्ध माना है। मैथिली और मगही का संबन्ध उन्होंने केन्द्रीर मागध से माना है। प्राचीन काल में भोजपुर उज्जैनों के समृद्धशाली राज्य की राजधानी थी। बिहार राज्य के आरा, छपरा, चम्पारन, पलामू और राँचं से इसका संबन्ध रहा है। भोजपुरी का विस्तार निम्नलिखित लोक बालगीत में सुन्दरता के साथ स्पष्ट किया गया है-

आरे आव छपरा आव बलिया, मोतिहारी आव
राँची अउर पलामू आव गोरखपुर देवरिया आव
गाजीपुर आजमगढ आव बस्ती अउरी जौनपुर आव
मिर्जापुर बनारस आव सोना के कटोरी में दूध भात ले ले आव
बबुआ के मुँहवा में घुटुक[२४]

भोजपुरी प्रदेश ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथा राजनैतिक आदि अनेक दृष्टियें से महत्वपूर्ण है। सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण देववाणी की ही अभ्युन्नति यहाँ रही। ब्राह्मणों ने जिन पर साहित्य निर्माण का भार था मातृभाषा की अपेक्षा देववाणी संस्कृत को ही अपनाया और उसीकी अभिवृद्धि में अपने समय और शक्ति को लगाया। कोंकणी की भी यही अवस्था रही। इस प्रकार दोनों भाषाओं में लिखित साहित्य की अपेक्षा लोकसाहित्य का अधिक विकास हुआ। कोंकणी और भोजपुरी दोनों भाषाऔं में लोकसाहित्य संपन्न रहा है। दोनों भाषाओं के कई शब्दरूपों में समानता दिखाई देती है। जैसे कइलें > केलें, रहलीं > रावलीं, रहल > रावलो आदि।

हिन्दी की बोलियों में अवधी का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल

में अवधी क्षेत्र का नाम कोसल था। मगध के बाद कोसल सबसे प्रसिद्ध था। वह राज्य नेपाल की उपत्यका तक विस्तृत था और बडा ही समृद्धशाली था । रामायण में कहा गया है = *कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्* । कोसल के तीन प्रधान नगर थे, अयोध्या, साकेत और श्रावस्ती । प्राचीन भारत का इतिहास कोसल का ही इतिहास था । इस प्रदेश की भाषा केसली थी। पाली साहित्य के पंडित और बौद्धकालीन साहित्य के विशेषज्ञ हिस डेविड्स के अनुसार कोसल की भाषा बौद्धकालीन भारत में संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी। इसका व्यवहार समूचे कोसल में ही नहीं ,पूरब तथा पश्चिम में दिल्ली से पटना तक और उत्तर दक्खिन में सावत्थी से अवन्ती तक होता था।[२५]

कोसली की कई प्रवृत्तियाँ कोंकणी में भी देखी जाती हैं। कई शब्द भी दोनों भाषाओं में समान रूप से मिलते हैं । जैसे *खणुस > खोण्स, जोव् >चोव, झाँख् > झाँक्, दीस् >दिस् , दीह > दीग, राउल > राउलर* आदि।[२६]

स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी का क्षेत्र प्राचीन काल में एक ही रहा था और ये दोनों भाषाएँ साथ साथ विकसित हुई थीं। हिन्दी की विभिन्न बोलियों से कोंकणी का विशेष संबन्ध रहा है। लोकसाहित्य की अनुभूतियाँ भी एक ही रही हैं। दोनों भाषाओं का लोकसाहित्य इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है।

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य

भारतीय लोकसाहित्य का अध्ययन भारत की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति रिवाज, कला, साहित्य समाज एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक रहता है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। यहाँ पर विभिन्न

धर्मों का अनुसरण करनेवाले , विभिन्न भाषाएँ बोलनोवाले लोग रहते हैं। धर्म, जाति एवं भाषाओं की भिन्नता के बावजूद भारत की आत्मा एक ही रही है। यहाँ के लोकसाहित्य में हम भारतीयता के असली दर्शन कर सकते हैं, जो समरसतापूर्ण संस्कृति के सहारे वर्तमान है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य इसके अपवाद नहीं हैं। दोनों भाषाओं के लोकसाहित्य मानव को कृत्रिमता से दूर स्वाभाविक आत्मशुद्धि की ओर ले जाते हैं। यहाँ पर सहज प्रकृति के उद्गार रहते हैं जो माधुर्य से भरे रहते हैं। दोनों भाषाओं के लोकसाहित्यों में माधुर्य का अनुभव किया जा सकता है। ये साहित्य भारतीय परंपरा के समुन्नत तत्वों को आत्मसात् करते हुए मानवमात्र के सुख सन्तोष के लिए काम करते हैं। उनमें हिन्दी और कोंकणी समाज के जनमानस की सहज अभिव्यक्ति है जो जनमन को आत्मकेन्द्रित और आध्यात्मिक बना देती है। भारतीय संस्कृति की मूल्यवान धरोहर इन लोकसाहित्यों में फैली पडी है। दोनों भाषाओं के ये साहित्य रस के अक्षय स्रोत रहे हैं जिनमें ताल, लय से युक्त गीतों का आनन्द रहता है जिनकी स्वाभाविकता, सरसता, स्वच्छन्दता तथा निर्बन्धता हृदय को एक अलौकिक संसार में ले जाती है। मानवता के विकास को दिखानेवाला यह साहित्य अपना अलग सांस्कृतिक महत्व लिए हुए है।

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति निहित रहती है जिसके साथ समूह की अन्तर्भावना लगी रहती है। इनमें लोगों की स्वायत्त सौन्दर्यभावना और जीवन की अकृत्रिमता माटी की सोंधी गंध लिए हुए सामने आती है। यह कहीं कहीं हिन्दी और कोंकणी में समान है और कहीं कहीं भिन्नता लिए हुए है। लोकहृदय की उपज होने के नाते दोनों साहित्य कहीं कहीं समान तौर पर उमंगों के जोर पर फूलते और फलते हैं। उत्सवों और मेलों के अवसर पर दोनों समाजों में प्राचीन काल से ही गीत गाने

3105

की प्रथा रही है।.. हिन्दी समाज में विवाहगीत और कोंकणी समाज में *ओवी* गाने की प्रथा बहुत प्राचीन है। मैथिली में विवाह के गीतों के लग्नगीत कहा जाता है। यहाँ पर विवाह का उत्सव बडा ही मनोरंजक होता है। सगाई से लेकर कंकणमोचन तक अनेक विधि विधानों का संपादन किया जाता है । इस समय के गीत उत्साह एवं उल्लास से भरे रहते हैं।इसी प्रकार *ओवी* कोंकणी लोकगीतों का ऐसा एक प्रकार है जिसे आनन्द के अवसर पर सब लोग मिलकर गाते रहते हैं। विवाह के अवसर पर वर वधू के लोग मिलकर गीत गाने की प्रथा प्राचीन कोंकणी समाज में प्रचलित थी। विवाह के समय खाद्य, पेय वस्तुओं के साथ साथ मनोरंजन भी हुआ करता था जिसमें इन गीतों का प्र*योग* होता था। वर एवं वरपक्ष को हर तरह से सन्तुष्ट रखना वधूपक्ष का प्रमुख कर्तव्य था। इसलिए प्राचीन समय मैं कई दिनों तक चलनेवाली शादी में वरपक्ष के मन बहलाव के लिए तरह तरह की लोककलाएँ प्रस्तुत की जाती थीं ।अन्त्यानुप्रास में सजाई गई कोंकणी की ओवियाँ इन्हीं में एक थीं जिन्हें स्त्रियों के मुँह से सुनने में मनोहारिता का अनुभव होता था। हिन्दी समाज में भी स्त्रियाँ ही इसकी उत्तराधिकारिणी रही हैं। पुत्रजन्म, विवाह, यज्ञोपवीत संस्कारों के समय महिलाओं की ही प्रमुखता रही है जो लोकगीतों का निर्माण करते करते अपने सुरीले कण्ठ से गाती रहती हैं। विवाह संस्कार या और किसी प्रसंग में जब हम इन गीतों को सुनते हैं तो हमारे मन में गीत की स्वरलहरियों के साथ साथ गानेवाले लोग, उनके संबन्ध और उससे संबन्धित प्रसंग अपने पूरे परिवेश एवं तन्मयता के साथ प्रतिबिंबित होते हैं। यह प्रक्रिया हिन्दी और केंकणी गीतों में समान है और इन गीतों में जातीय चेतना को झंकृत करनेवाला साहित्य मिल जाता है। सावन के महीने में झूले पर गाया जानेवाला गीत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है

बाबा निमिया के पेड न काटहु, निमिया चिरइया बसेर
बाबा बिटियन के जनि दुःख देहु, बिटिये चिरइया के माई
सवरे चिरइया उडि उडि जइहैं,रहि जाइहें निमिया अकेलि
सबरे बिटियना जइहें सासुर , रहि जइहें मइया अकेलि [२७]

प्रस्तुत गीत में बेटी की विदाई पर माँ के अकेलेपन का चित्र ही नहीं , बल्कि परिस्थिति के साथ उसकी समरूपता भी दिखाई गई है। आँगन की चहकनेवाली लडकियों और पेड की चहकनेवाली चिडियों में आत्मीयता के दर्शन होते हैं। असल में प्रकृति मानव से बन्धुता का भाव रखती है। वह हमारे सुख दुःख से जुडी हुई है। इसमें खींचा गया लोकचित्र बहुत सुन्दर हुआ है। और एक उदाहरण देखिए =

झूल रे झूल, बबुआ झूल, आम झूल, आम पाकरी झूल
आमक ठैली कोइली झूल, बांसक फुनगी सुगना झूल [२८]

इन पंक्तियों में प्रकृति के प्राथमिक सन्देश का मनमोहक रूप सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। आम के वृक्ष पर लटकनेवाले झूले के वर्णन के साथ साथ झूले पर बैठे हुए बबुआ का आनन्द, उसका साथ देनेवाले आम के पत्ते, आम के पेड पर बैठी हुई कोयल और बाँस की झुरमुट में बैठा हुआ सुग्गा सबके सब मानव जीवन में प्रकृति की भूमिका के महत्व का उद्घोष करते हैं। कोंकणी लोकसाहित्य में भी ऐसे ही संदर्भ बहुत मिलते हैं। जैसे =

वोत येता पाव्सु येता कुंकडाक मांकडाक व्हर्डीक जाता
मांटवां बसल्यां व्होर मंत्र म्हणताति कीर
चोंवचाक वसल्याति म्होर कोंब्बाने वातली धार [२९]
(धूप है, बारिश है, बंदर की शादी है
मंडप में हैं दूल्हा दुलहिन, मंत्रोच्चार कीरों का

देख रहे हैं बैठे मोर, मुर्गे ने कर ली धारा)

प्रकृति और मानव के बीच के संबन्ध का सरस, सुन्दर चित्र इन पंक्तियों में मिलता है। जैसे मानव में है वैसै जीव जन्तुओं में भी विवाह की कल्पना और विवाह से संबन्धित रस्मों का पालन मानव और प्रकृति के बीच के संबन्ध को दिखाता है। लोकसाहित्य में यह संबन्ध निरंतर चित्रित रहता है। बच्चों को मनोरंजन प्रदान करने के लिए एवं उन्हें आवश्यक शिक्षा देने के लिए प्रकृति को जोडकर गीतों की रचना की गई है। जैसे =

शेवण्या किटुरा, खंय गो गेलोलें?	(खगशावक कहाँ चला तू?
घाटार गेलोलें, घाटार कित्याक?	घाट पर, किसलिए?
वावळ्यो हाडूक, वावळ्यो कित्याक?	रेशे लेने, रेशे किसलिए?
घोंटेर वांदूक, घोंटेर कित्याक?	घोंसला बनाने, घोंसला किसलिए?
तांतयां घालूक,तांतयां कित्याक?	अंडे सेंकने, अंडे किसलिए?
पिलां काडूक, पिलां कित्याक?	बच्चे लेने, बच्चे किसलिए?
मामालें शेत राखूंक ! [३०]	मामा का खेत राखने !)

जीवन का साधारण से साधारण पहलू लोकसाहित्य से संबन्ध रखता है। उदाहरण के लिए धान कूटत समय गाई जानेवाली ओवियाँ कोंकणी में बहुत प्रसिद्ध हैं। जैसे -

हें ! हत्ता !! हे ! हत्ता !!	(हे ! हत्ता !! हे ! हत्ता !!
भात तांदुळ जाता	धान तंडुल बनता है
पोरील घोव जेवणाक येता	जमाई जेंवने आता है
हे ! हत्ता !! [३१]	हे ! हत्ता !!)

संस्कृति से संबन्धित ऐसे गीत हिन्दी और कोंकणी समाज में अनेक मिलते हैं। ऊपर दिया गया गीत नए जामाता के पहली बार घर में आने के उपलक्ष्य में नए धान का घर में ले आना और उसके तंडुल बनाकर नए जमाई को परोसना और उसको दिए जानेवाले आदर को ही चित्रित करता है। लेकिन जमाई जब पुराना पडता है तो उसका क्या हाल हो जाता है , इसका वर्णन कोंकणी लोकगीत भली भाँति चित्रित करते हैं। जैसै =

जांवय आयलो मोगाचो पायसु केल्लो मूगाचो
कोच्चि थकून भावडी आयलो अक्काक व्हरूक वे?
करटीं कांतून पायसु केल्ला भावडे वाडूक वे?
एद्देदे चेडवा उद्दाक तप्पय गो
नागडे भावडी न्हांवचाक आयल्यार
चेंबु निप्पय गो [३२]

(प्यारा जमाई आया रे मूंग की खीर पकाई रे
जीजा आए कोचीन से दीदी को ले जाने रे
खीर बनाई नारियलखोल की जीजाजी के लिए
पानी गरम करो री दासी
नंगे जीजा नहाने आएँ
बरतन छिपा के जाओ री)

कहीं कहीं इन लोक गीतों में टीका टिप्पणी लोगों को सुधारने में बहुत सहायक लगती है । उदाहरण के लिए *कुशीलें कुवाळें कुश्ट भटाक*(सडा हुआ कुम्हडा कुश्ट भट्ट को) , *व्होरेत मोरो व्होक्कल मोरो भट्टाली घडि तट्टांत पोडो* (वर मरे या वधू मरे पुरोहित की दक्षिणा उसे मिल जाय)

कोंकणी की इन कहावतों में पुरोहितों के अत्याग्रह एवं उनके द्वारा अनुष्ठानों को ठीक ठीक न चलाने की ओर संकेत किया गया है। इससे उत्पन्न जनरोष का चित्र इन कहावतों में छिपा पडा है। हिन्दी में भी ऐसी कहावतें खूब चलती हैं । *कानी गाय बामन को दान, कायथ खुश कुछ दिये दिलाये बाभन खूब खिलाये, कसाई के कुकुर और बाभन रसोइया दूभर काहे होई* आदि कहावतें ब्राह्मणें के विशेष स्वभाव एवं आचरण की ओर ही संकेत करती हैं।

हिन्दी और कोंकणी समाज में वर्षों से चली आती रिवाजों से संबन्धित गीत, कथाएँ, और पहेलियाँ मिलती हैं जो समाज की दृष्टि से अत्यन्त महत्व की हैं। इनमें स्थानगत, व्यक्तिगत एवं समूहगत भावों की जडें मौजूद रहती हैं । दिन प्रतिदिन के जीवन से संबन्धित आभूषण, फल फूल, कपडे लत्ते, खान पान, पाचनविधियाँ, घर गृहस्थी, ग्रामीण प्रकृति, सब अपनी सहजता के साथ इन लोकसाहित्यों में प्राप्त होती हैं। हिन्दी और कोंकणी समाज के पुरखों की जीवनदृष्टि, भाव भावनाएँ, आनन्द एवं उदास़ घडियों के चित्र, स्त्रियों के मानसिक भाव, सब के सही सही चित्र इन साहित्यों में मिल जाते हैं।

एक ही परंपरा में साँस लेने के कारण हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का स्वरूप, विषय एवं अस्तित्व समानता लिए रहता है। जाति चेतना, स्थानीय प्रभाव, भाषा भेद, प्रयोग भिन्नताएँ आदि के कारण थोडी बहुत भिन्नताओं के रहते हुए भी मूल उत्स से निकलनेवाली अविच्छिन्न धारा इसमें रहती है। अनेक लोकगीतों, लोककहानियें, लोकनाट्यों, लोकवाद्यों, यहां तक कि कहावतों और पहेलियों में भी यह प्रमाणित हो जाता है। दोनों

साहित्यों का मूल स्वर एक ही रहा है। दोनों लोकसाहित्यों का सन्देश एक ही है, गूँज एक ही है, अनुभूति भी एक ही है। लेकिन जीवन की घटनाओं और अनुभवों में अन्तर दिखाई देता है। पुत्रजन्म, विवाह, यज्ञोपवीत आदि के समय दोनों ही समाजों में एक ही समान लोकसाहित्य का प्रयोग होता रहता है। उदाहरण के लिए प्रभाती के गीतों में दोनों भाषाओं के लोकसाहित्यों में समान रूप से राम और कृष्ण को आधार बनाकर गीत गाये जाते हैं। हिन्दी में राम को लेकर निम्नलिखित गीत देखिए =

उठ भोली भजले राम, हे राम भज्याँ गत हो ज्यागी
म्रारे पै ते राम भज्या नाँ जाए, मेरा मन पूताँ में फँस रह्या हे राम
पूताँ का तै गरम नाँ होय पूत पडोसी हो ज्यँगे मेरे राम
भज सूरज राम कलाधारी ....[३३]

कोंकणी में कृष्ण को लेकर प्रभाती गीत चलता है और वह इस प्रकार है--

उठ रे कृष्णा वेळु जाला वासरां सोडूक
मिट्टाची पुड्डी फळ्यारि आसा दाँत घासूक
फुल्लां घेवन राधा आयल्या कृष्णा माळूक
पैंजळ घेवन रुक्मिणी आयल्या कृष्णाक घालूक
वस्त्र घेवन मडवळ आयला कृष्णा न्हेसूक
पुस्तक घेवन भट्टु आयला पंचांग सांगूक
उठ रे कृष्णा वेळु जाला वासरां सोडूक [३४]

इन्हीं भावों का एक गीत हिन्दी में इस प्रकार मिलता है --

जागो जी जागो कृष्णा तुमको जगाने आई
गंगाजल झारी ल्याई जमनाजल झारी ल्याई
संग में दातन लाई.........

जागो जी जागो कृष्णा तुमको जगाने आई
ताता सा पानी ल्याई तेल और बटना ल्याई
जागो जी जागो कृष्णा तुमको जगाने आई
पल्ला उठाके देखो क्या क्यामैं पूजा ल्याई
जागो जी जागो कृष्णा तुमको जगाने आई [35]
और भी उठो रे मेरे बाले रे भोले जाय चरावण गैया रे
काली पीली धोली धूमर उठ कै बन को गैयाँ री [36]

दोनों भाषाओं की प्रभातियों में भगवान की दैनिक चर्या का सुन्दर चित्रण मिलता है। जग को जाग्रत या चेतन रखनेवाले को जगाना लोगों का सौभाग्य ही समझा जा सकता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोग इसमें कुछ भी उठा नहीं रखते ।

साहित्य जीवन का प्रतिबिंब होता है । मानव जीवन की पाँच अवस्थाओं से होकर गुजरता है, जैसे बाल्यावस्था, युवावस्था, गृहस्थ की अवस्था, वृद्धावस्था एवं सन्यास। इन्हीं अवस्थाओं को लेकर हिन्दी एवं कोंकणी लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। वह मानव जीवन की अस्मिता की खोज है जो भाषा या प्रदेश के भेद के बिना सब कहीं समान रूप से रहती है। बाल्यावस्था का चित्रण करनेवाला बालसाहित्य हिन्दी और कोंकणी दोनों भाषाओं में मिलता है । इनमें बालमनोवृत्ति, बालमनोविज्ञन आदि देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए छोटे बच्चे मीठा खाना बहुत पसन्द करते हैं। मिठाई बालकों के छोटे मन को आकर्षित एवं अभिभूत कर लेती है। इन मीठे खाद्य पदार्थों में लड्डू का स्थान महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए हिन्दी का यह बालगीत देखिए -

लड्डू पेडा सरदार चले घूमने को बाजार
बर्फी रानी भी थीं साथ पकडे थीं दोनों के हाथ [३७]

कितना सुन्दर गीत है ! लड्डू और पेडा यहाँ सरदार बने हुए हैं और बाज़ार में घूमने चले हैं। साथ ही छोटी बहन बर्फी रानी दोनों के हाथ पकडकर बीच में चल रही है। इस गीत को सुनकर बच्चे के मन में निस्सन्देह एक सहज, सुन्दर एवं मोहक परिवेश छा जाता है । खाना खाना और घूमने चलना उनके मन में सहज रूप में आकर्षण पैदा करते हैं । इसी प्रकार लड्डू के मीठे परिवेश में घरेलू संबन्धों में किस प्रकार चार चाँद लग जाते हैं इसका विवरण लड्डू को लेकर बनाए गए निम्नलिखित कोंकणी गीत में पाया जाता है--

मावशी येतली म्हजी मावशी येतली
गोड गोड लड्डू घेवन मावशी येतली [३८]
(मौसी आएगी मेरी मौसी आएगी
मीठे मीठे लड्डू लेकर मौसी आएगी।)

इसी प्रकार का एक उदाहरण जिसमें भावों की समानता दिखाई पडती है, नीचे दिया जा रहा है। यह गीत बच्चों को टाँगों पर बिठा कर झुलाते समय गाया जाता है।

खन्ना मन्ना लेई थै, एक कौडिया पाई थै
गंगा में बहाई थै, गंगा माई बालू दिहीन
ऊ बालू हम भुजवाक दीन, भुजवा हम्मै दूध दिहिसि
वहि दुधवा का खीर पकायऊं खिरिया गै जुठाई [३९]

इस गीत के भावों से मिलनेवाले भावों से युक्त एक लोकगीत कोंकणी में भी पाया जाता है। वह इस प्रकार है --

हल्लून धल्लून मल्लका, पीट वट्टून कलौंका
पिट्टां पोळ्ळो बोरोड्डु म्हांतारायें खोर्वोड्डु
तें पीट गायक धल्लें, गायन आमकां दूद दिलें
तें दूद देवाक दिल्लें , देवान आमकां प्रसाद दिल्ला [४०]

इस उदाहरण में स्थानभेद एवं युगसंदर्भ के अनुसार यत्किंचित् परिवर्तन देखा जा सकता है, फिर भी भाव, संस्कृति, सत्य आदि शाश्वत एव चिरंतन है। संस्कृति के स्वरूप.का निर्माण वे मूल्य या आदर्श करते हैं, जिनकी सिद्धि में कोई भी समाज या व्यक्ति अपने अस्तित्व की सार्थकता का बोध करता है। इनका उत्स लोकचेतना है। ऊपर दिए गए गीतों में हिन्दी एवं कोंकणी समाज में एक ही प्रकार की संस्कृति देखी जा सकती है।

लोकगीतों के अतिरिक्त हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य के अन्य रूपों में भी यह समानता देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए भोजपुरी में एक कहावत है _ *घर के मारल बन में गइली, बन में लागत आगी ।* इसी भाव को दिखानेवाली कोंकणी कहावत इस प्रकार है -_ *घोवा भयान रानां गेली थांगा मेळ्ळो मुसलमान* (पति के भय से वन में गई, वहाँ मिल गया मुसलमान) । दोनों कहावतों का मूल भाव एक ही है। हिन्दी कहावत में जहाँ दावाग्नि का जिक्र है वहाँ कोंकणी कहावत में मुसलमान का अस्तित्व दिखाया गया है। यह उस समय के सामाजिक इतिहास एवं रीति नीति पर भी प्रकाश डालता है।

जो भी समुदाय एक लंबी अवधि तक कायम रहकर अपनी अलग पहचान बना लेता है, वह गुण या परिमाण की दृष्टि से अपेक्षाकृत स्वतंत्र मौखिक साहित्य का विकास कर लेता है। जहाँ तक कोंकणी का प्रश्न है

यह बिलकुल सत्य साबित होता है। ऊपर दिए गए अंशों में भावों के समा होने पर भी दोनों समाजों की अपनी पहचान अलग है। लेकिन मूल उत्त एक ही रहा है। जैसे गाय की प्रमुखता। लोकगीत का यह भाग दिखात है कि हिन्दी और कोंकणी संस्कृति मूल में एक ही रही है। लेकिन बदलत हुई परिस्थितियों के साथ इसमें परिवर्तन देखा जाता है। अपनी अपन सुविधा के अनुसार साधन बदलते रहते हैं साध्य वही रहता है। साधन औ साध्य मिलकर दो आयामों अतीत और वर्तमान का स्पर्श कर देते हैं। एक अर्थ में यह जातिविशेष का आत्मचरित है। दोनों में घटनाओं और प्रसंगो में समानताएँ मिलती हैं जो मूल समाज की दृष्टि से सार्थक एवं महत्वपूर्ण है। अभिरुचि, विश्वास और मूल्यधारणा के ये प्रामाणिक साधन हैं जो एक ही जीवन पद्धति की ओर संकेत करते हैं। कहीं कहीं आदतों के अन्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं जो स्पष्ट रूप से यह निदर्शित करते हैं। हिन्दी और कोंकणी समाज में क्या उचित है और क्या अनुचित, इसका विस्तृत विवरण आगे आनेवाले अध्यायों में दिया जायगा। यहाँ पर हिन्दी और कोंकणी साहित्य के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं के आधार पर इन दोनों लोकसाहित्यों का सही सही अध्ययन किया जा सकेगा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन मध्यदेश भारत का हृदयस्थल रहा है। इस प्रदेश का बडा ही सांस्कृतिक महत्व है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रदेश भारतीय संस्कृति का अत्यन्त प्राचीन केन्द्र रहा है । वैदिक संहिताओं, धार्मिक ग्रंथों और उपनिषदों की रचना इसी देश में हुई। रामायण और महाभारत का भी इससे संबन्ध है। राम और कृष्ण की क्रीडास्थलियाँ, अयोध्या और व्रज

मध्यदेश में ही रहे। बौद्ध तथा जैन धर्मों के प्रवर्तक गौतम बुद्ध तथा महावीर इसी प्रदेश में जन्मे थे। मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य इसी मध्यदेश के थे। संस्कृत, पाली, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, ब्रजभाषा आदि का मूल स्थान यहीं रहा ।[४१] इन भाषाओं में अर्धमागधी और शौरसेनी क्रमशः कोंकणी और हिन्दी से संबन्धित रही हैं। संस्कृत का तो दोनों पर समान प्रभाव देखा जा सकता है। कोंकणी तो पाली के बहुत निकट रही है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के इतिहास में असाधारण् महत्ववाला मध्यदेश हिन्दी और कोंकणी के प्राचीन इतिहास का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। किसी भी भाषा के लोकसाहित्य में उसके इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पडी है जिसके सम्यक् अधययन से प्राचीन छिपे पडे ज्ञान की अभिव्यक्ति भी हो सकती है। दो भाषाओं के ऐसे ही इतिहास का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से उनकी तुलना एवं भिन्न संस्कृतियों के बीच की समान अन्तर्धारा आदि को पहचानने में सहायक होती है। नन्दकिशोर आचार्य ने भारतीय जीवन में इतिहास चेतना के अभाव को लक्ष्य करते हुए इस बात पर बल दिया कि भारत में लोकजीवन में ऐतिहासिक चेतना का अभाव नहीं रहा, वरन् उसके स्वीकार का प्रबल आग्रह रहा है।[४२] हिन्दी और कोंकणी के लोक-साहित्य में प्राप्त इतिहास ऐसी ही एक पृष्ठभूमि को सामने ला सकता है। कई समानताओं के साथ साथ इन साहित्यों में अपने अपने स्थानीय इतिहास का पुट गहरी मात्रा में मिलता है जिसके उद्घाटन से विलुप्त अथवा विस्मृत इतिहास पूर्णतः प्रकाश में आ जाता है और उनकी विशेषताओं, समानताओं एवं विषमताओं के साथ प्रकट हो जाता है। हिन्दी की कई बोलियों में उसके इतिहास का स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए भोजपुरी गीतों के अधययन से मुगलों के अत्याचार, उनके शासन की ढिलाई एवं व्यभिचार का पता चलता है। आल्हा की गाथा के द्वारा परमार्धिदेव के

इतिहास पर प्रकाश पडता है।[43] आल्हा खण्ड की ऐतिहासिक सामग्री का महत्व कुछ कम नहीं है। व्रज के लोकगीतों में यदि हम राधा कृष्ण से संबन्धित गीत पाते हैं तो राजस्थान में ढोला और मरवण की झलक हमें मिलती है। उत्तर भारत में गोपीचन्द की कथा बहुत प्रसिद्ध है।

इस पर आधारित निम्नलिखित लोकगीत मिलता है जिसमें स्त्रियों का यवनों द्वारा अपहरण तथा उनके सतीत्व की रक्षा का वर्णन है।

गोपीचन्द के पाँच बहुरिया, पाँचों ही पनियां कूं जाय हो राम
जब रे नवलदे नै गागर फाँसी, बाएँ बोला है काग हो राम
ज्यों ही नवलदे देखन लागी, बाहर खडे मुगलान हो राम
क्या रे मुगल के तुम लडोगे, क्या रे चढोगे चढाई हो राम
नारी नवलदे लडें लडाई, ना री चढेगे चढाई हो राम
थारे तो घर में कन्या जो कहिये उसकी लेंगे सगाई हो राम
क्या री बेटी तुम राज रजोगी, और बनो मुगलानी हो राम
ना रे बाबा हम राज रजेंगी, ना रे बनें मुगलानी हो राम
गहरा सा झंझर खुदा मेरे बाबा, उसमें ठीक समाइयाँ हो राम
हाथी समाय बेटी धोडा समा जाय, बेटी नायं समाए हो राम
आले-गीले चंदन कटाओ, मेरे बाबा उसमें ठीक जलाइयो हो राम[44]

इसी प्रकार छत्तीसगढ के रतनपुर, श्रीपुर आदि स्थानों के इतिहास के संबन्ध में *देवारों* के गीत निरसन्देह उपयोगी सामग्री प्रस्तुत कर सकते हैं। इतिहास शोधक वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा इन गीतों और गाथाओं से महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

उत्तरप्रदेश के अलिगढ, एटा, बदायूँ आदि क्षेत्रों में भादों के महीने में *टेस* माँगने की परंपरा है। बच्चे सरकण्डों का एक आदमी बनाते हैं। मिट्टी

से उसके हाथ और चेहरा बना दिया जाता है और जहाँ इन दो तीन सरकण्डों का मिलान होता है दहाँ दीपक रखने की व्यवस्था की जाती है। बच्चे उस सरकण्डे के टेसू को उठाकर संध्यासमय गीत

टेसु टेसु वम्मनबीर,
खींच कमनीयाँ मारियौ तीर

गाते हुए अनाज माँगते हैं।

यह वम्मनबीर कौन था ? उसका शौर्य किस प्रकार प्रकट हुआ था ? और वह बच्चों का मसीहा कैसै बना, इन प्रश्नों के उत्तर मिलना कठिन है। फिर भी लोकगीतों में उसका जो जिक्र हुआ है, वह भी बच्चों के द्वारा, इस बात का साक्षी है कि संकट के समय इस वीर ने बच्चों की रक्षा की होगी।[४५] इसी प्रकार लोककंठ के जरिए शंकरगढ का इतिहास भी सुरक्षित रहा है। यह गीत पीढी दर पीढी जनश्रुति के आधार पर अपना इतिहास सुरक्षित रखे हुए है। वहाँ की एक कहावत में यह पूरा इतिहास इस प्रकार प्रकट हुआ है। *राजा वैद बसायो साँकरो (शंकरगढ) दे कंकड की ईंट*।[४६]

लोककथाओं में ऐतिहासिक तथ्य बहुत बडी मात्रा में मिलता है। हमारा प्राचीन शौर्य, त्याग, बलिदान, गौरव आदि इन एतिहासिक आख्यानों के द्वारा ही जीवित है। राजस्थान की धरती बलिदानों की रही है। यहाँ पर ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण कथाएँ मिलती हैं। जगदेव पँवार, जगमल, मालावत, वीरमदेव, सोनगरा, जैतसी , उदावत महाराज मानसिंह, पद्मसिंह, अमरसिंह, गजसिंह आदि का विवरण इन कथाओं में मिलता है। इनसे कई इतिहास चर्चित सत्यों की खोज की जी सकती है।

हरियाणा में वीरमदेव की कहानी में राजपूत ललना वीरमती के सतीत्व की परीक्षा मिलती है। इसी प्रकार मालवा क्षेत्र की राजा रिसाल की

कथाएँ और उनके वीरोचित कार्य मालवा के कुछ बनजारों की कथाओं में मिलता है। बुंदेली लोक कथाओं में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ साथ बुन्देलखण्ड के गौरव के अनेक प्रसंग समन्वित हुए हैं। महाराजा वीरसिंह के शौर्य की गाथाएँ लोककंठ में खूब बस गई हैं।

हिन्दी लोकगीतों में कुछ एसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है जिनके आधार पर हम इन गीतों के निर्माणकाल का अनुमान लगा सकते हैं। बलिया के एक लोकगीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं जिनमें स्थानीय इतिहास का पुट मिलता है।

राजा भइले रजुली बहोरन भिले धुनिया
मोरेले, दलगंजनदेव, हल केले दुनिया है [47]

इसमें दलगंजनदेव एवं बहोरंग पांडे के नाम जो आए हुए हैं, वे लोग एक सौ वर्ष पूर्व बलिया में विद्यमान थे जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह गीत उस समय का है। अंग्रेजों से बगावत कर स्वतंत्रता का झंडा ऊँचा करनेवाले कुँवरसिंह के विषय में अनेक गीत उपलब्ध होते हैं । कुछ गीतों में मुगलों के अनाचार एवं व्यभिचार का भी वर्णन पाया जाता है । इन गीतों में बहिन भाई को गाय का दूध पिलाकर मुगलों से लडने के लिए उत्तेजित करती है और कहीं वह लंबी सूप जैसी दाढी देखकर उससे धृणा करती है।

सूप अइसन दाढी मो गलवा के बरधा अइजल आँखि
ओहि मुहें लिहलन मोगल चुमवा रजलो के छूटि हकिलाइ [48]

कोंकणी में भी इस प्रकार के ऐतिहासिक संदर्भ लोकगीतों में जहाँ तहाँ देखने को मिलते हैं । गोवा कोंकणी लोकसाहित्य का मूल केंद्र रहा

है। इसके अलावा महाराष्ट्र, कर्नाटक और केरल में भी इसकी व्यापकता देखी जाती है। प्राचीन काल में कोंकणी संस्कृति का मूल पीठ गोवा ही रहा। तिरहुत से सारस्वत ब्राह्मण आकर गोवा में ही बसे थे।[४९] महाभारत के भीष्मपर्व के नवें अध्याय में गोवा का नाम आया है। संस्कृत साहित्य के लिए चिरपरिचित हेमाद्रि गोमंतक में ही है। कोंकणी में इसे *हेमाड* कहते हैं। कोंकणी लोकसाहित्य में गोवा के पर्वतों नदियों और संपन्न प्रकृति का वर्णन मिलता है। लोककथाओं में इन प्रदेशों से संबन्धित ऐतिहासिक संदर्भ स्थान स्थान पर मिलते हैं। ई. पू. पहली शताब्दी में गोवा को *सुवर्णापरांत* कहा जाता था।[५०] कोंकणी लोकगीतों लोककथाओं एवं कहावतों में गोवा की इस महानता की ओर संकेत अवश्य मिलते हैं। जैसे -*जाणतल्यांक गोंय नेण्तल्यांक पोंय* (जाननेवालों को गोवा न जाननेवालों को पोला). *धाटारि गोरवां गोंयांत तारवां* (धाटी पर गोरू गोवा में जहाज़) ये प्रसंग प्राचीन काल में गोवा की संपन्नता का उल्लेख करते हैं।

गोवा के इतिहास में सन् १५१० से लेकर पुर्तगालियों के द्वारा कोंकणी लोगों पर वैसा ही अत्याचार किया गया जैसा मुगलों या यवनों द्वारा उत्तर भारत के लोगों पर किया गया। जिस समय पुर्तगाली लोग गोवा आए उस समय कोंकणी लोगों की सरल एवं स्वाभाविक कृतियों का साहित्यिक निरूपण कल्पनाविलास के साथ मिलता था। पुर्तगाली शासकों द्वारा कोंकणी पर रोक लगाए जाने और उनके द्वारा कोंकणी के लिखित साहित्य को भस्मसात् किए जाने पर जो साहित्य बचा वह केवल आम जनता की जिह्वा पर खेलनेवाला कोंकणी का संपन्न लोकसाहित्य ही था जिसने पुर्तगालियों के घोर आक्रमण से कोंकणी भाषा एवं उसकी संस्कृति को बचाया। भाषा के स्वाभाविक सौन्दर्य एवं निखार ने कोंकणी लोकसाहित्य में अपना आश्रय खोज लिया। दुःख के दिनों में फिरंगियों के अत्याचारों का

विस्तृत विवरण प्रतीकात्मक ढंग से गीतों में प्रस्तुत हुआ। उदाहरण के लिए

फरंग्यालें बोम्मे तें हंगा कशि पावलें
तें वार् यान झोडान पावलें
तें अंगाक मग्गता चोळि तें खावंचाक मग्गता पोळि
ते पोळयेरि तूप ते बोम्यालें रूप [51]
(फिरंगियों का गुड्डा, वह यहाँ कैसे आया ?
आँधी तूफान में आया , वह माँग रहा है चोली
वह माँग रहा है पकवान
घी में तला, यही है उस गुड्डे का रूप)

फिरंगियों के गुड्डे बने हुए कोंकणी लोग इस गीत में उनके अत्याचार रूपी आँधी तूफान का जिक्र करते हैं। फिरंगियों के शासनकाल में कोंकणी लोगों के पास न खाने को कुछ था न पहनने को। इन पर पुर्तगालियों के द्वारा रोक लगाई गई थी। शासकों के अत्याचारों से पीडित लोग इन गीतों के जरिए गोवा के अपने संपन्न जीवन की याद करते रहते हैं। इस ग्रंथ में जो वर्णन मिलता है वह किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में मिलना कठिन है। उस समय के कोंकणी समाज का यथार्थ चित्र इस गीत के जरिए प्रकट हुआ है। इसी प्रकार का और एक गीत जिसमें इस बात का वर्णन किया गया है कि कोंकणी लोगों ने किस प्रकार पुर्तगालियों के अत्याचारों का बदला लिया, नीचे दिया गया है ।

हो धरे हो धा
फरंग्यालीं तारवां आयलीं सोळा सत्तेरा
मम्मान तारवां सोळ्ळीं सोळा सत्तेरा
तारवावेलो दीवो पुत्तान उंदकां दिक्कीलो

कव्ळि पंगायि मारली मत्यारि
घायु जल्लो रे, घायु जल्लो रे [५२]

(हो धरे हो धा
फिरंगियों के जहाज आए सोलह और सत्रह
मामा ने भी छोडे जहाज सोलह और सत्रह
जहाज का दिया देखा पानी में लाडले ने
डाँड ली हाथ में, मारा उनके सिर पर
घाव बना सिर पर घाव बना रे)

पुर्तगालियों के अत्याचारों को असहनीय पाकर कोंकणी लोग गोवा को छोडकर कर्नाटक एवं केरल में आ पहुँचे तो भी वहाँ की सुनहली यादें उनके मन में बराबर जीवित रहीं। यह इस बात का प्रमाण है कि कोंकणी संस्कृति में गोवा का अप्रतिम महत्व रहा है। लोकगीतों में इसका विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है।

१. वट्टेन वत्तल्ले गोंयचे वोळारा
दिक्कीलो वे आमगेले नवे जावयांक [५३]
(गोमन्तक के बटोही चुडिहारा
हमारे नये दामाद को क्या तुमने देखा ?)

२. कय्ळ्या तू गोंयां गोल्लोलो वे ?
पुत्तोलो मम्माक दिक्कीलो वे ? [५४]
(कौए तू गोवा गया था क्या ?
लल्ला के मामा से मिला क्या ?)

३. गोंयचे पील सुण्या बाल, कोण सूणें ? बाब्बुडि सूणें [५५]
(गोवा का बच्चा, कुत्ते की पूँछ, कौन कुत्ता ? मामा कुत्ता)

इन गीतों में विभिन्न संदर्भों में गोवा की यादें चित्रित मिलती हैं। असल में गोवा कोंकणी लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था। अपना देश छोडने की पीडा और अपनों से बिछुडने का दु:ख इन गीतों में झलकता है। किसी गीत में गोवा के साश्टी प्रदेश से सामग्री लाकर घर के नवीकरण का प्रयत्न चित्रित है। गीत इस प्रकार है।

बोर बाळे बोर तीं य्हा बोरीचीं त्या बोरीचीं
मिज्जो भावु साष्टे गेल्लो थंगा जल्लें फल्लें
साष्टे गेल्लोलो इत्ति हळ्ळेलें ?
साष्टीची मड्डुळ हाडून कव्वड बंदीलें [५६]
(बेर बाले बेर ये, इस पेड के उस पेड के
मेरा भाई साष्टि गया, भोर भई वहीं पर
साष्टि से क्या लाया ? सूखा डंगोला
जिससे किवाड बना)

गोवा से संबद्ध कोंकणी लोगों का इतिहास कई कोंकणी कहावतों में भी मिलता है। प्राचीन काल में गोवा में कोंकणी बोलनेवाले लोगों को विभिन्न विभागों में बाँटा गया था। विभिन्न विभागों के लिए भिन्न भिन्न नाम भी दिए गए थे जैसे *शणै, पोरब, पटेल, कामत, नायक, भण्डारी, सामन्त, ठाकुर* आदि।[५७] राजा की सेवा में लगे हुए विभागों के नाम थे *नायक* और *राव। पास्कल नायकालो सोरो* (पास्कल नायक की शराब) वाली कोंकणी कहावत में इसकी ओर संकेत मिलता है। इसी प्रकार शणै विभाग से संबन्धित कहावतें भी मिलती हैं जैसे *बोंब शणै करीत ती दीवाळी* (बोंब शणै जो मनाता है वही है दिवाली), *कुशीलें कुवाळें कुश्ट शणैक* (सडा कुम्हडा कुश्ट शणै को), *कोंकणो व्हाव्नु मेल्लो, शणै खाव्नु मेल्लो* (कोंकणी बोझ ढोते ढोते

मरा और शणै खाते खाते मरा)

इन कहावतों में भिन्न भिन्न वर्गों से संबन्धित इतिहास मिलता है। कोंकणी कहावतों में सर्वाधिक प्रमुखता के साथ हिखाई पडनेवाला ऐतिहासिक व्यक्तित्व *म्हाळ प* का है। उनका परिचय देनेवाली कहावतें इस प्रकार हैं।

१. म्हाळ पैक जोर सगळ्या गँवाक पेज
(म्हाळ पै को ज्वर और गाँव भर को चावल का दलिया)

२. गोंयची भूंय म्हाळ पैचें घर
(गोवा की भूमि म्हाळ पै का घर)

३. म्हाळ पैचे धरचे लग्ना मांटवांत कुट्टप्पा कुर्टाक मुंजी पोडु
(मह्माळ पै परिवार की शादी के मंडप में कुट्टप्पा का भी जनेऊसंस्कार)
(म्हाळ पै के धर से मट्ठा माँगनेवालों को दिया जाता है)

४. म्हाळ पैचे घरचें ताक मागतल्यानी व्हरचें
(म्हाळ पै के घर का मट्ठा माँगनेवाले को मिलता है)

५. म्हाळ पैचें काण गळटलें आनी माका मेळटलें
(म्हाळ पै की काँची गिर जायगी और मुझको मिलेगी)

ऊपर दी गई कहावतें म्हाळ पै को लेकर चलती हैं। म्हाळ पै का ऐतिहासिक महत्व इनमें व्यक्त हुआ है। म्हाळ पै एक बडे एवं कुशल प्रशासक रहे जिन्हें हम एक छोटे राजा का रूप दे सकते हैं। प्राचीन गोवा में वे म्हाल (गाँव) के अधिकारी थे और गाँव पर शासन चलाते थे। म्हालपति ही म्हाळ पै बन गया है। अंतिम कहावत सरसता के साथ म्हाळ पै की आर्थिक संपन्नता को अभिव्यक्त करती है। म्हाळ पै कमर पर सोने की एक ढीली मेखला पहनते

थे और लोग उनके पीछे हो लेते थे, इस आग्रह से कि वह अभी गिरेगी और मुझको मिलेगी। सत्य यह है कि बडे लोग गिरी हुई वस्तुओं को फिर से ग्रहण नहीं करते थे। यह बात भी इस कहावत में ध्वनित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बडी सशक्त रही है। इस के जरिए प्राचीन काल की राजनैतिक एवं सामाजिक गतिविधियों का परिचय मिलता है। जो घटनाएँ हम इतिहास में नहीं पाते वे इस साहित्य में प्रकट देखी जा सकती हैं। हिन्दी हो या कोंकणी, इस दृष्टि से लोकसाहित्य का महत्व अक्षुण्ण रहा है।

सामाजिक पृष्ठभूमि

लोकसाहित्य में व्यष्टि से बढकर समष्टि की ओर झुकाव दिखाई देता है। इसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज की ही प्रमुखता है। किसी भी भाषा का लोकसाहित्य इसका अपवाद नहीं है। हिन्दी और कोंकणी समाज को लिया जाय तो इनमें कई समानताओं और असमानताओं के साथ जीवन के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। इनमें लोकजीवन में समाज का प्रतिबिंब खोजा जा सकता है। लोगों का जीवन मूल्य, समाज की जडें इसी साहित्य में पाई जाती हैं। इस कारण से लोकसाहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें प्रत्येक सामाजिक पहलू का चित्र हमें मिल जाता है। यहाँ एक ओर समाज की परंपराएँ, और संस्कार उभर कर आते हैं तो दूसरी ओर सामाजिक दिनचर्या और जीवन का सांगोपांग चित्र मिल जाता है। लोकसाहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें सामाजिक समरसता देखी जा सकती है। त्योहारों और उत्सवों के समय ये लोकगीत सामाजिक स्तरभेद को मिटाकर समरसता स्थापित कर जाते हैं। किसान अपनी पीडा को गा

गा कर भुला देता है। दु:खी नारी अपने दु:ख को इन्हीं गीतों के माध्यम से भुलाती है। धान कूटते समय गीत गा गाकर स्त्रियाँ परिश्रम को हल्का कर देती हैं। ये गीत सुख के समय के हों या दु:ख के समय के, ये जनता का मनोरंजन करते रहते हैं यह साहित्य समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

प्राचीनकाल में समाज में वर्णव्यवस्था का प्रचार रहा था। इसका प्रतिबिंब हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में देखा जा सकता है। लोकसाहित्य में वर्ण व्यवस्था समाज को अनुशासित करने एवं व्यक्ति के जीवन को सुगम बनाने के उद्देश्य से चित्रित मिलती है। जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विज: वाली उक्ति यहाँ पर सार्थक होती है। यहँ पर व्यक्ति व्यक्ति में भेद नहीं है। सब लोगों के अपने अपने धर्म एवं कर्तव्य हैं। कोई किसीसे भी ऊंचा या नीचा नहीं है। यहाँ पर सामाजिक समरसता देखी जा सकती है। वह कर्तव्य एवं अधिकार के संतुलन के रूप में हुई। परस्पर पूरकता और परनिर्भरता के आदर्श को समाज में स्थापित करने में लोकसाहित्य का विशेष महत्व रहा है। इस दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत ऊच नीच, छुआछूत आदि भावों को लोकसाहित्य ने किसी भी हालत में स्वीकार नहीं किया। यहाँ पर गाँव की बेटी पूरे गाँव की इज्जत रही, चाहे वह किसी भी जाति की क्यों न हो। बेटी के विवाह को संपन्न करने में गाँव के ब्राह्मण, कुम्हार, नाई, धोबी, बढई, कुर्मी सभी जातियें के लोगों की उतनी ही जिम्मेदारी रहती थी जितनी लडकी के पिता की। लोकगीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

ब्राह्मण केर पोथी फाडो, हजमा के दाढी जारो
जिनि लयलन बुढवा जमाई

और भी,

थाली जो लाया है पुराना हजमा
अकलेल बभना बकलेल हजमा
टांग धर पटक देवउं माँझ अंगना
अकलेल बभना बकलेल हजमा [५८]

यहाँ पर लडकी के पिता से भी बढकर ब्राह्मण और हजमा को ही उत्तरदायी ठहराया गया है। बूढे से लडकी के ब्याह का और ठीक तरह से दहेज न देने का कारण लोग इन्हींको मानते हैं।

हिन्दी समाज में जिस सामाजिक समरसता में नाई, कुर्मी, धोबी, बढई, कुम्हार आदि की भागीदारी उनके कर्तव्यों और अधिकारों के निभाने में दिखाई गई है उसी प्रकार कोंकणी समाज में भी यह भागीदारी लोकसाहित्य के जरिए अभिव्यक्त की गई है। यहाँ पर कुम्हार अपने मटकों की सिफारिश करता है, सुनार अपनी माँ के गहनों से भी सोना चुराता है, नाई हजामत को ही अपना कर्तव्य मानता है और चमार अपने जूतों से अपने ईश्वर की पूजा करता है। कहावतें इस प्रकार चलती हैं

कुंबोरु आपल्या मटक्यां सिफारिश करता
(कुम्हार अपने मटकों की सिफारिश करता है)
अम्माले तल्ली भंगारय सोन्नारु फरतोलो
(अपनी माँ के मंगलसूत्र से भी सुनार सोना चुराता है)
गोकर्णतलो म्हाळो
(गोकर्ण का नाई जो हमेशा अपने कर्तव्य में लगा रहता है।)
चमराले देवाक व्हण्णे पुज्जा
(चमार के ईश्वर को जूतों से पूजा) [५९]

यहाँ पर सब लोग अपना कर्तव्य भली भाँति निभाते हैं और समाज अपने आप संपन्न हो जाता है। स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी समाज में कई जातियों का अस्तित्व था। इन जातियें का विभाजन कर्म के आधार पर किया गया था। लोकसाहित्य में चित्रित इस समाज में कोई भेदभाव नहीं था। हर व्यक्ति समाज का सुप्रधान सदस्य माना जाता था जिसके अभाव में समाज का काम ठप्प हो जाता था। अपने उत्तरदायित्व को अभिमानपूर्वक निभाना वह भली भाँति जानता था। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में चित्रित जातिव्यवस्था इसी बात की और संकेत करती है कि दोनों समाजों का स्तर काफी ऊँचा था और समान था। यहाँ जातिव्यवस्था काम के वास्ते बनी थी जो समाज का शोषण नहीं पोषण करती थी।

अनमेल विवाह समाज की सबसे बडी समस्या रही है। बालविवाह में स्त्री आशा पर जी लेती है। किन्तु वृद्धविवाह उनकी सभी आशाओं का गला धोंट देता है। ऐसे बेमेल विवाह की व्यथा के कारण बननेवाले गाँव के ब्राह्मण और हजमा को उतना ही जिम्मेदार ठहराया गया है जितना कि लडकी का पिता। किसी लोकगीत में बूढे की पत्नी सखियों से कहकर अपने मन को इस प्रकार हलका करती है कि

> बिन मेल बिगड गया खेल, बूढे से मेरी जोडी ना मिलै
> या ते बाबा कहूँ के भरतार, बूढे से मेरी जोडी ना मिलै [६०]

अनमेल विवाह की व्यथा का भाव व्रज के लोकगीतों पर खूब पडा हुआ है। पैसे के लोभी पिता ने जब बेटी का ब्याह वृद्ध से कर दिया तो बेटी को चुपचाप उसके पीछे चलना पडा। व्रज के कुछ लोकगीतों में बालविवाह की प्रथा एवं उस पर करारा व्यंग्य मिलता है। कई लोककथाओं में इस ओर संकेत मिलता है कि नई ब्याही गई छोटी बालिकाओं को शादी के बाद नाई

और कहार मिलकर सुरक्षित ससुराल पहुँचा आते थे। जैसे

बाबा के डोलिया भैया के कहरिया
सीता देई जाइ छन ससुराल [६१]

बेटी की जात जो भी हो कहार उसके भैया हैं। रास्ते में मिले अनजान बटोही से वह बातें करती है, अपने हिये का उद्गार व्यक्त करती है। बटोही भैया से उसकी विनती है कि वह उसका सन्देशा बिलखती हुई माँ तक पहुँचा दे। उसकी माँ से कहे कि वह अपनी बेटी को बिदा कर अपना हृदय पत्थर का बना ले। वह भी स्वयं हिया हार कर ससुराल में रहेगी। अनजान बटोही से की गई यह माँग उस समय विद्यमान सामाजिक विश्वास का ही प्रतीक है।

वोळारु(चुडिहारा) नाम के कोंकणी लोकगीत में नायिका रुक्मिणी चुडिहारे को संदेशवाहक बनाती है और अपना कार्य संभालती है। [६२] रुक्मिणी के संपन्न माता पिता दहेज में उसे सब कुछ दे चुके। लेकिन खैला पहुँचाना भूल गये। इस कारण से रुक्मिणी को ससुराल में क्या क्या सहना पडा इसका विवरण गीत में मिलता है। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

अंदण विंदण दिलें मरे भावा
खोवल्या खातीरि जावो इण्सिताय
जावो रे इण्सिताय नणदो उत्तरां दित्तीं
शेजार धरकड्च्यो बायलो व्हय व्हय म्हणतीं [६३]

(दहेज में सब कुछ मिला रे भैया
खैले के खातिर दुराय भसुरिया
दुराय भसुरिया, छेडइ ननदा
देत रही पडोसिनें हंकारा)

दहेज की समस्या जिस प्रकार कोंकणी समाज में कन्या के जीवन को दु:खमय बना देती है उसी प्रकार हिन्दी समाज में यह सुरसा बनी हुई मुँह फाडकर माता पिता के सामने खडी है। निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए:

एतना दहेज हम बेटी के दीहनी,
आरे बैठी मुख का बोले ला दामादा [६४]

कन्यापक्ष की स्त्रियों ने वर को यथासामर्थ्य विदाई दी। ससुर ने उसे गाय, बैल, भैंस, आदि दिये। फिर भी दामाद को प्रसन्न नहीं कर सके।

भारतीय समाज में चाहे वह हिन्दी समाज हो या कोंकणी समाज, कन्याओं की यही अवस्था है। इसके ठीक विपरीत लडकों से हमेशा यह प्रतीक्षा की जाती है कि वे परिवार में राज करेंगे, बहू लाएँगे , दहेज लाएँगे, वंश बढाएँगे, मरने पर पानी देंगे, संपत्ति की रखवाली करेंगे , सेवा करेंगे और जीविकोपार्जन करेंगे। हिन्दी और कोंकणी समाज इस बात में पूर्णत: समान है। लोरियों और पालने के गीतों से शुरू करके जीवन के अन्त तक पुरुषप्रधान समाज की गति यही दिखाई गई है। लोरियों में पुत्र के लिए गाए जानेवाले गीत पुत्रियों के लिए गाये जानेवाले गीतों से बिलकुल भिन्न हैं। उदाहरण के लिए अवधी की एक लोरी में किसी माँ का सपना देखिए :

कब लाल बडा कै होइहैं , कब बाबा कि बगिया जिहै
कब आम घवदि लै अइहैं , कब आजी के अगवाँ धरिहै
कब सबकर जिया जुडैहैं [६५]

कोंकणी में इससे मिलता जुलता बालगीत इस प्रकार है :

गोण्डो होडु जत्तलो नवे देवा पांयि पडतलो नवें
व्यारु सारु कोरतलो नवे अव्सु बप्सु पोसतलो नवें
आलो रे गोण्ड्या आलो म्हणु आम्मोले गोण्ड्या आलो
(लाल बडा जब होगा, इश्वर को नमस्कार करेगा
व्यापार खूब संभालेगा, माता पिता को पालेगा
सो जा मेरे लाल, सो जा, रे, सो जा)

हिन्दी तथा कोंकणी की इन लोरियों में माता के सपनों का सुन्दर वर्णन देखा जा सकता है। अन्तर केवल इतना ही है कि अवधी की लोरी में कृषि संस्कृति की पृष्ठभूमि है तो कोंकणी की लोरी व्यापार संस्कृति की ओर संकेत करती है। दोनों समाजों में लडके को लेकर अनेक आकांक्षाएँ रहती हैं जिनकी अभिव्यक्ति इन उदाहरणों में हुई है। लेकिन लडकी को लेकर इस प्रकार की आकांक्षाएँ और संभावनाएँ दोनों समाजों में नहीं मिलतीं।

हिन्दी और कोंकणी समाज के विधिसंस्कार, पर्व, व्रत एवं उत्सव, खान पान, आभूषण, देवी देवता, सबके दर्शन लोकसाहित्य में हो ही जाते हैं। स्थानभेद के कारण इनमें कुछ भिन्नताएँ अवश्य मिलती हैं, लेकिन मूल एक ही है। हिन्दी और कोंकणी समाज मूलतः धर्म पर ही प्रतिष्ठित है। धर्म पर अटल रहते हुए दोंनों भाषाओं के लोकसाहित्यों में मानवीय मूल्यों का अनुशीलन समान रूप से किया गया है। कोंकणी की एक कहावत संक्षेप में इसका जिक्र इस प्रकार करती है:

जगा सुख दुख आपलें, आपलें जगाचें
भो व्होड भाग्य हें समझतल्याचें [६७]

(जग का सुख दुःख अपना, अपना तो जग का भी
इसे जाननेवाला बहुत ही भाग्यशाली है)

कोंकणी लोकसाहित्य की यह एक विशेषता रही है कि इसमें हिन्दू और ईसाई समाज के तत्व धुल मिल गए हैं। कोंकणी का *मांडा* नामक लोकनृत्य इसका ज्वलंत प्रमाण है। इस नृत्य के साथ जो साहित्य लगा हुआ है, वह दोनों संस्कृतियों के अपूर्व संगम को ही दिखाता है। पुर्तगालियों द्वारा धर्मांतर करने के बाद गोवा के हिन्दू लोग ईसाई धर्म स्वीकार करते गये । लेकिन उन्होंने अपनी मूल रिवाज़ों को कभी नहीं छोडा। विवाह के समय हिन्दुओं में प्रचलित तेल लगाने क़ी प्रक्रिया ईसाइयों ने थोडी सी बदलकर उसके नाम में परिवर्तन करते हुए *रोस* लग़ाना कर दिया है। उसी प्रकार हिन्दुओं में विवाह के समय गाई जानेवाली *ओवी* यहाँ पर ईसाइयों के बीच *येर्स* के रूप में परिवर्तित की गई है। लेकिन इनका भाव हिन्दुओं और ईसाइयों में समान रहा है। इसका विस्तृत विवरण आगे के अध्यायों में दिया जायगा।

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में पारिवारिक संबन्धों और उनके महत्व का काफी जिक्र मिलता है। परिवार के लोगों का सुख दुःख, चैन एवं बेचैनी, सबका चित्रण इस साहित्य में रहता है। पति पत्नी, भाई बहन, सास बहू, देवर भाभी, ननद भौजाई, जीजा साली, माता पुत्र सास जमाई आदि तरह तरह के संबन्धों का चित्रण इस साहित्य की खासियत है। इन संबन्धों के पीछे काम करनेवाले यथार्थ चित्र बिना किसी दुराव या छिपाव के इस साहित्य में प्रकट होता है। पति पत्नी संबन्धों में आदर्श संबन्धों के साथ साथ यथार्थ चित्र भी मिलता है जैसे पति और पत्नी के बीच का पीहर और ससुराल के बीच के अन्तर को दिखाते हुए व्यंग्य विनोद से युक्त सुन्दर चित्र। इसमें पत्नी के हृदय का यथार्थ सुन्दर रूप से उकेरा गया है।

हट जा बेदर्दी गँवारवा तेरे संग ना जाऊँगी
तेरे संग जाऊँगी, भूखों मर जाऊँगी
मेरे पीहर जलेबियाँ तेरे संग ना जाऊँगी [६८]

इसी प्रकार कोंकणी में पुराने जमाई और नए जमाई से किए जानेवाले भिन्न व्यवहार का यथार्थ चित्र भी काफी व्यंग्य और विनोद प्रस्तुत करता है। इसका जिक्र पहले किया गया है।

भाई बहन का संबन्ध हिन्दी और कोंकणी लोकगीतों में बराबर अंकित है। इस संबन्ध में जो पावनता रहती है वह संसार के अन्य किसी संबन्ध में नहीं । इन संबन्धों की पावनता का निर्झर ही हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में मिलता है। ये लोकगीत स्नेह की छलकती हुई गागर हैं। बहन के दिल में भाई के लिए उमडती हुई शुभ कामनाएँ हैं। युग युगों से बहन अपने हृदय की पूजा की थाली सजाकर, उसमें स्नेह का दीप जलाकर भाई की आरती उतारती है। बहिन की रक्षा के लिए भाई भी प्राणों की बाजी लगाते रहे हैं। जब बहिन की विदा का समय आ जाता है तो भाई को जीजा से कहना पडता है :

हाथ जोर के बिरन भैया ठाढे सुनउ जीजा अरज हमारी रे
आपनि बहिनियाँ तोह दीन्हेउ, किहउ भली विधि प्रतिपाल रे [६९]

कोंकणी लोकगीतों का भाई एक कदम आगे बढकर अपनी बहिन के प्रति दुष्ट भावों से भरी हुई अपनी पत्नी को इस प्रकार सजग करता है

दादा धरांक इली गाय, आमट ताकाची खीर खाय
खीर खातना ढवळले, दादा मनांक कलकललें
दादान खीरीक मारलो भुर्को, आमटाण मिर्सांग लागलो खुटको
एका तपलाक दोन भेद करशी, रानांतले दागूळ जावशी

आपले इष्ट आपूण खाशी, झाडा खांद्याक गोळ घेवशी [७०]

(भाई के घर छोटी गाय, खट्टे मट्ठे की खीर बनी

खीर जो खाई मिश्रित थी, दिल की धडकन तेज हुई

भाई ने खीर का स्वाद लिया, खटाई, तीखापन, और कंकड

एक ही तपेले में दो पकवान, वन का चमगीदड न बनो

अपने आप न कष्ट करो, अपना नाश आप न करो)

भौजाई ने खीर तो पकाई, लेकिन कपट के कारण उसने ननद के पेट में हलचल मचा दी. भाई का कलेजा धडकने लगा। उसे बहुत बुरा लगा। उसने बहिन की थाली से खीर खाई। अपनी पत्नी की करनी उसकी समझ में आई। उसने पत्नी को डाँटा। उसे सजग किया और कहा: अपनी खैरियत तुम स्वयं नष्ट कर दोगी। वन के चमगीदड की तरह तुम्हारे लिए रहने का स्थान नहीं होगा। कोई भी तुम्हारे प्रति आदर या प्रेम नहीं दिखाएगा।

हिन्दी और कोंकणी का लोकसाहित्य दोनों समाजों के सत्य को अंकित करनेवाला होता है। उनमें सामाजिक संबन्ध, पारिवारिक वातावरण, रीति रिवाज, सदस्यों के मानसिक एवं शारीरिक व्यापार, आचार विचार आदि आते हैं। क्षण क्षण में परिवर्तित होनेवाली समाज के हर सदस्य के हृदय की धडकन इस साहित्य में समाई रहती है। इसमें संयोग भी है, वियोग भी है, सुख भी है, दुःख भी है, समस्याएँ हैं और उनका सुलझाव भी। जीवन की जटिलताओं के बीच में पडकर मानसिक उलझनों के कारण कठिनाइयों का अनुभव करनेवाले स्त्री और पुरुष का चित्र भी यहाँ प्रस्तुत किया गया है। पारिवारिक सदस्यों के मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी लोकसाहित्य में खूब मिलता है।

इस प्रकार विभिन्न स्तरों पर हिन्दी और कोंकणी समाज को परखा

जाय तो व्यक्त होगा कि कई समानताओं और भिन्नताओं के साथ दोन समाज एक ही मूल को लेकर आगे बढे हैं और इसका प्रतिबिंब हिन्दी औ कोंकणी लोकसाहित्य पर पडा हुआ है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

हमारी सांस्कृतिक परंपरा अक्षुण्ण रही है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशी भाषाओं के माध्यम से यह संस्कृति विकसित होती रही है। इसी परंपरागत संस्कृति को हिन्दी और कोंकणी भाषाओं ने पाया है। दोनों भाषाओं के लोकसाहित्य की यह विशेषता रही है कि इनमें हमारी प्राचीन संस्कृति के जय पराजय की गाथा निहित है। यह संस्कृति ऋषियों से संबन्ध रखती है जिन्होंने अपनी विवेकबुद्धि के जरिए पृथ्वी एवं प्रकृति, भाषा एवं विचार, व्यवहार एवं नीति तथा परिश्रम को मिलाकर इस संस्कृति का निर्माण किया। यह संस्कृति वेदकाल से लेकर प्राकृतिक वातावरण में पली वृक्ष लताओं, खेत खलिहानों, जन्तु मृगादियों, पर्वतों एवं नदियों से संबन्धित रही है। सामुदायिक मौखिक परंपराओं ने हिन्दी एवं कोंकणी में इसी संस्कृति को सुरक्षित रखने का काम किया है। पूरे लोकसाहित्य के संदर्भ में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। इस संस्कृति के अनुसार जीवन में पुरूषार्थ का बडा महत्व रहा, बुद्धि की प्रमुखता रही और मनुष्यों की समष्टि के रूप में लोक की संकल्पना का विकास हुआ जो अकृत्रिम तथा स्वाभाविक रहा। *वसुधैव कुटुम्बकम्, यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्, सर्वे सुखिनः सन्तु, परोपकारार्थिमदं शरीरम्, अहिंसा परमो धर्मः* ही इस महान संस्कृतिवाले लोगों का जीवन दर्शन रहा है। इन्होंने *सर्वदेवनमस्कारं केशवं प्रति गच्छति* के जरिए भावात्मक एकता को ही दिखाया है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में इसी संस्कृति का रूप

उभरकर आया है। एक धर्म, एक मतवाली संस्कृति का निर्माण धर्म की पृष्ठभूमि पर हुआ है। अपनी महान सांस्कृतिक परंपरा को हमेशा ध्यान में रखते हुए बीच बीच में कहावतों के ज़रिए इसकी अभिव्यक्ति करते रहे हैं। कोंकणी में कहावतें इस प्रकार हैं : *वेद शिक्कून भेद कोरन्हयें* (वेद पढकर भिन्नता नहीं दिखाई जानी चाहिए)। *जगा सुख दुःख आपलें, आपलें जगाचें, भो व्होड भाग्य हें समजतल्याचें* (जग का सुख दुःख अपना है, अपना जग का भी है, इसे समझनेवाले का भाग्य बहुत बडा है।) हिन्दी में ये तत्व कोंकणी के जैसे स्पष्ट रूप से नहीं कहे गए हैं। लेकिन तत्वार्थ में इनका प्रयोजन यही निकलता है जो कोंकणी की कहावतों से होता है। हिन्दी में कहावतें इस प्रकार चलती हैं : *आप भला तो जग भला, आप बैमान तो जगत्तर बैमान, आपे दिले जानिए पराये दिल का हाल,* दोनों भाषाओं की इन कहावतों में भेद की दृष्टि को दूर करने और समष्टि को मानने की ओर बल दिया गया है। भारतीय संस्कृति मानव के शरीर के साथ साथ आत्मा के विकास पर भी बल देती है। यहाँ की संस्कृति मानव जाति की एक ऐसी संपूर्ण संस्कृति है जिसमें आभिजात्य और लोकसंस्कार दोनों ही सम्मिलित हैं। [७१]

भारत की महानता वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, धर्म, दर्शन, काव्य आदि भारतीय मनीषियों की उत्कृष्ट उपलब्धियों में निहित है जो भारत की ही नहीं, विश्वमानव की अमूल्य धरोहर है। यह धरोहर लोकसंस्कृति एवं साहित्य में निहित है। हिन्दी और कोंकणी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। लोकसंस्कृति प्रत्यक्ष दर्शन से विकसित होती है। परंपरा एवं प्रत्यक्ष दर्शन का मिला हुआ रूप हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में पाया जाता है। लोक में व्याप्त संस्कार, विश्वास, प्राकृतिक पर्यावरण, रीति रिवाज़, पर्व त्योहार, खान पान सब कुछ इस साहित्य म

निहित रहता है। यहाँ का व्यवहारगत संस्कार समूहगत चेतना को बराबर विकसित करता है। इस लोक-संस्कृति में व्यष्टि सहजता से जुडकर समष्टि का रूप ले लेता है जिससे लोकमंगल की भावना जन्म लेती हैं हजारों वर्ष पूर्व भारत में जिस दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से रहित जीवन जीने की कला और जीवन मूल्यों को खोजने का प्रयास जो किया गया, वह इस लोकसाहित्य में निहित है। इस साहित्य का लक्ष्य व्यष्टिमंगल से होकर समष्टिमंगल तक पहुँचता है। इसके फलस्वरूप हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में भिन्न संस्कृतियों का संगम पाया जाता है। सत्यनिष्ठा, सदाचरण, त्याग, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता जैसे सनातन मूल्यों का सन्देश इस साहित्य में निरन्तर मिलता रहता है। हिन्दी और कोंकणी लेककथाएँ इसका ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इनमें भेदभाव को तोडकर जीव मात्र का महत्व चित्रित है। प्रेम जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है। मानव मानव के बीच, जीव जन्तुओं के बीच एवं मानव तथा जन्तुओं में प्रेम की यह डोरी निरन्तर बँधी रहती है। इन कथाओं में आपदाओं के समय मनुष्य की सहायता करनेवाले साँप, हाथी एवं अन्य पक्षिमृगादि होते हैं । इस प्रकार के कथात्मक वातावरण से प्रेम के महत्व की ओर संकेत किया गया है। सत्य, प्रेम, त्याग आदि से संबन्धित कहावतें भी हिन्दी और कोंकणी में खूब मिलती हैं। जैसे : *नेकी बदी संग जाला और कोह्लू संग न जाय* । जीवन मरण में साथ देनेवाले केवल सत्य एवं सदाचरण ही होता है। और कुछ नहीं। सत्य जीवन में मानव का सबसे बडा हितैषी रहता है। सत्य ही शाश्वत रहता है। संस्कृत में एक कहावत है:

सत्यं सत्सु सदा धर्म सत्यं धर्मः सनातनः
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः

इसी कारण भारतीय संस्कृति में *सत्यं वद, सत्यमेव जयते, सत्यं ब्रूयात्*

आदि तव प्रचलित हैं । हिन्दी तथा कोंकणी कहावतों में इसी मार्ग पर चलते हुए सत्य के महत्व पर जोर दिया गया है। *सत्याक सोळा वर्षां* (सत्य हमेशा सोलह वर्ष का होता है), *सत्याक नाशु ना, सत्याक मरण ना* (सत्य का कभी नाश नहीं होता), *आंग उदकांत नितळ, मन सत्यांत नितळ* (शरीर पानी से निर्मल होता है और मन सत्य से निर्मल होता है) आदि कोंकणी कहावतें जीवन में सत्य के महत्व पर बल देती हैं। इसी कारण हिन्दी में यह कहावत चलती है:-

सत मोरा रहिहें संपत मोरा जइहेन
संपत जइहें बहुरि मोरा अइहेन [92]

सत्य संपत्ति से कहीं बढकर होता है । वह बहुत ही व्यापक होता है। उसकी जड जीवन में गहराई से जाय तो जीवन बडा ही मजबूत रहता है। इसीलिए हिन्दी कहावत कहती है : *सत के सोर पताले हो, साँच बरोबर पुन नहीं झूठ बरोबर पाप* । इसलिए सत्य बोलने में कभी डरना नहीं चाहिए: *साँच में आँच का?*[93]

हिन्दी और कोंकणी भाषाओं में प्राचीन काल से ही बहुभाषिक आदान प्रदान होता रहा है जिससे दोनों भाषाओं को अभिव्यक्ति की अपूर्व शक्ति मिल गई है। इसके दर्शन हम दोनों भाषाओं के लोकसाहित्यों में पाते हैं। इन साहित्यों में तरह तरह के विषय, अभिव्यक्तियाँ, प्रयोग एवं शैलियाँ निहित हैं जो कभी समानताओं को दर्शाती हैं तो कभी विषमताओं को। तत्वत: यहाँ पर विभिन्नताएँ बहुत हैं। इसके बावजूद संपर्क का एक सशक्त सूत्र भी रहा है। यज्ञसंस्कृति और यागाग्नि की परंपरा में जीनेवाले भारतीयों ने अपने लोकसाहित्य में पवित्र प्रकाश का समावेश दिखाया है और इस पवित्र अग्नि में उन्होंने समस्त हानिकारक तत्वों को भस्म करते हुए

लोकमात्र के मंगल की भावना को विकसित किया है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य पर फिरंगियों का, मुसलमानों का, अंग्रेज़ों का, हिन्दुओं के कई धर्मों और जातियों का अनुसरण करनेवाले लोगों का प्रभाव अक्षुण्ण है। हिन्दुओं और ईसाइयों का मेल कोंकणी लोकसाहित्य की सबसे बडी विशेषता है जो अन्यत्र इतने व्यापक रूप में देखने को नहीं मिलती। कोंकणी भाषा में हिन्दू तथा ईसाई समाज में प्रचलित एक ही तरह के गीत मिलते हैं। धर्म परिवर्तन के बावजूद भी कोंकणी लोग अपनी सहज संस्कृति में अटल रहे हैं। *मांड* एवं *ओवी* कोंकणी लोकतगीतों के ऐसे दो प्रकार हैं जिन्हें हिन्दू और ईसाई दोनों समाजों ने अपनाया है। पुर्तगालियों के अत्याचार इस मौखिक संपदा को किसी भी हालत में नष्ट नहीं कर सका। कोंकणी भाषा का पूरा साहित्य जब पुर्तगाली लोगों के हाथों पूर्ण रूप से नाश को प्राप्त हुआ उस समय सामान्य लोगों की ज़बान पर निरन्तर जीवित रहनेवाले लोकसाहित्य ने ही इन लोगों का उद्धार किया था। कोंकणी संस्कृति के नाश के समय उसका साथ देनेवाली केवल लोकसंस्कृति ही थी जिसे पुर्तगाली लोग जला नहीं सके।

हिन्दू संस्कृति के साथ चलनेवाले राम, कृष्ण, सीता, यशोदा आदि पुराणकथा से संबन्धित पात्रों की कोंकणी साहित्य में भरमार है। पुराण पुरुष श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ, शौर्य, प्रणय, दशरथनन्दन राम का घोर त्याग आदि से संबन्धित कई प्रसंग लोकसाहित्य में हैं। राम का वनवास भील, केवट, निषाद, किरात, वानर या भालू के बीच बीता। इस प्रकार प्रारंभ से ही वे लोक से जुडे रहे। भेदभावरहित जीवन यहाँ चित्रित मिलता है। राम का सुख दुःख लोक का सुख दुःख रहा । सीता का दुःख भी इनका दुःख बना। लव कुश इनके अपने रहे। परिणामस्वरूप लोक के राम लोकगीतों में समरस हो गए। राम की लोकप्रियता ने उन्हें समस्त

ोक का बना दिया। रामकथा में लोक की इच्छा पर स्थानीय परिवेश आ ाया. हिन्दी लोकगीतों की रामकथा उसकी विभिन्न बोलियों के परिवेश से ुडी रही। कोंकणी में रामकथा कोंकण प्रदेश से जुडी रही। इन प्रादेशिक भिन्नताओं के रहते हुए भी रामसंस्कृति का मूल स्त्रोत एक ही रहा। यह ारतीय लोकसाहित्य की एकसूत्रता का परिणाम है। केवल राम का जीवन ी नहीं लोक का सारा व्यापार, व्यवहार और विस्तार ही रामलीला है। रामायण कथा मात्र राम की ही नहीं उसमें लोकमन की गहराइयों, सांसारिक व्यवहारों भौतिक वस्तुओं की सारता निस्सारता आदि भी हैं। राम नाम ही सत्य है। उसके स्मरण से ही गति है, ऐसा लोग मानते हैं।

हिन्दी और कोंकणी प्रदेशों में सैकडों वर्षो से रामसाहित्य की रचना होती रही है। लोकसाहित्य में राम और कृष्ण से संबन्धित भरपूर साहित्य मिलता है। इस लोकगायन में राम और कृष्ण न अवतारी हैं, न राजा। इनसे संबन्धित प्रसंग लोकगीतों में सहज एवं सामान्य रूप में आए हैं। उदाहरण के लिए वनवास प्रसंग को देखिए :

चूल्हा लीपती बहणा बोल्ली सुण भैया मेरी बात
भाई कौण भरेगा मेरा भात राम बणबास चले
घोडे चढन्ता भाई बोल्या सुण बहणा मेरी बात
तेरा आकै भरैंगे हम भात राम बणबास चले
सेज चढन्ती सीता बोल्ली सुणो नाथ मेरी बात
म्हारै कोण करैगा लाड आप बणबास चले
जात्ते जात्ते रामजी बोल्ले सुणो सिया म्हारी बात
आकै करेंगे थारे लाड राम बणबास चले [७४]

इन पंक्तियों मे भारतीय जीवन में नित्य प्रति चलनेवाले व्यवहार का जीता

जागता चित्र रामकथा प्रसंग के जरिए अंकित किया गया है जिस लोकसंस्कृति कूट कूट कर भरी है। इसी प्रकार हमारी संस्कृति क उजागर करनेवाले और भी चित्र इन गीतों में प्राप्त होते हैं । निम्नलिखि पंक्तियों में कौसल्या का चित्र देखिए :

आज आए सैं लिछमन राम जुध्या मैं आनंद भए
हरे हरे गोबर अंगन लिपाया मोतियन चौक पुराया
मात कुसल्या करै आसा सखी तैं गावैं मंगलाचार
जुध्या में आनंद भए [७५]

इसमें गाँव की संस्कृति के दर्शन सहज ही हो जाते हैं। गोबर से आंगन लिपाना, चौक पूरना, आरती उतारना, मंगलाचार गाना, मंदिर पर स्वर्णकलश मंढवाना, ब्राह्मणों को दान देना, सब कुछ संस्कृति के स्वरूप को ही दिखाते हैं। कौसल्या यहाँ पर राम लक्ष्मण के युद्ध में विजय प्राप्त करके लौट आने का आनंद मना रही हैं।

कोंकणी का *गोड्डे रामायण* रामायण की कथा पर आधारित दीर्घ काव्य है। साधारण लोगों के बीच रामकथा का प्रचार करने के उद्देश्य से ही इसका निर्माण हुआ है। धार्मिक अवसरों पर गाए जानेवाले इस लोककाव्य में रामायण की कथा निहित है। गीत गानेवाले और धार्मिक अनुष्ठान में लगे हुए *गोड्डे* लोग इससे संबद्ध रहते हैं। ऐसा भी अनुमान है कि गायकों द्वारा ही समय समय पर गीत जोड जोड कर इसकी रचना की गई है। इसमें प्रयुक्त शब्दों के अनेक पाठभेद हैं। होली के दिन मन्दिर से इन गायकों का जुलूस निकलता है और घंटों तक गीत चलता रहता है। प्रारंभ में देवताओं की वन्दना रहती है। गणेश, सरस्वती, कुलदेवता, माता पिता, अष्टदिग्पाल, श्रीराम, नवग्रह, रुद्र, आदि की वन्दना की जाती है। कोंकणी

लोगों की संस्कृति का परिचय देनेवाले इस काव्य का कोंकणी लोकसाहित्य में विशेष महत्व है। काव्य सौन्दर्य को दिखानेवाली इस काव्य की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं :

धनुष बाण घेवुन विरु भायर सरलो गा
धनुष बाण घेवुन विरु किष्किन्धे चालिलो गा
क्रोधे करून विरु किष्किंधे पाविलो गा
सुमित्रु येतां तों कायि सुग्रीवे देकिलो गा
ते वेळां सुग्रीवु तो कायि गुप्त राहिलो गा
दुतांसि धाडून ताणे दुर्ग ढांकिलो गा[७६]

(धनुष बाण लेकर वीर प्रस्थान कर गया
धनुष बाण लेकर वीर किष्किंधा चला
क्रोध करके वीर किष्किंधा पहुँचा
सुग्रीव ने सुमित्र को आते देखा
उस समय सुग्रीव छिपा रहा
दूतों को भेजकर उन्होंने दुर्ग के किवाड बंद करवाए)

इन पंक्तियों में वीररस की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

केरल के कुणबी समाज में प्रचलित *श्रवोण* भी रामकथा पर आधारित एक लंबा लोकगीत है जिसमें कोंकणी बोलनेवाले इस वर्ग की संस्कृति कूट कूट कर भरी हुई है। कुणबी लोगों के मंदिर में इसका गायन होता है। गीत की शुरूआत ग्यारह पंक्तियें में, ग्यारह देवताओं की वन्दना से होती है जिनमें ओंकार, गणपति, देवनारायण, चन्द्र सूर्य, आकाश, गन्धर्व, धरती माता आदि आते हैं। मन्दिर से लोग जुलूस लेकर श्मशान तक जाते हैं। गीत के खतम होते ही मृत आत्माओं से संबन्धित धार्मिक

विधियाँ संपन्न होती हैं। *श्रवोण* में गायन के साथ साथ कई तरह वे वाद्ययन्त्रों का भी प्रयोग रहता है। होली के दिन साँझ के समय यह अनुष्ठान खतम किया जाता है। इसमें स्त्रियाँ भाग नहीं लेतीं। इस काव्य का कथाभाग श्रवणकुमार से संबन्धित है। श्रवण का जन्म, उससे संबन्धित संस्कार, उसकी शिक्षा आदि का वर्णन इसमें हुआ है।

ब्नवड महाभारत पर आधारित कोंकणी लोकगीत है। इसमें महाभारत की क्षीण कथा मिलती है। यह लोककाव्य इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि वैदिक संस्कृति में जो महत्व मंत्रों का है वही अवैदिक संस्कृति मे लोकगीतों का है। भारतीय संस्कृति के तत्वों को आत्मसात् करते हुए इस काव्य में कोंकणी लोगों के चरित्र निर्माण, उच्च विचार, जीवन दर्शन, आदि पर प्रकाश डाला गया है। कोंकणी समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इसमें मिलती है। *ब्नवड* गोवा के कुळबी समाज में प्रचलित धार्मिक महत्व से युक्त एक दीर्घ काव्य है जिसका गायन लगातार पाँच छः घंटों तक चलता रहता है। मृत्यु से संबद्ध संस्कारों, श्राद्ध, महालय पक्ष आदि अवसरों पर इसका गायन होता है। रात के समय ही यह गाया जाता है और रात के बारह बजे खतम हो जाता है। समूह गायन इसकी विशेषता है। गायन के पहले दिया जलाया जाता है। प्रारंभ में गणपति की वन्दना होती है। फिर श्रीराम की। *ब्नवड* कला की दृष्टि से एक उत्तम काव्य है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

त्यावू रे वेळार यमा अन्न तें नाका गा
देवा जेवण तें नाका गा
न्हिदोंक रे गेल्यार यमा न्हिद पडना गा
जल्मा न्हिद पडना गा
गुप्त रे रूपान यम भायर सरलो गा

मार्गार भायर सरलो गा
धर्माक रे खबर नासतना पितरां घेवन गेलो गा
यम पितरां घेवन गेलो गा [77]

(यमराज को उस समय भोजन नहीं चाहिए
भोजन नहीं चाहिए
सोने के समय यम को नींद नहीं आती
नींद नहीं आती
गुप्त रूप से यम रवाना हो गये
रवाना हो गए
धर्मराज को ही खबर नहीं
वे पितरों को ले गए)

कोंकणी लोकसाहित्य में देवी देवताएँ सीधा सादा जीवन बितानेवाले कोंकणी समाज के ही अंग हैं। ये पनघट जाकर पानी ले आते हैं, चावल पकाकर खाते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, जशन मनाते हैं, सोते भी हैं। हिन्दू और ईसाई समाजों में देवताओं के नामों में अन्तर मिलता है। हिन्दुओं में ये राम, कृष्ण, सीता आदि हैं तो ईसाइयों में जेजू, सायबीण, सांताखुरीस। हिन्दुओं के वर वधू राम सीता के रूप में आते हैं । लोकसाहित्य में मिलनेवाला कोंकणी बालक या तो राम हैं, नहीं तो कृष्ण। गर्भवती स्त्री के दोहद या तो देवकी के हैं, नहीं तो सीतादेवी के। पाण्डवों के पितरों को सन्तुष्ट करने में अपने पितरों को सन्तुष्ट करने की प्रक्रिया रहती है। यह इस बात का सूचक है कि प्राचीन काल से ही मनुष्य देवी देवताओं और पुराणपुरुषों के आकर्षण में रहे हैं। उन्हींके जरिए दिखाए गए मार्ग पर ही परवर्ती पीढियाँ चलती रही हैं। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में समान रूप से यह

प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

जैसे कि लोकगीतों में राम कथा है, वैसे ही कृष्णकथा भी कृष्णजन्म से संबन्धित अलौकिकता निभाते हुए भी अपनी सहजता को नहीं खोती। जन्म के बाद कृष्ण को गोकुल ले जाने का निश्चय यशोदा और देवकी के संवाद के रूप में मिलता है जो आम जनता के आस्वादन के योग्य एवं सहजता लिए हुए है। गीत इस प्रकार है :

> य़शोदा; जै जीजी तेरै कनवा होज्या गोकल दीजो भिजवाय
> देवकी: जीजी खंभ खंभ पै ताले मूँदे सैं बैठे पहरेदार
> नारायण क्यूँ न भजो [७८]

कृष्णजन्म से संबन्धित दाई के आक्रोश में लोकजीवन का सहज स्वरूप प्राप्त होता है। दाई हमेशा कामना करती है कि परिवार में पुत्र का जन्म हो और उसे विपुल मात्रा में धन मिले। नन्द के जैसे धनाढ्य परिवार में पुत्रजन्म की प्रतीक्षा करनेवाली दाई जब यकायक जान जाती है कि यशोदा ने पुत्र को जन्म दिया है तब वह उस दाई से ईर्ष्या करती है जिसने उसका हक छीना। उससे प्रतिकार करने के लिए वह उसके केश मुंडवाना चाहती है। यहाँ पर कृष्णकथा वेदव्यास के हाथ की न रही, न ही नारद या शुकदेव का इससे कोई संबन्ध रहा। आम आदमी के हाथों किस प्रकार वह मनोवैज्ञानिक सत्य को अंकित करती हुई आगे बढी। [७९]

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में रामकथा से बढकर कृष्णकथा अधिक रोचक बन गई है। भारतीय संस्कृति में कृष्ण को लीलावतार माना जाता है। उनका प्रत्येक कार्य एक लीला थी। हिन्दी तथा कोंकणी लोकगीतों में इन लीलाओं का वर्णन सरस रूप में हुआ है। प्रमुख लीलाओं के विषय में लोकगीतों में जनभावना व्यक्त हुई है।

कहीं सामाजिक परिवेश में, कहीं प्रसंग वर्णन में हिन्दी और कोंकणी लोकगीतों में थोडा बहुत अन्तर पाया जाता है । लेकिन मूल स्रोत एक ही दिखाई पडता है। एक दो उदाहरणों से यह स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे *कोंकणी वस्त्रायण* की निम्नलिखीत पंक्तियाँ देखिए

वासुदेवा तूंचि राक माका, वासुदेवा तूंचि राक
लक्ष्मीपते राक, सीतापते राक,
राधारमणा तूं राक माका राधारमणा तूं राक
बंधुनि सोळ्ळी माका, पतीक हांव नाका
तुवेंचि माका राक्कुका
कृष्णा तुवेंचि माका राक्कुका
....
द्रौपदीलें रोदन आयकून कृष्णान दिल्लें वरदान
अक्षय दिल्लें वरदान
कुन्ती सुन्नेलें वस्त्र अनन्त जावो म्होणु [८०]

(हे वासुदेव ! तुम्हीं मेरी रक्षा करो,
हे लक्ष्मीपते ! सीतापते ! मेरी रक्षा करो,
हे राधारमण ! मेरी रक्षा करो
बन्धुओं ने मुझे छोडा. पति लोग मेरी रक्षा नहीं करते
तुम्हीं मेरी रक्षा करो हे कृष्ण ! तुम्हीं मेरी रक्षा करो
द्रौपदी का रोदन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा :
कुन्ती की बहू का वस्त्र अनन्त बन जाय)

श्रीकृष्ण की महत्ता का गायन कोंकणी के समान हिन्दी लोकगीतों में भी हुआ है :

भज मन नारायण नारायण नारायण
द्रोपद सुता की लज्जा राखी
अनंत चीर बधारायण [८१]

प्रस्तुत प्रसंग में श्रीकृष्ण की लीला को दिखाने के लिए द्रौपदी चीरहरण के प्रसंग को दोनों भाषाओं के लोकगीतों में समान रूप से संदर्भांकित किया है। अन्तर केवल इतना है कि कोंकणी में थोडे विस्तार से यह बताया है तो हिन्दी में अत्यन्त संक्षिप्त रूप में।

इसी प्रकार कृष्णकथा के अन्तर्गत दधि और माखनचोरी की लीला का प्रमुख स्थान है। जनभावना ने लोकगीतों के जरिए इसे और भी मनोहारी बनाया है। लोकगीतों में मनोविनोद के लिए दधि माखन चोरी के अनेक उल्लेख मिलते हैं। कृष्ण मटकी फोडता है, कहीं मथानी तोडता है और गोपियाँ आकर यशोदा से शिकायत करती हैं :

नंद के नै दही खा लिया सारा ।
नंद के बेटा गैल पड्या सै ना करण दे गुजारा ।
मटकी फोडी मथनियाँ तोडी दही तै खा लिया सारा
चलो री सखी कहीं और बसेंगी नहीं करण दे गुजारा [८२]

कोंकणी में भी गोपियें की यह शिकायत किसी हालत में कुछ कम नहीं है।[८३] यहाँ पर शिकायत के साथ साथ गोपियाँ यशोदाजी से कहती हैं कि कृष्ण को सद्बुद्धि देने के लिए वे गणेशजी की पूजा अर्चना करें । गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

यशोदी सुंदरी कृष्ण लूटी भारी करता गो मुरारी सांग ताका

अशी म्होणु गोप्यो सांगता यशोदेक व्रत करी एक बुद्धि चांगी
वायट ते गुण वत्तले तेजान करी तूं पूजन गणेशाचें [८४]

(यशोदा, तेरा कृष्ण भारी लूट मचाता है, जरा उसे चेतावनी दे दे। इन दुर्गुणों को दूर करके कृष्ण को सद्बुद्धि देने के लिए तू गणेश की पूजा कर।)

गोपियों के कहे अनुसार यशोदा कृष्ण को सद्बुद्धि देने के लिए गणेशजी की पूजा करती है । पूजा के लिए बनाये गये लड्डू-और मोदक कृष्ण चुराकर खाता है और यशोदाजी से कहता है ;

भायर तू गेली हजार हुन्दीर आयले हंगा थोर सत्य सत्य
तांतु एक व्होडु हुंदीरु आसिलो ताजे फाटी बसलो भयंकरु
अंगाक सिन्दूर लायलो भयंकरु पाशांकुशधरु कोणु गे तो
हस्तीची सोंडाळ लोळता वैरी खाल मारली गे किंचाटी भीव्नु हावें
भीव्नु ताळो सुकलो तान्ने दीगे म्हाका धोर्नु हाडी ताका लाडू चोरले
गणपतिचो लाडू घेवनु गेलो चोरु हांव गुनागारु जालो देवा [८५]

(तू जब बाहर चली गई तब यहाँ बडे बडे हजार चूहे आए। उनमें सबसे बडा एक चूहा था जिसकी पीठ पर एक भयंकर आकृति बैठी हुई थी। उसके शरीर पर सिंदूर लगाया गया था। वह पाश और अंकुश धारण किए हुए था। हाथी की सूँड नीचे की ओर लटक रही थी और उसे देखते ही मैंने भय से चीख मारी। मेरा गला सूख गया। माँ, मुझे पानी चाहिए। लड्डू चुरानेवाले को पकडना चाहिए। चोर गणपती लड्डू चुरा के ले गया। हे भगवान, मैं गुनहगार बन गया।)

कोंकण देश में प्राचीन काल से ही गणेशपूजन का बडा प्रचार रहा। गणेश एक लोकदेवता हैं वे विघ्नहारी हैं, इसी कारण वे अधिक

लोकप्रिय हैं। विघ्नों को दूर करने के लिए उनकी पूजा की जाती है कोंकणी संस्कृति में उनको बडा ही महत्व दिया जाता है। लोकसाहित्य स्थान स्थान पर उनका जिक्र किया गया है। गणपति को लेकर अने लोककथाएँ प्रचलित हैं। गणपति और चूहों का संबन्ध भी वैसे लोकसाहि में खूब मिलता है। कई लोककथाओं के संदर्भ में यह देखा जा सकता है उत्तर भारत से बढकर दक्षिण भारत में गणेश का ज्यादा महत्व है। इसलि हिन्दी लोकगीतों की अपेक्षा कोंकणी लोकगीतों में ऐसे संदर्भ ज्यादा मिल हैं। ऊपर दी गई पंक्तियों में कृष्णकथा के साथ गणेशपूजन को जोडक इसी बात को प्रमाणित किया गया है। कोंकणी लोकमानस में इनका स्था सदा अन्यून बना रहा है।

नैतिक पृष्ठभूमि

लोकसाहित्य में एक प्रकार की सात्विकता की आभा हमें बिखरी हुई दिखाई देती है। मूल्यों के अर्जन और स्थायित्व तथा इनके प्रचार प्रसार में लोकसाहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस साहित्य की विभिन्न विधाएँ समाज में मूल्यों के प्रति आदरभाव जागृत करती हैं जिससे मूल्यों का विकास और प्रसार होता है। लोकसाहित्य में इन मूल्यों की व्यापक अभिव्यक्ति होती है। इनमें पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन के मूल्य सम्मिलित हैं। लोकसाहित्य की यह अजस्र धारा इन मूल्यों को समाहित किए हुए युग युगों से बहती चली आ रही है। डॉ. श्याम परमार के अनुसार *यह वह धारा है जिसमें अनेक छोटी मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना दिया है। सदियों के धात प्रतिधातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न परिस्थितियों ने उसमें ताने बाने बुने हैं। स्त्री पुरुषों ने मिलकर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है, इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढों ने मन बहलाये हैं। बैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है विधवावों और विधुरों ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने*

कावट दूर की है, मज़दूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढाए हैं और ौजियों ने चुटकुले छोडे हैं। [६] समाज के हर व्यक्ति के लिए ये लोकगीत ंपन्नता के भंडार ही प्रस्तुत करते हैं। सभी गीतों में, सिर्फ गीतों में ही नहीं ंपूर्ण लोकसाहित्य में, सभी भाषाओं के लोकसाहित्य में मूल्यचेतना का देग्दर्शन होता है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की बात इससे अलग ाहीं है। दोनों साहित्यों में मूल्यचेतना किसी भी हालत में कम नहीं कही जा सकती. यही चेतना लोकमानस की मनोवृत्तियों और व्यवहारों का नेर्माण और निर्धारण करते हैं। ये ही सामंजस्य एवं अनुकूलन की तैयारी में सहायक बन जाते हैं। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य इन मूल्यों के अर्जन और स्थायित्व तथा इनके प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लोककथाएँ तो सामाजिक सांस्कृतिक जैसे सत्य अहिंसा भलाई, सुन्दरता आदि मूल्यों की अभिव्यक्ति करती हैं।

कोई भी जितना ही महान क्यों न हो, मूल्यों के अभाव में उसकी महानता किसी भी काम की नहीं रहती । लोकगीत सूरज और चन्दा का उदाहरण देकर इस बात की अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है -

गरब कियौ चंदा सूरज नै, जाके मान गहन नै मारे
गरब कियौ गंगा जमुना नै, अरी जाके मान पख नै मारे [७]

संपूर्ण लोकसाहित्य में मूल्यों की स्थापना को महत्व दिया गया है। विशेषकर लोककथाओं में सदाचार के महत्व को दिखाया गया है। कहीं *सब ते हिल मिल रहियौ* कहकर नैतिक शिक्षा पर बल दिया गया है और सदाचार के महत्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

हरि भजि लै राम बिना मुक्ति कैसे, हरि भजि लै अच्छी आदतों को अपनाकर बुरी आदतों से दूर रहने की चेतावनी इस साहित्य में हर कहीं मिलती है। निम्नलिखित लोकगीत में माँ अपनी पुत्री को जीवन जीने की शिक्षा इस प्रकार देती है -

अरे बेटी घर कूँ तौ लिओं सम्हारि, मैया तो त्यारी काहि रही,
सोओ अबेरी जगौ सबेरी, तुम तो लेऊ भवनबुहारी। ८८

लोकमानस विचारशीलता की अपेक्षा भावुकता को पसन्द करता है। उसकी चेतना भूतकालानुगामिनी होती है। चाहे हिन्दी लोकसाहित्य हो, या कोंकणी लोकसाहित्य अपनी प्राचीन संस्कृति को वह किसी भी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र दोनों साहित्यों में ज्यों के त्यों अपनाए गए हैं। सत्य, अहिंसा, अलंकारवर्जन, परोपकार, समभावना आदि की शिक्षा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में इस साहित्य में मिलती है। कोंकणी में *सत्याक सोळा वर्षां* (सत्य हमेशा सोलह वर्ष का रहता है), *दया बिया गदि वोयल्यार वाडता* (दया बोने से बीज के समान विकसित होती रहती है), *तुरंत दान महापुण्य* आदि इसके उदाहरण हैं। हिन्दी में भी *साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप* इसी ओर संकेत करता है। क्या करना है, क्या नहीं करना है इसकी शिक्षा लोकसाहित्य की विशेषता है।

रामै राम रटन लागी जिभिया। मुँह तो कहै हमं हरि गुन गइबे,
कान कहै हम सुनब पुरान। आँखीं कहै हम दरसन करिबे,
मनुआ कहै हम धरिबे ध्यान। पैर कहैं हम तीरथ जइबे
हाथ कहैं हम देबै दान ।। ८९

इन पंक्तियों में मुँह, कान, आँख एवं सभी इन्द्रियों से राम पर न्योछावर होने की शिक्षा मिलती है। राम लोगों के लिए सब कुछ है। हमारी संस्कृति की धरोहर है। राम के जरिए वर्णित सदाचार लोगौं के लिए आसानी से ग्राह्य रहता है।

नैतिकता के क्षेत्र में भारतीय नारी का नाम विशेष रूप से लिया

ा सकता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार पतिव्रता नारी वही होती है जो पने पति के हित में सदा लगी रहती है। कहा गया है -

छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु
दासीवदिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत्

स प्रकार की नारी घर के लिए दिये के समान है. कोंकणी कहावत यों हती है-पतिव्रता बायल घरा दीवो .सी. हिन्दी क्षेत्र में घर से डोली निकलते मय दुलहन को जो शिक्षा मिलती है वह इस प्रकार है-

एकादशी व्रत नेम ते रहिबे

माई बाप की सेवा करिबे । जिनके दूध से उरिन न होइबे
सास ससुर की सेवा करिबे। जिनका पूत जन्म भरि बैपरिबे
जेठ जिठानी की सेवा करिबे। जिनके संग बराबर रहिबे
अपने पति की सेवा करिबे। जिनके साथ सोहागिल रहिब[१०]

नैतिकता के इन पहलुओं से होकर जीना व्यक्ति को दिव्य तृप्ति प्रदान करता है। यही प्रगति का पहला कदम है। इससे इहलोक एवं परलोक सुधर जाते हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य में चाहे वह हिन्दी का हो या कोंकणी का, परंपरागत रूप में व्यवस्थित रीतियों का ही अनुसरण रहता है।नैतिक एवं अनैतिक बातों की यह संकल्पना मौखिक रूप में उदाहरण देकर लोकसाहित्य के ज़रिए पीढ़ी दर पीढ़ी प्रदान की जाती थी । आज भी यह कानून एवं कायदों के रूप में समाज के मूल में वर्तमान रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में भारतीय संस्कृति का परंपरासम्मत व्यवहारसिद्ध व्यापक रूप चित्रित मिलता है। लोकसाहित्य में , चाहे वह हिन्दी या कोंकणी का क्यों न हो, व्यक्ति की सहजता से जुड़कर पूरा समूह एक उद्वेलनकारी समष्टि बन जाता है। यह

समष्टिगत चेतना लोकसंस्कृति के तत्वों को आत्मसात करनेवाले पक्षों ो अभिभूत करती है। लोकगमंगल इस लोकसंस्कृति का प्रमुख पक्ष । परंपरागत संस्कृति के अनुसार जीवन का एकमात्र उद्देश्य मोक्ष एवं तद्व आनन्द प्राप्त करना है। भारत में तापरहित जीवन जीने की कला एवं मूल की खोज का प्रयास किया जाता रहा है। इससे प्रभावित व्यक्ति वैयक्ति आचार विचारों एवं व्यवहारों से ऊपर उठ कर लोकमर्यादा, व्यापक मान कल्याण, निश्चल प्रेम, सदाचार सहनशीलता आदि जीवनमूल्यों की अ बढ़कर एक सहज मानव की सृष्टि करता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहि में इसका प्रतिबिंब देखने को मिलता है। सत्यनिष्ठा, सदाचरण, त्याग क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता जैसे सनातन मूल्यों का सन्देंश यहाँ निरन्तर मिलत है। लोकसंस्कृति के ये जीवन्त एवं स्थायी मूल्य हर किसी समाज में समा रूप से पाये जाते हैं। कई प्रकार के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृति एवं नैतिक संदर्भों के ज़रिए इन मूल्यों की प्रतिष्ठा लोकसाहित्य में क जाती है। आज का समाज, जो मूल्यविघटन की महामारी से त्रस्त है प्राचीन मूल्यों का चित्रण करनेवाले लोकसाहित्य के द्वारा निस्सन्देह बड़ आश्वासन प्राप्त करेगा।

संदर्भ

१. अशोक के फूल-डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.६८

२. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारीसिंह दिनकर, प्रस्तावना, पृ. xvii

३. Culture & Society- Reymond Williams, Introduction, p.xviii

४. Culture & Cognition - Norbert Ross, p.६१

५. सुरग्या सर- ज्योत्स्ना कामत, पृ.७

६. जने च अमरः भावे घञ्- वाचस्पत्यम्-६,पृ. ४८३३

७. वाचस्पत्यम्-६, पृ.४८३३

८. V.S.Aptes Sanskrit English Dictionary,Vol.३, p.१३७२

९. शब्दकल्पद्रुम- चतुर्थो भागःपृ.२३११०.वही,पृ.२३१

१०. वही,पृ.२३१

११. लोकगीत की सत्ता, भाग-१, पृ.१५

१२. भारतीय लोकसाहित्य-डॉ. शयाम परमार, पृ.९-११

१३. इन्द्रप्रस्थ भारती, लोकसाहित्य विशेषांक, पृ.२०

१४. वही, पृ.९

१५. लोकसाहित्यविज्ञान- डॉ. सत्येन्द्र , पृ.३

१६. खड़ी बोली का लोकसाहित्य--डॉ. सत्या गुप्ता, पृ.२१

१७. मध्यदेश-डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.१६

१८. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी , भाग-१ - डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.१९५,१९७

१९. मध्यदेश, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. ११

२०. Konkani, A Language- Jose Pereira, p. ४०

२१. चिन्तन अनुचिन्तन- डॉ. एल. सुनीता बाई , पृ. १२

२२. Dakshinatya Saraswats-V. N. Kudwa, p.३

२३. All India Saraswath, October,१९२२, p. ६७

२४. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत-डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ५२

२५. कोंकणी - हिन्दी - मलयालम कोश, डॉ. एल. सुनीता बाई, भूमिका, पृ. ५

२६. राउलवेल और उसकी भाषा - माताप्रसाद गुप्त, पृ. १०७-१२६

२७. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ.१०

२८. लूर- लोरी विशेषांक, २००४, पृ. २९

२९. ता ता तिंगण -संतोषकुमार गुल्वाडि , पृ. १११

३०. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ.४९

३१. सुरग्यां सर - डॉ. ज्योत्स्ना कामत, पृ. ६

३२. कोंकण जनता मई, १९८३

३३. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ.३५

३४. कोंकणी लोकगीतसमुच्चय (केरल), कोंकणी प्रचार सभा, कोच्चि पृ.२३

३५. कृष्णकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १५९

३६. वही, पृ. १७५

३७. चिन्तन अनुचिन्तन - डॉ. सुनीता बाई, पृ.७३

३८. वही, पृ. ७३

३९. वही, पृ. ७९

४०. वही, पृ. ८०

४१. मध्यदेश -डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.१०

४२. वागर्थ अंक-७७,नवंबर २००१, पृ. ११२

४३. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.२

४४. लोकगीतों में समाज- पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ.१६.

४५. लोकसाहित्य का लोकतत्व- डॉ. रामनिवास शर्मा, पृ.३८

४६. लोकसाहित्य का लोकतत्व- डॉ. रामनिवास शर्मा, पृ.३८,३९

४७. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.१४९

४८. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.१५०

४९. All India Saraswath, October,१९२२, p. ७२

५०. गोंयकारांची गोंयाभायली वसणूक- शणै गोंयबाब, पृ.५

५१. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. १५

५२. कोंकणी लोकगीत (केरल)- कोंकणी भाषा प्रचार सभा, पृ. ६८.

५३. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ६८

५४. लोकधन - शरतचन्द्र शणै, पृ.१७.

५५. ता ता तिंगण- संतोषकुमार गुल्वाडि, पृ. ७६

५६. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ५५

५७. Early History of Deccan - Vol-I, p.४७

५८. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७१

५९. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरल कोंकणी अकादमी, पृ. ४१, ५६

६०. लोकसाहित्य का लोकतत्व- डॉ. रामनिवास शर्मा, पृ. ४५

६१. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७२

६२. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ८

६३. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ९

६४. लोकसाहित्य का लोकतत्व- डॉ. रामनिवास शर्मा, पृ. १८१

६५. लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ३४

६६. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ६७

६७. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरल कोंकणी अकादमी, पृ. ६०

६८. लोकगीतों में समाज- पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ.२९, ३०

६९. लोकगीतों में समाज- पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ३९

७०. लोकवेद - एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभु देसाय, पृ.११

७१. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७४

७२. कहावत कोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ. ७१७

७३. कहावत कोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ. ७३१

७४. रामकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.७१

७५. रामकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.१३४

७६. गोड्डे रामायण- कोंकणी भाषा इन्स्टिट्यूट, कोच्चि, पृ.६६

७७. कर्लेची बनवड - जयंती नायक, पृ. ११८, ११९

७८. कृष्णकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.१५३

७९. कृष्णकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.१५५

८०. कोंकणी पदें - वीर विट्ठल पुस्तक भंडार, मैंगलोर, पृ.६, ७

८१. कृष्णकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.१५०

८२. कृष्णकथा और लोकसाहित्य - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.१७७

८३. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. १९
८४. कोंकणी लोकगीत (केरल), पृ. २१
८५. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. २०
८६. भारतीय लोकसाहित्य - डॉ. श्याम परमार, पृ. ३१
८७. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ.९७
८८. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ.९८
८९. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ.१४६
९०. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ.१५१

दूसरा अध्याय

हिंदी और कोंकणी लोकसाहित्य

(लोकगीत एवं लोककथाएँ)

भारतीय लोकसाहित्य के विकास की परंपरा - लोकसाहित्य का र्गीकरण - हिन्दी के लोकगीत - पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत - संस्कार गीत - जन्म गीत - विवाह गीत - मृत्युगीत - बालगीत - धार्मिक गीत - ऋतु त्योहार संबन्धी गीत - श्रमगीत - जातिगीत - कोंकणी लोकगीत पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत जन्मगीत - यज्ञोपवीत - मृत्युगीत - बालगीत - धार्मिक गीत - ऋतु त्योहार संबन्धी गीत - श्रमगीत - जातिगीत तुलनात्मक विवेचन

लोककथाएँ - लोककथाओं की भारतीय परंपरा - हिन्दी लोककथाएँ - राजा रानी संबन्धी कथाएँ - पशु पक्षी संबन्धी कथाएँ - नीति या उपदेशात्मक कथाएँ - धार्मिक कथाएँ - बाल कथाएँ - कोंकणी लोककथाएँ - राजा राना संबन्धी कथाएं - पशु पक्षियों से संबन्धित कथाएँ - नीतिसंबन्धी या उपदेशात्मक कथाएँ - धार्मिक कथाएँ - अलौकिक कथाएँ - बालकथाएँ - तुलनात्मक विवेचन --

दूसरा अध्याय

हिंदी और कोंकणी लोकसाहित्य

(लोकगीत एवं लोककथाएँ)

मनोरंजन मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति रही है और जीवन के लि इसकी बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य कि इस प्रवृत्ति को रेखांकित करते हु श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है, *जब उसके (मानव) पेट में भूख खाँव खां कर रही थी तब भी उसकी आँखें गुलाब पर टँगी थीं, टँकी थीं। उसव प्रबल संगीत निकला जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को ऊखल और चक्की में कूट पीस रही थीं। पशुओं को मारकर खाकर भी वह तृप्त नहीं हुआ उसकी खाल का बनाया ढोल और उसके सींग की बनाई तुरही। मछल मारने के लिए जब वह अपनी नाव में पतवार का पंख लगाकर उसे ज पर उड़ाये जा रहा था, तब उसके छप छप में उसने ताल पाई, तराने छेड़ बाँस से उसने लाठी ही नहीं बाँसुरी भी बनाई।*[1]

बेनीपुरी जी ने अपने इन विचारों में मनोहारिता के साथ लोकसाहित के उद्भव के बारे में जाने या अनजाने व्यक्त किया है। एक ओर य साहित्य सहज ही मनोरंजक रहा, दूसरी ओर कठिन प्रयत्न करते वक मानव को सहज सन्तोष प्रदान करने के उद्देश्य से इसका निर्माण हुआ लोकसाहित्य में कई प्रकार के गीतों का समावेश उसने किया जिसकी प्रेरणा नदियों के प्रवाह के छप छप में, बाँसों के झुरमुट के गीतों में औ पक्षियों के कलरव में उसने पाई। यहीं से उसके गीतों के लिए ताल, लय एवं वाद्य तैयार हुए। पशुओं की खाल से उसने ढोल बनाया और सींग र तुरही। बाँस से उसने बाँसुरी का निर्माण किया। स्पष्ट है कि लोकसाहित्

का निर्माण उतना ही पुराना है जितना कि मानव का जीवन। संसार की सभी भाषाओं में जीवन के सत्य को चित्रित करनेवाला यह साहित्य समान रूप से वर्तमान है।

लोकसाहित्य जितना पुराना है उतना ही नूतन भी। जीवन को बनानेवाले, जागृत करनेवाले और विकसित करनेवाले इस साहित्य का सही मूल्यांकन हमारे बूते की बात नहीं है फिर भी दो भाषाओं को मिलाकर इस लोकसाहित्य के तत्वों का तुलनात्मक विश्लेषण इतिहास, परंपरा और समाज के परिप्रेक्ष्य में आसानी से प्रस्तुत किया जा सकता है। जब से इन भाषाओं का जन्म हुआ तब से इनमें लोकसाहित्य का विकास भी होने लगा। जैसे जैसे संस्कृति बदली लोकजीवन में भी परिवर्तन आया। उसके नये आकार एवं नये रूप सामने आए। भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न परिवेश को लेकर यह साहित्य सामने आया। लेकिन उसका मूल स्वरूप हर कहीं एक रहा। गीतों के रूप में, नाट्यों के रूप में, कहानियों के रूप में, कहावतों और पहेलियों के रूप में नूतनता के साथ यह प्रस्तुत हुआ। *बहुजनहिताय* और *बहुजनसुखाय* बहुजनों के ज़रिए यह तैयार हुआ। परंपरागत जीवन को चित्रित करनेवाला स्वायत्त एवं प्राकृतिक जीवन से संबद्ध होकर यह साहित्य आगे बढा। मानवता के सहज जीवनमूल्य इसमें उतर आए। *लोक* शब्द से इसीका द्योतन हुआ।

डॉ. पद्मा सचदेव ने लोकसाहित्य के सन्दर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं, *मैंने लोकगीत बनते भी देखे और उनमें योगदान भी दिया है। नवरात्रों में देवी की पूजा करने के बाद जब लड़कियाँ माता की भेंटें गाकर लोकगीत गाती थीं तब मैं कई लोकगीतों में छन्द जोड़ देती थी। कश्मीर में शादी ब्याह पर उसी वक्त पर रचकर गाये जानेवाले गीतों को*

वनवुन कहते हैं। वह भी सारी रात सुने हैं मैंने। ये लोकगीत सुगन्धि हवावों का झोंका से होते हैं जिन्हें लोग आसमान से झटक लेते हैं। मुखड़ एक गाँव में बना, अंतरा दूसरे में, गीत कहीं और पूरा हुआ। इसीलि लोकगीत लोगों की सही तर्जुमानी करते हैं। जो बहू बेटी घर में ज़बान नह खोल सकती वह लोकगीतों में सब कुछ कह जाती है।' प्रस्तुत पंक्तियों लेखिका ने अपने अनुभव से सुन्दर विचार सजाये हैं जो महिलाओं क जीवन एवं लोकसाहित्य के गहरे संबन्ध को व्यक्त करते हैं। भाषा जो भ हो लोकसाहित्य लोगों से इतना जुड़ा हुआ है कि उसे अलग नहीं किय जा सकता। इसमें मानव जीवन के बहुत ही सूक्ष्म भावों का चित्रण मिलत है जो भावात्मक रूप से परिष्कृत होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से इसमे अध्ययन की अपार सामग्री रहती है । मनोदशाओं का संपूर्ण और सर्वांगीण सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण स्वाभाविक रूप में यदि मिलता है तो वह केवल लोकगीतों में ही है। लेखिका के विचारों में इसका सही उद्घाटन किया गया है। इन गीतों में बालभाव, प्रौढ़ भावनाएँ अपने यथार्थ को लेकर स्वाभाविकता के साथ चित्रित मिलती हैं।

ऐसी लोकपरंपरा हर भाषा में, हर संस्कृति में मिलती है। लोकसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन इस सत्य का उद्घाटन करता है कि आज की बदलती हुई संस्कृति के मूल में स्थानगत भाषागत भेदों के रहते हुए भी एक मूल सूत्र समान रूप में पड़ा हुआ है जो भिन्न संस्कृतियों को परंपरा के सूत्र के ज़रिए एकता में पिरोता है। हिन्दी और कोंकणी इसके अपवाद नहीं हैं। इन संस्कृतियों में लोकसाहित्य लोकजीवन का मंत्र रहा है। पीढ़ियों के अनुभवों के आधार पर एकत्र किया गया जीवन संबन्धी ज्ञान लोकमन का प्रतिरूप बनकर इस साहित्य में मिलता है। यह लोकमन संस्कृति में पला हुआ है। व्यक्ति व्यक्ति या भिन्न समूहों में भिन्न रहते हुए भी यह मूल में एक

ो रहता है। हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य के अन्तर्गत इस प्रकार हम समान प्रवृत्तियों के दर्शन कर सकते हैं। दोनों साहित्यों में सांस्कृतिक एकता के दर्शन होते हैं, जीवन कां स्थायी भाव मिल जाता है और हमारी सामाजिक संस्कृति की रीढ़ देखने को मिलती है। खाना पीना, रहन सहन, चाल ढाल सामाजिक संबन्ध, पारिवारिक विचार मंथन, अनुशासन, प्रेम, द्वेष, नोक झोंक, लुका छिपी, शिकायत, रूठना मनाना आदि अनेक लोकव्यापार थोड़ी सी भिन्नताओं के बावजूद दोनों भाषाओं के साहित्यों में दिखाई पड़ते हैं। लहलहाते खेत, खलिहान, नदी नाले, बावड़ी पोखर आदि की प्राकृतिक छटा इस लोकसाहित्य के माध्यम से मन को प्रफुल्लता देती है। कई त्योहारों का असली रूप इस साहित्य में प्रकट होता है। सावन का महीना आते ही ससुराल में गई सौभाग्यवतियाँ अपना पीहर याद करने लगती हैं। वे सावन के झूले, वर्षा की फुहारें आदि की याद करने लग जाती हैं। इसी प्रकार दिवाली, होली, रक्षाबन्धन, तीज दशहरा आदि त्योहारों की गमक इस साहित्य में व्याप्त पड़ी है। उदाहरण के लिए होली का एक सुन्दर चित्र देखिए -- ब्रज में हरि होरी मचाई

इतते आवत नवल राधिका, उततें कुँवर कन्हाई
हिलि मिलि फाग परस्पर खेलत, सोभा बरनी न जाई ।। १ ।।
घरे घरे बजत बधाई ।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, मंजीरा सहनाई ।
उड़त गुलाल कुमकुमा केसर, रहत सकल बृज छाई ।। २ ।।
मनो मेघवा झरि लायी ।
राधे जी सैन दियो सखियन को, झुंड झुंड होई धायी ।
लपटि झपटि गयी साम सुनर को , कर धरि पकड़ मंगायी ।।३ ।।
लालाजी को नारि बनायी ।

छीन लियो मुख मुरली पीताम्बर, सिर से चुनरी ओढ़ायी ।
बेंदी भाल, नयन बिच काजल, नकबेसर पहनायी ।। ४।।
साम जी को नाच नचायी ।
का सुसुकत मुख मोरि मोरि के, काह भई चतुराई ।
काह भयो तोरे बाबा नन्द जी, काहावाँ जसोमति माई ।।५।।
लाल जी को ले ना छोड़ाई ।
होरी खेले बिना जाय ना दैहों, करिहों कोटि उपाई ।
लीहों चुकाई कसर सब दिन के, तू ब्रज चोर चुराई ।।६।।[3]

जो स्वाभाविकता, सरसता, स्वच्छन्दता और निर्बन्धता इन पंक्तियों मे चित्रित है वह निस्सन्देह हृदय को आनन्दित करती हुई नया प्रभाव उत्पन्न करती है। इस प्रकार लोकसाहित्य का बड़ा ही सांस्कृतिक महत्व रहा है जिसमें मानवता के पंख विकसित होते दिखाई देते हैं।

भारतीय लोकसाहित्य के विकास की परंपरा

लोकसाहित्य के विकास की परंपरा अत्यधिक प्राचीन है। यह आदिमानव के विकास के साथ जुड़ी हुई है। इस समय मानव के जातिसंगीत का स्वरूप, प्राकृतिक जीवन का स्वाभाविक स्वरूप, आत्मशुद्धि आदि सुरक्षित है। इसमें प्रकृति के उद्‌गार हैं, रस है, लय है, माधुरी है। भारतीय लोकसाहित्य एक महान सभ्यता का उद्‌घाटन करता है जो बहुत प्राचीन काल में इस देश में प्रचलित थी, वैदिक सभ्यता से भिन्न थी और आज भी लोकाचार के रूप में विद्यमान है।

लोकसाहित्य की बहुएँ स्वाभाविक एवं अलंकाररहित होने पर भी प्राणमयी हैं। यह साहित्य लोक की निधि है, जिस पर सबका समान अधिकार है। विभिन्नता में भी एकता इसकी विशेषता है। वैदिक साहित्य म

ब्रह्म की चर्चा रही है। उससे हटकर लोकसाहित्य में लौकिक विषयों की चर्चा है। लोकपरंपरा वैदिक साहित्य में भी देखी जा सकती है। लेकिन लोक एवं वेद को हमेशा अलग करते हुए देखा गया है। ऋग्वेद लोकसंस्कृति का सबसे बड़ा ग्रंथ माना जा सकता है।

वेदों की रचना तत्कालीन जनभाषा में ही हुई है। इस दृष्टि से इस साहित्य को हम लोकसाहित्य के अन्तर्गत मान लें तो अनुचित नहीं होगा। यह उस समय का साहित्य है जब लोकजीवन में पशुचारण और कृषिकार्य प्रमुख रहा था। कोंकणी में लोकसाहित्य के लिए *लोकवेद* शब्द का प्रयोग मिलता है जो वेदकालीन लोकसाहित्य की ही याद दिलाता है। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ऐसे लोकसाहित्य की कल्पना करते हैं जिसकी परंपरा वैदिक युग से आज तक चलती आई है। लोकसाहित्य में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें वैदिक काल के लोकमानस से संबन्ध दिखाया जा सकता है। उदाहरण के लिए *गाहा पल्हाया* जिसमें प्रचलित रूप प्रश्नोत्तर रहा है और यही शैली लोकसाहित्य में भी देखी जा सकती है। प्रश्नोत्तर की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही थी । वासुदेवशरण अग्रवाल ने कुरु जनपद का एक लोकगीत उद्धृत करते हुए उसका परिचय इस प्रकार दिया है

ए जी कौन जगत में एक है, बीरा कौन जगत में दोय
कौन जगत में जागता, ए जी कौन रह्या पड़ सोय।
ए जी राम जगत में एक है, वीरा चन्दा सूरज दोय
पाप जगत में जागता, ए जी कोई धरम रह्या पड़ सोय [४]

महाभारत में बहुत सी ऐसी कथाएँ हैं जिनमें नीतिसंबन्धी बातें समझाई गई हैं। ये अवश्य ही ऐसी लोककथाएँ रही होंगी जिन्हें कथा वाचकों ने संकलित किया था। महाभारत में हम ऐसी कथाओं का विकास

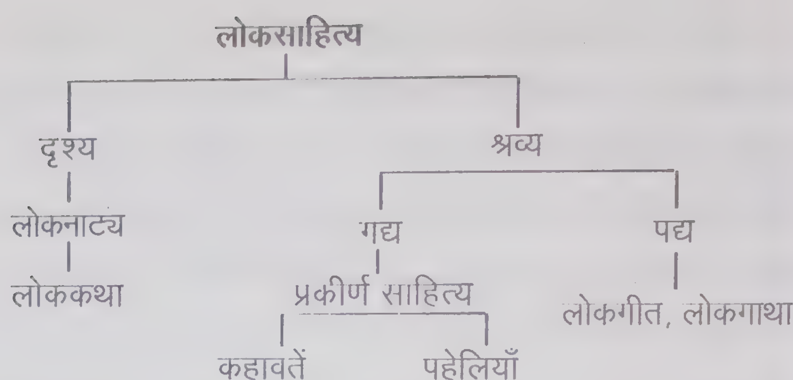
देख सकते हैं। कहीं कहीं कथा के बीज के रूप में संवाद मात्र मिलते तो कहीं कहीं भरी पूरी कथाएँ मिलती हैं। इनमें देवता बहुत कम ही मिल हैं। अधिकाँश कथाएँ पशुओं पर ही आधारित हैं। कहीं कहीं मनुष्य और प दोनों हैं। ये आपस में बातें भी करते हैं। कहीं कहीं वृक्ष भी बोलते हैं। *पंचतं* और *हितोपदेश* में ऐसी ही कथाओं का संकलन किया है। इनका पूर्वरू महाभारत के शान्तिपर्व में दिखाई देता है जहाँ भीष्म ने युधिष्ठर क राजनीति समझाने के लिए सुनाया है।

लोकसाहित्य का वर्गीकरण

जहाँ तक हिन्दी का संबन्ध है लोकसाहित्य का अध्ययन विविध जनपदों के लोकसाहित्य के अध्ययन में निहित रहता है। मेरठ जनपद गीतों, कहानियों और कहावतों की खान है। बच्चे के जन्म के समय छठी पूजन यहाँ का विशेष उत्सव है। उस समय जाजमातृ का पूजन किया जाता है। यह प्राचीन काल की जातहारिणी देवी कही जाती है। वह बच्चों की अधिष्ठात्री देवी थी और उनके सैकड़ों नाम और भेद थे। लेकिन सर्वमान्य संज्ञा जातहारिणी थी। नामकरण संस्कार या दसूटन के अवसर पर गाये जानेवाले गीत बहुत ही रोचक होते हैं। लेकिन सबसे बड़ी विशेषता विवाह संस्कार में है जिसके अनेक अंग एवं पक्ष मनाए जाते हैं जैसे सगाई, सेई-बान, हलद तेल, मढ़ा भात, धुड़चढ़ी आदि। बारात के जाने के पश्चात् वरपक्ष के घर की स्त्रियाँ धोड़ियाँ बनती हैं और इस समय धूम धाम से गाना किया जाता है। इन गीतों की परंपरा अथर्ववेद में भी मिलती है। ब्याह के समय पर ऊतपितर, माता, चामंड़ देवी, जाहर पीर, भूले बिसरे, मीराँ, आदि का पूजन होता है और इस अवसर पर गीत गाये जाते हैं। हर एक के अलग अलग गीत हैं।[5]

मैथिली का लोकसाहित्य यों तो मृदुता लिए हुए है तो भोजपुरी का लोकसाहित्य अपने गांभीर्य के लिए प्रसिद्ध है। अर्थगौरव से युक्त अवधी लोकसाहित्य, सरसता और अर्थबहुलता से युक्त व्रज लोकसाहित्य, भव्यता से युक्त राजस्थानी लोकसाहित्य और शौर्य की आराधना करनेवाला ओजस्विनी भावना से युक्त हरियाना लोकसाहित्य हिन्दी लोकसाहित्य के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हैं। जहाँ पर व्रजभाषा का लोकसाहित्य रासलीलाओं की मृदु पद गति से युक्त है तो हरियाना का लोकसाहित्य जनता को कर्तव्य का आह्वान देता रहता है। हरित भरित मैदान से युक्त भोजपुर रसाल के रम्य आराम और सरस फल की उपत्यकाओं से संपन्न है। वहाँ गढ़वाल का प्रदेश तुषाराच्छन्न पर्वत श्रेणियों से युक्त होकर अपने लोकसाहित्य में प्रकृति के रम्य रूप दिखाता है।

लोकसाहित्य सर्वत्र अपना अप्रतिम माधुर्य बिखेर देता है। उसमें एक व्यापकता, विस्तार तथा निस्सीम भाव समाया हुआ है। उसके विराट रूप को प्रत्यक्ष करने का जब भी प्रयास किया जाता है तब वह अपने बहु आयामी अंगों को प्रकट करता हुआ सामने प्रस्तुत होता है इसलिए लोक साहित्य का वर्गीकरण उतना आसान नहीं कहा जा सकता । जब भी इसके वर्गीकरण के प्रयत्न होते है तो कोई न कोई पक्ष छूट ही जाता है, कारण यही है कि इस साहित्य की समग्रता को बन्धनों में बाँधकर प्रकट करना बहुत कठिन है। अखण्ड एवं अविभाज्य सत्ता लोक से संबन्धित रहने के कारण इस साहित्य का सर्वांगपूर्ण वर्गीकरण संभव नहीं है। लेकिन कुछ सीमित आधारों के बल पर इसका स्थूल विभाजन अवश्य हो सकता है। वह इस प्रकार है -



लोकसाहित्य का प्रस्तुत वर्गीकरण सामान्य तौर पर किया गया है। इसे सीमित ही कहा जा सकता है। क्योंकि यह केवल हिन्दी एवं कोंकणी लोकसाहित्य को आधार बनाकर उनके तुलनात्मक विवेचन के उद्देश्य से किया गया है।

हिन्दी के लोकगीत

लोकगीत जीवन की विविध परिस्थितियों में सहजानन्द में विलीन होने का प्रमुख साधन है। हिन्दी के लोकगीत भी इसके अपवाद नहीं हैं। लोकगीतों का स्रोत सनातन है और यह विश्व के कोने कोने में युगों से प्रभावित होकर मानव मन को आप्यायित करता रहा है। प्राचीन वैदिक साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान स्थान पर पाया जाता है वे ही लोकगीत की पूर्व प्रतिनिधि हैं। गाथा शब्द का अर्थ है पद्य या गीत और इस अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में पाया जाता है। वेदों में विवाह के अवसर पर गाथाएँ गाने का उल्लेख है। महाभारत में भी इन ऐतिहासिक गाथाओं की परंपरा अक्षुण्ण दिखाई देती है। ये गाथाएँ राजसूय यज्ञ के अवसर पर गाई जाती थीं। परन्तु विवाह के अवसर पर इनका प्रयोग मैत्रायणी संहिता में दिया गया है। अश्वलायन गृह्यसूत्र में सीमन्तोन्नयन के

वसर पर वीणा पर गाथा गीत गाने की प्रथा का उल्लेख पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों ने लोकगीतों में पुत्रजन्म के वसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख किया है। चक्की पीसना, ान कूटना, ढ़ेकी चलाना, खेत निराना आदि के समय भी स्त्रियाँ झुंड ाँधकर गीत गाती हुई थकावट को हल्का करती थीं। रामचरित मानस में सकी ओर संकेत मिलता है--

चली संग लइ सखी सयानी
गावत गीत मनोहर बानी

हेन्दी लोकगीत वास्तव में व्रज, राजस्थानी, बुन्देली, अवधी, भोजपुरी तथा खड़ी बोली आदि के लोकगीतों का मिला जुला रूप है।

इन गीतों के रचनाकाल के संबन्ध में कोई बहिरंग प्रमाण उपलब्ध नहीं है फिर भी लोकगीतों में कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है, ऐसे समाज का चित्रण है जिसके आधार पर इन लोकगीतों के निर्माण काल का अनुमान किया जा सकता है। ये लोकगीत बहुत ही प्राचीन हैं और बहुत से विद्वानों का मत है कि लोकसंगीत का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर भी पड़ा है। जीवन और संगीत के नैसर्गिक संबन्ध का वास्तविक परिचय हमें लोकसंगीत के द्वारा प्राप्त होता है। लोकसंगीत जनजीवन के अत्यधिक निकट होता है। अपने नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्सवों, त्योहारों तथा रीति रिवाज़ों एवं सामाजिक कार्यों के दौरान यह जन्म लेता है। इसका क्षेत्र स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों द्वारा गाये जानेवाले सभी प्रकार के गीतों में व्याप्त धुनें हैं।

लोकगीत, लोकजीवन द्वारा, विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म तथा

संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति जीवन के सभी पहलुओं और भिन्न भिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के मानसि तथा शारीरिक व्यापार जैसे भी होते हैं उनका यथार्थ चित्रण इन्हीं मिलता है। लोकगीतों में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है तथा जीव में समय समय पर होनेवाली सामयिक क्रान्तियों का आभास भी। इ लोकगीतों में ही भारत की मूल संस्कृति को लोकसंस्कृति का नाम देक धरोहर के रूप में सदा संजोकर रखा है। हर जाति और समाज के अप गीत होते हैं जिनमें किसी समाज विशेष की जीवनानुभूति की अभिव्यंज होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था से, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लोकगी अपने ही प्रकार से प्रेरणा ग्रहण कर समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्ति दिया करते हैं। लोकगीत ग्राम्य संस्कृति के जागरूक प्रहरी कहे जा सक हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. सत्येन्द्र की लोकगीत संबन्धी परिभाषा बहुत ह महत्वपूर्ण होगी। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोकगीत की परिभाषा संक्षेप इस प्रकार दी जा सकती है, *वह गीत जो लोकमानस की अभिव्यक्ति ह अथवा जिसमें लोकमानस का आभास भी हो, लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा।*[६] -यहाँ लोकमानस से मतलब उस आदिम मानस से है जिसके अवशेष आज भी दिखाई पड़ते हैं। यह लोकमानस लोकसाहित्य के निर्धारण में सबसे प्रमुख तत्व है। चेतन मानस में यह तत्व विद्यमान नहीं है। उलटे अवचेतन मन की भाँति मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को ही प्रेरित और निर्माण करनेवाली है। इसे *इनहैरिटेड पैटर्न* कहा गया है।[७] लोकगीतो की दुनिया की यही विशेषता है कि ये जीवन के साथ घुले मिले हैं। उनका प्रसार एवं विस्तार इतना अधिक है कि जीवन का कोई पक्ष, भाव तथा व्यापार ऐसा नहीं जो लोकगीतों के बन्धन में न आता हो।

ह़िन्दी लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीत मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं। मुक्तक गीत एवं कथात्मक गीत। मुक्तक गीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत, संस्कार गीत, विवाह गीत, बालगीत, धार्मिक गीत, पर्व एवं त्योहार से संबन्धित गीत, श्रम गीत, जातिगीत आदि।

पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत

हिन्दी के लोकगीतों में पारिवारिक संबन्धों का सजीव चित्रण मिलता है। इन गीतों के द्वारा हिन्दू समाज के पारिवारिक संगठन, संयुक्त परिवार, सामाजिक व्यवस्था, तथा आचार विचारों का पता चलता है और सामाजिक व सामयिक समस्याओं पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। माँ, बाप, पुत्र, भाई, बहन, सास, बहू, भाभी, देवर, ननद, सभी प्रकार के संबन्धों से जुड़े हुए लोकगीत उपलब्ध होते हैं। पारिवारिक संगठन को प्रस्तुत करनेवाला एक लोकगीत इस प्रकार है

भैया रे तोर आजी कैसन ? मचिया बैठी रानी अइसन
भैया रे तोर बाबा कैसन ? सभवाँ बैठा राजा अइसन
भैया रे तोर बाबू कैसन ? पोथिया बाँचै पंडित अइसन
भैया रे तोर भाई कैसन ? घर घर घूमै बिलरिया अइसन
भैया रे तोर काका कैसन ? हथवाँ गुलेलिया राजा अइसन
भैया रे तोर काकी कैसन ? मूड फेंकारे बन मनसिन अइसन
भैया रे तोर फूवाँ कैसन ? हाथ गुडुइया रानी अइसन '

इस गीत में संयुक्त परिवार का सुन्दर चित्र प्रश्नोत्तर शैली में चित्रित किया गया है। इसमें आजी, बाबा, भाई, काका, काकी, फूफा का जिक्र करत

हुए उनके संपन्न एवं आनन्दमय जीवन का चित्र खींचते हुए संयुक्त परिवार के हर्षोल्लास एवं आनन्द की ओर संकेत किया है। पारिवारिक संबन्धों के अन्तर्गत आनन्दमय और दुःखमय दोनों प्रकार के संबन्धों का चित्रण हिन्दी लोकगीतों में किया गया है। हमेशा यह देखा जाता है कि परिवार में कई तरह के संबन्धों के रहते हुए भी बहिन का भाई के प्रति और भाई का बहिन के प्रति सात्विक प्रेम का वर्णन कई जगहों पर मिलता है। इस सात्विक प्रेम के अन्तर्गत सुख और दुःख दोनों का एहसास रहता है । कहीं धन संपत्ति से रहित बहन जो भावनाओं से दरिद्र नहीं रहा करती अपने भाई को किस प्रकार सन्तोष प्रदान करती है, इसका वर्णन इन गीतों में प्राप्त होता है। वास्तव में बहिन का प्रेम निस्वार्थ रहता है।

भाई-दूज के दिन बहन का यह प्रेम उसके हृदय रूपी पात्र से छलकने लगता है। शुभ कामनाओं और शुभ आशीषों से भाई को वह हमेशा कृतज्ञ बना देती है। इस भाव को चित्रित करनेवाला निम्नलिखित गीत

छोटी मोटी दुहनी दुध के
बिना रे अगिन बाफ़ लेई, बलैया लेऊँ बीरन की
इन्हें दूध पिये बीरन मोरा, बलैयै लेऊँ बीरन की
भैया ड़ेल मुगलवा के साथ बलैया लेऊँ बीरन की [१]

संस्कार गीत

संस्कार और मानवीय कार्यकलाप विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं जिनसे होकर जीवनधारा प्रवहित होती रहती है। हिन्दू जीवन सांस्कारिक अधिक है। इसमें भिन्न संस्कार अपने अपने समय पर आते रहते हैं। प्रत्येक संस्कार के दे रूप पाये जाते हैं। शास्त्रीय तथा लौकिक। लौकिक संस्कार का संबन्ध आनुष्ठानिक गीतों से है जिनमें निश्चित विधान

हीं होता और जिसका समस्त कार्य स्त्रियाँ गीतों के द्वारा ही करती हैं। ास्त्रीय संस्कारों के अन्तर्गत जन्म और विवाह आते हैं। मृत्यु जो जीवन ी मुख्य धटना है, उससे संबन्धित गीतों का भी उल्लेख मिलता है। ये ीत उतने सुखद नहीं हैं। संस्कार गीतों में मुख्यतः जन्म, मृत्यु, विवाह के ीत मिलते हैं।

न्म गीत

भारतीय संस्कृति में नारीत्व की पूर्णता मातृत्व में मानी गई है। ोकगीतों में गर्भावस्था के नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन आता है जिनमें ार्भिणी की अवस्था, दोहद आदि की चर्चा होती है। जन्म के पश्चात् के लौकिक संस्कारों में *छठी* और *दसूटन* विशेष हैं। दसूटन प्राचीन पौरोहित्य नामकरण संस्कार ही है। मुंडन, कनछेदन संस्कार जन्म के पश्चात् के हैं जो आयु के विशेष वर्ष में मुहूर्त निकालकर किए जाते हैं। *सोहर* जन्मोत्सव के गीत का नाम है जो बच्चे के जन्म होने पर गाया जाता है। लोकजीवन में पुत्रजन्म के समान मांगलिक और हर्षपूर्ण अवसर दूसरा नहीं होता। जच्चा की नवनिधि का स्वागत अभिनन्दन संपूर्ण समाज हर्षोन्मत्त होकर अत्यन्त भावभीन स्वरों में करता है जन्म से संबन्धित अनेक प्रकार की विधियाँ तथा संस्कार किए जाते हैं जो यज्ञोपवीत तक चलता रहता है। पुत्रजन्म के अवसर पर गायिकाओं की कई महफिलें उठती हैं। *सोहर* के नशीले झोंकों से घर आँगन गूँज उठता है। जैसे

भोर होत पौत फाटत ललनै जल्म लीन्हा
(होरिलै जल्म लीन्हा)
सात सबद सहनइया ससुर द्वारे बाजै बहुत नीक लागै।
अँगने मां बजत बधइया भितर मेरे सोहर रे। [१०]

इन पंक्तियों में भावों का सुन्दर वर्णन दिया गया है। यह जन्मोत्सव जीव की सर्वाधिक मंगल घटना है। इस समय गाये जानेवाले गीत मूल रूप भावगीत ही होते हैं।

विवाह गीत

जीवन के सोलह संस्कारों में विवाह का महत्व सबसे अधिक है गृहस्थी विवाह संस्कार से प्रारंभ होती है, क्योंकि यह समस्त गृहयज्ञों संस्कारों का उद्गम अथवा केन्द्र है। विवाह गीत प्राय: स्त्रियों के द्वारा गा जाते हैं। स्त्रियों की कोमल और सूक्ष्म भावनाओं व उनकी दूरदर्शिता के कारण इन गीतों में कोमलता, सरलता व सरसता आ गई है। *उबटन गीत, हल्दी गीत, तेलगीत* आदि विवाह के पहले कन्या के शरीर में हल्दी, तेल व उबटन लगाने के वक्त गाये जाते हैं । ये सब रस्में बाहरी तौर पर विवाह संस्कार को सूक्ष्मता प्रदान करनेवाली होती हैं, लेकिन इन गीतों का सच्चा स्वरूप उस माँ की सोने का कौर खिलानेवाली साध की प्रबलता में मिलता है। अपनी बेटी के सुखमय भविष्य की चिन्ता के कारण वह सर्वथा उपयुक्त घर, वर की खोज करने के लिए अपने पति से कहती है। जैसे--

अइस वर ढूँढ्यो हो जहाँ बेटी राज करै,
चन्दन की चउकी हो बइठि बेटी असनान करै।
मथुरा के पेड़ा हो बइठि बेटी भोजन करै,
सोने के गेडुवा गंगाजल पानी बइठि बेटी घूँटि रहै।
महोबे के बीरा हो बइठे बेटी चाबि रहै।
फूलों की सेजिया हो पड़े बेटी आराम करै।
दस टहल टहलुआ हो सो बेटी के लागी रहै। [११]

अपनी बेटी को सिंहासन पर बिठाकर बड़ी संपन्नता के साथ जो उसन

ला है उसी के अनुसार उसका ससुराल भी उतना ही संपन्न होने की वह ोकामना करती है। उसकी इच्छा है कि उसकी बेटी ससुराल जाकर लों की सेज पर आराम करती रहे। इस प्रकार विभिन्न भावों से भरे हुए िवाह से संबन्धित ये गीत नारी मनोविज्ञान को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते ।

त्युगीत

मृत्यु शोक और विषाद का समय होता है । अतः इस अवसर के ीतों में शोकभाव ही भरा रहता है। मृत्युगीतों का वर्ण्य विषय मृत व्यक्ति ∮ गुणों का परिगणन होता है। जैसे विवाहिता कन्या की मृत्यु पर गाया जानेवाला गीत

हाय हाय बांगां की कोयल
कन तेरी बाँधी पालकी बांगां की कोयल
कन तेरा कर्या सिंगार, हाय हाय बांगां की कोयल
देवर जेठां नै बाँधी पालकी
हाय हाय बांगां की कोयल [१२]

मृत शव के पास बैठकर रोदन करने वाली स्थिति को व्यक्त करनेवाला यह गीत करुणा का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। करुणा का अगाध सागर ही इस गीत में उभर आया है। बेटी की अंगयष्टि का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है--

मूंगफली सी आंगुली, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।
नाक सुए की चोंच हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।
ओठ पीपल के पात से, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया। [१३]

माता पिता का आँगना लाडली के बिना सूना है। पिताजी उदास हैं अ माताजी की आँखों के सामने लाडली की छवि घूम रही है। उसकी स्मृ परिवार के प्रत्येक सदस्य को कितना विकल बना रही है उसकी थ प्रस्तुत गीत में मिलती है।

मृत्यु का भय प्राणिमात्र को दहला देनेवाला होता है। परन्तु इसक भयानक परिणाम पराश्रित नारी को ही भोगना पड़ता है। वह कहीं कह जीवन भर इस मूल्य को चुकाने का प्रयत्न तो करती रहती है। हिन्दी क लोकगीतों में इसके भी कई उदाहरण मिलते हैं।

बालगीत

पालने के गीतों से लेकर खेल, शिक्षा, मनोरंजन आदि से जुड़े हुए गीत इसके अन्तर्गत आते हैं। बच्चा उत्पन्न होने के पश्चात् उसके लिए सुन्दर सा पालना बनता है जिसमें उसे सुलाया जाता है। गीत भी गाए जाते हैं। यथा

अवध में जन्मे राम सलोना
मात कौसल्या के पुत्र हुए हैं
दशरथ के चारो छौना
चारों पुत्र पालना झूले
माथे दियो डिठौना [१४]

जन्मोत्सव पर गाये जानेवाले गीत, विशेषतः अवध में रामजन्मोत्सव से संबन्धित रहते हैं। इन गीतों में अवश्य ही शिशु के भविष्य के मांगल्य भरे जीवन का अपार उत्साह व शुभकामनाएँ प्रकट होती हैं। *बालगीत वह पुष्पित पौधा है जिसकी आँखें सूर्य खोलता है, जिसे चन्द्रमा दूध भरी कटोरी से नहलाता है, जिसे पवन अपने पालने में झुलाना है, जिसकी*

ारती संध्या उतारती है और जिसे माँ बहिनें बड़े यत्न से वात्सल्य के ांगन में पाल पोस कर बड़ा करती हैं। [15] इन गीतों में आनन्द ही आनन्द हता है। हवा, पानी, प्रकाश, रोटी, पेड़ पौधे, चाँद तारे, चिड़िया, मोर, ।रिवार, समाज, संगीत, लय,कथा, सभी इनमें भरे रहते हैं।

ार्मिक गीत

लोकगीतों में धार्मिक गीतों का अपना अलग महत्व है। देवियों के ीत, देवताओं के गीत, भजन आदि गीत इसके अन्तर्गत आते हैं। इन गीतों के द्वारा समाज समय समय पर अपनी धार्मिक मान्यताएँ व विश्वास प्रदर्शित कर रहा है। गीतों की प्राचीन विचारधारा से यह स्पष्ट होता है कि लोकमानस किस प्रकार आदिम काल से गंगा माता, तुलसी माता, हनुमान, शिव, सर्प आदि की पूजा करता आ रहा है तथा वृक्षों, पत्थरों, पशु पक्षियों की भी पूजा करता आ रहा है और आज भी लोकमानस उसी लोकविश्वास को लेकर आगे चल रहा है। इन गीतों में ईश्वर के गुणगान, भक्तिभावना, धार्मिक अनुष्ठान, प्रार्थना आदि मिलते हैं। देवी देवताओं की उपासना से जो आध्यात्मिक आनन्द मिलता है, उससे लोकजीवन की परंपरा बहुत प्रभावी रही है। इसीलिए उपासना संबन्धी गीत प्रचुर मात्रा में दिखाई देते हैं । उदाहरण के लिए

जिस घर में सै तुलसां का बिड़ला,
उड़ै नित उठ आवै भगवान,
सुरस्ती विद्या दे अर ग्यान [१६]

प्रस्तुत गीत में सरस्वती की महिमा गाई गई है। लोक में सरस्वती सुरस्ती या विद्या की देवी हैं। भवानी, वाणी और शारदा नाम भी इनके लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को नववर्ष के उपलक्ष्य में विद्या का व्रत

रखा जाता है।

लोकजीवन में धर्म का बड़ा महत्व है। क्योंकि वही मनुष्य का नात ईश्वर से जोड़ता है और उसका जीवन सुखी बनाता है। *धर्मो रक्षति रक्षित* यही महाभारत का वचन है।

ऋतु त्योहार संबन्धी गीत

भारत कृषिप्रधान देश है जिसमें ऋतुओं का विशेष स्थान है। यह का लोकजीवन इसी पर आश्रित है। भारत में चार ऋतुएँ प्रधान हैं, शिशिर वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा। इनसे संबन्धित चौमासा गीत लोकगीतों के अन्तर्गत बड़े महत्व के रहे हैं। निम्नलिखित चौमासा गीत में विरहिणी नायिका अपने प्रियतम के आने के लिए किस प्रकार भगवान से प्रार्थन करती है, इसका विवरण दिया है

करौ जतन भगवान मिलन की अब ऋतु आ गई चौमासा,
लगे असाढ़ पवन झकझोरत हमका बिरहा ने गाँसा।
बारी उमिरि पिया परदेसी सेज जात लागै त्रासा।
अब कहो धीर कौन विधि धरिहैं कहाँ जाय करिहैं बासा
सावन भवन नहीं मनभावन को पुरवै मोरी आसा .
तबै तो नित नित प्रीति बढ़ाई अब सोवैं सौतिन पासा।
घर घर सखियाँ मंगल गावैं हमरे गरे परी फाँसा ।।
भादौं भवन भयानक लागै सूझि परै नहिं निज पासा ।
अपना जाय बसे मथुरा माँ हमका दीन्हेनि झूर झाँसा।
सुनियत कुब्जा भई पटरानी, तेहि के संग करैं हाँसा ।।
लागे मास कुवार सखी री उए अगस्त मुनि अक्काशा ।
बरखा गई सरद रितु आई बागन फूलि रहे काँसा ।

मेरे बेदरदी अजहुँ न आये परे सवतिया के पासा ।।
लागे कातिक मास सखी री कान्ह चन्द्रमा परकासा ।
सब कोउ पूजत चउथि चन्द्रमा करि करि बालम कै आसा ।
हम बिन बालम के कस पूजी गावत ब्रिजबासी दासा ।। [१७]

स में आषाढ़ से कार्तिक तक के गीत चित्रित हैं जो आषाढ़ एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक के माने जा सकते हैं। यहाँ पर पावस के वेरहोद्दीपक वातावरण का खूब चित्रण मिलता है। उसी प्रकार आषाढ़, सावन, भादों और कार्तिक का सुन्दर वर्णन इन पंक्तियों में मिलता है।

भारत में लोकजीवन में अनेक त्योहारों को मनाने का विधान है। ये त्योहार किसी देवी देवता से संबन्धित होते हैं और इन त्योहारों को लेकर अनेक विश्वास भी प्रचलित रहे हैं। *होली, दीवाली, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, रामनवमी, गणेश चतुर्थी, रक्षाबन्धन, नागपंचमी* आदि इन त्योहारों में प्रमुख हैं। *होली* का संबन्ध *होलिका* से माना जाता है जिसका नाश श्रीकृष्ण ने किया था। इसी दिन को लोग होली के रूप में मनाते हैं। होली रंगों का उत्सव है। स्त्री पुरुष इस समय अवस्था के भेद के बिना भेदभाव भूलकर मुक्त हृदय से मनोरंजन करते हैं। यह अवसर मज़ाक के लिए उपयुक्त समझा जाता है। स्त्रियों पर विशेष रूप से जो गुलाल फेंका जाता है उसका वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है

मुट्ठी भरा गुलाल किन्ने डाला रे
जिन्ने भी डाला लाला सन्मुख अइयो
नहीं तो दूँगी सहज गाली, गुम गुम गाली। [१८]

लोकगीतों में सभी देवी देवता होली खेलते हैं। कोई कोई राम के साथ होली खेलना चाहता है *(ए राम से खेरबि होरी)*, तो कोई कृष्ण का

होली खेलते देखना चाहता है। गोपियाँ तो कृष्ण को स्त्री का रूप बनाक उनके साथ होली खेलती हैं।[१९] व्रज की होली तो बहुत ही विशेषता लि होती है। यहाँ पर होली का संबन्ध कन्हैया और राधिका से जुड़ा होने कारण उसका रंग ही निराला है। यहाँ पर वसन्त पंचमी के दिन धूमधा से होली का आरंभ होकर चैत्र पूर्णिमा तक रंगों की बरसात होती रहती है बालक, जवान, बूढ़े सब उन्मत्त रहते हैं। इसे देखकर स्वर्ग के देव भी व्र में रहना चाहते हैं। देखिए

जैसौ रस बरसाने बरसै, सो रसु बैकुण्ठहु में नाहिं
सुर तैंतीसन की मति बौरी
तजि कै चले सुरग की पौरी
देखि देखि या व्रज की होरी, ब्रह्मा मन पछताहिं। [२०]

श्रमगीत

लोकजीवन में श्रम की बड़ी प्रतिष्ठा है। श्रम देवता सभी देवताओं से बढ़कर होता है। लोक अच्छी तरह जानता है कि बिना श्रम के जीवन सार्थक नहीं होता। इसलिए कर्म साधना का स्वाभाविक रूप में वर्णन लोकगीतों में मिलता है। भावतन्मयता के विनियोग से लोकमानव अपने श्रम में भी आराम एवं मानसिक उल्लास पाता है । इसका अर्थ अपने कर्म से मुकरना नहीं है, अपि तु विशेष आत्मीयता के साथ कर्म शिरोधारित करना होता है। कठिन से कठिन श्रम भी वह गाते हुए हल्का कर देता है। श्रम के विविध अवसरों पर धर के भीतर या बाहर लोकजीवन के श्रमगीतों की सुरीली स्वरलहरी देखने को मिलती है। इन भावभरे गीतों को गुनगुनाते रहने से नई प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिलती है। स्त्री पुरुष के भेद के बिना श्रम परिहार के साधन के रूप में ये गीत लोकसमाज में प्रचलित रहे हैं। चक्की,

नघट, रोपनी आदि के सन्दर्भ में जिनमें विशेष रूप से स्त्रियों का योगदान हता है, श्रमगीत अत्यधिक मनोहर बन जाते हैं। अक्सर चक्की के गीतों ं नारी संबन्धी प्रताडना का यथार्थ चित्रण मिलता है। इस कारण से ोकजीवन में इसका विशेष महत्व रहा है। निम्नलिखित चक्की गीत बड़ा ी प्रभावपूर्ण रहा है --

जपन को जपमाला कठिन है
मात पिता औ अपने की ई तीन्युन की आज्ञा कठिन है।
सास ससुर औपति अपने की ई तीन्युन की सेवा कठिन है।
गंगा जमुना औ तिरबेनी ई तीन्युन की धारा कठिन है।
सुरज जोन्हइया नखत औ तारे ई चार् युनका उवना कठिन है[२१]

पारिवारिक जीवन में आज्ञा, धर्म एवं सेवापालन कितना कठिन होता है उसकी अनूठी अभिव्यक्ति किसी ग्रामवधू द्वारा गाया जाय तो कितनी सुन्दर होती है, इसका परिचय इस गीत में मिलता है। अलंकारों के प्रयोग से भावों को और भी सशक्त बनाने का कार्य इन पंक्तियों में हुआ है। सास, ससुर और पति तीनों की सेवा गंगा, यमुना, सरस्वती की त्रिवेणी से भी बढ़कर गहरी मानी गई है।

जातिगीत

प्राचीन भारतीय समाज में वर्णाश्रम धर्म और जातिप्रथा का बड़ा ही प्रचार था। समाज के दो विभाग किए जाते थे जिनमें उच्च एवं निम्न विभाग का प्रतिनिधित्व रहता था। निम्न वर्ग में जातिभेद के आधार पर भिन्न भिन्न जातियों के गीत प्राप्त होते हैं। भिन्न भिन्न जातियों का अस्तित्व या सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों का दर्शन इन्हीं निम्नमध्यवर्गीय जातियों में होता है। लोकजीवन का प्रतिबिंब इनके द्वारा प्रस्तुत किए गए जातिगीतों

में खोजा जा सकता है। प्राचीन काल में काम करने की सुविधा को दृषि में रखकर भारतीय समाज में भिन्न भिन्न जातियों का विभाजन किया गय था। हर एक व्यक्ति समाज का सुप्रधान सदस्य माना जाता था और समाज के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता था। इन विभिन्न जातियों र संबन्धित गीत भी समाज में प्रचलित थे जिनमें उनके जीवन से संबन्धित विभिन्न पक्षों का चित्रण मिलता है। इन गीतों में प्रमुख हैं कहारों के गीत, धोबियों के गीत, चमारों के गीत और अहीरों के गीत जो क्रमशः *कहरवा, लवारी, निर्गुण गीत, बिरहा* कहे जाते हैं। इनमें अहीरों के गीत सबसे प्रमुख है। उदाहरण के लिए

वने वने गइयां चरावे रे कन्हइया घरे घरे जोरत पिरीत।
आनकी विअहिया का सान मारि आवै आखिर त जतिया अहीर [22]

गाय चराते समय ये बिरहा के गीत अक्सर गाये जाते हैं। प्रस्तुत गीत में *घरे घरे जोरत पिरीत* में समाज की एकता की ओर संकेत मिलता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि निम्नवर्ग में रहते हुए भी इन जातियों के मानसिक भाव उच्च थे। *बिरहा* अहीरों के लिए अत्यन्त प्रिय थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी समाज का एक संपूर्ण चित्र इन लोकगीतों में पाया जाता है। ये लोकगीत समाज से संबन्धित रहते हैं। ये दिन प्रतिदिन के जीवन की गीतात्मक अभिव्यक्ति रहे हैं जिनका मूल ध्येय मनोरंजन होते हुए भी जीवन के प्रति गहरी अन्तर्दृष्टि रहता है। मानव जीवन के सभी अंगों और स्तरों का स्पर्श करते हुए ये समाज के विभिन्न पक्षों का यथातथ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। समाज की हर गतिविधि के साथ इनका संबन्ध रहता है। सबेरे से शाम तक व्यक्ति के दैनिक आचरण का एवं समष्टिगत जीवन के समस्त व्यवहारों का ब्योरा इनमें समाया हुआ है।

लोकगीतों में लोकमानस फैला पड़ा है। यह व्यक्तियों को उत्तराधिकार में प्राप्त हो जाता है। कोंकणी लेकगीतों में कोंकणी लोकमानस का अनुभव किया जा सकता है जो थोड़ी बातों को छोड़कर सभी अर्थों में भारतीय लोकमानस का ही स्वरूप प्रस्तुत करता है। लोकगीतों में युग युग की वाणी और साधना समाहित रहती है जिसमें लोकमानस का प्रतिबिंब हमें मिलता है। सह संस्कृति की वही स्वर्णमंजूषा है जिसमें लोकजीवन से संबन्धित आचार विचार, विधि निषेध, विश्वास, प्रथाएँ, धर्म परम्पराएँ, रीति नीतियाँ, उपासना, अनुष्ठान, व्रत, त्योहार, विद्या, कलाएँ आदि पूर्ण तथा व्यावहारिक अनुभवसिद्ध स्वरूप के साथ समाहित हैं। कोंकणी लोकगीतों में यह संस्कृति परंपरा के साथ सामुदायिक जीवन की समकालीन वास्तविकता को लेकर चलती है।

प्राचीन काल से ही गोवा में संगीत की धुन उसके विशेष अर्थों में प्रयुक्त होती थी। यह संगीत नायकों नायकिनों द्वारा गाया जाता था जिन्हें संगीत के विशेषज्ञ माना जाता था। वहाँ के शासकों ने समय समय पर लोककलाओं को संरक्षण भी प्रदान किया था। इन्हीं परिस्थितियों का अनुसरण करते हुए पुर्तगालियों ने कहा है Quem canta ceus males espanta[२३] (जो गाता है वह अपना दु:ख दूर करता है।) गोवा के सामाजिक इतिहास का अध्ययन इस बात की जानकारी देता है कि यहाँ के लोग आरामतलब एवं मौज करनेवाले थे। पुर्तगालियों द्वारा लगाया दबाव सरल प्रकृतिवाले इन लोगों के लिए उलझनें पैदा कर गया। दु:ख की इन घड़ियों ने उन्हें लोकगीतों का सहारा मिला और उनके द्वारा लोकगीतों को नये नये विषय प्रदान किए गए।

कोंकणी लोकगीतों में कोंकणी समूह की अन्तर्भावना निहित इसमें कोंकणी लोगों का हृदय मिलता है और उसकी उमंग भी मिलती उत्सवों और मेलों के अवसरों पर *ओवी* गाने की प्रथा इस समाज में वर्तमा थी। जिस प्रकार प्राचीन काल से ही भाव, भावनाएँ, आनन्द एवं उल्ला का सही चित्र इन गीतों में मिलता है। इन गीतों का प्रमुख विषय जीव ही है। जीवन का अर्थ, महत्वपूर्ण घड़ियाँ, आनन्द एवं उत्सव आदि व वर्णन इनमें रहता है। जीवन को अर्थयुक्त एवं अर्थहीन बतानेवाले अने धार्मिक गीत कोंकणी में मिलते हैं। जन्म एवं संस्कारों से संबन्धित अनगिन गीतों से कोंकणी के लोकसाहित्य का भंडार भरा हुआ है। होली जै त्योहारों को मनाते समय आनन्दपूर्ण धड़ियों में गाये जानेवाले कितने ह लोकगीत कोंकणी में मिलते हैं जो लोकसाहित्य के साथ साथ शिष साहित्य को भी प्रभावित करते रहते हैं। जोस पेरेरा ने अपने Song of Go नामक पुस्तक में कोंकणी लोकगीतों का इस प्रकार वर्गीकरण किया है धार्मिक गीत, बालगीत, विवाह गीत, मृत्युगीत, आनन्द और उत्सव मना के लोकगीत, श्रमगीत, जातिगीत, नाट्यगीत, नृत्यगीत एवं कलात्मव गीत। लेकिन सुविधा के लिए हम इन गीतों के वर्गीकरण को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं।

पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत, संस्कार गीत, बालगीत धार्मिक गीत, ऋतु त्योहार संबन्धी गीत, श्रमगीत, जातिगीत।

पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीत

कोंकणी में पारिवारिक जीवन से संबन्धित गीतों की भरमार है। पति पत्नी, भाई बहन, सास बहू, ननद भाभी आदि का संबन्ध इन गीतो का विषय रहा है। इनमें भाई बहन का संबन्ध सर्वाधिक प्रभावपूर्ण दिखाई

ता है। ससुराल से मायके आनेवाली बहन को देखकर उसको एक बोरा ावल देने को कहनेवाला भाई, चावल के बोरे के बदले चोकर का बोरा नेवाली भौजाई, अपनी इच्छाओं के विरुद्ध आचरण को देखकर भी भाई ा भला चाहनेवाली और अपनी भौजाई के प्रति प्रेम एवं आदर की भावना ेखानेवाली बहिन का चित्र इन गीतों में बड़ी ही सुन्दरता के साथ खींचा ाया है। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए-

माथ्यार घेतली कुंड्या मोट	(सिर पर गठरी चोकर की
आमील पेजेन भरलें पोट	चावल के दलिये से भरा पेट
म्हज्या बाय बाबाले	मेरे माय बाप के
शेतां	खेत में
पड़ पड़ रे मेगनाथा	बरस ओ, बादल
म्हज्या बाय बाबाले	मेरे माय बाप के
शेतां..............[२५]	खेत में.............)

संस्कारगीत

कोंकणी लोकगीतों की परंपरा बहुत प्राचीन रही है। मैत्रायणी संहिता में इस बात का उल्लेख है कि शादी के अवसर पर स्त्रियाँ एकत्र होकर गीत गाया करती थीं। पारस्कर एवं अश्वलायन गृह्यसूत्र में भी विवाह एवं सीमंन्तोन्नयन के समय *गाथा* गाने का जिक्र मिलता है। कोंकणी में भी ऐसे बहुत से लोकगीत हैं जो विवाह और दोहद से संबन्धित हैं। कन्या का पराया धर जाने का गीत भावगीतों में करुणा और वेदना का संचार करता है। उदाहरण के लिए कन्यादान के समय का एक गीत देखिए

आई बप्पाचे गे पोटी	(माता के गर्भ में जन्मी मेरी गुडिया
जल्मली गे पुतळी	जन्मी मेरी गुड़िया

कन्यादान कोनळी	कन्यादान का घेरा
गे धुवेन वाडयली	गुड़िया ने सजाया
उब्बो जल्ल्या माये बप्पा	खड़े हैं माई बाप
सोडी पाणियांच्यो गो धारा[२६]	बहाते हुए अश्रुधार)

विवाहगीत स्त्रियों के द्वारा ही गाये जाते हैं। स्त्रियों की कोमल एवं सू भावनाओं एवं उनकी दूरदर्शिता के कारण इन गीतों में कोमलता, सरल व सरसता आ जाती है। जीवन के नैसर्गिक भावों का संस्कारज वातावरण तथा परंपरागत रूढ़ियों की सूक्ष्म अभिव्यंजना इन गीतों में है। इन गीतों के अन्तर्गत देवी देवताओं के विवाह गीत गाये जाते हैं कोंक का एक प्रसिद्ध गीत है *शोभाने* जिसकी उत्पत्ति संस्कृत शोभन (कल्या से हुई है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

श्रीलक्ष्मी बमुणाक बालमुकुन्दाक	(श्रीलक्ष्मी भरतार बालमुकुन्द की
जलां भित्तरि मत्स्य रूप घेत्तल्याक	पानी के अन्दर मत्स्यरूप धरता
बला खातीरि कूर्मु जाव्नु व्यापिल्याक	कूर्मावतार बनकर फैलनेवाले की
नीलवर्ण श्री कृष्ण रुक्मिणीक	नीले रंगवाले श्रीकृष्ण रुक्मिणी
बल कोर्नु आरति दाकेयाय शोभाने [२७]	आरती उतारी जाय, मंगल हो)

विवाह से संबन्धित उबटन गीत, हल्दी गीत, तेल गीत, आदि भी कोंक में मिलते हैं। मंड़प गाड़ने के समय सगुन के लिए गीत गाये जाते हैं जिन मंडप की सजावट आदि की प्रशंसा रहती है। बारात के स्वागत में अगवानी और द्वाराचार के गीत गाये जाते हैं। लाजाहोम आदि से संबन्धि गीत भी कोंकणी में मिलते हैं।

जन्मगीत

गर्भाधान से लेकर जन्म, छठी, दसूटन सभी से संबन्धित गी

सके अन्तर्गत आते हैं। कोंकणी में ऐसे गीत बहुत मिलते हैं। गर्भावस्था नौ महीनों और तज्जन्य दोहद का वर्णन कोंकणी लोकगीतों के अन्तर्गत लता है। उदाहरण के लिए अमरूद से संबन्धित दोहद का चित्रण देखिए

वाळो पै जाले दुवाळे उपनल्ला	(दोहद पे दोहद उत्पन्न हुआ
त्तुगे तीये पेर बोरांचे	तिया को री अमरूद बेरों का
डाय पे बोरय दुवाळे पुरोया [२८]	- ले आओ अमरूद बेर दोहद पूर्ण हो
वाळे दुवाळे देवकी राणये संपूर्ण	कोर्या देवकी रानी के दोहद पूर्ण हों)

न गीतों में चित्रित गर्भिणी स्त्री या तो देवकी होती है या सीता देवी और गीत हमेशा रामकथा या कृष्णकथा की आड़ में गाये जाते हैं। यह आम जनता का पुराणों पर जो विश्वास है उसी की ओर संकेत करता है। लोकविश्वास इस प्रकार भी है कि यदि दोहदपूर्ति न हो जाय तो बच्चे में कमियाँ रह जाने की संभावना है। इच्छाओं का दमन मानसिक अस्वस्थता का कारण बन सकता है और माता के मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव बच्चे पर भी पड़ता रहता है। इसलिए गर्भवती महिला के हर दोहद की पूर्ति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बच्चे के जन्म पर सभी लोग आनन्दित होते हैं। इस आनन्द की अभिव्यक्ति गीतों के रूप में होती है। जन्म के पश्चात् लौकिक संस्कार होते हैं जिनमें छठी, नामकरण आदि आते हैं। कोंकणी के कथागीत, *गोड्डे रामायण* में इस ओर संकेत मिलता है। यहाँ चारों पुत्रों के जन्म पर राजा दशरथ सन्तुष्ट होते हैं और दसवें दिन छठी, नामकरण आदि के बाद स्त्रियाँ मिलकर बच्चों को पालने में रखती हैं। गीत भी गाती हैं। जैसे-

जोयि म्होणु बाळा जोयि करीन तुक्का।
पाळ्ळें बांदलें रुक्काक चन्दनाचा।

पाळ्ळें मणि बांदलें दीग जाल्यो दोर्‍यो
पाळ्ळेंतुल्यो घड्यो पाट्टेचो। [29]

यज्ञोपवीत

बच्चा जब सात वर्ष का होता है तो उसका उपनयन किया जात है। *जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यत* वाला मनु का कथन उपनयन संस्कार की ओर ही संकेत करता है। कोंकणी समाज में इसक बड़ा महत्व है। यह दीक्षा का संस्कार है। गुरु शिष्य को प्रारंभिक शिक्षा देत है। कई अनुष्ठानों के साथ किए जानेवाले इस संस्कार के अन्त में मंगलमर आरती उतारी जाती है जिसके साथ गीत भी गाये जाते हैं। थोड़ी पंक्तियां इस प्रकार हैं

दशरथ रथ्यागेरि जन्मु घेतल्याक
दशमुख रावणा नाशु केल्लेल्याक
नाशु केलेले कंसाक श्वासु सोळेल्याक
नील मेधवर्ण कृष्ण रुक्मिणीक
कुंकुम लाव्नु आर्ति दाकय शोभाने [30]

इन पंक्तियों में बच्चे के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना की जाती है और बच्चे की आरती उतारी जाती है।

मृत्युगीत

कोंकणी में मृत्युगीत के अंतर्गत *ब्रनवड* का नाम लिया जा सकता है। मृत्युदिवस पर गाया जानेवाला यह गीत विशेष धार्मिक महत्व लिए हुए है। कोंकणी लोग प्रकृति की अदृश्य शक्तियों की पूजा करनेवाले हैं वे तरह तरह के जादू टोनों में विश्वास करते हैं, मृत पितरों का उचित समय पर

ारण करते रहते हैं और उससे संबन्धित तरह तरह के अनुष्ठान भी करते हते हैं। उनका विश्वास है कि यह संसार मृतखण्ड, पातालखण्ड, कैलास ाण्ड आदि तीन प्रकार से विभाजित है। तीन खण्डों की जानकारी लेने ; लिए ईश्वर ने तीन लोगों को नियुक्त किया है। इनके नाम क्रमशः शलवटी जाण, धवलो जाण, सायजाण हैं। इनमें से तीसरा व्यक्ति मृतकों ; पितरों के व्यवहार के बारे में समझने का कार्य करता है। ये पितर ामखण्ड में रहते हैं जिनके नायक यमराज होते हैं। इन पितरों के कल्याण ; लिए बनवड़ काव्य का गायन होता है। यह समाज में धार्मिक महत्व लिए हता है। इस काव्य का गायन पाँच या छः घंटों तक अखण्ड रूप में चलता हता है। मृत्यु के बाद विभिन्न संस्कारों के समय जैसे बारहवीं, वार्षिक, महालय, आदि संदर्भों में इसका गायन किया जाता है। समूहगायन इसकी विशेषता रही है। अक्सर रात के समय ही इसका गायन होता है। रात के बारह बजे तक यह समाप्त हो जाता है। गीत गाते समय आसपास के सभी लोग उसमें भाग लेते हैं। इसके गायन में कई धार्मिक बंधन रहा करते हैं। गायन शुरू होने के बाद कोई बीच में उठकर जा नहीं सकता। बीड़ी सिगार का उपयोग नहीं कर सकता। गोबर लगाकर पवित्र किए गए स्थान पर ही इस गीत का गायन होता है। गाने के पहले दिया जलाया जाता है, नारियल फोडा जाता है। गानेवाला और उसके साथी हाथ जोड़कर ईश्वर की प्रार्थना करते हैं।

पहले गणपति की वन्दना होती है। फिर श्रीराम की। शुरूआत में नामस्मरण किया जाता है फिर पंचमहाभूतों की, संसार की रक्षा करनेवाली अदृश्य शक्ति की और सरस्वती की प्रार्थना की जाती है। महाभारत को आधार बनाकर लिखे गये इस काव्य में केवल पाण्डु की मृत्यु का वर्णन आया है। पाण्डु का स्वर्गवास, माद्री का सती होना आदि का वर्णन इसमें

मिलता है। पुण्यवान मनुष्य मरने पर स्वर्ग पहुँचता है तो पापी मनु यमखण्ड में पहुँचता है। वहाँ यम के द्वारा वह बन्दी बनाया जाता है। ज तक उसके वंशज उसको पापों से निवृत्त करने का अनुष्ठान नहीं करते त तक वह वहीं पड़ा रहता है।

मृत पितरों को बुलाने के लिए और तद्द्वारा धार्मिक मूल्यों औ तत्वों का प्रचार करने के लिए कोंकणी समाज में इस मृत्युगीत का उपयो किया जाता है। यह बड़ा ही कलात्मक गीत होता है जिसमें मृत्यु के देवत यमराज के हर एक कदम को सूक्ष्मता के साथ वर्णित किया गया है जै

त्यावू रे वेळार यमा अन्न तें नाका गा	(यमराज को भोजन नहीं चाहिए
देवा जेवण तें नक्का गा	उस समय भोजन नहीं चाहिए
न्हिदोंक रे गेल्यार यमाक न्हिद	यम को नींद नहीं आती
पडना गा, यमाक न्हिद पडना गा	सोने के समय नींद नहीं आती
गुप्त रे रुपान यम भायर सरलो गा	गुप्त रूप से यम रवाना हो गया
मार्गार भायर सरलो गा	रवाना हो गया
धर्माक रे खबर नासतना	धर्मराज को ही खबर नहीं
पितरां घेवन गेल्लो गा	वह पितरों को ले गया
यम पितरां घेवन गेलो गा [३१]	यम पितरों को ले गया)

बालगीत

बालगीतों के अन्तर्गत कई तरह के गीत मिलते हैं। बचपन की विभिन्न अवस्थाओं में गाये जानेवाले गीत इस शीर्षक के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। पालने के गीतों से लेकर खेल खेलनेसंबन्धी गीत, शिक्षा के गीत, मनोरंजन के गीत आदि न जाने कैसे कैसे गीत इनके अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। बालकों को लयात्मक गीत और लयात्मक ध्वनि दोनों सुखद

गते हैं। छोटे से बच्चे जिनमें दूसरे प्रकार के खेलों की क्षमता नहीं है, नको लोरी या लय के साथ पालने में अथवा गोद में लेकर झुलाना उनके ानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। कोंकणी में से अनेक गीत मिलते हैं। जैसे

आरे बाळा मोगऱ्या कळ्या बैस रे हांडीरि
जायि म्होणु जाल्लेलें बाळ आम्चे खातीरि
आरे बाळा चंप्या कळ्या नीद रे मांडीरि
हट सोडि नीद काडि ऊट रे सांजेरि [३२]

(आ रे लल्ला चंपा कली मेरी गोदी में बैठ जा
हमारे खातीर जन्मा यह लल्ला
आ रे लल्ला चंपा कली मेरी गोदी में सो जा
हठ छोड़ के सो जा, जागो सांज के समय)

इन पंक्तियों में बच्चे को चंपा कली कहकर संबोधित करते हुए उसे गोद में बिठाकर उससे प्रार्थना की जाती है कि वह हठ छोड़कर सो जाये। गाँव की अशिक्षित जनता की जबान पर रहनेवाले ये गीत अधिकाँशतः शब्दयोजना पर बल देते हैं। शब्दों की पुन्नरावृत्ति इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

बच्चा जब बड़ा होता है तब वातावरण के प्रति सक्रिय व्यवहार करना आरंभ करता है। असफलता की अनुभूति होती है और उस असफलता के प्रति यदि बच्चा जागरूक हो तो उसमें हीनता का भाव आने का अंदेशा रहता है। इसलिए ऐसी अवस्था में बालकों में काल्पनिक खेल की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। कोंकणी में ऐसे गीत हैं जो बालकों के मनोरंजन के लिए निर्मित हैं। जैसे

धल धुवे धल	(डोल री बेटी डोल
धलता धलतां बावगली	डोलते डोलते झुक
केक्कीं खावंचाक लागली	केले खाने लग जा
केक्कीं जालीं गोड [33]	केले रहे मीठे)

बालगीतों में लोरियों का बड़ा महत्व है। नींद को बुलाने व प्रलोभन देते हुए लोरियाँ गाई जाती हैं। लोरियों में अक्सर देवी देवता के ही गीत गाये जाते हैं। जैसै-

बाळा जो जो रे	(सो जा मेरे लाल, सो जा
कुलभूषणा, दशरथनन्दना	कुलभूषण, दशरथनन्दन
निद्रा करि बाळा	सो जा मेरे लाल
मनमोहना, राम लक्षिमणा	मनमोहन, राम और लछिमन
बाळा जो जो रे[34]	सो जा मेरे लाल, सो जा)

ये लोरियाँ बच्चों को खिलाते, सुलाते व नहलाते समय गाई जाती हैं। इन बच्चों के भविष्य के लिए शुभकामनाएँ रहती हैं। इस प्रकार विषय वैविध एवं मनोरंजन की दृष्टि से कोंकणी के बालगीत अत्यन्त समृद्ध हैं ।

धार्मिक गीत

कोंकणी लोकगीतों में धर्म का बड़ा महत्व है। धर्म उसीको कह हैं जो मनुष्य का नाता ईश्वर से जोड़ता है। कोंकणी में ईश्वर का गुणगा करनेवाले गीत, भक्ति से युक्त गीत आदि मिलते हैं। मन से, शरीर से भक्ति से ईश्वर को जो नमस्कार किया जाता है, और जो कुछ कहा जात है, ईश्वर उसे ठीक ठीक सुनता रहता है। निम्नलिखित गीत में ईश्वर वे प्रति इसी प्रकार का नमस्कार पाया जाता है

ादी नमन आदी नमन कोरो गणपती (प्रथम नमन गणपति को है दुसरे
मन कोरो धर्तरे माये मू दूसरा नमस्कार धरती माँ को
तेसरें नमन कोरो माय मागे गंगा तीसरा नमस्कार गंगा माता को
ौथे नमन कोरो देवा नागनाथा [35] चौथा नमस्कार नागनाथ को)

ुभकार्य करते वक्त विघ्न को दूर करने के लिए हमेशा गणेशवन्दना की जाती है। इस गीत में गणेश को नमस्कार किया गया है। इससे माना जाता है कि सारे संकट दूर हो जाते हैं। सरस्वती को कोंकणी लोग भूल नहीं सकते। दिन प्रतिदिन की प्रार्थना में सरस्वती हमेशा रहती है। कारण यही है कि कोंकणी भाषा का मूल इसी नदी के किनारे रहा है। इसलिए हर व्यक्ति यहाँ पर सरस्वती से रक्षा की प्रार्थना करता है। अपने जीवन में हमेशा सरस्वती का रहना अनिवार्य मानता है। सरस्वती ज्ञान की देवी है। वह सरस्वती से अपने मन के अन्धकार को मिटाने की प्रार्थना करता है। कोंकणी के धार्मिक गीतों में *धालो* का बड़ा महत्व है। इन गीतों में ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए नाच गीत के साथ प्रार्थना की जाती है।

ऋतु त्योहार संबन्धी गीत

भारतीय जीवन में ऋतुओं और उनसे संबन्धित त्योहारों का विशेष महत्व है। कृषिप्रधान लोकजीवन में मनोरंजन के अवसर बहुत ही कम हुआ करते हैं। फसल काटने के बाद घर में भरपूर धान जब आ जाता है तो लोकजनता त्योहारों को मनाती है। त्योहार कई तरह के होते हैं जैसे होली, दीवाली, रक्षाबंधन, गणेश चतुर्थी, नागपंचमी आदि। कोंकणी जनता इन त्योहारों से बिलकुल परिचित है। होली का त्योहार यहाँ पर धूम धाम से मनाया जाता है। गोवा में यह त्योहार *शिग्मो* नाम से जाना जाता है। सच्चे अर्थों में होली का नाच ही कोंकणी समाज का लोकनाच कहा जा सकता

है। हर एक व्यक्ति इस नाच में भाग लेता है और इस अवसर पर गीत भ गाये जाते हैं। पुरुषों का नाच कुछ अलग होता है और स्त्रियों का नाच दूस प्रकार का। नाचते नाचते ईश्वर के सामने समर्पण करने की प्रक्रिया इस रहती है।

गाँव की जनता के लिए होली का उत्सव मस्ती का रहता है फाल्गुन महीने के प्रारंभ में मंच पर खेल शुरू होते हैं और गीत गाया जात है। इनमें नमनगीत, *दुल्पद, चौरंगी, आरत गीत* आदि आते हैं। दुलपद औ चौरंगी की प्रमुखता रहती है। दुल्पद गाते समय हर एक दुल्पद की समाप्ति पर नाच की गति को बढाने के लिए *शबै शबै* शब्द का प्रयोग किया जाता है। कोंकणी समाज में इसका बहुत अधिक महत्व है जैसे -

चानयेच्या पिला तुका	(गिलहरी के बच्चे
तीन गो पाट	तेरे तीन हैं पाट
रावणान शिते व्हेल्या	रावण सीता को ले गये
दाखय वाट	दिखा दो बाट
शबै ! शबै ! [३६]	शबै ! शबै !)

होली के गीतों में रामायण की कथा का विशेष महत्व रहा है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण को लेकर भी कई पद बनाये जाते हैं और त्योहार में गाये जाते हैं। जैसे--

कृष्णान कमरी खोयल्या	(कृष्ण ने कमर पे खोंसी है
वेलवाची काठी रे	बाँसुरी
कृष्ण लागला	कृष्ण पड़ा है
गोपिकांचे फाटी रे !	पीछे गोपिकाओं के
शबै ! शबै ! [३७]	शबै ! शबै !)

ाके साथ साथ हास्य व्यंग्य की भी प्रमुखता इन गीतों में मिलती है। माज में चलनेवाले इन दुराचारों के भण्डाफोड़ से इस प्रकार की बुरी ादतों को दूर करना उनका उद्देश्य रहा है। चूंकि होली के समय हर किसी ो पूर्ण स्वतन्त्रता रही है इसलिए कई तरह के व्यंग्य गीत इस समय गाये ाते हैं। उदाहरण के लिए -

क्क माकोड, पिक्क दाणी	(जिस प्रकार बन्दर पिकदानी से
ुलां तागोडी,	फूलदानी की ओर कूदता है वैसे
ोवा सोडून बायल गेल्या	पति को छोड़ पत्नी चली गई
ाडली नागोडी	नग्न रह गई !
ाबै ! शबै ! [३८]	शबै ! शबै !)

श्रमगीत

खेतों में धान बोते और फसल काटते समय, चक्की पीसते समय, ओखली में धान कूटते समय, होली नाचते समय, शराब निकालने के लिए नारियल के पेड़ पर चढते समय, मछली का जाल खींचते समय लोकगीतों का खूब प्रयोग होता है। ये गीत मन को उत्साह एवं आनन्द देनेवाले होते हैं। कहीं कहीं इन गीतों में नारी के दु:खों को भी अभिव्यक्ति मिली है। खाना पकाना, परोसना, दिन भर खेतों में काम करना, बच्चों की देखरेख करना, चक्की पीसना, धान कूटना, सास के अत्याचार सहना, पति की सेवा शुश्रूषा करना, भौजाई एवं ननद के छल कपट का पात्रीभूत होना, इन सब के बीच पड़कर पिसनेवाली स्त्री का सही रूप इन गीतों के जरिए सामने आता है। उसके दु:ख के साथी चक्की, ओखली, मूसल एवं खेत ही रहे। इस प्रकार परिवार में उसका स्थान संस्कार, आचार विचार, सपने सबके साक्षी स्वरूप ये ही लोकगीत रहे। मन में जो कुछ आया उसे किसी

भी लुकाछिपी के बिना ही निर्मलता से उन्होंने गीतों में कह डाला जैर

आमी तिगल्यानी कांडटी गे	(हम तीनों कूटते हैं री
आमचे हाथनी झेलता गे	हमारे हाथ बढ़ते हैं री
मामी भयल्यान येयल्या गे	मामी बाहर से आई है री
तुजो भाव नी येयला गे	तेरा भाई आया री
तेका भोवमान करगे[३९]	उसका आदर कर ले री)

जातिगीत

कोंकणी लोगों के बीच कई जातियाँ हैं जिनमें गौड, खार्वी, कुणब आदि का महत्व है। *धालो* गौडों और खार्वियों का गीत है तो कुणबियों क गीत कुछ अलग ही शैली पर *फुगडी* नाम से गाया जाता है। इनमें अधिकांश ईसाई कुडुंबी होते हैं जो पुर्तगालियों के धर्मपरिवर्तन के फलस्वरू ईसाई धर्म को अपनाए हुए हैं और उन्हें मानकर चलते हैं। हिन्दू गौडों क गीत *तालगडी* भी बहुत ही महत्व का रहा है। इनके अतिरिक्त खेलगीत मिलते हैं जो सुधीरों (शूद्र), कुडुंबियों और खार्वियों के द्वारा गाये जाते हैं जागर गीत कुडुंबियों के लोकनाट्य से उद्‌भूत है जिसमें कुडुंबियों क जीवन वर्णित रहता है।

धालो गीत हिन्दू तथा ईसाई दोनों समाजों में प्राप्त होते हैं। हिन्दू समाज में जितनी मात्रा में ये गाये जाते हैं उससे बहुत कम ईसाई जाति में गाये जाते हैं। हिन्दू समाज में गाये जानेवाले इन गीतों में सामाजिक जीवन का चित्र अंकित रहता है। उदाहरण के लिए

मोनी आल्यो मोनी गेल्या कितें गे बायानो
मोनी आल्यो मोनी गेल्या कितें गे बायानो

न प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित पंक्तियों में दिया गया है।

आमंच आले बायी लेकी काजल गे
लेकीबायेचो आवय -बापूय नायी घरा गे [४०]

व्रत, पर्व, उत्सव आदि के समय पर गौड, खार्वी जाति की महिलाएँ त्योहार के अवसरों पर आवेश और उत्साह के साथ नाचती रहती हैं। नित्यप्रति जीवन से संबन्धित कई विषय इनमें चित्रित रहते हैं। *फुगडी* में कुडुंबियों के जीवन का चित्र देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए -

नणंदा भावजा आमी	(ननंद भौजाई आपस में
लागल्यो भांडूक	झगडने लगीं हम
स्वामी भरतार आमी	पतियों से फरमाया
जावया वेगळा	अलग हो जायें हम
घर बांदुया	घर बनाकर
पर्वता दोंगरीक	पर्वत की तराई में
वारें रे वेळता, पलंग झेलता	बहती हवा, झूलता पलंग
निंद्रा नायी	नींद नहीं आती
दाव्या हाती श्रीकमल	बायें हाथ में श्रीकमल
उजव्या हाती बेतकाठी	दायें हाथ में बेंत
लागला श्रीकृष्ण उवाळूंक	श्रीकृष्ण लगे उतारण को
तोंडांतलें चामळ	मुंह के फूल
पोटींतले उबळास	पेट की खलबली
सांगू लागली आई बापाक	कहने लगी माई बाप से
धगधगली तपली	मन ही मन तपने लगी
थंड सावळे बैसली	ठंडी छाया में बैठी

सुंबारू लागली नरहरीक [४१]		ईश्वर का स्मरण करने लगी.)

ईसाई समाज में पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर गीत गाते हु नाचते रहते हैं जिन्हें *जोडगीत* कहा जाता है। इस प्रकार के गीतों में सब प्रमुख है *मांडो*। प्राचीन काल से आज तक सामान्य जनता के बीच समा रूप से फैला हुआ अकेला गीतरूप है मांडो। विशेष अवसरों पर मांडो गा की प्रथा यहाँ रहती है। उदाहरण के लिए -

तांबडे रोजाद तुजे पोले	(लाल गुलाब जैसे तुम्हारे गाल
दुकांनी भोरल्लया म्होजे दोळे	आँसू भरी मेरी आँखें
पापाचें लिसेंस आसा जल्ल्यार पळे	तुम्हारे पिता की अनुमति है तो
काजार जावंच्या म्होजेकोडे [४२]	मुझसे शादी करो)

इस प्रकार कोंकणी लोकगीतों का क्षेत्र व्यापक रहा है। इनमें मानव जीवन के प्रत्येक अंग जैसे पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सभी की झलक दिखाई पडती है। गार्हस्थ्य जीवन की मार्मिक व्यंजना का स्वरूप इनकी विशेषता है। पति पत्नी, पिता पुत्री, भाई बहन, सास बहू, ननद भौजाई, जेठानी देवरानी, देवर भाभी, बहू जेठ, दीदी नानी, बाहा आजी, सखी सहेली, सभी का स्वरूप सामने आता है। इन गीतों में दशरथ परिवार और नन्द परिवार के संदर्भ सब कहीं मिलते हैं। इनमें बच्चे के लिए माँ का उद्वेग देखने लायक है। नारी को सात भाइयों की बहन, बाबा की दुलारी और पति की प्यारी होने का गर्व है। माता का हृदय बच्चे के प्रेम से लबालब भरा हुआ है। भाई का बहन के प्रति प्रेम इन गीतों की विशेषता है। धार्मिक भावना से समन्वित प्राचीन काल से ही चलती आनेवाली कोंकणी समाज की जो मान्यताएँ हैं वे सभी इन गीतों में चित्रित हैं । ये गीत कोंकणी समाज के इतिहास को चित्रित करते है, संस्कृति के वाहक

हैऔर कोंकण देश के मनोरम चित्र प्रस्तुत करनेवाले हैं। मानव का प्रकृति से वेदनात्मक जुडाव इनकी विशेषता रही है। इन गीतों का उतना ही मूल्य आज भी है जितना कि उनके रचनाकाल में था। इसका कारण यही है कि इन गीतों में वास्तविकता का भंडार है। सत्य का रूप कभी बदलता नहीं। इसलिए उन्हीं गीतों के जरिए कोंकणी समाज की पहचान भी होती है।

तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी और कोंकणी लोकगीतों के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि दोनों भाषाओं के लोकगीतों में अनेक समानताएँ रही हैं , साथ ही थोड़ी विषमताएँ भी। पहली विषमता यह है कि हिन्दी लोकगीतों से जितनी संपन्न है उतनी कोंकणी नहीं। हिन्दी की अनेक बोलियों में जितना गीतसाहित्य फैला पड़ा है उतना कोंकणी के चार रूपों में मिलना कठिन है। केरल की कोंकणी में तो बालगीत ही ज़्यादा रहे हैं और दूसरे प्रकार के गीत बहुत ही कम रहे हैं। जितने भी गीत मिलते हैं वे कोंकणी के लोकसाहित्य के अध्ययन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनमें प्रत्येक सामाजिक पहलू का चित्र देखा जा सकता है और समाज की परंपराएँ और संस्कार उभरकर आते हैं। हिन्दी और कोंकणी दोनों का मूल एक ही संस्कृति में रहा है जिसका विवेचन पहले ही हो चुका है। इस मूल संस्कृति को अपनाने के कारण दोनों ही भाषाओं में अनेक समानताएँ देखने को मिलती हैं। उनमें सबसे अधिक महत्व की है सामाजिक एकता। समाज में भिन्न भिन्न जातियों के रहने के बावजूद एकता का भाव कायम रहा है। त्योहारों के समय यह देखा जा सकता है। समाज में व्यष्टि से बढ़कर समष्टि का आदर किया जाता है। यज्ञसंस्कृति और यागाग्नि की पवित्रता में जीवन बितानेवाली भारतीय परंपरा में पवित्र प्रकाश रहता है। यह प्रकाश

मानव के हृदय में मानव के प्रति संवेदना जगाता रहता है। मनुष्य औ
मनुष्य के बीच की एकता का यह भाव हिन्दी तथा कोंकणी लोकगीतों
देखा जा सकता है। दोनों लोकगीतों में चित्रित समाज में व्यक्ति, वह कि
भी जाति का क्यों न हो अपनी जगह पर श्रेष्ठ माना जाता था। विवाह
संबन्धित गीतों में यह अच्छी तरह देखा जा सकता है। यहाँ पर लड़की
विवाह का उत्तरदायित्व केवल उसके पिता का ही नहीं समाज के स
लोगों का रहा था। निम्नलिखित पंक्तियों में यह भाव स्पष्ट हुआ है।

बाबा के डोलिया
भैया के कहरिया
सीता देइ जाइछथ ससुराल [४३]

और भी नई ब्याही लड़की बटोही के ज़रिए अपनी माता को संदेशा भेजत
है ---

बाट के बटोहिया तुहीं मोर भइया रे
हमरो सन्देस ले ले जाऊ
अम्मा से कहिह पत्थर होई बैठिहेन [४४]

कोंकणी में *वोळार* नामक गीत में नायिका रुक्मिणी जो नई नई ब्याही हुई
है अपने ससुराल की ननद और भौजाई की झिड़कियों को असहनीय पाकर
बटोही चुड़िहारा के ज़रिए मायके में सन्देश भेजती है।

वाटेन वत्तल्ल्या वाटेचे वोळारा	(बाट चलनेवाले बटोही चुड़िहारा
रुक्मिणी कुळारा	रुक्मिणी के मायके जाकर
बोलावें सांगलां [४५]	संदेशा कहना)

यहाँ पर सन्देशा ले जानेवाला बटोही नई वधू के लिए भाई के समान होता
है। हिन्दी तथा कोंकणी समाज में पाया जानेवाला समानता का यह भाव

िस्सन्देह भारतीय समाज और संस्कृति में मिलनेवाला है।

इन लोकगीतों में पारिवारिक संबन्धों का साकार चित्र हमारे ामने उभर आता है जिनमें व्यक्ति-मनोविज्ञान सही ढंग से प्रस्तुत िया जाता है। इनमें पारिवारिक जीवन के माधुर्य एवं कटुता का ामावेश भली भाँति अंकित है। दोनों भाषाओं के लोकगीतों में संयुक्त रिवार का विधान चित्रित है। इस परिवार में माँ-बाप, पुत्र-पुत्री, भाइ-हन, सास-बहू, भाभी-देवर, पति-पत्नी, ननद-भावज, सभी प्रकार के ंबन्धों से जुड़े हुए लोकगीत समान रूप से उपलब्ध होते हैं। जीवन का थार्थ रूप हमें इन लोकगीतों में दृष्टिगोचर होता है। समाज में पति त्नी का संबन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इनकी एकता में रिवार का कल्याण है और इनके अलगाव में परिवार का नाश देखा जा कता है। यह सहज है कि पत्नी हमेशा अपने पीहर की तारीफ करती रहती है और पति हमेशा अपने घर की। इसे चाहे व्यंग्य विनोद, नोक झोंक या झगड़ा ही क्यों न कहें, यथार्थ यह है कि पति पत्नी के बीच यह चलता ही रहता है। हिन्दी और कोंकणी लोकगीतों में इसका चित्रण मिलता है । यहाँ पर स्त्री पुरुष संबन्ध मधुर होते हुए भी पुरुष और स्त्री के संबन्ध समानता के स्तर पर नहीं गिनाये जा सकते। हाँ, वंश को आगे बढ़ाने में स्त्री का योगदान महत्वपूर्ण है ही। लेकिन जब झगड़ा होता है तो पुरुष का अहं सजग हो उठता है। वह कहता है --

मुक्के मारूँ पचास, धक्के देऊँ डेड़ सौ
गोरी महलों में करूँगा जवाब, चली जाओ बाप के,[४६]

कोंकणी लोकगीतों का कवि इससे कुछ कम नहीं। वह कहता ह

काडीन गो चाबूक	(चाबुक उठाऊँगा
फोडीन गे फाट	पीठ फ़ोड़ दूँगा
विसरायन गे मायराची वाट [४७]	मायके का रास्ता भुलवाऊँगा)

सब कुछ सह कर भी हिन्दी और केंकणी समाज में पत्नी के लिए पति ई्श्वर है। हर हालत मे वह पति के ही साथ जीना चाहती है। भारती संस्कृति के अनुसार कहा गया है -

पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः
पत्युर्गतिरामा नास्ति दैवतं हि यथा पतिः

निस्सन्देह इस मूल संस्कृति का प्रभाव हिन्दी तथा कोंकणी लोकगीतों चित्रित पति पत्नी के संबन्धों पर देखा जा सकता है।

भारतीय समाज में संस्कारों का बड़ा महत्त्व रहा है। लोगों व विश्वास है कि ये ही संस्कार व्यक्ति को व्यक्ति बनाते हैं। प्राचीन काल इन्हें जीवन का अनिवार्य अंग माना जाता था। इन्हीं से व्यक्ति के जीव में नियमितता आ जाती थी। विचारों का परिष्कार भी इन संस्कारों वे ज़रिए होता था। ये संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु तक फैले पड़े हैं। चूँवि हिन्दी और कोंकणी समाज भारतीय समाज के ही प्रतिरूप रहे हैं इसलिए दोनों समाजों में इस संस्कृति का अनुवर्तन भी मूल संस्कृति के अनुरूप ही होता था। इसका प्रतिबिंब लोकगीतों में मिलता है। संस्कार गीत विभिन्न अवसरों पर समवेत रूप में गाये जाते हैं। इनमें रस है, भावप्रवणता है, करुणा है, विचार उत्प्रेरकता है, आनन्द एवं आह्लाद है। जन्म संस्कार इनमें पहला माना जाता है। सभी बालक जन्म के अवसर पर शुभ माने जाते हैं। समाज हिन्दी का हो या कोंकणी का यह सत्य सत्य रह जाता है। नारी के दुःखी हृदय को सान्त्वना प्रदान करनेवाला एकमात्र आश्वास शिशु

ी प्यार भरी चितवन होती है। इसीलिए पुत्रजन्म सबसे आनन्दमय माना जाता है। इसी कारण गर्भिणी स्त्री के दोहद का विशेष ध्यान रखा जाता है। लोकविश्वास है कि दोहदपूर्ति करने से ही बच्चा किसी कमी के बिना ठीक ठीक पैदा होता है। हिन्दी और कोंकणी समाज में दोहद गीतों का बड़ा महत्व रहा है। पहले महीने से लेकर नवें महीने तक दोहद का विस्तार से चित्रण दोनों भाषाओं के लोकगीतों में बराबर मिलता है। उदाहरण के लिए -

हिन्दी : पहलौ महीना जब लागिए बाके फूलु गह्यो फलु लागिए
ए बाई दूजौ महीना जब लागिए
राजौ तीजौ महीना जब लागिए
बाकौ खीर खाँड मन [४८]

कोंकणी: पयली गे मासी देवकी पुसे आयकूं बेसली कथा
वडविला हात गे तिणें जायां जुयां वरी
झडकरी हाडिली वसुदेवा फुलांचीं ताटां
दुवालो सपरुण केला
दुसरी गे मासी देवकी पुसे
काय गे सुनबाय दुवाळे कसे
सपरूण दुवाळे जाले गा मावा
दारीं काडा किरा - मोरां
तीन गे मासी देवकी पुसे
काय गे वयनी दुवाळे कसे?
सपरूण दुवाळे जाले गा देरा
पिकिल्लीं पेरां हाडा घरा [४९]

(पहले महीने में देवकी जो कथा सुनने बैठी
जुही की बेल की तरह हाथ बढाकर पूछा
वासुदेव झटकर फूलों की थाली ले आए
और दोहद पूर्ण किया ।

दूसरे महीने में देवकी से पूछा
कैसी हो बहू रानी, दोहद क्या है ?
दोहद पूरा हुआ, ससुर जी
दरवाजे पर कीर, मोर का चित्र लिख लें

तीसरे महीने देवर ने पूछा,
कैसी हो भाभी दोहद क्या है ?
दोहद पूरा हुआ रे देवर,
घर में पके हुए अमरूद ले आओ)

यहाँ पर दोहदगीत में इसकी ओर भी संकेत किया गया है कि
लेनेवाला बच्चा लड़का हो। कीर मोर के चित्र खींचने की जो बात
गई है उसमें इसका संकेत मिलता है। दोनों भाषाओं के उदाहरणों
समानताएँ मिलती हैं उन पर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि
भाव दोनों समाजों की संस्कृति का परिचय करानेवाला है। हिन्दी स
में सोहर गीत जितनी मात्रा में मिलते हैं उतने कोंकणी समाज में
मिलते। शायद लोकगीतों के वर्गीकरण में हिन्दी में सबसे अधिक
सोहरगीत माने जाते हैं।

जन्मसंस्कार के अन्तर्गत जातकर्म, छठीपूजन, नामक
अन्नप्राशन, सभी का वर्णन हिन्दी तथा कोंकणी लोकगीतों में समान
से मिलता है जो इस बात का द्योतक है कि दोनों संस्कृतियां एक ही

का अनुसरण करती हैं। इसका विस्तृत विवेचन आगे संस्कारों के चित्रण के अन्तर्गत किया जायेगा। इन संस्कारों के अन्तर्गत विवाह संस्कार की प्रमुखता रहती है क्योंकि विवाहसंस्कार जीवन का सुप्रधान संस्कार है । समाज चाहे हिन्दी का हो या कोंकणी का, विवाह संस्कार महत्वपूर्ण माना जाता है। दोनों समाजों में यह संस्कार बड़े धूम धाम से होता है। अधिकांश रूप में मनुस्मृति में कहे गये ब्राह्म विवाह पर ही बल दिया जाता है। विवाह के लिए सबसे पहले वर की खोज की जाती है। कन्या जब ग्यारह बारह वर्ष की होती है, तभी उसके पिता विवाह के लिए वर की खोज करता है। किसी भी कन्या का पिता हमेशा अपनी बेटी के भविष्य के बारे में सोचकर चिन्तित रहता है--

जातेति कन्या महतीह चिन्ता
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः ।
दत्ता सुखं यास्यति वा नवेति
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् ।।

यही भाव हिन्दी में इस प्रकार चित्रित है -

जाही घर कनिया हो कुँवारी
से कइसे सोवे निरभेद हो [५०]

विवाह की शुरूआत वर और वधू की जन्मकुंडली के मिलान से होती है। कुंडलियों के मिलान के बाद लेन देन की बात शुरू होती है जिसे हिन्दी समाज में तिलक-दहेज़ की प्रथा कहते हैं। वररक्षा या तिलक में धन, फल, वस्त्र, सब कुछ वर की रक्षा के लिए दिया जाता है। यह हिन्दी समाज में बड़ा उत्सव रहता है। इस समय स्त्रियाँ बड़ा सुन्दर गीत गाती रहती हैं। फिर लग्नपत्री माँगी जाती है जिसमें विवाह की तिथि तथा समय का निर्देश

रहता है। तिलक चढ़ने के बाद लड़की के घर में सगुन गाया जाता *माँड़ो गाड़ना, भतवानी, मातृपूजा, माटी कोड़ाई, लावाभुजाई, इ* *खोटाइ* न जाने कितने ही अनुष्ठान चलते रहते हैं जिनमें स्त्रियाँ गीत गाती रहती हैं। असल में बारात का दृश्य बड़ा ही भव्य एवं सुन्दर होता जब बारात निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाती है तब कन्यापक्षवाले बारातियों की अगवानी करते रहते हैं। द्वारपूजा धूमधाम से की जाती इसके बाद *कन्या निरीक्षण, कन्यादान, सप्तपदी, लाजाहोम, भँवर घूमा* *वर चुमावन, कोहबर* आदि विवाह के विभिन्न अनुष्ठानों के रूप में च रहते हैं। अन्त में बेटी की जो विदाई होती है वह सब लोगों को दुःख डालती हुई भवभूति की *अपि ग्रावा रोदिति अपि च दलति वज्रस्य हृद* वाली बात हो जाती है। कन्या के घर का कारुणिक चित्र किसी लोकग में इस प्रकार खींचा है --

बाबा के रोवले गंगा बढ़ि आइली,
आमा के रोवले अनोर
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,
भउनी नयनबो ना ला[५१]

और कहीं बेटी के विवाह का हृदयस्पर्शी दृश्य इस प्रकार चित्रित ह -

आहे बरारे जतन हम सियाजी के पोसली
राम, सियाजी के पोसली, से हो रधुवर ले ले गाये।
रोये लगलन, काने लगलन, रानी है सुनयना
से मोरो बेटी जाइछन ससुरार [५२]

कोंकणी में भी कन्यादान एवं बेटी की विदा का वर्णन इस प्रक किया गया है जहाँ बेटी की विदा पर दुःखी माँ बाप रोते रहते हैं।

ई-बाप्पाचे गे पोटी	(माता पिता से
न्मली गे पुतळी	पुत्री का जन्म हुआ
न्यादान कोनळी	कन्यादान की समस्या
धुवेन वाडयली	उसने खड़ी की
ो जाल्ल्या माये बापा	खड़े हैं माँ बाप
डी पाणियांच्यो गा धारा,	छूट रही है आँसुओं की धारा
क जाता परघरा	बेटी जा रही है पराये घर
ाय राज्य करूक [५३]	राज करने के लिए)

ोंकणी में भले ही हिन्दी समाज में पाये जानेवाले अनेक अनुष्ठान दिखाई हीं पडते और उनसे संबन्धित गीतों का भी अभाव है, फिर भी बिदाई के मय लड़की की माता के हृदय में बेटी के ससुराल जाते वक्त दुःख तो वश्य ही होता है, लेकिन अन्दर ही अन्दर वह घुटती जाती है। फिर भी ड़की की माता और पिता यह समझते हैं कि अर्थो हि कन्या परकीय एव ौर आश्वासन पाते हैं कि दूसरे घर जाकर गुणों की खान, उनकी बेटी ूब राज करेगी।

म्मान वडेयिलीगो बारायि वर्ष	(माँ ने पाला बारह वर्ष
आजी तुमचे हाथी दिलीगो	आज तुम्हारे हाथों में सौंपा
ालन करायि वो [५४]	तुम पालन करो)

वररक्षा या तिलक की प्रथा कोंकणी समाज में नहीं है, फिर भी इस अनुष्ठान में जो कार्यक्रम रहता है वह *वेस्त* (व्यवस्था) में किया जाता है। हिन्दी समाज में पाये जानेवाले दूसरे अनुष्ठान जैसे *भतवानी, मातृपूजा, माटी कोड़ाई, लावा भुजाई, इमली खोटाई* आदि कोंकणी समाज में नहीं मिलते और इनसे संबन्धित गीत भी नहीं हैं। लेकिन *मांडो गाड़ना,*

वरपूजा, कन्यादान, सप्तपदी, लाजाहोम, भँवर घूमना आदि तो कोंकणी समाज में मिलते हैं और इनका पालन भी होता है। यहाँ लोकगीत बहुत कम गाये जाते हैं। वेदमंत्रों के उच्चारण तक अनुष्ठान सीमित रहते हैं। हाँ, वर वधू को आशीर्वाद देते समय मंगलगीत गाया जाता है जिसमें भगवान की आराधना रहती है।

श्रीलक्ष्मी बमुणाक बालमुकुन्दाक	(लक्ष्मी के भरतार बालमुकुन्द की
जलां भितरि मत्स्य रूप घेतल्याक	जल के अन्दर मत्स्यरूप धरताकी
बला खातीरी कूर्मु जाव्नु व्यापिल्याक	बल के खातीर कूर्म बने
नीलवर्ण श्री कृष्णरुक्मिणीक [55]	नीलवर्ण श्रीकृष्णरुक्मिणी की
बल कोर्नु आरति दकेयाय शोभाने !	आरती उतारें, शोभाने !)

वर की वेशभूषा में जहाँ हिन्दी में *सेहरा* बाँधा जाता है वहाँ कोंकणी में इसे *भासींग* कहते हैं। दोनों समाजों मे सेहरे को सजाने के लिए मोगरे के फूल का उपयोग होता है।

कोहबर में हिन्दी समाज में घर और गाँव की स्त्रियाँ वर से अनेक हँसी मज़ाक करती रहती हैं। हास परिहास की अनेक उद्‌भावनाएँ करते हुए वर को प्रसन्न करने का प्रयास यहाँ होता है। कोंकणी में कोहबर में इस प्रकार का हास परिहास या हँसी मज़ाक नहीं रहता। फिर भी विवाह के समय वर के माता पिता, कन्या का घर, संबन्धी, आदि लोगों को लेकर मण्डप में खूब हँसी मज़ाक किया जाता है जो कोंकणी होवियों में अंकित है।

शोक और विषाद को लेकर आनेवाली मृत्यु हिन्दी समाज में अनेक लोकगीतों की उत्पत्ति का कारण बन जाती है। बेटी की मृत्यु पर माता पिता का दुःख, पति की मृत्यु पर पत्नी का दुःख, संबन्धियों की मृत्यु पर दूसरे लोगों का दुःख आदि के संबन्ध में हिन्दी समाज में कई लोकगीत

ित हैं, लेकिन कोंकणी समाज में इस प्रकार के गीत नहीं के बराबर ाँ, मृत्यु संस्कारों के अन्तर्गत कोंकणी में *बनवड* का गायन होता है जो देवस पर तथा पितरों के स्मरण के वक्त पर गाया जाता है। मृत्यु के बारही, वार्षिक, महालय, आदि संदर्भों में बनवड का गायन होता है। धार्मिक बन्धनों से युक्त यह गीत मृत पितरों को बुलाने में और तद्वारा ाक मूल्यों का प्रचार करने में लोगों की सहायता करता है। जहाँ तक गीतों का संबन्ध है, हिन्दी और कोंकणी समाज में समानताएँ बहुत ही मिलती है। मृत्यु संस्कार से संबन्धित कई बातें जैसे बारहीं, वार्षिक दे दोनों समाजों में समान हैं जिसका विवेचन संस्कार संबन्धी अध्याय ोगा।

लोकगीतों के अन्तर्गत बालगीतों का बड़ा महत्व है। बालगीतों के तर्गत पालने के गीत, सुलाने के गीत चन्दा मामा से संबन्धित गीत, खेल न और अन्य गीत बहुत मात्रा में हिन्दी और कोंकणी में मिलते हैं। यों लोरियों का इतिहास बहुत प्राचीन है। आदिमानव के हृदय में जब सल्य का संचार हुआ उस समय से लेकर लोरियाँ चलती रही हैं। माँ ओंठों से निसृत मधुर गीत दैविक शक्ति बनकर बच्चे के विकास में योग ा रहता है। बालगीतों में हिन्दी तथा कोंकणी समाज कई समानताओं को कर आगे चलता है। चन्दन का पालना, रेशम की डोरी पालने के गीतों बहुत ही प्रसिद्ध है। हिन्दी और कोंकणी में इसके खूब वर्णन मिलते हैं।

न्दी में

रंग री सोने रूपे रेशम डोर भलो लागे रे हालरियो
थारे दादीसा घडायो पालणुं रे गीगा हालरियो [५६]
अगर चनण रो पालणुं

रामा रेशम बाँधी डोर
गाऊँ थांरो हालरियो [५७]

कोंकणी में

जोयि पुता जोयि जोयि करूंक तुका
पळ्ळें घालूं रुखा चन्दनाचें
चंदनाचे रुखा सुवर्णाच्यो दोरियो
जूँ काडताय राणियो अंगेल पुता मौसियो [५८]

दोनों समाजों में नये मेहमान के लिए चन्दन का पालना सजाया जाता है। बालक तो भगवान का प्रतिरूप होता है। उसका आगमन धनिक, दरिद्र, स्त्री पुरुष सब के लिए आनन्दप्रदायक होता है। माँ के द्वारा गाई गई लोरियों को सुनकर बच्चा सुख की नींद सोता रहता है। यहाँ भाषाभेद, संस्कृतिभेद या समाजभेद नहीं रहता। धर्म या जाति की भिन्नता भी यहाँ नहीं देखी जाती। हर माँ बाप और सगे संबन्धियों का केवल एक ही उद्देश्य रहता है और इन *हालरिया* गीतों में शिशु के भविष्य की मंगलकामना के रूप में प्रकट होता है। जहाँ बालक होता है वहाँ जीवन में उत्साह एवं शुभकामनाएँ रहती हैं। हर माँ अपने बालक के भले की सोचती है। उसका सपना होता है कि उसका लाल बड़ा होगा और संपन्न बनेगा। अवधी के इस लोकगीत में माँ की यह मनोकामना सुन्दरता के साथ चित्रित है -

कब लाल बड़ा कै होई हैं कब बाबा कि बगिया जइहै।
कब आम घवदि लै अहहैं, कब आजी के अगवाँ धरिहै,
कब सबकर जिया जुडैहैं [५९]

और कहीं इससे एक कदम आगे बढ़कर माँ गाती है

बड़ा होके बाबू हम राज करिहे
हीरा मोती मुंगवा से दिन रात खेलिहे
चाँद सूरज सन इंजोत करिहे
इहे.आशिष तू दीह री निंदिया [६०]

ाखिर माँ माँ होती है। यहाँ हिन्दी और कोंकणी का भेद नहीं रहता। ातावरण के अनुसार भाव कुछ बदलते रहे हैं। कोंकणी में अपने बेटे की ाल कामना करती हुई माता जो कहती है वहाँ वह ईश्वर की भी याद रती रहती है। जैसे -

ण्डो होडु जत्तलो नवे	(लाल बड़ा कै होइहे
वा पांयि पडतलो नवे	मन्दिर जइहै, नमस्कार करिहे
धारु सारु केरतलो नवे	व्यापार आदि करिहे
ाव्सु बप्सु पोसतलो नवे [६१]	माँ बाप की देख रेख करिहे)

ाँ की कल्पनाएँ कहीं कहीं लल्लां की शादी एवं आनेवाली बहू तक पहुँचती हैं। हिन्दी और कोंकणी में लल्ला को फूल जैसा कोमल एवं चन्द्रमा जैसा सुन्दर माना जाता है। यह भाव हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से विद्यमान है। जैसे-

फूलवा अइसन कोमल बाबू
मोरा चन्दरमा अइसन सुन्नर [६२]

यो रे पुत्ता चंप्या कोळ्या	(आ रे बेटा चम्पाकली
बेस पायारि	बैठ जाओ गोदी में
बाळु गोरो पोणसा घोरो	बेटा गोरा, पणस का गूदा
देहान गोरो [६३]	शरीर से गोरा)

कोंकणी में बच्चे का संबोधन चंपाकली कहकर किया जाता है जिसमें फूल की कोमलता के साथ सुगन्ध भी विद्यमान है।

चन्दा का मामा बन जाना और और उसके हाथ में से सोने के कटोरे में दूध पीने की बात भले ही असंभव लगती है, लेकिन बहुत ही प्यारी लगती है। बालक कल्पना के ज़रिए चन्द्रमा को अपना मामा समझता है। उसकी माँ कभी चाँद के घर चरखा चलाती बुढ़िया नानी से लल्ला की बातें कराती है। कभी चन्दा मामा नदी के किनारे आकर शिशु को दूध भात, खीर मलाई, खिलाता है। कभी कभी आँगन में आकर शिशु के साथ अठखेलियाँ करता है। ये भाव हिन्दी और कोंकणी में समान गीतों में सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। जैसे -

चन्दा मामा आ रे आवा, बारे आवा, नदिया किनारे आवा,
खिचड़ी पकाये आवा, घिउ के लोना लिहे आवा,
सोने की कटोरिया में दूध भात लिहे आवा
बिटिया सोवाये आवा, बेटवा लिवाये आवा,
टाटी ब्यौंड़ा मारे आवा,
बव्वा के मुँहा में घुटूक द्या [६४]

कोंकणी में भी निम्नलिखित पंक्तियों में ये ही भाव प्रकट हुए हैं।

भोभ्भो देवा भोभ्भो देवा भोभ्भो दी रे	(चाँद बाबा पोळी दे
आमगेले बब्बाक तू भोभ्भो दी रे	लल्ला को तू पोळी दे
भांगरा भांडीरी तूंवय येवनू [६५]	सोने की गाड़ी से तू आ जा
तुजें रावळार दाकय घेवनू भोवनू	लल्ला को लेजा राजमहल दिखाजा)

इसमें सोने की कटोरिया के बदले सोने की गाड़ी की कल्पना की गई है

पर बैठकर चन्दा मामा केसाथ लल्ला कल्पना में चन्दा मामा के घर ा है। चन्दा मामा के घर में *टाटी व्यौंडा* लगाकर साथ में पकवान आने की कल्पना करते हुए शिशु माँ के हाथ का रूखा सूखा भोजन ल्दी से खा जाता है। यही मनोविज्ञान है। बच्चे खेल को बहुत पसन्द हैं। खेल खेल में वे बहुत कुछ सीख लेते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक ली में खेल द्वारा शिक्षण पद्धति पर बल दिया जाता है। खेल अतिरिक्त का निष्क्रमण भी करते हैं जिससे ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ सम्यक् निरत हो जाती हैं। खेल सामाजिक भावना का विकास करता है। से व्यक्तित्व का विकास होता है। गीत गा गाकर खेलने से आनन्द बढ़ ता है। खेल से सहयोग की भावना विकसित होती है। हिन्दी समाज में त तरह के खेल एवं उससे संबन्धित गीत मिलते हैं। कोंकणी में ये बहुत हैं। दोनों समाजों में समान रूप से चलनेवाला एक खेल इस प्रकार सभी बच्चे वृत्ताकार बैठते हैं। एक बालक सबकी उभरी रखी हथेली पर गुली रखकर एक एक शब्द कहता जाता है। जिस बालक की हथेली पर न्तिम शब्द आ जाता है उसकी हथेली पिचका दी जाती है और अगली री में उसको छोड़कर दूसरे हाथ छुए जाते हैं। अन्तिम बार जो हाथ बचा ह जाता है वह चोर बनता है और सब को ढूँढ़ता है। (कोंकणी में वह खेल ीतता है।)

ओका, बोका तीन तलोका लइया लाठी, चन्दन काटी,
भादों मा करैली पाकी, ऊ करैली का होई,
अमुनी, जमुनी, दिवुली, दाली दक्क, ढोंढवा पचक्क [६६]

कोंकणी में इस खेलगीत का कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता। केवल शब्दों का खिलवाड ही दिखाया गया है। जैसे -

अटिके मिटिके नमनम काळींगा
भास्कर माजरा शिरवण्याच्या काळा
मद्दाळ्याचें मद्दाळें, कोणा फाटीर ढुमको डूं ! [६७]

इसके अतिरिक्त अन्य कई खेल हैं जिनसे संबन्धित गीत सार्थक भी हैं अं
निरर्थक भी। गुल्ली डंडा, कबड्डी, कोडवा बादाम, सियार डंडी,बणवासु
धुमरी परैया, सखी जोराना, जलक्रीड़ा के गीत आदि गीत खेलगीतों
अन्तर्गत आते हैं। ऐसे गीत कोंकणी में नहीं मिलते। छोटे बच्चे व
गुदगुदाकर हँसाने की रीति और उससे संबन्धित गीत हिन्दी तथा कोंक
में सहज ही हैं। जैसे-

खरा खात पनिया पियत ललकी गैया
ललका बछौवा कहाँ गै, हे गै, हे गै [६८]

कोंकणी में -

अंगडि वच्ची वाट खंची	(दूकान का रास्ता कहाँ है
म्हांतारायेलें घर खंचें	बुड्ढी का घर कहाँ है
एंचय, एंचय, एंचय [६९]	यही है, यही है, यही है)

बच्चे का हाथ पकड़कर उसकी हथेली में गुदगुदाते हुए हाथ ऊपर बढ़ाते
जाते हैं और उसकी बगल में गुदगुदाकर उसे हँसाते रहते हैं। ये गीत
बालकों को स्वास्थ्य, पोषण एवं विज्ञान प्रदान करते हैं, उल्लास भरे
वातावरण में उन्हें खिलखिलाकर हँसाने के लिए प्रेरित करते हैं। लोकजीवन
धर्म से ओतप्रोत है। इस जीवन का मूलाधार धर्म है। लोकजीवन में अनेक
ऐसे देवी देवताएँ हैं जिनकी पूजा बड़ी श्रद्धा से की जाती है। इन्हें मूल रूप
से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है - पौराणिक देवता और लोकदेवता। हिन्दी
और कोंकणी लोकगीतों में इन देवताओं की आराधना देखी जा सकती है।

ाम, कृष्ण शिव आदि पौराणिक देवता रहे हैं जो हिन्दी तथा कोंकणी समाज के मूलाधार रहे हैं। इनकी वन्दना लोकगीतों में स्थान स्थान पर की गई है। उदाहरण के लिए शिव को ले लें।

देख्या री एक भोला सा जोगी, मतवाला सा जोगी,
द्वार पै अलख जगाया है री।
भीतर से नन्दराणी निकसी, मुखड़े पै अंचल छाया है री।
ले जोगी ले भिच्छा ले ले तनै मेरा लाल डराया है री
ना चाहिए तेरी मोहर असर्फी, ना चाहिए तेरी भिच्छा माई,
अपने लाल का मुँह दिखला दे शिव दरसन को आया है री
कान्हा ले नन्दराणी आई सिम्भू नै दरसन पाया है री
तीन बार परकम्मा ले कै सिम्भू नै नाद बजाया है री,
भोले नै नाद बजाया है री [70]

कोंकणी में भी शिव की आराधना मिलती है।

जय शिवशंकर भं भोलानाथ
देव समर्थ सिद्ध माधव्वनाथ
कानी कुंडलां, गलीं सर्पाची लुंडा
गंगा किरीं मस्तकार स्थापना
आनी, गंगेच्या आदरान सय सृस्ट सांबाळणारो [71]

इसी प्रकार देवी को प्रसन्न कर देना भी लोकजीवन में सहज ही माना जाता है। भक्तों के लिए अनुकूल बननेवाली देवी से इस प्रकार कहा जाता है -

देवी आई मोरे अँगना निहुरि मैं पाइयाँ लागौं
काह देखि देवी मगन भयू है, काइ देखि मुसक्यानिउ
लउ गैं देखि मइया मगन भई हैं, गजरा देखि मुसक्यानी

काह पहिरि मइया मगन भई हो, काह ओढ़ि मुसक्यानिउ
पेरी पहिरि मइया मगन भई है, चुनरी ओढ़ि मुसक्यानी [७२]

भगवान गणेश बहुत ही लोकप्रिय देवता रहे हैं। समाज हिन् हो या कोंकणी का, सभी मांगलिक कार्यों में गणेश की पूजा सर्वप्रथ जाती है। यज्ञोपवीत संस्कार हो या विवाह का शुभ अवसर, सत्यना की कथा हो या कोई अन्य पूजाविधान, सभी अवसरों पर गणेश अनिवार्य रूप से किया जाता है। दोनों समाजों में कोई ऐसा मांग अवसर नहीं है जिसमें गणेशपूजन न होता हो। गणेश को हिन्दी कोंकणी लोग विघ्नों को नष्ट करनेवाला देवता मानते हैं। दोनों समा ऐसा विश्वास है कि गणेश की पूजा करने से विपत्तियाँ दूर हो जाती किसी भी देवता की वन्दना के पूर्व गणेश का स्मरण करने की परंपरा जाती है। हिन्दी में देखिए -

आज म्हारै गणपत आए री आनंद हुए,
संग में रिध-सिध ल्याए री गणेश जी
आए म्हारे गणपत जाती री आनंद हुए।।
गरुड़ की अस्वारी म्हारै विष्णुजी आए,
संग में लिछमी नैं ल्याए री आनंद हुए।
संख बजामते म्हारै सिवजी भोले आए,
संग में पारबती नैं ल्याएरी आनंद हुए।
अरथ की सवारी म्हारै राजा रामचंदर आए,
संग में ज्यानकी नैं ल्याए री आनंद हुए।
बाण चलामते म्हारै अर्जन आए,
संग में द्रोपदी नैं ल्याए री आनंद हुए । [७३]

कोंकणी में गणेशवन्दना का उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है

आदी नमन आदी नमन कोरो गणपती	(पहला नमस्कार गणपति को
दुसरें नमन कोरो धर्तरे माये मू	दूसरा नमस्कार धरती माँ को
तिसरे नमन कोरो माय मागे गंगा	तीसरा नमस्कार गंगा माता को
चौथे नमन कोरो देवा नागनाथा	चौथा नमस्कार नागनाथ को)[७४]

हिन्दी तथा कोंकणी लोगों के बीच नदियों की वन्दना भी प्रायः प्रचलित है। कोंकणी लोग तो अपने जीवन में सदा सरस्वती का रहना अनिवार्य मानते हैं। हिन्दी में गंगा माता की वन्दना ज्यादा की जाती है फिर भी वे ज्ञान की देवी सरस्वती की उपेक्षा नहीं करते। सरस्वती की मूर्तियाँ तथा चित्र सभी जगह उपलब्ध हैं। लोकगीत में सरस्वती की महिमा इस प्रकार गाई जाती है--

जिस घर में ए बहु ए सुलखणी, सुरस्ती वो घर सुरग समान।
जिस घर में ऐ पूत सुलखण, सुरस्ती वो घर सुरग समान।
जिस घर में सै नणद कवारी, सुरस्ती उडै दान का काम,
सुरस्ती विद्या दे अर ग्यान।[७५]

कोकणी लोगों के लिए भी सरस्वती ज्ञान की देवी है और लोग उससे मन के अँधकार को दूर करने की प्रार्थना करते हैं -

सरस्वती सारदा सों रेंगी माया	(सरस्वती शारदा सों रंगी माया
खेळो रे बाळा खेळो रे बाळा	खेलो रे बालक खेलो रे
नितळ मन राबोवया[७६]	मन पवित्र रहे
सरस्वती सारदा सों रेंगी माया	सरस्वती शारदा सो रंगी माया)

ग्रामीण क्षेत्र में अनेक देवी देवताओं की पूजा प्रचलित है जिनमें

काली माई, गंगा माई, शीतला माई, संतोषी माई, साई माई आदि की
प्रमुख मानी जाती है। इनकी पूजा गाँव के प्रत्येक घर में की जार्त
कोंकणी गाँवों में भी यह प्रथा प्रचलित है । लेकिन इसके अन्तर्गत इने
देवी देवताओं की ही पूजा की जाती है। जैसे *मम्माई* (महा माया), *सा*
शीतला देवी, भूमका देवी, केलबाई, मावली, आदि। प्राचीन काल में
गाँव में ग्रामदेवताओं की पूजा होती थी। इन देवताओं का इतिहास अ
पाठकों की रुचि बढ़ानेवाला होता है। लोकगीतों में इनका विवरण
मिलता है। उदाहरण के लिए कुरु जनपद में लोकदेवताओं की पूजा
अर्चना की व्यवस्था रही थी। गाँव की परंपरा का अनुसरण करते हुए इ
पूजा का विधान चलता था। ये देवताएँ गाँव की मिट्टी से उत्पन्न हैं । इ
किसी मठ या धार्मिक संस्था से कोई संबन्ध नहीं है। कुरु जनपद के
देवताओं का उल्लेख करते हुए देवीशंकर प्रभाकर ने इस प्रकार कहा है
भय्या, भौमिया, खेड़ा साहब, साँझी आदि की पूजा कुरु जनपद में प्रा
काल में हुआ करती थी और आज भी होती रही है। लोकगीत में इस
विवरण इस प्रकार मिलता है।

भय्यां म्हारा दई देवता, इस पै जोत जलावें
सुख देवै, समृधि देवै, हम इसके गुण गावैं [७७]

साँझी पूजन में दुर्गापूजा की लोकधर्मी परंपरा देखने को मिलती है। दश
के उत्सव में मिट्टी के घड़े में छेद डालकर उसमें *साँझी* को रखा जात
और दिया जलाकर जवान लोग गाँव के सरोवर में उसे प्रवाहित करते
कोंकणी समाज में भी इसी प्रकार के विश्वास मिलते हैं। यहाँ पर *पूरु*
गोसांय, म्हालजल्मी, खुंटी माया, सांतेर, ब्रह्मो, आदि को पूजा का आध
बनाया जाता है। हिन्दी के जैसे कोंकणी समाज में भी लोकजनता के

श्वासों का प्रतिबिंब लोकगीतों में देखा जा सकता है। हिन्दी प्रदेश के मिया के जैसे कोंकणी समाज में *खुंटी माया* का पूजन होता है। होली गगमो) के समय सबसे पहले *खुंटी माया* की याद की जाती है। जैसे -

ल खुटयेक नमन करी	ज्येष्ठ खूँटी को नमस्कार करो
च खुंटयांक नमन करी	पाँच खूँटियों का नमन करो [७८]

तेर कोंकण की मूल देवी रही है और लोकप्रिय देवी भी। *सांतेर* परंपरा र बाद में दुर्गा परंपरा का प्रभाव भी पड़ा है जिससे आज का *सांतेर* का या रूप मूल रूप से बहुत हटकर दिखाई देता है। जो भी हो *सांतेर* का कोंकणी जीवन में बड़ा महत्व रहा है। निम्नलिखित प्रार्थना पदों में *सांतेर* का भी नमन किया गया है जैसे-

यलें नमन घालूं धर्तरे माये -	(पहला नमन धरती माता को
दुसरे नमन घालूं चन्द्रसूर्या देवा	दूसरा नमन चंद्रसूर्य को
तीसरे नमन घालूं सांतेरी माये	तीसरा नमन सांतेरी माता को)[७९]

इनके अतिरिक्त प्रकृति के कुछ देवताओं की भी दोनों समाजों में पूजा अर्चना की जाती है जैसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ग्रह, सप्तर्षि मंडल आदि। वेदकाल से लेकर प्रकृति की पूजा की जाती है । आज भी पीपल, तुलसी, कुआँ आदि की पूजा का विधान लोक में प्रचलित है। कष्टों के समय में कोंकणी लोग नारियल फोडकर ग्रामदेव की पूजा करते हैं। पाँच पान का बीडा और पाँच बत्तियों का दिया जलाने की मनौती माँगते हैं। राजस्थान में तो इसी प्रकार *बोलमा* के रूप में लोग मनौतियाँ माँगते हैं। जिनके पास धन है वे ईश्वर के लिए सोना एवं रुपया अर्पित करते हैं। दरिद्र लोग जीभ पर छेद डालते हुए सुइयों के जरिए *बोलमा* करते हैं। लोगों का विश्वास है कि इससे बोलमा सन्तुष्ट हो जाते हैं, नहीं तो वे मनुष्य पर क्रोध उतारते

रहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकजनता प्राचीन काल से अ
तक अपने धर्म का अनुसरण करती आई है। क्योंकि उनका विश्वास है
धार्मिक कृत्यों से उनका जीवन संपन्न हो जाता है। वे अपनी प्रेय तथा
साधना धर्मतत्व के द्वारा ही संपन्न करते हैं और मन, वाणी, कर्म से अ
को विशुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। वे जानते हैं कि तत्व संशुद्धि के
सिद्धि नहीं मिलती। इस प्रकार लोकजीवन में धर्मसाधना के प्रति सच्
आस्था दिखाई देती है।

हिन्दी और कोंकणी के त्योहारसंबन्धी गीतों पर जब हम विच
करते हैं तो उनमें कई समानताएँ और विषमताएँ देखने को मिलती
दोनों समाजों में नई ऋतु के आगमन पर नवीन उत्सवों का आयोजन हो
है। *वसन्तपंचमी, दीवाली, धनतेरस, भैयादूज, अन्नकूट, होली, रथयात्र
नागपंचमी, रक्षाबंधन, कजरी, जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, ऋषि पंचम
अनन्त चतुर्दशी, रामनवमी, महालय, करवा चौथ, अक्षय नवमी, सूर्य षष्ठ
कार्तिक पूर्णिमा, मकर संक्रांति, प्रबोधिनी एकादशी, मौनी अमावस्य
विजयदशमी, महाशिवरात्री, वटसावित्री,* आदि का आयोजन हिन्दी समा
में किया जाता है। लेकिन कोंकणी समाज में इनमें से कुछ उत्सवों का
आयोजन होता है . ये उत्सव भी हिन्दी समाज के जैसे धूम धाम से न
मनाए जाते। केवल होली का उत्सव ही ऐसा है कि दोनों समाजों में समा
रूप से उत्सवों का शीर्षस्थ रहा है। देवों तक को होली मनाते हुए चित्रि
किया गया है। उदाहरण के लिए-

आजु सदासिव खेलत होरी
जटाजूट में गंग बिराजे, अंग में भस्म रमोरी।

बाहन बैल ललाट चन्द्रमा, मिरिग छाला अवरू छोरी
तीनि आँखि सुन्दर चमकेला, सरप गले लिपटी री
आजु सदासिव खेलत होरी
अद्‌भुत रूप उमा देखि दवरी, संग में सखियाँ करोरी
हसत, लजत, मुसुकात चन्द्रमा, सबै सिद्धि इक ठौरी।
आजु सदासिव खेलत होरी
लेइ गुलाल शंभु पर छिरके रंग में उनका के बोरी
भइल लाल सब देह शंभु के गोरी संकर करेलै ठिरोरी
आजु सदासिव खेलत होरी [८०]

ोंकणी लोगों के शंकर और पार्वती भी शिगमो (होली) खेलते हैं।

पळाच्या पेडार दिवली जळता (पीपल के मूल पर दीप जलता है
कर पार्वती खेळ खेळता[८१] शंकर पार्वती होली खेलते हैं)

ोंकणी लोग होली का त्योहार धूम धाम से मनाते हैं । तभी तो देवताओं
ो भी उन्होंने होली खेलते दिखाया है।

बै शबै करीत देव होळी घेवन आयले	(शबै कहकर होली खेलने लगे
होळी घेवन भोंवपाक गेले देवानो	होली लेकर घर घर घूमने लगे
होळी घेवन भोंवपाक गेले मूं	होली लेकर घूमने लगे
र्सांचे वर्सा होळी घालूक लागले	हर बरस होली खेलने लगे
होळयेची पुजा केली देवानो	देवों ने होली की पूजा की
होळयेची पुजा केली मू	देवों ने होली की पूजा की
होऴी पुजोन सांगणे घातीले	पूजा करके प्रर्थना की
होळयेक नाल्ल फोडले देवानो	होली में नारियल फोडा देवों ने
होळयेक नाल्ल फोडले मूं	नारियल फोडा देवों ने

पुजोन होळी तेजी केली होळी	पूजा से होली प्रकाशमान बनाई
कपलाक तिबो लायलो देवानो	ललाट पर तिलक लगाया
कपलाक तिबो लायलो मूं[८२]	ललाट पर तिलक लगाया)

प्रस्तुत उदाहरण में होली के हर एक अंग का वर्णन करते हुए उसके प का विवरण दिया है। लोकजीवन में चाहे वह हिन्दी समाज हो या कों समाज होली का पर्व बहुत ही रंगीन होता है। व्रजमंडल में तो यह उत वीथियों में भी अपना धूम मचाता है। गोपियाँ और राधा इसका खूब आ उठाती हैं और नन्दलाल भी होली खेलते रहते हैं। दूसरों के ऊपर डालने की प्रथा हिन्दी प्रदेश में खूब चलती है। लेकिन कोंकणी प्रदेश उतनी नहीं। महादेव और पार्वती की होली खेलना इस उत्सव की प्राची का द्योतक है और श्रीकृष्ण द्वारा होली में भाग लेना इस उत्सव सामूहिक रूप को प्रकट कर लेता है। कृष्ण और राधिका का होली खेल एक पद में इस प्रकार दिया है-

सदा अनन्द रहै यहु ट्वाला,
मोहन ख्यालै होरी हो।
नन्द गाँव ते आए कन्हैया बरसाने ते गोरी हो
हिलि मिलि फाग परस्पर ख्यालै दोउ होइकै इकठौरी हो।
हाथ मँ लीन्हे बेत की छड़िया कौंछे मँ लीन्हें अबीर
मारत आवैं गोरी राधिका पछरत आवैं कान्ह हो।
हाथ न माँ कंचन पिचकारी अबीर गुलालन झोरी,
ग्वालबाल सब ढ्वाल बजावत सखियाँ गावैं होरी हो।[८३]

करवा चौथ, अन्नकूट, रथयात्रा, ऋषिपंचमी, मौनी अमावास्या आदि कोंक समाज में नहीं मनाए जाते। नागपंचमी हिन्दी प्रदेश में गुडिया उत्सव

में मनाया जाता है। लेकिन कोंकणी समाज में यह केवल नाग से न्धित है। उसी प्रकार दीवाली, वसन्तपंचमी, भैयादूज, रक्षाबंधन, शचतुर्थी, कार्तिक पूर्णिमा, रामनवमी, आदि उत्सवों को कोंकणी लोग ाते हैं। लेकिन उतने धूम धाम से नहीं जितनी हिन्दी प्रदेश में। हाँ, गणेश र्थी इस समाज में खूब मनाई जाती है। गणपति को बिठाने के लिए तरह ह के रंगों से *मखर* को सजाया जाता है। मूर्ति की प्रतिष्ठा करते हुए गपति को चावल के पीढ़े पर बिठाया जाता है। गणपति की मूर्ति की पूजा जाती है। फूल, पत्ते, वस्त्र, जनेऊ, कर्पूर और तेल बत्तियों का ायोजन किया जाता है। गणपति की पूजा के साथ साथ गौरीशंकर की जा की जाती है। शिव के रूप में नारियल रखा जाता है उस दिन चन्द्रमा ो देखना मना है।

मनुष्य के धार्मिक विश्वासों के ज़रिए निर्मित कार्यकलापों से संबन्धित गीत धार्मिक गीत कहे जाते हैं। हिन्दू जीवन सांसारिक और धार्मिक अधिक है। समय समय पर भिन्न भिन्न संस्कार जिनमें धर्म का प्रमुख स्थान रहा है हिन्दू जीवन में नियामक कार्य करते रहते हैं। ये हिन्दू जीवन के अनिवार्य अंग बन गये हैं और विभिन्न अवसरों पर बहुत सारे गीतों का प्रयोग होता है जिन्हें धार्मिक गीत कहा जाता है।

लोकजीवन कर्मण्यता का साकार रूप है। यहाँ श्रम का बड़ा महत्व रहा है। कोई भी काम करने के फलस्वरूप मन और शरीर बोझिल हो जाते हैं । इसकी दुरूहता को कम करने के लिए श्रमगीतों का प्रयोग होता है। ये गीत श्रम करनेवाले लोगों में स्फूर्ति का संचार करते हैं। इनमें मन की अतृप्त आकांक्षाओं और वेदनाओं का आभास मिलता है। हिन्दी एवं कोंकणी में श्रमगीत देखने को मिलते हैं। खेतों में धान बोते समय, फसल काटते समय, चक्की पीसते समय, धान कूटते समय, मछली पकड़ते समय इन

गीतों का खूब प्रयोग देखा जा सकता है। अधिकांश गीतों में जनजीव सुख दुःख एवं उनकी समस्याएँ अंकित रहती हैं। उदाहरण के लिए हि में

ना इस घर में चक्की री ना चूल्हा
ना चक्की में चूण बैहण मेरी
बुरा है ससुर का देस
ना इस घर में कोठी रे कठुला
ना कोठी में धान [८४]

इसी प्रकार सास से संबन्धित कई अन्य गीत भी मिलते हैं जिन में उनके द्वा की गई नारकीय यन्त्रणाओं के उल्लेख मिलते हैं। ये गीत बड़े मनोवैज्ञानि होते हैं। विशेषकर हिन्दी के पनधट के गीतों में स्त्रियाँ अपने विचारों का आद प्रदान करती रहती है। पनघट उनके जीवन में बड़े ही महत्व का रहता है अ वे अपना अधिकांश समय यहीं पर बिताती हैं। हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी श्रमगीत बहुत कम ही रहे हैं। फिर भी धान कूटते समय, चक्की पीसते सम धान बोते समय और मछली पकड़ते समय इन गीतों का प्रयोग होता है जै

काळी गे निळी कोंबी	(काली और नीली मुर्गी
पांकां गे किसयताली	पंखों को खुरचती है
शाण्या भरतारा शिकयताली	चतुर पति को सिखाती है
भागिरथी बाई म्हाजी	मेरी भागीरथी बाई
भावाची गे भयण	भाई की ये बहिन
चालली गे आपल्या शिंवरांत	चली अपने शिविर में
लांब गे म्हाजे केंस	लंबे लंबे केशों में
पडल्यो वीरगांठी [८५]	पड़ गई री गाँठ)

हिन्दी और कोंकणी समाज में प्राचीन काल से ही विभिन्न जातियों अस्तित्व रहा है जिसे लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत जातिगीतों में खोजा जा कता है। प्रारंभ काल में जातियों का विभाजन काम करने के आधार पर ता था। लेकिन बाद में इसे जन्म के आधार पर माना जाने लगा। जहाँ क जातिगीत का प्रश्न है कहारों के, धोबियों के, चमारों के, अहीरों के त मिलते हैं। लेकिन कोंकणी में इनकी संख्या बहुत कम है। यहाँ पर मूल प से गौड़ों, कुणबियों, खार्वियों के द्वारा गाये जानेवाले गीत ही जातिगीत अन्तर्गत गिनाये जा सकते हैं। जिस प्रकार हिन्दू समाज में जातिगीत चलित हैं वैसे ही ईसाई समाज में भी प्रचलित ऐसे गीत कोंकणी में मिलते हैं। व्रत, पर्व. त्योहार, उत्सव, के समय गीत गा गा कर नाचनेवाली गौड, खार्वी, कुडुंबी जाति की स्त्रियाँ इन गीतों के सहारे अपने जीवन की व्याख्या ही करती हैं। ईसाई समाज के जोडगीत कोंकणी समाज में सुप्रधान माने जाते हैं जिनके विषय अधिकांशतः प्रेम से संबन्धित रहते हैं और पुरुष और स्त्री मिलकर गाते और नाचते रहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और कोंकणी लोकगीतों में जातिगीत के नाम से जो कहा जाता है वह हिन्दी में जातियों से संबन्धित एवं कोंकणी में जातियों द्वारा गाये जानेवाले गीतों को कहा जाता है।

लोककथाएँ

लोकसाहित्य में लोकगीतों के बाद लोककथाओं का ही स्थान है।प्राचीन काल से ही भारतीय मानस कहानियों में रमा है और कहानियों में ही उसने विकास पाया है। नानी दादी की कथाएँ तो हर वर्ग के लोकसाहित्य में प्रसिद्ध हैं। इनका अपना अलग महत्व है। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जिसने लोककथा का आस्वादन न लिया है। लोककथा विश्वव्यापी होती है। इसके अन्तर्गत समाज की परंपराएँ सुरक्षित

रही हैं। मौलिकता इसकी विशेषता रही है। मौखिक होने के कारण इस
लिखित रूप कठिनाई से ही मिल सकता है। अपने स्थूल रूप में
परिवर्तनशील रही है। चूँकि हर व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार
मौखिक कथारूप में परिवर्तन लाता रहता है इसलिए इन लोककथाओं
विषयों एवं शैलियों में व्यक्तिगत एवं प्रदेशगत प्रभाव आता है। *मानव -म
में शाश्वत रूप से जो बालभाव समाया रहता है उसकी भाषा, उसव
साहित्य, उसकी भावाभिव्यक्ति कहानी के रूप में प्रकट होती है।*
लोकसाहित्य के अन्तर्गत बालसाहित्य में अनेक कहानियाँ उपलब्ध हो
हैं। क्योंकि इन कहानियों का जन्म बालक के जन्म के साथ साथ होता है
संसार के संबन्ध में जानने की बच्चों की जो जिज्ञासा रहती है उसीक
शान्त करने के लिए कहानियों की रचना हुई होगी। इन कहानियों के द्वार
उनकी बुद्धि का विकास आसानी से संभव हो जाता है। बालकों की शिक्षा
दीक्षा, रुचि एवं विचार का एकमात्र आश्रय है कहानी।

लोककथाओं की भारतीय परंपरा

पहले कहा जा चुका है कि प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य
में कथाओं का अस्तित्व रहा है। सृष्टि का आरंभ लोककथाओं पर ही
आधारित है। ऋग्वेद में सूक्तियों के रूप में कहानियों के मूल तत्व पाये जाते
हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में भी अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। शतपथ ब्राह्मण की
पुरूरवा एवं उर्वशी की लोककथा बाद में कई महान साहित्यकारों का
प्रेरणास्रोत बनी हुई है। सुकन्या की कथा, शुनःशेफ की कथा प्राचीन भारत
में प्रसिद्ध रही हैं। सत्यकाम जाबाली आदि की कहानियाँ उपनिषद्काल की
देन हैं। नचिकेता अमरता की प्राप्ति का उपाय खोजकर चलता है। इस
प्रकार वेदों से लेकर उपनिषद् काल तक पहुँचते पहुँचते कहानियाँ नये नय

वातावरण में नया नया विषय लेकर सामने आई। लेकिन तब तक उनको अपना मौखिक रूप नष्ट नहीं हुआ था। रामायण, महाभारत एवं पुराणों में कथा कहानियों का अतुल भण्डार ही वर्तमान है। महाभारत तो नीतिकथाओं का कोश ही रहा है। कहा गया है -

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्

नीतिकथाओं का विषय सदाचार एंवं व्यावहारिक ज्ञान प्रस्तुत करता है। इनमें पशुपक्षी मनुष्यों की भाँति संवाद करते रहते हैं। कहीं कहीं इन कथाओं में रूपपरिवर्तन भी देखा जा सकता है। पशु का मनुष्य बनना और मनुष्य का पशु बनना यहाँ स्वाभाविक ही है। इन नीतिकथाओं के उत्तम उदाहरण के रूप में पंचतंत्र और हितोपदेश का नाम लिया जा सकता है। पंचतंत्र की रचना राजकुमारों को नीति पढाने के लिए की गई थी। बृहत्कथा, वेतालपंचविंशति आदि भी इसी परंपरा में आती हैं।

हिन्दी लोककथाए

यही परंपरा हिन्दी को रिक्थ के रूप में प्राप्त हुई। हिन्दी में ऐसी अनेक कथाएँ हैं जो लोककथा की कोटि में आती हैं। सुआ बहत्तरी, वेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, तोता मैना का किस्सा आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हिन्दी में मिलती हैं। इन कथाओं में भारतीय जीवन की आस्थाओं के साथ साथ समग्रता, आत्माभिव्यंजन की प्रवृत्ति आदि पाये जाते हैं। इनमें लोकजीवन में व्याप्त व्रत पूजा, मानव कल्याण की भावना, प्रेम का व्यापक भिन्न स्वरूप देवी देवताओं का माहात्म्य आदि का परिचय मिलता है। अलौकिकता के प्रति आग्रहपूर्ण उत्साह इनकी विशेषता है। ये कहानियाँ लोगों के समक्ष ऐसे उपदेश रखती हैं जिनके अनुवर्तन से मानव मात्र का कल्याण हो सकता है। इस कल्याणभावना में जीवन का अनुरंजन रहता है और यह समष्टि को दृष्टि में रखकर किया जाता है। इस प्रकार लोककथासाहित्य को जीवन

का पाथेय कहा जा सकता है। इन कथाओं में आत्माभिव्यंजना की प्रवृ व्रत पूजन के प्रति आग्रह, मानव कल्याण की भावना, प्रेम का अभि विशुद्ध एवं सात्विक स्वरूप, देवी देवताओं का महत्व, अलौकिकता भावना, उपदेश की प्रवृत्ति मनोरंजन की विशेषता, औत्सुक्य, लोकविश्वा औंर लोकसंस्कृति का स्वरूप, दानवों और राक्षसों का आतंक, डाकू च और लुटेरों का चित्रण, भय और विस्मय आदि रहता है।

हिन्दी में लोककथाओं का वर्गीकरण कई विद्वानों ने विभिन्न प्रका से किया है। जिनमें कहीं कहीं पौराणिक ऐतिहासिक और सामाजि कथाओं के अलग वर्ग मिलते हैं। चूंकि सारी कथाओं की सामाजि पृष्ठभूमि रहती है इसलिए समस्त कथाओं को सामाजिक ही कहा गया है यहाँ विशेष वर्गीकरण की कोई आवश्यकता महसूस नहीं होती। जहाँ तक पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं का प्रश्न है ऐसी कथाएँ बहुत कम ह मिलती हैं जो पूर्ण रूप से पौराणिकता या ऐतिहासिकता का वर्णन नह करतीं। यहाँ सामान्य तौर पर ही वर्गीकरण किया गया है जिसे कुछ अर्थो में सीमित ही कहा जा सकता है। हिन्दी और कोंकणी लोककथाओं का तुलनात्मक विवेचन होने के नाते इसमें सहायक कथाओं का ही वर्गीकरण यहाँ उद्दिष्ट रहा है। इस दृष्टि से लोककथाओं का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है।

१. राजा रानी संबन्धी कथाएँ

२. पशुपक्षी संबन्धी कथाएँ

३. नीती या उपदेशात्मक कथाएँ

४. धार्मिक कथाएँ

५. अलौकिक कथाएँ

६. बालकथाएँ

जारानी संबन्धी कथाएँ

संसार में जहाँ जहाँ लोककथाएँ मिलती हैं वहाँ वहाँ राजा रानी की थाएँ अवश्य होती हैं। हिन्दी भी इसका अपवाद नहीं है। कथा कहते और नते वक्त राजा रानी के प्रति विशेष रुचि आ जाती है। एक था राजा, एक ो रानी कहकर जब कथा शुरू होती है तब लोककथा की कल्पना लोगों सामने आ जाती है। यही नहीं ऐसी कथाएँ बालकों के लिए रोचक रहती । पुरुष, स्त्री, छोटे बड़े के भेद के बिना कथाओं का यह प्रयोग लोगों को बहुत भाता है। इसका मूल कारण यही है कि राजा रानी की इन कथाओं में कलात्मकता ज्यादा होती है। आश्चर्य की मात्रा भी बहुत अधिक हो जाती है। लोगों को आकर्षित करने की परिस्थितियों का वर्णन इन कथाओं की विशेषता है। ऐसी कई विशेषताएँ इन कथाओं में मिलती हैं जिन्हें लोग अधिक पसन्द करते हैं। उदाहरण के लिए *अनोखी राजकुमारी* कथा में राजा ने जब रूपमती के बारे में सुना कि उसके पैर रखने से मिट्टी भी सोने में बदल जाती है तो राजा उसे अपनी बहू बनाना चाहते हैं।[७] यहाँ पर पैर रखने पर ज़मीन का सोना बनना, राजकुमार के हँसने पर हीरे मोती गिरना, कहानी सुननेवालों की सरसता और कहानी के प्रति उनका लगाव बढ़ाता है। उसी प्रकार *जंगल के राजकुमार* नामक कथा में जंगल के खूबसूरत लड़के द्वारा दिया गया सोने का जडाऊ कंकण राजा सहर्ष स्वीकार करता है और बदले में उसे बहुत सोना दे देता है।[८] इसमें एक आदर्श राजा का रूप सामने आता है जो अच्छा व्यवहार करनेवाली प्रजा को प्रोत्साहित करता रहता है और उसकी सहायता करता है। इसके ठीक विपरीत जो राजा प्रजा का हित नहीं देखता उसके लिए यह चेतावनी है *- राजा, आपका इन नटों को बार बार निराश करना शोभा नहीं देता । आप पैसे मत दीजिए। पैसे हम देंगे।*[९] यहाँ पर राजा की कंजूसी और उसके

कारण नटों पर घटनेवाली बेईमानी का जिक्र हुआ है। *कंजूस राजा औ* *नट* कहानी में नाटक के प्रदर्शन के द्वारा नट लोग राजा को ठीक मार्ग प ले आते हैं।

इन कहानियों में शौर्य का वर्णन ज्यादा रहता है। उसी प्रकार कथाएँ मनोहारिता लिए हुए होती हैं। जैसे कि *भाग्यवान राजकुमार* नामव कथा में रात को परियाँ तालाब में नहाने आती हैं, आकाश में चन्द्रम चमकता रहता है और इन्द्रलोक से परियाँ उतर कर आती हैं। राजकुमा एक सुन्दर गुलाब का फूल लेकर खूबसूरत परी के हाथ में दे देता है। पर राजकुमार पर मोहित हो जाती है और उसे अपने साथ इन्द्रलोक ले जात है। कहानी का यह भाग बड़ा मनोहर है और सुननेवालों को सन्तुष करनेवाला है।[१०]

राजा रानी की इन कथाओं में अक्सर राजा रानी नायक नायिक होती हैं। कहीं कहीं राजकुमार और राजकुमारी भी होती हैं। लेकिन इन कथाओं की पृष्ठभूमि सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्व को लिए हुए होत है। कहीं कहीं इन घटनाओं की गठन सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक अर्थ लिए होती है। राजा समाज का नायक होता है। उस समाज में घड़नेवाली अच्छी बुरी घटनाओं का उत्तरदायित्व उन पर रहता है। *यथा राजा तथा प्रजा* कहावत तो प्रसिद्ध ही है। इसलिए राजा को हमेशा प्रजा का आदर्श बनना पड़ता है। प्रजा का पोषण और रक्षण इनका प्रमुख कर्तव्य रहता है। इसलिए हमेशा उनकी दृष्टि में समाज का हित ही रहता है। उदाहरण के लिए *राजा और भूत* कहानी में राजा बड़ा ही दयालु न्यायप्रिय और प्रजा से प्रेम करनेवाला है और प्रजा अपने राजा से बहुत खुश भी।[११]

हिन्दी में राजा रानी की कथाओं में *जंगल का राजकुमार, अनोखी*

जकुमारी, कंजूस राजा और नट, चतुर राजकुमार, राजकुमारी निहालदे, रठ कुंवरी, राजा और भूत, राजा की वीरता आदि गिनाई जा सकती हैं। न कथाओं में अलौकिकता और आश्चर्य के तत्व भरे रहते हैं। कुछ प्रसंग से मिलते हैं जो सुन्दरता के साथ अंकित रहते हैं और सुननेवाले के मन ो हठात् आकर्षित भी करते हैं।

शुपक्षी संबन्धी कथाएँ

लोकसाहित्य में हमेशा प्रकृति मानव के साथ रहती है और मानव कृति के साथ रहता है। वह अपनी समस्याओं का समाधान प्रकृति में खोज लेता है। पशुपक्षियों से संबन्धित लोककथाओं में यह बात देखने को मेलती है। अधिकांशतः ये कथाएँ पंचतंत्र की परंपरा पर आधारित हैं। इन कथाओं में मनुष्य पशुपक्षियों का सहयोगी रहता है और पशुपक्षी मनुष्य के सहायक। *चतुर सियार, लोमड़ी का हृदयपरिवर्तन, बकरी एवं मधुमक्खी, चालाक बन्दर, शेर और महाशेर, पंखोंवाली परी* आदि कथाएँ पशुपक्षियों से संबन्धित हैं। ये कथाएँ पशुपक्षियों के सहयोग में मानव के व्यवहार का चित्रण करती हैं। *पंखोंवाली परी* नामक कथा में एक मैना का विवाह किसी राजकुमार से होता है, संतानहीन सेठ और सेठानी अपनी पुत्री के जैसे मैना का पालन करती हैं। उसका नाम था चन्द्रमुखी।[१२] कथा के अन्त में अलौकिकता का पुट है। पंखोंवाली परी की सहायता से मैना यकायक सुन्दरी स्त्री बन जाती है। इसमें सुन्दरी लड़की की माता सेठानी परी को उसकी शादी में निमंत्रित करती है और परी अपने साथियों के साथ आकर शादी में भाग लेती है और चन्द्रमुखी को बहुत से सुन्दर गहने देती है। इस प्रकार की कहानियाँ मूल रूप से मनोरंजन करने के साथ साथ शिक्षा भी देती हैं। उनकी यह विशेषता है कि पशु पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हैं, आपबीती सुनाती हैं और जगबीती के संबन्ध में वार्तालाप करती रहती हैं।

इस प्रकार वे मनुष्य को वस्तुस्थितियों से अवगत कराती हैं। परिस्थिति से लाभ उठाने का सुझाव देती हैं। इन पशु पक्षियों में तनिक भी स्वार्थ न रहा करता। इस अर्थ में ये मानव के लिए आदर्श रह जाते हैं। लेकिन जै कि लोककथाओं में हमेशा होता रहता है कहीं कहीं ये पक्षी चमत्कार उत्प करनेवाले होते हैं। किसी पक्षी को खानेवाला राजा बनता है तो दूसरे व खानेवाला सर्प बन जाता है। लोकसमाज के लिए ये कथाएँ बड़ा मनोरंजन प्रदान करती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसे पक्षी आज वर्तमान हैं।

बकरी और मधुमक्खी नाम की कहानी में जब बकरी वन में अप बच्चों को जन्म देती है उस समय एक शेर आकर इन बच्चों को खान चाहता है। इस समय मधुमक्खी बकरी की सहायता करते हुए सिंह के मु पर डंक मारकर बच्चों को बचाता है। इस कथा में पशुओं का मानव जैस व्यवहार इस प्रकार चित्रित है । यहाँ मेमने बताते हैं - *माँ, एक चीता किवा में से झाँक रहा था। वह हमसे दरवाज़ा खोलने को कहता था। लेकिन हमने नहीं खोला।*[१३] चालाक बन्दर बच्चों को जीवन में भला काम कर की सीख देता है। नकली रूप में बन्दर से दोस्ती रखनेवाला मगर अन्तत अकेला बन जाता है और भूख से तड़पता रहता है।[१४] *जैसे को तैसा* वाल कहावत इस कथा में सार्थक हो जाती है। दुष्ट लोग अपने जीवन के अंत में किस प्रकार शिष्ट बन जाते हैं उसका सुन्दर अंकन लोमड़ी के हृदयपरिवर्तन में देखा जा सकता है। इन कथाओं से प्रकृति के पशुजगत का मनुष्य स संबन्ध स्पष्ट हो जाता है।

नीति या उपदेशात्मक कथाएँ

लोकसाहित्य अपने में लोकमंगल को लेकर चलता है। इसलिए उसमें सत् और असत् दोनों का यथार्थ चित्रण रहते हुए भी असत् को दूर

रने के लिए और सत् के मार्ग पर चलने के लिए तरह तरह के उपदेश ए जाते हैं। इन उपदेशों की शैली मनोरंजन से जुड़ी हुई रहती है। कटु त्य में भी सुननेवाले श्रोता इसमें मधुरता पाते हैं। प्राय: सभी लोककथाओं उपदेश रहते हैं जो उत्साह, कर्तव्यपालन, उपकार, सत्य, न्याय, त्याग, हिंसा आदि के मार्ग पर चलने के लिए दिये जाते हैं। जीवन के सांस्कृतिक क्षों, आदर्शों, मूल्यों, सद्व्यवहारों सभी को उपदेश के रूप में इन कथाओं चित्रित किया गया है जो लोगों को चरित्रनिर्माण में सहायता प्रदान करते ं। बालमन पर इसका ज़्यादा प्रभाव रहता है और वे जीवन के विकास के ार्ग पर मूल्यों का आधार ग्रहण करते हुए आगे बढ़ते हैं। इन कथाओं का ार्वभौमिक महत्व है जो कि देश काल से परे किसी भी समाज, स्थान या काल में उपयोगी बन सकता है। इन नीतिकथाओं में तरह तरह के सिद्धांत रहते हैं जो सुननेवाले के मन पर अपनी छाप छोड़ देते हैं। यहाँ लोग इन कहानियों को पढ़ते हुए आस्थावान बन जाते हैं। ईश्वर में विश्वास रखते हैं। सत्य की जीत को मानते हैं और असत्य को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। हिन्दी में कई उपदेशात्मक कथाएँ मिलती हैं जैसे *जो न माने बड़ों की सीख लेके खपरा माँगे भीख, जैसे को तैसो मिलै, दो भाई, बनिया और सुनार, जाट की शर्त, नाई की होशियारी* आदि। *जो न मानें बड़ों की सीख लेके खपरा माँगे भीख* कहानी के शीर्षक में ही उपदेश की ध्वनि है। बड़ों का आदर करते हुए उनके कहने पर चलनेवाले लोग हमेशा जीवन में सफलता की ओर बढ़ते रहते हैं। इसके ठीक विपरीत जो बड़ों को नहीं मानते वे जीवन में असफल रह जाते हैं। इस कहानी में व्यापारी जुलाहा बूढ़े पण्डित की बात न मानते हुए बाढ़ देखने को चलता है और भीड़ में उसके हाथ पाँव टूट जाते हैं। वह पछताता है कि *मैं उस बूढे पण्डित की बात मानकर बाढ़ देखने न जाता तो मेरी यह दुर्दशा न होती।*[९५] बच्चे जब

यह कहानी सुनते हैं अनजाने ही यह उपदेश उनके मन को छू जाता है अ
अपने जीवन में बड़ों को मानने की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार *बिल*
और रानी कहानी में दूसरों को दोष न देने की शिक्षा मिलती है।[९६] जै
को तैसो मिलै में कर्मफल भोगने का वर्णन है। जो जैसा करता है उस
उसी मात्रा में अपने कर्म का फल मिल जाता है। कहानी का सार संक्ष
यही है --

जैसे को तैसो मिलै मिलै चोर को चोर
धोबी को धोबी मिलै मिलै खोर को खोर [९७]

बनिया और सुनार कथा में यह शिक्षा मिलती है कि पाप की कमाई धो
में चली जाती है। बनिया घासीराम के खूब सजग रहने पर भी सुनार औ
उसकी पत्नी मिलकर उसे धोखा देते हैं और सोने की मूर्ति के बदले पीत
की मूर्ति रख लेते हैं।[९८] *दो भाइ* कहानी में भाई भाई की लड़ाई बुरी हो
है, इसकी शिक्षा मिलती है।[९९]

धार्मिक कथाएँ

आस्तिक मानव एक अदृश्य शक्ति में विश्वास करता है और उ
शक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए जी जान से प्रयत्न करता है। उसकी इस
धार्मिक भावना के विभिन्न पक्षों के रूप में कई व्रत, त्योहार, अनुष्ठान
देवताओं की पूजा आराधना आदि की जाती है। सोमवार को उपवास कर
से लड़कियों को अच्छा पति मिल जाता है। मंगलवार का पूजन दुर्गा क
सन्तुष्ट करनेवाला होता है। कार्तिक स्नान से पुण्य मिलता है। दीपावल
में दिया जलाने से मन का अन्धकार दूर होता है और नया प्रकाश मिलत
है। नागपंचमी नागों को सन्तुष्ट करती है और गणेशोत्सव गणेश की पूज
से संबन्धित होता है। इन सारे उत्सवों को मनाने का एकमात्र उद्देश्य लोग

इस विश्वास पर निर्भर रहता है कि इनका अनुसरण करने से उनका ीवन सुखी और संपन्न बन जाता है। जन्माष्टमी, संकट चौथ, करवा ौथ, भैयादूज आदि व्रत एवं अनुष्ठान से संबन्धित रहते हैं जिनके बारे में ई कथाएँ मिलती हैं। ये सारी कथाएँ लोकजीवन के धार्मिक पक्ष को बल बनाती हैं। इस दृष्टि से देखने पर धार्मिक कथाओं का संसार बड़ा ी विस्तृत रहा है और इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है

: देवी देवताओं से संबन्धित

: व्रत और अनुष्ठान से संबन्धित कथाएँ

: त्योहारसंबन्धी कथाएँ

हिन्दी की *नागपंचमी, ईश्वर में विश्वास, अभाव का वरदान, देवता की शक्ति, गोरा माता की सती, जलदेवता की बलि* इस वर्ग के अन्तर्गत रखी जाती हैं।

लोकमानव समझता है कि देवी देवता उसके सुख दुःख के साथी हैं। विशेषकर दुःख के समय वे सहायता देते रहते हैं। हिन्दी में कहावत है- *जब भगवान देते हैं तो छप्पर फाड़ के देते हैं*। इस करुणामय भगवान से संबन्धित भक्तियुक्त विवरण देकर उनकी स्तुति किए बिना लोकमानव कैसे रह सकता है? देवी देवता से संबन्धित लोककथाएँ ईश्वर की सत्ता एवं महत्ता के बारे में बोल देती हैं। लोकमानव जब भगवान की प्रार्थना करता है तो उसके साथ अपनी पीड़ाओं को भी दूर करने की प्रार्थना करता रहता है। देवी देवताओं के स्वरूप, निवास, चमत्कार आदि का वर्णन इन कथाओं में मिलता है। *देवता की शक्ति* इसका एक अच्छा उदाहरण है। इस कथा में डंगू गाँव के लोगों की ईश्वर की भक्ति के आगे प्रश्नचिह्न

लगानेवाले बासुक गाँव के लोगों के सामने पहाड़ी देवता जो चमत्
दिखाता है, उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है - *तरूआ ने पूरे मन से अ
नवलिंगी देवता को याद किया और पूरी शक्ति से तुरही बजाने ल
उसमें से ऐसी ध्वनि निकल रही थी कि उसके जादू में सभी गाँववाले
गए थे। वे सभी अपने घरों से निकलकर वहाँ आ गये। यहाँ तक कि ज
पशु भी दौड़ दौड़ कर आने लगे। उधर गाँव के प्रधान हरूआ के घर
पत्थर गिरने लगे । यह सब देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गए।*
लोगों का दृढ़ विश्वास यही है कि उनका देवता बड़ा शक्तिशाली
आपत्ति के समय उसको कोई न कोई रास्ता ज़रूर मिल जाएगा। आप
में भी निश्चिन्त रहनेवाले तरुआ के शब्दों में यह व्यक्त होता है।

भारतीय समाज में बहुधा धार्मिक अनुष्ठान का पालन रहता
व्रत, त्योहार और अनुष्ठानसंबन्धी लोककथाओं में धर्ममय सामाजि
परंपराएँ जिनका नित्यप्रति जीवन से निकट का संबन्ध रहता है, सुरक्षि
रहती हैं। अक्सर इन धार्मिक अनुष्ठानों का भार स्त्रियों पर पड़ता है अ
ये अक्सर व्रत करती रहती हैं। त्योहार मनाने के लिए ये हमेशा तैयार रह
हैं। कहावत तो प्रसिद्ध है, *सात वार नौ त्योहार।* इन्हीं त्योहारों में नारी व
सच्चा रूप प्रदर्शित होता है। यहाँ उसका स्वार्थ तनिक भी नहीं रहता है
वे अपने साथ अपने पति और बच्चों के लिए व्रत करती रहती हैं। इन व्रत
को लेकर कही गई कथाओं में हिन्दू समाज के धार्मिक विश्वासों व
प्रतिफलन हुआ है । कहा गया है कि ऐसी कथाओं को कहने सुनने
अशुभ दूर हो जाता है और मंगल की कामना की जाती है। *सत्यनारायण
व्रत कथा* इनमें सुप्रधान मानी जा सकती है। नागपंचमी से संबन्धित कथ
जिसमें भाई बहन के सन्तुष्ट प्रेम का चित्रण है, इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है
नागपंचमी के दिन सब लोग इकट्ठे होते हैं और नाग की पूजा करते हैं

ल्लों से हर किसी का घर भर जाता है। नागदेवता को पीला धागा चढ़ाया जाता है। नाग की बाँबी पर गाना, नाचना, सब होता रहता है। इस दिन कल्याणकामना से लोग गले में नागपंचमी का पीला घागा बाँधते हैं। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से दुर्भाग्य दूर हो जाता है और व्यक्ति का कल्याण होता है। कहीं कहीं लोगों का विश्वास है कि ये नाग संकटकाल में उनकी रक्षा करते हैं, कहीं कहीं नागराज ब्राह्मणी को द्रव्यगर्भा ज़मीन का पता लगाता है जिससे ब्राह्मणी का पुत्रपालन का संकट दूर हो जाता है। सर्प का अमृत जल मिट्टी के हाथी-घोड़ों को पिलाने में सहायक होते हैं।[१०१] *सर्पमणि की अंगूठी* नामक कथा में सर्पमणि की अंगूठी का आश्चर्य सामने आ जाता है। अंगूठी के अभाव में आपसी झगड़ा, मार पीट आदि दुःख दिखाई पड़ते हैं और सर्पमणि के अस्तित्व के साथ सब कहीं आनन्द ही आनन्द रहता है।[१०२]

धार्मिक कथाओं के अन्तर्गत भक्तिप्रधान कथाएँ भी मिलती हैं जो शिव, विष्णु, राम आदि से संबन्धित हैं। जन जातियों के आदिम संस्कारों की अभिव्यक्ति इन कथाओं में होती है। सर्प की भक्ति से संबन्धित कथाएँ इनके अन्तर्गत आती हैं। किसी कथा में एकादशी व्रत की महिमा गाई जाती है तो किसी में श्रीकृष्ण की महिमा। किसी कथा में विष्णु नारद की परीक्षा लेते हैं लोगों की भक्ति भावना तथा धर्म के प्रति आग्रह इन लोककथाओं में भिन्न भिन्न रूप से हमारे सामने आता है।

अलौकिक कथाए

लोककथाओं में चमत्कार का अपना अलग महत्व है। अक्सर इन कथाओं में सोने का मनुष्य, सोने की चिड़िया, हँसने पर मोतियाँ बरसानेवाला राजकुमार, चलने पर मिट्टी सोने में परिवर्तित करनेवाली राजकुमारी, इस

प्रकार की कई चमत्कारी बातें दिखाई पड़ती हैं जो साधारण लोगों में पाई जातीं। इस प्रकार की कल्पनाएँ कथाओं की मनोहारिता और श्रोत की रुचि को बढ़ा देती हैं। साधारण संसार में असंभव इन तत्वों को कल के ज़रिए संसार से परे ले जाने के कारण इसे अलौकिक माना जाता ये असत्य रहने पर भी अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति करती रहती हैं श्रोताओं को आनन्द प्रदान करनेवाली होती हैं। इन लोककथाओं का सं संबन्ध बालकों से है। बालकों का मनोरंजन जहाँ एक ओर खेल कूद होता है वहीं अपनी नानी दादी से प्राप्त परंपरागत लोककथाओं से भी हो है। ऐसी कथाओं में पशु पक्षियों की कथाएँ, हास्य विनोद संबन्धी कथ तथा भूत चुडैल की कथाएँ प्रमुख हैं। इन कथाओं से आन्तरिक और बा परितृप्ति से बालक अपार सुख और आनन्द का अनुभव कर रात में क सुख की नींद सोता है और कभी उसके अवचेतन मन में इन कथा गाथा के नायक नायिका जाग उठते हैं। हिन्दी की *पंखोंवाली परी, भाग्यवा राजकुमार, अनोखी राजकुमारी, राजा और भूत, नागपंचमी, जलदेवत की बलि, काना लड़का* आदि कथाएँ अलौकिक तत्व को लेकर विकसि हुई हैं। राजा और भूत की कथा में कई चमत्कार दिखाई देते हैं जैसे वि राजा की इच्छा पर भूत का, उनके लिए चाँदी का रथ बनाना, समस्त सुख साधनों से युक्त खूबसूरत महल बनाना, ऐसा भण्डार बनाना जिसमें अ कभी समाप्त न हो आदि आदि।[१०३] उसी प्रकार *पंखोंवाली परी* कहानी जब परी मैना को राजकुमारी बनाती है तो श्रोताओं के आश्चर्य का क्या कहना ! इसी प्रकार अलौकिक प्रसंगों से युक्त अन्य कथाओं में भी परी दानव आदि की प्रधानता रहती है। इन आश्चर्यों को लोग खूब पसन्द करते हैं और परी, भूत, प्रेत, जादू आदि की अनजाने ही उनके मन में आस्था पैदा होती है।

प्रायः सभी लोककथाएँ बालकों को उद्देश्य करके सुनाई जाती हैं। कथाओं के अन्तर्गत नानी दादी की कथाओं का बालकों के विशेष र्भ में बहुत अधिक महत्व है। इन कथाओं में बिल्ली, कुत्ता, सियार, चूहा दे की प्रमुखता देखी जा सकती है। उसी प्रकार आँख मिचौनी, पत्थर ना, गुड़ियों का खेल, घरौंदे बनाना आदि का समावेश रहता है। बालकों शिक्षा एवं उपदेश देने में पशु पक्षियों की कथाएँ बड़े महत्व की रही हैं। पशु पक्षियों की कथाओं का बालमन पर बहुत ही प्रभाव पड़ता है। तूहल और मनोरंजन के तत्व से भरी बालकथाएँ कहीं कहीं वीरतापूर्ण हसिक कार्यों का विवरण देती हैं। इनसे बालकों के मन में साहसी बनने ो इच्छा पैदा होती है। ज्ञान, कुतूहल, बुद्धिचातुर्य, हास्य व्यंग्यात्मक हानियाँ भी बालकहानियों में देखी जा सकती हैं। हिन्दी की *बीरु का लेदान* नामक कथा में बीरू के साहस का परिचय कराया गया है जो स्वयं पने को ही बलि देकर गाँव को बचाता है। सारा गाँव उसके बलिदान की र्चा करता रहा और उसकी माँ को भी दुःख होने के बावजूद उसके लिदान पर बड़ा गर्व हुआ।[१०४] इन बालकथाओं में *चतुर बालक, सत्यवादी ालक, पहेली ही पहेली, जलदेवता की बलि, मूंग और मोठ, बदला* आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। *चतुर बालक* कहानी में बालकों की बुद्धि की सराहना की गई है। यहाँ पर कोई बालक मृत्यु के मुँह से अपने साथी को बचाता है।[१०५] *सत्यवादी बालक* में सत्य के महत्व पर बल दिया गया है। यहाँ सत्यवादी बालक कहता है - *मुझे मृत्यु का भय नहीं है। मैं वह स्थान बता सकता हूँ जहाँ तुम्हारी गाय चर रही है। मेरी बात सुन लो। मेरे रहते हुए तुम गाय के गरदन पर छुरी नहीं रख सकते हो।*[१०६] *मूंग और मोठ* में अच्छे बर्ताव के अच्छे फलों का वर्णन किया गया है।[१०७] इसी प्रकार *पहेली ही*

पहेली में एक बुद्धिमान लड़की की कहानी है। ये सारी कथाएँ छोटे ब को उमंग, उत्साह एवं उपदेश देनेवाली रही हैं। इनका बालकों के जी में अत्यधिक महत्व है।

इस प्रकार लोककथाओं में जीवन की समस्याएँ सामाजिक परंपरा लोकविश्वास, अंधविश्वास, नैतिकता, अनैतिकता, धर्म अधर्म आदि स कुछ अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए हैं। इनमें परी, दानव, सिद्ध पुरु जादू का डंडा सब मिलते हैं। ऐतिहासिक कथाओं को लोकमानस अप प्रकार से तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। लोककथाएँ आदर्शवादी होत हैं। इनका उद्देश्य सदा नैतिक शिक्षा देना होता है। इन कथाओं से जीव के दिन प्रतिदिन के कार्यकलापों से संबन्धित शिक्षाएँ भी मिलती हैं। कथाएँ लोकमानव को आस्थावान बनाती हैं तथा इनके द्वारा उनका जीव के प्रति आशावादी दृष्टिकोण बन जाता है। शिक्षा के साथ ये कथा मनोरंजन भी प्रदान करती हैं।

कोंकणी लोककथाए

जैसे कि भारत की दूसरी भाषाओं के लोकसाहित्य में कहानियो का बड़ा महत्व रहा है वैसे ही कोंकणी भाषा के लोकसाहित्य मे भी अनेक कहानियाँ मिलती हैं। इन कथाओं में कोंकणी समाज की परंपराएँ सुरक्षित रही हैं। इन कथाओं को मूलतः दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है। गीतकथा एवं गद्यकथा। गद्यकथाओं में भी प्रतिपाद्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए बीच बीच में गीतों का प्रयोग भी मिलता है। गोवा, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं केरल में मिलनेवाली कोंकणी कथाओं में सर्वाधिक प्रचार राजा रानी की कथाओं का रहा है। इनके अलावा बूढ़ी और बच्चों की, देवताओं की, भूतप्रेतादि की, राक्षसों की, पक्षियों की कहानियाँ भी मिलती हैं।

गोवा के कई प्रदेशों में आज भी कुळंबी लोग विशेष अवसरों पर ने मूल घराने में इकट्ठे होते हुए रात भर कथाओं का गायन करते हैं। कथाओं का सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व अलग है। प्रतीकात्मकता की और एक विशेषता है। समाजहित को दृष्टि में रखकर इन कहानियों रचना हुई है। राजा का मुख्य पात्र होना इसी का प्रमाण है। राजा वे जो प्रजा का हित साधते हैं। आदिवासियों के समूह में समाज के कल्याण दृष्टि में रखकर राजा का बलि होना इन कथाओं का विषय रहा है। भिक कहानियाँ अत्यन्त सरल हैं। लेकिन विकसित कहानियाँ प्रतीकों र संकेतों से भरी हुई हैं। राजा रानी के संकेतों द्वारा सामान्य पुरुष और त्री के संयोग एवं तद्वारा पृथ्वी के संपन्न होने का चित्र इन कहानियों में लता है। अधिकांश कहानियाँ प्रेमकहानियाँ हैं जिनमें नायक नायिका लने को आतुर हैं। कथा के संघर्षमय विकास के उपरान्त नायक और ायिका का मिलन होता है और कथा समाप्त हो जाती है। इन कथाओं में त्कालीन समाज की अनेक समस्याएँ, रीति रिवाज़, पारिवारिक जीवन, विवाह, सौतिया डाह, देवरानी जेठानी, ननद भौजाई, सास बहू आदि के बीच का मनमुटाव आदि न जाने कितने ही सामाजिक विषयों पर संकेत मिलते हैं। सामाजिक एवं मानव मूल्यों का अंकन इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। ये कहानियाँ कलात्मक रही हैं और इनमें ऊँचे दर्जे के साहित्य के कई गुण देखने को मिलते हैं। विषय वैविध्य इनकी विशेषता है। विभिन्न तरह के जानवर इनमें पात्रों के रूप में आते हैं। प्रकृति का मानवीकरण इनकी विशेषता रही है।

किसी समय मौखिक रूप में जीवित ये कहानियाँ सदियों से लोगों की ज़बान पर अपना विकास पाती हुई आज हमारे सामने है। इस मौखिक साहित्य को सुरक्षित रखने का जो कार्य कोंकणी लोगों ने किया है वह

अभिनन्दन के योग्य है। कोंकणी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उस लोकसाहित्य। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है। वेदों, पुराणों और संस्कृत अन्य कथासंग्रहों, गुणाढ्य की बृहत्कथा, पंचतंत्र, हितोपदेश, वेतालपंचविंश शुकसप्तति, शुक्रबहत्तरी का प्रभाव कोंकणी के इस मौखिक कथासाहि पर पड़ा है। बौद्धधर्म से संबन्धित जातक कथाओं का भी प्रभाव इनमें देख को मिलता है। इन कहानियों में कोंकणी लोगों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ओर संकेत मिलते हैं।

कोंकणी लोककथाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से कि जा सकता है-

१. राजा रानी संबन्धी कथाएँ
२. पशु पक्षी संबन्धी कथाएँ
३. नीतीसंबन्धी या उपदेशात्मक कथाएँ
४. धार्मिक कथाएँ
५. अलौकिक कथाएँ
६. बालकथाएँ

राजा रानी संबन्धी कथाएँ

सभी भाषाओं की लोककथाओं में राजा रानी की कथाओं का बड़ा ही महत्व रहा है। कोंकणी भी इसका अपवाद नहीं है। *एक था राजा और एक थी रानी* कहकर जब कथा शुरू होती है तब बच्चों में कथा सुनने की सजगता अपने आप आ जाती है। ये कथाएँ अलौकिक एवं आश्चर्यतत्व को लेकर आगे बढ़ती हैं। राजा से संबन्धित होने के कारण इनमें संपन्नता एवं कलात्मकता ज़्यादा रहती है। *भांगरा केसाची राजकन्या* (सोने के केशोंवाली राजकन्या) नामक कथा उदाहरण के लिए ली जा सकती है। इस कहानी

राजकुमारी का भाई स्वयं उसके सोने के केश को जो पानी में बह रहा हाथ में लेकर उस पर रीझ जाता है और माता पिता से हठ करता है। कहता है - *भांगराच्या केसांची कन्या पळय जी कोण ह्या राज्यांत आसा म्हाका बायल म्हणून हाडून दियात* (सोने के केशोंवाली कन्या जो कोई राज्य में है उसे पत्नी के रूप में मुझे लाकर देदें) [१०८] यहाँ सोने के केश जकुमार के साथ साथ सुननेवालों को भी हठात् आकर्षित करते हैं। जकुमार के हठ को पूर्ण करने के लिए राजारानी अपना धर्म भूलकर बेटे अपनी ही बेटी का, याने भाई से बहन का विवाह निश्चित करते हैं। किन राजकुमारी अपने भाई से शादी नहीं करना चाहती । वह सूर्य की र्थना करती है और शादी के मंडप में सूर्य प्रत्यक्ष होकर उसे ले जाते हैं। र्य के अपार तेज से राजकुमार की आँखें फूट जाती हैं और माता पिता साथ वह भीख माँगता फिरता है। इस कहानी में यह उपदेश दिया गया कि राजा को अपना धर्म निभाना चाहिए। इसी प्रकार *राजपुत्र आनी ल्ली* (राजकुमार और केकड़ी) कहानी में राजकुमार केकडी पर मोहित जाता है। केकडी बीच बीच में एक सुन्दरी का रूप ग्रहण करती है और चती गाती हुई समुद्र की लहरों पर खेलती रहती है। इसका वर्णन कथा खूब हुआ है। जैसे - *सद्दां सकाळफुडें सूर्य उदेवंचे वेळार उठप आनी रांतल्यान भायर सरून थेट समुद्रार वचप. थंय वेळेर आपल्या आंगाचें कट्टें ाडप, तें रेवेंत पुरप आनी एक सामकी सुन्दर कन्या जावप आनी उदकांत मुद्रा ल्हारांचेर नाचप, न्हावप, खेळप.तिळसान जायसर तिचें हें चलप. ागीर सूर्य अस्ताक वतकच आसलें तशेंच आपलें कट्टें हें आंगार चडोवप ानी त्या रेंदराल्या धरा वचप.* [१०९] (बड़े सबेरे सूर्योदय पर जागकर प्रतिदिन वह घर से निकलती थी और समुद्र की ओर जाती थी। वहाँ अपना शरीर का आवरण निकालकर तट पर रेत में गाड देती थी और एक सुन्दरी कन्या

का रूप ले लेती थी। वहाँ समुद्र के पानी में लहरों पर नाचती, नहाती अ
खेला करती थी। साँझ होते ही सूर्यास्त के बाद वह अपने शरीर का आव
फिर से डाल देती थी और तॉडी निकालनेवाले के घर जाती थी।) य
आश्चर्यपूर्ण वर्णन, राजकुमार का केकड़ी पर आसक्त होना, उससे शा
रचाने की इच्छा प्रकट करना, सब कुछ कथा को सरसता के साथ आ
बढ़ाने में सहायक रहता है। कोंकणी में ऐसी लोककथाएँ बहुत मिलती है
राजा रानी से संबन्धित आश्चर्य एवं अलौकिक तत्वों से युक्त कई अ
कहानियाँ भी हैं जैसे *राजा आनी शेवणें* (राजा और चिड़िया), *मंजुळ
राणयेचे पुत्र* (मंजुला रानी के पुत्र), *फकीर आनी राणी* (फकीर और रानी
दोन प्राणांची राजकन्या(दा प्राणों की राजकन्या)आदि।

कथाएँ राजा रानी से संबन्धित होते हुए भी इनकी पृष्ठभू
सामाजिक धरातल पर ही चित्रित होती थी। प्रजा का रक्षण करनेवा
राजा को अपना कर्तव्य ठीक ठीक निभाना होता था। क्योंकि प्रजा उन्हीं
करनियों का अनुकरण करती थी। समाज के लिए जो हितकर रहता है व
राजा को करना होता है। *मंजुळा राणयेचे पुत्र* (मंजुला रानी के पुत्र) ना
की कहानी में इसका अच्छा खासा उदाहरण मिलता है। [११०]

पशु पक्षियों से संबन्धित कथाए

प्राचीन काल से ही चली आनेवाली कोंकणी लोक कथाओं मे
प्रकृति का अपना अलग स्थान है। मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधा
प्रकृति में ही खोजता है। जीव जन्तु, पशु पक्षी, सभी उसके साथी रहते हैं
कहीं साँप आपदा से लड़के की रक्षा करता है और कहीं अन्य पशु पक्षी ए
वृक्ष लताएँ मनुष्य के सहायक बनकर आते हैं। अनेक कथाओं में परोपकार
के महत्व को दिखाया गया है।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः   परोपकाराय वहन्ति नद्यः
परोपकाराय दुहन्ति गावः   परोपकारार्थमिदं शरीरम्

ना संस्कृत श्लोक इन कथाओं में सार्थक बन जाता है। काली मिर्च, प, रस्सी, लाठी, सब मिलकर अपने मित्र, मनुष्य की सहायता करते [111] बिल्ली, बन्दर, कछुआ, सब इन कहानियों के पात्र हैं। पंचतंत्र के धार पर निर्मित ये कहानियाँ उपदेशात्मक ज़्यादा होती हैं। यहाँ पर केले पेड़ की शादी होती है। कहानी का नाम है - *केळीक व्हर्डीक कोरची णी* (केले के पेड़ के विवाह की कहानी) । यह प्रतीकात्मक है। केले के ग में रहनेवाली सुन्दरी की ओर ही यह संकेत करती है। इन कहानियों बाघ, सिंह, सियार, तोता, मैना सब हैं। ये सब कहानियों के पात्र हैं। नमें अच्छे भी हैं और बुरे भी। *कोलो आनी कोली* (सियार और सियारनी) ं सियार बड़ा चतुर है और सभी लोगों के साथ छल करनेवाला है। यहाँ सेयार उन लोगों का प्रतीक है जो समाज में दूसरों के साथ छल करते रहते हैं।

इन कहानियों में पशु पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हैं, आपबीती सुनाते हैं और जगबीती के बारे में वार्तालाप करते हैं। कोंकणी में *गाँवरान* (गाँव रूपी वन) नाम का संग्रह पशु पक्षियों से संबन्धित कथाओं का संकलन है। इसमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं। पहली कथा है *कोलो आनी कोली* । यहाँ सियार और सियारनी मनुष्य के समान जीवन बिताते हैं। वे गोबर से अपने घर का निर्माण करते हैं जो घर मूसलधार वर्षा में बह जाता है। देखिए - *तसो खर्यानीच झोड़ मोड़ पावस येयलो आनी कोल्याचें शेणाचें घर व्हावन गेलें. कोलो सामको भिजून कडकडूंक लागलो.* [112] (वैसे मूसलधार वर्षा हुई और सियार का गोबर का बनाया घर बह गया। सियार भीगकर ठंड से काँपने लगा।) हम इन जानवरों को मनुष्य के समान घर बसाते देखते हैं।

इस कहानी में बीच बीच में पद्य का प्रयोग कहानी की प्रभावात्मकता बढ़ाता रहता है। जैसे महालय पक्ष के उत्सव को न्योता देनेवाला सि लोगों से कहता है -

आलतडच्या लोकांनो	(इस, पार के लोगों
पलतडच्या लोकांनो	उस पार के लोगों
आपयल्या शिवाय येवनाकात	बिन बुलाये मत आना
वाडल्या शिवाय जेवनाकात	परोसे बिना भोजन न करना
कवडी धांपून गपचूप न्हिदात [113]	किवाड़ बन्द करके सो जाना)

अपनी पत्नी से जो विरोध है, सियार उसीको यहाँ उतारता है। सियार उद्देश्य की पूर्ति को समझने में ये पंक्तियाँ बडी सहायक रहीं। जब प पत्नी में एकता नहीं है तो परिवार किस प्रकार कठिनाइयों में पड़ जाता इसका सुन्दर चित्र यहाँ मिल जाता है।

इसके अलावा *भोळी आनी दुबो* (भोली और दुबो), *सोरपाचे लग* (साँप की शादी), *कोलो आनी दाद* (सियार दादा), *कोलो तवशीं खात* (सियार खीरे खाता है), *भट आनी वाग* (पुरोहित एवं बाघ), *इंदीर आन धोलके* (चूहा और ढ़ोलक), *राजा आनी शेवण* (राजा और चिड़िया), *राजपुत्र आनी कुल्ली* (राजपुत्र और केकड़ी),वाग आनी सोसो (बाध और खरगोश), *कोलो आनी म्हांतारी* (सियार और बूढ़ी), *चेलो आनी सूण* (लड़का औ कुत्ता), *सित्ती आनी मांकड* (सित्ती और बन्दर) इसी वर्ग के अन्तर्गत गिना जा सकती हैं।

नीति संबन्धी या उपदेशात्मक कथाए

लोक कहानियों के आस्वादक अधिकांशत: बालक ही हुआ करते हैं। इसलिए बालकों के कोरे कागज़ जैसे मस्तिष्क का ठीक ठीक प्रयोग

ने के लिए उन्हें ऐसी नीतिपरक कथाओं के प्रति आकर्षण प्राचीन काल
ही दिया जाता है। संस्कृत में एक श्लोक है --

यथा नवमृद्घटे लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते

कथाओं में हमारे आचार विचार, रीति नीति, धार्मिक विश्वास, आशा राशा, सुख दुःख की अभिव्यक्ति मनोहर रूप में हुई है।उपदेशात्मकता का प्रमुख स्वर है। उदाहरण के लिए *दुगुल आनी रुकाचें बावलें* (दुगुल र लकड़ी का पुतला) नाम की कहानी बच्चों को इस बात की शिक्षा देती कि पाप का प्रायश्चित्त ही परिहार है। *चेलो आनी सूण* कहानी इस बात शिक्षा देती है कि विश्वास मनुष्य की रक्षा करता है । मगरवाली कहानी अपने स्वार्थ के लिए दूसरों से जो लोग छल करते हैं वे परिहास के पात्र नते हैं और जिस समय उनका रहस्य बाहर आता है तब उनकी दुर्दशा ोती है। इन कहानियों की रचना पंचतंत्र के आधार पर ही हुई है।

ार्मिक कथाएँ

इनमें अधिकांश कथाएँ ईश्वर से संबन्धित रही हैं। मनुष्य अपने जीवन में ईश्वर में विश्वास करता है और हमेशा ईश्वर को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करता है। हिन्दी में कहावत ही चली है कि *जब भगवान देते हैं तो छप्पर फाड़कर देते हैं*। तभी तो अपनी शक्ति के बाहर की वस्तुओं के लिए वह ईश्वर की खोज में जाता है। कोंकणी लोगों का यह विश्वास अनेक कथाओं में प्रकट हुआ है। जैसे *म्हातारे पोर देवाक सोदूक वयता* (बूढ़ी का बच्चा ईश्वर की खोज में चलता है) कहानी में - *ह्या जल्माक आमी लोकाक जितलें दितात तेच्या दुप्पेटीन आमकां देव फुडल्या जल्मांत दिता.*[११४] (इस जन्म में हम दूसरों को जितना देते हैं उसका दुगुना ईश्वर

हमें आनेवाले जन्म में देते हैं।) यहाँ बूढ़ी के बच्चे को राजा अपनी बेटी बंगले और सारी सुविधाओंसहित ब्याह में देता है और अपनी माता पत्नी के साथ वह सुख का जीवन बिताता है। *म्हातारे पोरालें कामत* (के बच्चे का खेत) नाम की कहानी में खेतकाम करनेवाले बूढ़ी के बच्चे शंकर पार्वती का अनुग्रह मिलता है और वह सुख से जीने लगता है। ई भक्तों की परीक्षा लेते हैं। *भोळी आनी दुबो* कथा में[११५] ऐसा ही होता भोळी गाय और उसका बच्चा वन में रास्ता भूल जाते हैं। ईश्वर वहाँ के रूप में आकर गाय पर झपट पड़ते हैं। गाय कहती है कि वह बछड़े दूध देकर आएगी और बाघ उसे छोड़ देता है। जब लौटी तो बाघ उसे के लिए झपटा । इतने में दुबो ने उसकी रक्षा की। उसने कहा -

आगा आगा वागा	(आ जा आ जा बाघ आ जा
म्हाकाच खा गा	मुझे ही खा ले
नेण्टेल्या दुब्याक	अनजान दुबो को
म्हज्या सोडून दी गा[११६]	छोड़ दे)

ईश्वर ने वहाँ दोनों के प्रेम को साक्षात् देखा और उन्हें बड़ा सन्तोष हु इसी प्रकार *कोलो तवशीं खाता*[११७], *आटूल पेटूल*[११८] आदि कहानियों में ईश्वर की महत्ता का वर्णन देखा जा सकता है। इन कहानियों के अधिक पात्र सरल एवं धार्मिक रहे हैं। सब ईश्वर में विश्वास रखते हैं, वृक्ष, साँ राजा, सब छोटी छोटी समस्याओं के समाधान के लिए ईश्वर का सह चाहते हैं, स्वयं बच्चा भी अपने छोटी सी शंका के निवारण के लिए ईश् के पास जाता है।[११९]

व्रत एवं धार्मिक अनुष्ठान से संबन्धित कई कथाएँ भी प्रचलित जो कोंकणी लोगों की धार्मिक भावना की पुष्टि करती हैं। *एकादशी*

थळो (एकादशी का कौआ) नामक कथा इसका उदाहरण है। इस कथा एकादशी के व्रत का अनुष्ठान करनेवाले कौए पर आई हुई विपत्तियाँ स प्रकार दूर होती हैं और वह संपन्न एवं सुखी बन जाता है, इसका वरण मिलता है।[१२०] इसके अलावा *शिगमो* (होली), *महालय पक्ष, गणेश तुर्थी, दीवाली* आदि धार्मिक महत्व से युक्त व्रत एवं अनुष्ठानों के कई दर्भ भी इन कथाओं में देखने को मिलते हैं। *भटणीली चवथ* (पुरोहिताइन ी चौथ) कथा में चौथ का महत्व वर्णित है।[१२१]

लौकिक कथाए

लोककथाओं में श्रोताओं की रुचि को मन में रखकर कहानियों को रस एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चमत्कारपूर्ण घटनाओं का आयोजन हता है। मिट्टी को सोना बनाना, कुएँ के पानी में डूबकर सोने का रंग लेना, ोने के सींगों और रूपे के खुरोंवाली गाय, पाताल से होकर चलना, आकाश से उड़नेवाला कंबल, लाठी, साँप और कई अन्य चीज़ें कथा की मनोहारिता को बढ़ाती रहती हैं। भूत, प्रेत, पिशाच एवं कहीं कहीं राक्षस भी इस प्रकार का चमत्कार दिखाते हुए चित्रित किए गए हैं। *गांवरान* में ऐसी कई कथाएं मिलती हैं जो ऐसे चमत्कार को दिखाती हैं। *अमृतमुदी* कहानी में [१२२] ऐसा एक प्रसंग इस प्रकार वर्णित है - *तो येतकच शेख ताका घोड्यार मारता आनी नीट्ट घेवन पाताळांत वयता. थंय व्हरून तेका एका जाग्यार उबो करता आनी सांगता. अमुक कडेन आमगेलो म्हालशेख माथ्यार चिंबळ घेवन धन्नेक माथें मारून आसा, तू थंय वच आनी तेचे चिंबळीक माथें मार आनी तेचे कडेन अमृतमुदी माग. (*उसके आते ही शेष उसे सीधे पाताल ले जाता है। वहाँ ले जाकर उसे एक जगह खड़ा करता है और कहता है, इस जगह पर हमारा प्रवर (ज्येष्ठ) शेष माथे पर गेंडुरी लगाकर ज़मीन पर

माथा मारता रहा है, तुम वहाँ जाओ और उस गेंडुरी पर माथा टेको अ
उससे अमृतमुद्रिका माँग लो।) वैसे ही मांत्रिक फल खाने से गर्भ रहने अ
मांत्रिक लिंबू से प्रसूति के अनेक उदाहरण इन कथाओं में मिलते
म्हातारी आनी तिगेली सून[१२३](बूढ़ी और उसकी बहू) नाम की कहानी
इसी प्रकार का एक संदर्भ वर्णित है - *ते बराबर म्हातारी सुनेक एक लि*
दिता आनी सांगता, तुका वैजीण वियजीण कोण नाका. हो लिंबू घे आ
मड्डेर वच आनी खा तू बाळांत जातली. (उसके अनुसार बूढ़ी उसकी
को एक लिंबू देती है और कहती है, -तुमको दाई वाई की कोई ज़रू
नहीं। इस नींबू को ग्रहण करो और मन्दिर के सामने जाकर खा लो। तु
बच्चे को जन्म दोगी।) बहू वैसा ही करती है और नींबू खाकर एक सुन्द
कन्या को जन्म देती है। कीर से बिल्ली का गर्भ होना, कुएँ के पानी
डूबकर सोने का हो जाना, मृत व्यक्ति को जीवनदान देना आदि क्रमश
जानू गवळी[१२४] (दूधवाली जानू), *भांगरा चेल्ला* (सोने का लड़का)[१२५], *सातव*
जाव[१२६] (सातवीं भौजाई)) आदि कहानियों में वर्णित है। इसी प्रका
भावजेचो शालू (भौजाई की शाल)[१२७] *म्हातारे पोरालो लाडू* (बूढ़ी के बच
का लड्डू)[१२८] *म्हांतारो आनी भूत*[१२९] (बूढ़ा और भूत) *पड्वळ्या वाल आन*
भोंवर[१३०] (परवल का बेल और भौंरा) *भांगरा केसाची राजकन्या*[१३१] (सो
के केशोंवाली राजकन्या), *भांगरा पेटारो*[१३२] (सोने का पिटारा), *भांगर*
सिस्सोरा (सोने का घडियाल) *आंबो खावन कासवु जालो* (आम खाक
कछुआ बना), *भांगरा चेल्लो* (सोने का लड़का), *सोळा शिंगां रायु*[१३३] (सोलह
सींगोंवाला राजा) आदि कहानियाँ आश्चर्यजनक घटनाओं का चित्रण
करती हैं। *आंबो खावन कासवु जालो* कहानी का आम, *भांगरा सिस्सोरा*
में फूलों के ज़रिए शापमोक्ष प्राप्त करना, मृत राजकुमार को जीवनदान,

त्रेक चोगा आदि मनोरंजन प्रदान करनेवाली घटनाएँ हैं।

लकथाएँ

कोंकणी में एक गीत इस प्रकार चलता है -

ोळ्ळम्माली काणि अय्कूक	(दादी से कहानी सुनने के लिए
ल्नु धाल्नु एय्यायि	दौड़ते दौड़ते आ जाओ
ाणयेंतूलि रायु राणि	कहानी के राजा रानी बनकर
ाल्नु रत्ति निद्देयायि	रात को खूब सो जाओ)

था कथन में दादी तो प्रसिद्ध रही है। प्राचीन काल में हर एक घर में दादी हा करती थी और वे बच्चों को कहानियाँ सुनाती थीं। कहानियाँ सुनकर च्चे सो जाते थे और उनकी कहानियों के संस्कार बच्चों को प्रभावित रते थे। अक्सर लोक कहानियाँ बच्चों को लक्ष्य करके ही लिखी गई हैं। भी लोककथाएँ असल में बालकथाएँ ही हैं। फिर भी बच्चों के लिए प्यारी शु पक्षियों की कहानियाँ तो बालकथाओं के अन्तर्गत ज़्यादा रहती हैं। ाजा रानी की कथाएँ भी बालकों को बहुत सुन्दर लगती हैं। लेकिन छोटे ालकों के साहस की कथाएँ उन्हें ज़्यादा प्रभावित करती हैं। कोंकणी में सी अनेक कथाएँ हैं जो बालकों को लक्ष्य करके रची गई हैं और उनके लिए उपदेशों के भण्डार को लेकर तरह तरह के रंग भरे चित्रों से युक्त उनके समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं।

कोंकणी में ऐसी अनेक लोककथाएँ हैं। कुछ नाम इस प्रकार हैं *त्रकारिणील्यो चोरायो* (सरायवाली की चोरी), *मिरियाकोणाली काणी* (काली मिर्च की कहानी), *अंबो खावन कासव जाल्ला*, *भांगरा सिरस्सोरो*, *ोण बावलें आनी मेणबावलें* (गोबर की गुडिया और मोम की गुडिया), *अत्ति*

आनी पित्ती (अत्ती और पित्ती), *भांगरा चेल्लो, भांगरा केसाची राजकुमा*
दुगुल आनी रुकाचें बावलें (दुगुल और लकड़ी की गुड़िया), *चेल्लो अ*
सूण, (लड़का और कुत्ता), *सित्ति आनी मांक़ड* (सित्ती और बन्दर
म्हांतारी आनी *दुद्दी* (बूढ़ी और कद्दू), *भांगरा पेटारा* (सोने का पिटारा
आदि। *म्हांतारि आनी दुद्दी* नाम की कथा बच्चों को समय पर बुद्धि
प्रयोग करने की शिक्षा देती है। इस कथा में बूढ़ी माँ अपनी बेटी के घर ज
समय जब शेर, बाघ के पंजों से अपनी बुद्धि की सहायता से ही बच ज
है। वह इन हिंस्र जन्तुओं को आशा देती हुई उनके पंजों से छूट जाती
इस प्रकार कि

धुवेथंय वतां,	(बेटी के घर जाती हूँ,
तूप रोटी खातां	घी रोटी खाऊँगी
घटिमुटि जातां,	मोटी तगडी बनूँगी
मागीर तू माका खा	फिर तू मुझे खाना)

बूढ़ी का यह उपाय बच्चों के लिए बहुत ही आकर्षक बन सकता है। इ
प्रकार *सत्रकारिणील्यो चोराया* नाम की कहानी में कोई पिता अपनी बे
के घर जाकर जब लौटता है तब उसे एक मांत्रिक चक्की मिलती है। रा
में उसकी चोरी हो जाती है। दूसरी बार जब वह जाता है तो उसे मांत्रि
घड़ा मिलता है। रास्ते में वह भी चोरी हो जाता है। तीसरी बार उसे मांत्रि
लाठी मिलती है जिससे चोर को वह मार मार कर उससे पहलीवाली ची
भी ले लेता है। इस कहानी से बच्चों को इस बात की शिक्षा दी जाती
कि चोरी करना पाप है जिसका फल भुगतना ही पड़ता है। अन्य क
कहानियाँ आश्चर्यजनक धटनाओं से संबन्धित हैं जो बच्चों के लिए बह
ही आकर्षक लगती हैं। इन सभी कहानियों में कोंकणी समाज का ए
समग्र चित्र संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत रहता है। कहीं पिता पुत्री का संबन्ध

ह माँ बेटे का संबन्ध कहीं सास बहू का संबन्ध, भाई बहन का प्रेम, न
ां समाज के कौन कौन पक्ष हमारे सामने आते हैं। पुरुषप्रधान समाज का
ा भी कहीं कहीं उभर आया है । कहानियाँ हैं - *कोलो आनी कोली*
योर और सियारनी) *कवड्याची कवडुली* (तीतर और मादा तीतर)।
री कथा में स्त्री अपने पति के आदेशों का अक्षरशः पालन करती है ।
 भी ननद के कहे अनुसार पति क़िस प्रकार उस पर अत्याचार करता
सका ठीक ठीक चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है। *भयणीन तशें*
टकच कवडुल्याक सामको संताप मारलो . नीट्ट गेलो घरा. कावडुली
ीकडेन बसून रांदताली. तेणे आनी वेळ केलोना. रगड्याचो वांतो
डलो आनी कवडुलेच्या नाका बरोबर घातलो. तशी कवडुली आक्ताक
ी [१३६] (बहन के वैसे कहने पर तीतर को बहुत दुःख हुआ। वह सीधा घर
ना। मादा तीतर चूल्हे के पास बैठकर खाना पका रही थी। उसने अधिक
 नहीं की। बड़ा सा पत्थर लेकर मादा तीतर की नाक पर दे मारा। वह
णभर में चल बसी)। कोंकणी लोककथाएँ लोकहृदय की सरल और
ाल्पनिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इनका दायरा बहुत विस्तृत है। लोकजीवन
ी साधारण से साधारण घटनाओं का सरल भाषा में जैसे का तैसा वर्णन
न लोककथाओं में मिलता है। लोकाचार, धार्मिक विश्वास, रहन सहन,
ाशा निराशा, सुख दुःख की सुन्दर झाँकियाँ भी इनमें मिलती हैं।
नोरंजन और उपदेश देना इनका मुख्य काम होता है।

ुलनात्मक विवेचन

हिन्दी और कोंकणी की लोककथाओं के अध्ययन के पश्चात् हम
स निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि दोनों भाषाओं की कथाएँ, विषय, शैली
ादि की दृष्टि से समान अधिक हैं। इनमें असमानताएँ बहुत कम ही

मिलती हैं। हाँ तो दोनों कथाओं की भाषा अलग अलग है, यही सबसे असमानता है। कई कथाएँ ऐसी मिलती हैं जो दोनों भाषाओं में समान से चलती हैं। केवल नाम एवं स्थान की भिन्नता रहती है। कुछ कथाअ घटनाएं समानता लिए हुए हैं और कुछ कथाएँ ऐसी हैं जो पूर्णत: भिन्न हैं। इनका दोनों भाषाओं में अलग अलग तौर पर चित्रण किया गय कथाओं को मोटे तौर पर देखा जाय तो दोनों भाषाओं की कथाओं प्रवृत्तियों में भी कई समानताएँ देखी जा सकती हैं। जैसे मनोरं आश्चर्य एवं अलौकिक तत्व, भाग्य पर बल एवं विश्वास, जानवरों मनुष्य जैसा बर्ताव, दैवी शक्ति के ज़रिए असंभव बातें भी संभव हो जा विषम धड़ियों में पशु पक्षियों द्वारा मनुष्य की सहायता आदि।

हिन्दी की बालकथा *मूँग और मोठ*[१३७] दो लड़कियों की कहानी जिसमें मूँग सात्विक प्रकृति की और मोठ गर्व करनेवाली है। मूँग ने न के घर जाते वक्त रास्ते पर गाय के कहे अनुसार उसका चोथ उठाकर दिया, फिर आम की क्यारी साफ कर दी, नानी के घर जाकर उस सहायता की और बहुत सा सामान लेकर घर लौटी। मोठ को यह अ लगा। वह भी नानी के घर चली। लेकिन उसने किसी का कोई उपक न किया। लौटते वक्त उसको कुछ भी न मिला। वह उदास होकर भू ही घर लौटी। यही कथा कोंकणी में भी चलती है। नाम है - *भांगरा पेट* (सोने का पिटारा)[१३८] यहाँ जिन लड़कियों का चित्रण है उनमें एक का न *लाकी* है जो सात्विक प्रकृति की है और दूसरी *कम्मोळी* जो *लाकी* पड़ोसन है। *लाकी* दरिद्र है। चावल धोते समय उसके हाथ से एक चाव नीचे गिर जाता है तो माता उसे घर से बाहर कर देती है। रास्ते में ज वह पानी पीने जाती है तो केले का पेड़ मुरझाया हुआ दिखाई पड़ता है अ वह उसको पानी देती है। कुछ आगे बढ़ने पर सेमन्तिका मिल जाती

ञो भी मुरझायी हुई देखकर वह उसे भी पानी दे देती है। कुछ आगे ढ़ पर उसे एक हाथी दिखाई देता है जिसे वह पानी पिलाती है। वह ते चलते एक मन्दिर में पहुँचती है। जब रात होती है तो उसको अपनी स्था पर रोना आ जाता है। इसी समय महादेव और पार्वती उसे देख हैं और रोने का कारण पूछते हैं। *लाकी* सब कुछ बता देती है। उन्हें पर दया आती है। वे कहते हैं - मन्दिर की पहली मंजिल पर बहुत सी याँ हैं जिनमें से जिसे चाहे वह ले सकती है। वह पेटियों में से सबसे ी पेटी निकालती है और घर चली जाती है। लौटते वक्त हाथी उसे ना देता है, सेमन्तिका सोने के फूल देती है और केले का पेड़ उसे केले धौद देता है। घर आकर जब वह पेटी खोलती है तो उसमें सोना, रत्न, ी, मूँगे एवं हीरे चमकते हुए दिखाई देते हैं।

पड़ोस के लोग जब यह जानते हैं तब वहाँ की माँ अपनी बेटी *मोळी* को जबरदस्ती घर से बाहर कर देती है। रास्ते में केले का पेड़ लता है। वह न उसे पानी देती है न सेमन्तिका और हाथी को ही। मन्दिर कर बैठ गई तो महादेव पार्वती आ गये। उन्होंने जब पेटी लेने को कहा वह सबसे बड़ी पेटी निकाल कर ले गई। लौटते समय हाथी उस पर क्रमण करता है, केले का पेड अपने पत्तों के डंडों से उसे मारता है और मन्तिका सोने का फूल नहीं देती। घर पहुँचकर पेटी जो खोली तो उसमें चूहे, मेंढक, साँप, पनिहे, तिलचटे, मकड़ी और छिपकलियाँ बाहर कलीं। उसको धन नहीं मिला।

थोड़ी सी भिन्नताओं के रहते हुए भी हिन्दी और कोंकणी, दोनों थाओं की मूल धारा एक ही रही है। जो दूसरों का उपकार करता है वह पने सत्कर्मों का फल तुरन्त पा जाता है। कोंकणी कथा हिन्दी कथा से

बढ़कर प्रभावशाली बन गई है।

इसी प्रकार हिन्दी की *बिरण बई*[139] कोंकणी की *एक भयण अ*
सात जाण भाव (एक बहिन और सात भाई)[140] दोनों कथाओं का वि
समान रहा है। दोनों कथाओं में सात भाइयों की एक ही बहिन है। बि
बई के माता पिता तीर्थयात्रा पर जाते हैं तो उसे भाइयों के सुपुर्द कर
हैं। लेकिन उसकी भौजियाँ उसे वन में ले जाती हैं और चालाकी से अके
छोड़ आती हैं। बिरण बई को कई साधु ले जाते हैं और भीख मँगवाते
कथा का संक्षेप एक गीत में इस प्रकार दिया गया है।

सात भाइयों की एक बिरण बई
मोती खोदती थी
जोगी ने पकड़ा
माई माई भिक्षा दे

कोंकणी लोककथा का विषय भी इससे मिलता जुलता है। यहाँ भौजि
के बदले सात भाई बहिन से मिलने सात समुद्र पार चले जाते हैं। वहाँ भू
से तड़पते हुए भाई बहन को मारकर उसका मांस खा जाते हैं। एक भ
मांस नहीं खाता। बाकी छः भाई मिलकर उसको भी मार देते हैं और
लौटकर झूठ बोलते हैं कि एक भाई बहिन के पास रहा। भाई बहन दो
मिलकर बाद में आएँगे। लेकिन महीने बीत गए, कोई न आया। एक दि
उनकी माँ जब वन में लकड़ी लेने चली जाती है तो एक फैली हुई परव
की लता को देखती है। उस पर अनेक परवल थे। पास ही करेले की फै
हुई लता करेलों के साथ खड़ी थी । उसे आश्चर्य हुआ। वह परवल अ
करेला तोड़ने गई तो सारी कथा लता ने उसे सुनाई।

भावांनी भयणीचें	(भाइयों ने बहिन का
मांस खेलां	मांस खाया

\+ + + + + + + +

बायेचें मांस हांगा खेलें	बहिन का मांस यहाँ खाया गया
हावें उजो हाडलो आवय	माँ, मैं आग लेकर आया
बायेचें मांस खायनाथना	बहिन का मांस मैंने नहीं खाया
तांबडी भाजी खेली	लाल भाजी खाई)
देखून भावांनी म्हाकाय खेलो[१४१]	(इसलिए भाइयों ने मुझे खाया)

हाँ कोंकणी कहानी कुछ अविश्वसनीय लगती है, जहाँ हिन्दी कहानी हज ही है। इसी प्रकार की दूसरी कहानियाँ भी कोंकणी में मिलती हैं। हाँ भौजी की प्रेरणा से भाई बहिन को मार डालता है और ज़मीन में गाड़ ता है। यहाँ एक बेल उग आता है और सारा सत्य उगलता रहता है। इस हानी में यह दिखाने का प्रयत्न हुआ है कि सत्य की ही जीत होती है।[१४२] हाँ पर सामाजिक संबन्धों के गूढ़ एवं रहस्यमय पक्षों को खोलने का प्रयत्न हुआ है। कहानियों के अन्त में मरी हुई बहन को मन्त्रों की सहायता से जेलाकर सत् की असत् पर विजय दिखाई गई है।

हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में मनोरंजन का तत्व सब कहीं समान रूप से दिखाई पड़ता है। प्रायः सभी कथाएँ बच्चों को लक्ष्य करके लिखी गई हैं और सब में मनोरंजन का तत्व समाया हुआ है। कहीं कहीं आश्चर्य और अलौकिक तत्व भी बच्चों को खूब मनोरंजन प्रदान करते रहते हैं। हिन्दी की *भाग्य भाग्य महाभाग्य* कथा[१४३] इस प्रकार के कई आश्चर्यों का वर्णन करती हैं। यहाँ पर साहूकार का लड़का बत्तीसों दाँतों के साथ पैदा होता है और पैदा होते ही भगवान का नाम लेता है। इसी कथा में

पीतल के घड़े में सोने की मुहरों का निकल आना, कुएँ से परी का निकल आना और उनके जाते ही भाग्यशूर के लड्डुओं का हीरा बनना, स आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली बातें हैं। कोंकणी में अनेक कथाओं में इस प्रका के आश्चर्य का वर्णन मिलता है जिनमें *नवरंगी फूल* नामक कहा विशेषत: उल्लेखनीय है। इस कहानी में परियों के बदले देवरंभा का चरि चित्रित किया गया है। समस्त लक्षण परियों के ही हैं, केवल नाम की ह भिन्नता है। प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है - *करतां करतां मध्यरात जात आनी एक एक करून देवलोकांतल्यान सात जाणी देवरंभा सकल देंवतात सातय जाणी एका परस एक सुन्दर. सामके कांय तेंच्या तोंडार चांद सू नियाळतात. म्हातारे पोराक तेंका पळोवन आपूण सपनांत आसा का दृश्टात आसा तेंच कळना*[144] (देखते देखते आधी रात हो जाती है औ देवलोक से एक एक करके सात देवरंभाएँ नीचे उतर आती हैं। सात रंभाएँ एक से बढ़कर एक सुन्दर हैं। सही सही देखा जाय तो उनके मुख पर चाँद सूरज दिखाई पड़ते हैं। बूढ़ी के बच्चे को उन्हें देख कर ऐसा लग कि वह कहीं सपना न देख रहा हो। कोंकणी कहानियों की यही देवरंभा हिन्दी कहानियों में परी के रूप में दिखाई पड़ती हैं। *भाग्यवान राजकुमार* नामक कहानी में इनका विवरण इस-प्रकार दिया गया है - *सामने के तालाब में कई परियाँ रात को नहाने आती हैं। मैं तुझे अपनी जटा का एक बाल देता हूँ। जिस परी को तू मेरा बाल देगा वही तुझे प्यार करने लगेगी और अपने साथ इन्द्रलोक ले जाएगी। आकाश में जब चन्द्रमा चमकने लगता है तब ये परियाँ इन्द्रलोक से निकलकर नीचे आ जाती हैं। परियों को देखते ही राजकुमार ने गुलाब के फूल के साथ साधु की जटा के एक बाल को खूबसूरत परी के हाथ में रख दिया और वह राजकुमार पर मोहित हो गई। उसे उड़ाकर इन्द्रलोक ले गई। वहाँ जाकर राजकुमार के साथ*

का विवाह हुआ और दोनों सुख से जीने लगे।*[145] कोंकणी कथा में बूढ़ी के
त्रे का विवाह देवरंभा से होता है और दोनों सुख से रहने लगते हैं।[146]
कणी की *एक भयण आनी सात जाण भाव* नाम की कथा में माता पिता
बेटी एवं पुत्र को, जो मरने के बाद परवल और करेले के बेल के रूप
निकल आते हैं, जीवनदान देते हैं।[147] *भावजेचो शालू* नामक कोंकणी
था में मान्त्रिक मुद्रिका घिसकर उसका जल छिड़कने से मृत पुत्री को
वनदान मिलता है जो मरने पर बेल के रूप में परिवर्तित होता है।[148]
न्दी में *भाई बना नाग* कहानी में एक संपोला दूध के ज़रिए राजकुमारी
पेट में पहुँचता है और वहीं पलकर बड़ा साँप बन जाता है। रात को वह
हर आता है और दूध पीकर पुनः पेट में घुस जाता है। राजकुमारी का
ई उस साँप के तीन टुकड़े बनाकर बाहर फेंक देता है। यहाँ पर फूल के
न पेड़ उग आते हैं।[149] *पंखोंवाली परी* नामक हिन्दी कहानी में परी की
हायता से सेठानी की पालतू मैना एक सुन्दर लड़की बन जाती है और
सकी शादी हो जाती है।[150] इसी प्रकार पशुओं पक्षियों और जीवियों का
नुष्य बनना लोककहानियों में अक्सर दिखाई पड़ता है। यहाँ असंभव बात
भव बन जाती है। कोंकणी की कहानी *भांगरा सिस्सोरो* में शिव पार्वती
त्यक्ष होकर लड़की से कहते हैं कि वह धड़ियाल के मुँह में थोड़े से अक्षत
लकर बाद मे पूजा के फूल उसके सिर पर डाले। जब लड़की वैसा ही
रती है तो धड़ियाल मनुष्य का रूप धारण करता है और एक सुन्दर
जकुमार बन जाता है।[151] इसी प्रकार *मिर्‌याकणा कन्या* (काली मिर्चरूपी
न्या) नाम की कोंकणी कहानी में काली मिर्च सुन्दर कन्या का रूप ले
ती है।[152] *कुल्ली बायल* कहानी में केकड़ी सोने के केशोंवाली कन्या बन
ाती है।[153] *गावपी झाड, भांगराचें उदक, छप्पन भाशी कीर* नाम की
ोंकणी कहानी में धडनेवाले आश्चर्य के बीच किसी झाड़ से सप्तस्वर

सुनाई देते हैं, कोई तोता छप्पन बोली बोलता है और कहीं सोने का
छिड़ककर शूली पर चढ़ाई गई रानी को बचाया जाता है।[१५४]

हिन्दी और कोंकणी में राजा रानी की कथाओं में राजकुमार चित्रण जहाँ जहाँ मिलता है वहाँ वहाँ प्रेम का चित्रण भी रहता राजकुमार अक्सर निर्धन या अपने से हीन लड़की पर रीझ जाता है अ विरोधों के बावजूद उसे पाने का कष्ट करता है। इन कथाओं में राजा रा सामान्य लोगों के समान चित्रित हैं। अनेक संबन्धों का यहाँ साधारणीक हुआ है। संबन्धों की गरिमा पवित्रता और प्रेम की तेजस्विता को अने कहानियों में महत्वपूर्ण माना गया है। दोनों समाजों में लोककथाओं प्रचार प्रसार के लिए स्त्रियाँ ज़्यादा उत्सुक रहती हैं। व्रत, उपवा अनुष्ठान आदि के समय कथाकथन इसका प्रमाण है। कार्तिक स्नान समय स्त्रियाँ इस प्रकार की कथाओं का आदान प्रदान करती रहती हैं। इ कहानियों में सामाजिक संबन्धों का बड़ा महत्व रहा है। माता पिता, पु पुत्री, पति पत्नी, भाई बहन, मामा भानजा आदि संबन्धों का आदर्शात्म चित्रण इन कहानियों में मिलता है। कहीं कहीं ये संबन्ध स्वार्थ के प्रभा में आकर भ्रष्ट भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए *बिरण बई, बोलती जूती दो भाई, मूँग और मोठ, भाग्यवान लखटकिया* आदि। कोंकणी में *एव भयण आनी सात जाण भाव* (एक बहन और सात भाई) इसका एक अच्छ उदाहरण है। *भाग्यवान लखटकिया* कहानी में अपने पेटू पति से छुटकार पाने के लिए पत्नी विष मिलाकर उसे रोटियाँ देती है।[१५५] *बिरणबई* कथ में सात भाभियाँ मिलकर ननद, बिरण बाई को वन में अकेली छोड़कर घर लौटती हैं।[१५६] *बोलती जूती* में भाई बहन को ऐसा सबक सिखाता है वि बहन को अपने बुरे व्यवहार पर पछतावा होता है।[१५७] *दो भाई* नाम की कथ में आलसी एवं क्रूर बड़ा भाई अपनी बुरी करतूतों के कारण जानवरों द्वार

ं लिया जाता है।[१५८]

लोककहानियों की और एक विशेषता है जानवरों और मनुष्यों के च का संबन्ध। यहाँ पर जानवरों और मनुष्यों में कोई भेद नहीं दिखाई ता। सभी जीव मनुष्य का जैसा बर्ताव करते रहते हैं। वे मनुष्यों के जैसे वाद करते हैं, शर्त लगाते हैं और विजय में सन्तुष्ट दिखाई देते हैं।[१५९] ोंकणी के *नवरंगी फूल* नामक कथा में कीर एवं मैना मनुष्यों के जैसे ाजा की गायों को लेकर चराने जाते हैं और शाम को उन्हें लौटा कर ले ाते हैं। यहाँ कीर का नाम राधोबा रखा गया है और मैना का नाम साळू। । पशु पक्षी अपने मालिक को आपत्ति में पडे देख कर उसकी खूब सहायता करते रहते हैं।[१६०] कोंकणी के *मिर्‌याकोणाली काणी* नाम की कथा में बांझ ब्राह्मणी जब दुःख में पडती है तो काली मिर्च उसकी सहायता के लिए आती है। जब सेठ मुद्राएँ देने से इनकार करता है तब काली मिर्च, साँप, रस्सी और लाठी मिलकर ब्राह्मण की सहायता करते हैं और ब्राह्मण को सेठ से स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त होती हैं।[१६१] *एक जोता बारा जोता* नाम की कोंकणी कहानी में काली मिर्च मनुष्य के लिए खेत तक खाना ले जाती है, खेत जोतती है और मनुष्य की सहायता करती है।[१६२] यहाँ पर कोलो (लोमड़ी), कुल्ली (केकड़ी), शेळो (शैवाल),तोणो (लाठी), वाग (बाघ), उसके साथ हो लेते हैं। और एक कहानी में बूढ़े ब्राह्मण की चोरी की गई चीज़ों को लाठी, चोर को मार मार कर लौटा कर दिलाती है। *सात भातांची काणी* (सात धानों की कहानी) नामक कथा में कोई पक्षी मरे हुए राजकुमार को जिलाने की दवा दिलाता है।[१६३] हिन्दी की *बिल्ली और रानी* कहानी में महिला जैसा बर्ताव करनेवाली बिल्ली का चित्रण है। यहाँ पर बिल्ली सुन्दर साड़ी पहनती है, चाँदी के गहने पहनती है, पान खाती है और मुँह को लाल करती है और रानी के महल में चली जाती है। इसकी ओर कथा में संकेत इस प्रकार किया गया है -

मैं गोरी, रानी है काली, मैं तो रानी की हूँ साली
खाती खीर, चबाती पान, कभी नहीं लेती हूँ दान [१६४]

बदला नाम की कहानी में एक बकरी अपने बच्चों के हत्यारे किसी भेड़ि से मनुष्य के समान बदला लेती है।[१६५] *बिना विचारे जो करै वो पाछे पछता* नाम की हिन्दी कहानी में मनुष्य की सहायता करनेवाले पालतू बाज़ व कोई राजा निष्ठुरता के साथ मार डालता है। जब प्यास के ज़रिए रा के प्राण चले जा रहे थे तब मरनेवाले सर्प के द्वारा उगले विष को पानी समझक राजा पीने को तैयार हुए तो पालतू बाज़ ने उन्हें रोक लिया। उसने वि से राजा की रक्षा करने के लिए राजा के हाथ के लोटे पर झपटा मारक तीन बार नीचे गिरा दिया। आखिर बाज़ राजा की रक्षा कर ही गया।[१६] इसी से मिलती जुलती घटना कोंकणी कथा *जिवलावंती कन्या* में मिलत है।[१६७] यहाँ पर सिपाही प्यासे राजा को पानी पिलाने के लिए कहीं से पानी ले आता है और राजा के हाथ में दे देता है। राजा पानी के लोटे को मुँह तक ले जाते हैं कि उनकी पालतू मैना झपटा मारकर लोटे को राजा के हाथ से नीचे गिराती है। वह इसलिए है कि मैना जानती थी कि उसमें मरनेवाले सर्प के द्वारा उगला विष भरा हुआ था। राजा ने इसकी जानकारी के बिना गुस्से में आकर ज़मीन पर पटककर उसे मार डाला। बाद में राजा मान जाता है कि वह पानी नहीं, सर्प का विष था, तो उनको पछतावा होता है। *चेलो आनी सूण* (लड़का और कुत्ता) नाम की कहानी में किसी व्यापारी की थैली छीनकर कुत्ता पैसे देकर लड़के की सहायता करता है।[१६८] उसी प्रकार *सित्ती आनी मांकड* (सित्ती और बन्दर) कथा में कोई बन्दर अभावग्रस्त सित्ती की हर आवश्यकता को बड़ी तकलीफ उठाकर पूर्ण करता है।[१६९] वह सित्ती के पति को भी खोज निकालता है और उसे सुखी जीवन देता है। *नवरंगी फूल* में फूल को ले आने में बूढ़ी के बच्चे की सहायता करनेवाले होते हैं नेवला, चींटी आदि।[१७०]

किन्हीं किन्हीं कहानियों में भाग्य के बल पर दैवी शक्ति प्रकट होती है और कई असंभव बातों को संभव कराती है। कोंकणी का *भांगरा घस्सोरो* (सोने का घड़ियाल) उसका उत्तम उदाहरण है जहाँ शिव और पार्वती स्वयं प्रकट होकर लड़की को तकलीफों से बचने का उपाय बताते हैं।[१७१] *भांगरा चेला* (सोने का लड़का) कहानी में भाग्य के बल पर लड़का कुएँ में डूबकर सोने का बन जाता है और वह राक्षस से एक खड्ग, पुर्ता और उड़नेवाला कंबल प्राप्त करता है जिनसे उनके भाग्य का उदय होता है। कथा के अन्त में उनका ब्याह राजकुमारी से होता है और वह राजमहल में पहुँच जाता है।[१७२] *नवरंगी फूल* में राजा जब बूढ़ी के बच्चे को सेनापति नियुक्त करते हैं तो उसका भाग्योदय होता है।[१७३] हिन्दी में *भाग्य भाग्य महाभाग्य* नाम की कहानी में भाग्यशूर को सोने की सौ मुहरों से भरा पीतल का धड़ा मिलता है जिससे उसका भाग्योदय होता है। उसके लिए माँ के द्वारा दिये गये लड्डू परियों के द्वारा हीरे बनाये जाते हैं।[१७४] *भाग्यवान राजकुमार* नामक कहानी में राजकुमार को जब राजमहल से बाहर कर दिया जाता है तब वह जंगल में जाकर एक साधु की सेवा करता है और उसके ज़रिए परी को प्राप्त करता है। वह परी उसके जीवन में भाग्य लेकर आती है।[१७५] *जंगल का राजकुमार* कहानी में एक सामान्य लड़का अपने भाग्य से राजकुमार बनता है और राजकुमारी से शादी करता है।[१७६] *भाग्यवान लखटकिया* नाम की कहानी में भाग्य के भरोसे पर चलनेवाले लखटकिया का अन्त में भाग्योदय होता है । अपने भाग्योदय पर वह स्वयं कहता है - *क्यों रानी, मेरी बातें तुम्हें याद हैं? मुझे तो तुम विष भरी रोटियाँ खिलाकर मार डालना चाहती थीं यदि मैं मर जाता तो तुम्हें राजमहल में कौन रखता?* [१७७]

हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में मनुष्य के साथ साथ उसकी

सहचारी शक्तियों जैसे वनस्पतियाँ,पशुपक्षी, सागर, पहाड़, भूतप्रेत, देव
राक्षस, हवा, पानी सबका अस्तित्व मिलता है। ये कथाएँ व्यक्त करती
कि इनके बिना मनुष्य का अस्तित्व नहीं के बराबर है। अनेक स्थानों
ये मनुष्य के सहायक बनकर आते हैं। भाषाभेद और समाजभेद की अपे
दोनों भाषाओं की लोककथाओं में ऐसी प्रवृत्तियाँ समानता लिए हुए मिल
हैं। कई कथाएँ बिलकुल समानता लिए हुए हैं। हिन्दी कहानी *बात व*
दाम[१७८] और कोंकणी कहानी *जाली म्हाजी गोश्ट आतां टाक म्हजी म्होर*,
सन्तू और साईं[१८०] और *सत्रकारिणील्यो चोरायो,*[१८१] *विचित्र अंगूठी*[१८२] औ
अमृत मुद्दी[१८३], *नहले पर दहला*[१८४] और *सत्रकारिणील्यो चोरायो*[१८५] *सो*
चिरई[१८६] *और सोन सावळें*[१८७] *जादूगरनी बुढ़िया*[१८८] और *पातळ्यो आन*
पोर[१८९] कुछ उदाहरण हैं। बहुत कम स्थानों पर वातावरण की छोटी मोट
भिन्नताओं का प्रभाव देखा जा सकता है। दोनों भाषाओं की कई कथाअ
में निजंधरी कल्पनाओं की अनुगूँज भी मिलती है। ये कल्पनाएँ आदि
मानव की दमित इच्छाओं की अनजान अभिव्यक्ति रही हैं जो स्थान ए
काल के अनुसार परिवर्तित होने पर भी मूल में एक ही रही हैं। प्रतीकात्मकत
इनकी विशेषता रही है। लोकमंगल इनका ध्येय है। प्रत्येक समूह क
स्वभाव अपना सच्चा स्वरूप लेकर इन कहानियों में हमारे सामने आता है।
समूहगत भिन्नता इन कहानियों में देखने को मिलती है। भाग्य या दैवी कृपा
से अनुग्रहीत व्यक्तियों के प्रति पारिवारिक और सामाजिक संबन्धों को
नकारते हुए असूया एवं प्रतिकार का भाव दिखाने का वर्णन कई कथाओं
में आया है। अपनी जलन को शान्त करने के लिए कभी कभी इन
अभागिनों को मार डाला जाता है। लेकिन वे लता, फूल, या कमल बनकर
प्रकट होती हैं , अपने चिरन्तन विश्वास को दिखाती हुईं कि होनी होकर
ही रहेगी।

र्भ

आधुनिक निबन्धावली- विद्यानिवास मिश्र, पृ. ९४,९५

इक्कीसवीं सदी की ओर - सं. सुमन कृष्णकान्त, पृ. ३६

भोजपुरी लोकगीत - भाग-२- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. १९९,२००

भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश- भाग-१, रामविलास शर्मा, पृ. २३४

खड़ी बोली का लोकसाहित्य- डॉ. सत्या गुप्त, पूर्वभूमिका पृ. ए, ऐ

लोकसाहित्य विज्ञान- डॉ. सत्येन्द्र, पृ. ३९०

Myth rose in savage condition prevalent in remote ages among the whole human race, it remains comparatively unchanged.......Tylor,

Primitive Culture-vol-१, p. २८३ (लोकसाहित्यविज्ञान, पृ.३४ से उद्धृत)

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ३४

लोकगीतों में समाज- पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ३८

. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ.५०

१. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. ९७

२. हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य-डॉ. शंकरदयाल यादव, पृ.२००

३. हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य-डॉ. शंकरदयाल यादव, पृ.२००

४. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता- भाग-१-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. १२१

५. लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ९

६. दिल्ली अंचल की लोकसंस्कृति- डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ५६

७. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. १७६,१७७

८. खड़ी बोली का लोकसाहित्य- डॉ. सत्या गुप्त, पृ.८३

१९. भोजपुरी लोकगीत - भाग-२- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. १९९

२०. लोकसाहित्य का लोकतत्व - डॉ. रामनिवास शर्मा, पृ. १८३

२१. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. २४६

२२. अवधी का लोकसाहित्य - सरोजनी रोहतगी, पृ. २१३

२३. Wind of Fire-The Music and Musiciansof Goa-Mario Cabral Esa,
२४. Song of Goa - Jose Pereira and Micael Martins, pp. ५-८
२५. लोकवेद -एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभू देसाय, पृ. ९
२६. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ.२०
२७. कोंकणी लोकगीत (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. ५१
२८. कोंकणी लोकगीत (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. २८
२९. ता ता तिंगण- संतोषकुमार गुल्वाडी, पृ.११७
३०. कोंकणी लोकगीत (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. ५२
३१. कर्लेची बनवड- जयंती नायक, पृ.११८-११९
३२. ता ता तिंगण- संतोषकुमार गुल्वाडी, पृ.१२१
३३. लोकधन-शरतचन्द्र शेणै, पृ.१६
३४. लोकधन-शरतचन्द्र शेणै, पृ.१४
३५. लोकवेद -एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभू देसाय, पृ. २४, २५, २६
३६. तलय उखल्ली खेल्यानी- जयंती नायक, पृ.१०
३७. तलय उखल्ली खेल्यानी- जयंती नायक, पृ. २०
३८. तलय उखल्ली खेल्यानी- जयंती नायक, पृ. २५
३९. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ.१०७
४०. अमोणें - एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. १९२
४१. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ. ६१
४२. A Garland of Mando, Dulpad and Dekhni Part-२- C.M.Estibeiro,p
४३. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७२
४४. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७२
४५. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल)-कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. ८
४६. लोकगीतों में समाज- पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ३०
४७. संगोश्ठी प्रपत्र-कोंकणी लोकवोदांत पडबिंबीत जाल्ली कोंकणी मनशाची सामाजि
सांस्कृतिक आनी कौटुम्बिक जीण - जयंती नायक

भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता- भाग-२-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ३९

कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ. ३१

भोजपुरी लोकसंस्कृति - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ८६

भोजपुरी लोकसंस्कृति - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ९४

भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता- भाग-२-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ७१

कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ. २०

कोंकणी लोकगीत (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. ५५

कोंकणी लोकगीत (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. ५१

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. १३१

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. १४३

कोंकणी लोकगीत (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. १४

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ३५

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ५३

कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल)-कोंकणी प्रचार सभा, कोचि, पृ. ६७.

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ५४

एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता प्रकाशन, पृ. २३, २४

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ३२

सूर्या अशोक कोचीन से यह गीत प्राप्त हुआ.

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ४१

लोकधन-शरतचन्द्र शेणै, पृ. २१

लूर, लोरी विशेषांक,जनवरी २००५, पृ. ३८

लोकधन-शरतचन्द्र शेणै, पृ.१९

दिल्ली अंचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. २

१. गोंयच्या लोकवेदाचो रूपकार - श्याम वेरेंकार, पृ.६९

२. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ.१४४

३. दिल्ली अंचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १९

७४. लोकवेद -एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभू देसाय, पृ. २४, २५, २६
७५. दिल्ली अंचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ५६
७६. लोकवेद -एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभू देसाय, पृ. २४
७७. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ८२
७८. अमोणें - एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. ६३
७९. गोंयच्या लोकवेदाचो रूपकार - श्याम वेरेंकार, पृ. ७२
८०. भोजपुरी लोकगीत - भाग-२- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. १९४
८१. गोंयचें गिरेस्त दायज -श्रीनिवास प्रभू देसाय, पृ. ६५
८२. गोंयचें गिरेस्त दायज -श्रीनिवास प्रभू देसाय, पृ. ६५
८३. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. २२३
८४. खड़ी बोली का लोकसाहित्य- डॉ. सत्या गुप्त, पृ. ८९, ९०
८५. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ. १०९
८६. लोकसाहित्य की भूमिका- सत्यव्रत अवस्थी, पृ. ७१ (.खड़ी बोली का लोकसाहि
डॉ. सत्या गुप्त, पृ. १७३ से उद्धृत)
८७. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ.१२१
८८. लोककथासागर- भाग-१- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ७३
८९. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. १२८
९०. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ९, १०
९१. लोककथासागर- भाग-१- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ८५, ८६
९२. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ४०
९३. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. २१३
९४. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. २१४
९५. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. १९
९६. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ३५
९७. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. २१
९८. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ४२

लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ९०

. लोककथासागर- भाग-१- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ७५

. लोककथाओं के कुछ रूढ़ तन्तु -डॉ. कन्हैयालाल सहल, पृ. ८५

. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ८५

. लोककथासागर- भाग-१- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ८६

. व्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ. ५-७

. उत्तर भारत की लोककथाएँ- श्रीचन्द्र जैन, पृ. १३८

. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ५६

७. व्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ. ४९

८. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ.८२

९. गांवरान - जयंती नायक, पृ.१२२

०. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ.१

१. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ५२, ५३, ५४

१२. गांवरान - जयंती नायक, पृ. २

१३. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ४

१४. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १४

१५. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ३९

१६. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ४३

१७. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ७२, ७४

१८. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ९१

११९. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १७

१२०. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २१४

१२१. गांवरान - जयंती नायक, पृ. २०४

१२२. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १२७

१२३. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १३७

१२४. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ८३

१२५. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ७७
१२६. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ३३
१२७. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १४१
१२८. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १५०
१२९. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १५६
१३०. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १९३
१३१. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. ८०
१३२. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २४१
१३३. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ५६, ६३, ७७, ८०,
१३४. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ९६
१३५. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २२९, २४३
१३६. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ८९
१३७. व्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ ४९
१३८. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २४३
१३९. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. २०५
१४०. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १९७
१४१. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २०४
१४२. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १४१
१४३. उत्तर भारत की लोककथाएँ- श्रीचन्द्र जैन, पृ. १०७
१४४. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. ११२
१४५. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ९
१४६. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १२०
१४७. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २०४
१४८. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १४१
१४९. लोककथासागर- भाग-१- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. १४७
१५०. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ९

१. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ६४

२. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १४६

३. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १५५

४. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. ९७

५. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ५१

६. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. २०५

७. लोककथासागर- भाग-२- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. २७९

८. लोककथासागर- भाग-३- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ७७

९. व्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ. १८

६०. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १०५

६१. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ५२

६२. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. २९

६३. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ७०

६४. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ३५

६५. व्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ. ९

६६. व्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ. २६

६७. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १२६

६८. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ९२

६९. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ९६

१७०. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १०५

१७१. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ६४

१७२. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ७८

१७३. कोंकणी लोककाणयो- जयंती नायक, पृ. १२०

१७४. उत्तर भारत की लोककथाएँ- श्रीचन्द्र जैन, पृ.१०७

१७५. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ९

१७६. लोककथासागर- भाग-१- डॉ. विजय अग्रवाल, पृ. ७२

१७७. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ - श्रीचन्द्र जैन, पृ. ५१

१७८. राजस्थान की लोककथाएँ - यादवेन्द्र य़र्मा चन्द्र, पृ. २९

१७९. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ८

१८०. उत्तर प्रदेश की लोककथाएँ- सावित्री देवी वर्मा, पृ.८

१८१. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ४८

१८२. उत्तर भारत की लोककथाएँ-भाग-२- सावित्री देवी वर्मा, पृ.१

१८३. गांवरान - जयंती नायक, पृ. १२७

१८४. उत्तर भारत की लोककथाएँ-भाग-३- सावित्री देवी वर्मा, पृ.१

१८५. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ४८

१८६. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ.१३

१८७. गांवरान - जयंती नायक, पृ. ५९

१८८. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. २२

१८९. गांवरान - जयंती नायक, पृ. २३९

तीसरा अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य

(लोकनाट्य, कहावतें एवं पहेलियाँ)

लोकनाट्य - लोकनाट्य की भारतीय परंपरा - हिन्दी लोकनाट्य ामलीला - रासलीला - माच - भगत - नौटंकी - स्वांग - ख्याल - नाचा -विदेसिया - कोंकणी लोकनाट्य.- पेरणी जागर - गावडी जागर - वोली जागर - काला - गोपाळ काला - गौळण काला - लळीत - खेळ ‍इन्दू) - दशावतारी खेळ - रणमाले - खेळ त्रियात्र - त्रियात्र - तुलनात्मक वेचन -

कहावतें - कहावतों की परंपरा - हिन्दी कहावतें - सामाजिक कहावतें - धार्मिक कहावतें - नैतिक कहावतें - कोंकणी कहावतें - सामाजिक कहावतें - धार्मिक कहावतें - नैतिक कहावतें - तुलनात्मक विवेचन -

पहेलियाँ - पहेलियों की परंपरा - हिन्दी पहेलियाँ - घरेलू उपादान से संबन्धित पहेलियाँ - प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ - शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ - कोंकणी पहेलियाँ - घरेलू उपादान से संबन्धित पहेलियाँ - प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ - शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ - तुलनात्मक विवेचन -

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का शिल्पसौन्दर्य - शब्दसंपदा- अलंकार वैभव - प्रतीकयोजना

तीसरा अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य

(लोकनाट्य, कहावतें एवं पहेलियाँ)

लोकनाट्य

मानव जीवन की भाँति लोकनाट्य अत्यन्त प्राचीन है। मनुष्य की भावनाओं की प्रारंभिक अभिव्यक्ति संकेतों में ही मिलती है और ये संकेत ही अभिनय का प्रारंभिक रूप प्रस्तुत करते हैं। इसीका विकास बाद में चलकर अभिनयात्मक प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हुए नाट्यकला के रूप में हुआ। इस प्रकार नाट्य का भी उद्भव लोक से ही हुआ, इसमें दो मत नहीं हो सकते। प्रकृति आदिमानव के साथ हमेशा रही है और मानव प्रारंभ से ही प्रकृति का निरीक्षण सूक्ष्मता के साथ करता आया है। उसने पक्षियों को चहचहाते और बन्दरों को नृत्य करते देखा। इसके अनुकरण का प्रयास भी किया। इस प्रकार उसके जीवन का प्रारंभ ही नाटकीय रहा।

लोकनाट्य की भारतीय परंपरा

जैसे कि अन्य साहित्यिक विधाओं का उद्भव वेदों में देखा गया वैसे ही नाट्य का उद्भव भी यहीं से शुरू होता है। यम-यमी का आधार नाटक के निर्माण में बहुत सहायक रहा। मूर्तिरचना और पुत्तलिका का रूप बाद में चलकर बहुत ही लेकप्रिय बना। छायाभिनय के रूप में इनका प्रयोग होता रहा। नाट्योत्पत्ति के प्रसंग में इन कठपुतलियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सभी लोकनाट्यों में किसी न किसी रूप में सूत्रधार का प्रवेश रहता है और यह सूत्रधार कठपुतलियों की ही देन रहा। कठपुतलियों को नचानेवाला ही प्रारंभ में सूत्रधार कहा गया और बाद में चलकर

-ट्यरूप का नियन्ता बनकर वह सामने आया। कठपुतलियों का नाच
जस्थान, मारवाड़, मालवा, दक्षिण भारत के सभी प्रान्तों में प्रचलित रहा
और इसका सर्वदेशीय परंपरा का स्वरूप भी उपलब्ध है।

लोकनाट्य का रूप प्रारंभ में लोगों का मनोरंजन करनेवाला
था। भरत मुनि ने लोकनाट्य के बारे में इस प्रकार कहा है

स्वभावभावोपगतं शुद्धं तु विकृतं तथा।
लोकवार्ता क्रियोपेतमङ्गलीलाविवर्जितम् -
स्वभावाभिनयोपेतं नाना स्त्रीपुरुषाश्रयम्
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता[1]

समें शंका की गुंजाइश नहीं है कि सामवेद और अथर्ववेद की ऋचाएँ तथा ऋग्वेद के संवाद सामान्य लोक का मनोरंजन करनेवाले थे। इन्हींको बाद में लोकनाट्य के अंतर्गत स्थान दिया गया। इन लोकनाट्यों की सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि इनमें तनिक भी स्वार्थ की भावना नहीं रही। असल में पंचम वेद की रचना सामान्य लोक के मनोरंजनार्थ ही की गई थी।

वेदों के अतिरिक्त रामायण और महाभारत के गायकों में भी लोकनाट्य का आदिरूप देखा जा सकता है। इन्हीं गायकों का हाथ रासलीला और रामलीला के प्रचार के पीछे रहा है। प्राचीन काल में, विशेषत: भक्तिकाल में इसको खूब प्रचार मिला। इनके साथ साथ अन्य लोकनाट्यरूपों का भी विकास होता गया। इन लोकनाट्यों के मंचन के लिए विशेष तैयारियों की आवश्यकता नहीं रहती थी। इनका लक्ष्य जनजीवन तथा लोकसमाज के हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करना है। इनमें नृत्य, संगीत और अभिनय के तीन तत्व जो प्राप्त होते हैं वे जनमानस की प्रेरणाओं तथा कामनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। सामूहिक

आवश्यकताओं के कारण निर्मित होने से इनमें लोक में प्रचलित कथान विश्वासों तथा अन्य लोकतत्त्वों का समावेश रहता है। ये नाट्य लोकजी का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें हमारी प्राचीन संस्कृति का सहज रूप दे जा सकता है। विशाल जनसमुदाय की आशा आकांक्षा, जय पराज साहस संघर्ष मुखरित रहता है। सच्चे अर्थों में इनकी प्रेरणाभूमि लोकजी ही है। स्थानभेद या भाषाभेद के बावजूद ये विशेषताएँ लोकनाट्य में दे जा सकती हैं। लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विका इस नाट्यशैली में देखा जा सकता है। इनमें एक विशेष आकर्षण रहता जो सामान्य लोक को उसकी ओर आकर्षित करता रहता है। ऋतु उत्सव फसल के काटने के बाद आनन्द के क्षणों एवं अन्य विविध अवसरों प प्रत्येक प्रान्त में इन नाटकों का प्रदर्शन ग्रामीण क्षेत्रों में देखा जा सक है। इनमें जातिभेद या वर्णभेद के बिना सब लोग इकट्ठे होते रहते है बंगाल, बिहार, उड़ीसा. मालवा, राजस्थान, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गोव आन्ध्र और सुदूरवर्ती दक्षिण प्रान्तों में अपनी अपनी विशेषताओं से विभूषि लोकनाट्यों का निरन्तर जयघोष होता रहता है। अभिनय के अनग स्वरूप और वाणी के स्वाभाविक प्रवाह में यहाँ परंपरा से पोषित आस्था दर्शन होते हैं।

हिन्दी लोकनाट्य

जैसे कि अन्य भारतीय भाषाओं में देखा जाता है हिन्दी में भ लोकनाट्य के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। भाँड़, भड़ैत, नट, औ नक्कालों के ज़रिए लोकशैली के छोटे छोटे प्रहसनों को जीवित रखा गया विवाहोत्सव के अवसर पर बारात के विदा होते ही अनेक स्त्रियाँ स्वांग बनाती हैं। चाँदनी रातों में बालक बालिकाएँ परंपरागत अभिनय प्रस्तु

रते हैं। गाँवों के किशोर और युवकों में मौलिक घटनाओं के आधार पर प्रहसन उतारने की होड़ सी लगी रहती है। तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया इन प्रहसनों में खूब झलकती है। सामाजिक दोषों की यहाँ खुलकर खिल्लियाँ उड़ाई जाती हैं। इन लोकनाट्यों में कथानक, संवाद, संगीत और अभिनय के साथ साथ लोकविश्वास, परंपरागत मान्यताएँ, रीति रिवाज़, अभिप्राय आदि भी शामिल रहे हैं। आँचलिकता इनका प्राण रही है। लौकिक आचारों के साथ साथ लोकभाषा के गीत, कथाएँ, मुहावरे और स्थानीय बोलियों के ध्वन्यात्मक प्रयोग मंच पर पात्रों द्वारा प्रकट होते हैं। लोकनाट्य जैसा भी हो, मंच पर वह परंपरागत थाती लेकर ही प्रस्तुत होता है। उसे लोकविश्वास का आधार इसी कारण मिल जाता है। इसकी कथावस्तु पौराणिक ऐतिहासिक और सामाजिक होती हैं। आंचलिकता से प्रभावित संगीत की शैली इन लोकनाट्यों की शक्ति कही जा सकती है। यों तो ये नाट्यरूप अव्यवस्थित रहते हैं, फिर भी इनमें एक प्रकार की विशेष व्यवस्था रहती है।

हिन्दी लोकनाट्य के मुख्यतः दो रूप होते हैं। सामयिक लघु प्रहसन और रात भर अभिनीत गीतिनाट्य। पहले के अन्तर्गत तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया रहती है। इनमें हर बात हास्य व्यंग्य, धर्म और राजनीति में उलझती सुलझती अन्त में सुखान्त स्थिति तक पहुँचती है। गीतिनाट्यों की कथावस्तु धार्मिक, ऐतिहासिक और लौकिक होती है। रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत, और महाभारत की कथाओं ने धार्मिक नाट्यों का ताना बाना बुना है। ऐतिहासिक कथाएँ प्रायः मध्यकाल की हैं। और लौकिक कथाएँ पूर्णतः लोकप्रचलित। विषय जो भी हो अधिकांश नाटक धार्मिकता लिए हुए होते हैं। सभी में गीत, संगीत, और नाच की प्रमुखता रहती है। सामाजिक विषयों को लेकर चलनेवाले नाटकों

में कहीं कहीं हास्य व्यंग्य की प्रमुखता भी रहती है। हिन्दी लोकनाट्य कई रूप प्रचलित हैं जिनमें प्रमुख हैं-

रामलीला

लोकधर्मी नाट्य परंपरा में लीला नाटक का बहुत प्रचार रामलीला और रासलीला इनमें प्रमुख हैं। इनमें से रामलीला प्राचीन का से ही चली आ रही है। सुशक्त धार्मिक आधार होने के कारण यह विशे अंचल की न होकर समूचे समुदाय की धार्मिक, सांस्कृतिक कलात्म अभिव्यक्ति बन गई है। रामलीला का आधार राम की कथा है। कथा अनुसार इसके पात्र धार्मिक होते हैं। अधिकांश रूप में ब्राह्मण बच्चे रामलीला का मंचन करते हैं। सूत्रधार के रूप में संचालक बनकर व्या आते हैं। पात्रों की वेशभूषा चमकीली होती है। प्रसंग के अनुसार मुखौ का प्रयोग भी होता रहता है और रानी की वेशभूषा में गहनों का खूब प्रयो किया जाता है। जिस स्थान पर रामलीला की जाती है वहाँ का स्थानी रंग रामलीला पर पड़ा रहता है। धार्मिक होने के कारण भावनात्मक रू से सामान्य लोग इससे जुड़े रहते हैं। संगीत के लिए तबला, हारमोनियम मंजीरा आदि का उपयोग होता है। मानसपाठ इसकी विशेषता रही है।

प्रायः दशहरे के आसपास रामलीला का मंचन होता है। मंच ए प्रेक्षागृह भिन्न भिन्न स्थानों पर अपेक्षित दृश्य के अनुकूल बनाये जाते हैं विशेष रूप से इसका अभिनय मन्दिरों में ही किया जाता है। गंगा पार करने के लिए नगर के किसी जलाशय को चुना जाता है। एक विस्तृत मैदान में एक ओर अयोध्या रहती है तो दूसरी ओर लंका।

रासलीला

प्राचीन रंग परंपरा में धार्मिक मंच के रूप में रासलीला का अपना

ाग स्थान है। यह एक नृत्यप्रधान नाट्यरूप है जो श्रीकृष्ण के जीवन ृत्त को नृत्य और अभिनय के ज़रिए प्रस्तुत करता है। यह लोगों के लिए त ही प्रिय नाट्यरूप रहा है। रासलीला का मुख्य एवं प्रचलित अर्थ कृष्ण ी जीवनलीलाओं के मंचन से संबन्धित है। भगवान श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ मिलकर मंडलाकार नृत्य करना रासलीला का प्रमुख अभिनय है। ई नर्तकियों से युक्त इस समूह नृत्य को ही रास कहा जाता है। इस ाट्यरूप के पात्रों में सूत्रधार, कृष्ण, राधा, गोपियाँ और घटनाओं के नुरूप कई अन्य पात्र होते हैं। विदूषक के रूप में कृष्ण के सखा मनसुखा ा रहता है। पात्रों की वेशभूषा भड़कीली एवं चमकीली होती है।

रास व्रज की जनता का सरल आडंबरहीन रंगमंच है। इसमें नृत्य, त, वाद्य, संगीत आदि का अपूर्व समावेश रहता है। यों तो व्रज के ोकजीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति रास में होती है। फिर भी भगवान कृष्ण ा गोपियों के साथ मिलकर नृत्य करना इसका मुख्य विषय रहा है। इस ाट्यरूप की भाषा मुख्य रूप से व्रज ही है। लेकिन स्थानभेद के कारण समें कुछ परिवर्तन भी देखे जा सकते हैं। कृष्णभक्त कवियों के गीत, जन, और पद भी इसके साथ साथ गाये जाते हैं। वाद्यों में हार्मोनियम, ोलक, मंजीरा आदि का उपयोग होता है। नाट्य के अन्त में राधा कृष्ण ी आरती उतारी जाती है।

यों तो सभी नाट्यरूपों में संगीत और नृत्य की प्रमुखता रहती हैं फिर भी माच, नौटंकी भगत आदि संगीतप्रधान नाट्यरूप माने जाते हैं।

ाच

मध्यप्रदेश के मालवा अंचल की लोकसंस्कृति के विशाल धरोहर का अनमोल रत्न हे माच। भारतीय लोकनाट्य परंपरा में माच का अपना

अलग स्थान है। इसकी उत्पत्ति *माचा* शब्द से हुई है जिसका अर्थ है ख
या पलंग। माच शब्द संस्कृत *मंच* का अपभ्रंश रूप माना जाता है। इ
नाट्यरूप में धार्मिक कथाओं का समावेश रहा है। उसके साथ साथ लो
कलाकारों के मधुर कंठ से उद्भूत लोकगीतों का माधुर्य एवं ढ़ोलक के थ
पर नाचनेवाले लोककलाकारों के पैरों में बँधे हुए घुँघरू की झनकार रह
है। गाँवों में रात के अन्धकार में खेला जानेवाला यह नाट्य अत्यधि
लोकप्रिय रहा है। पुराणों से संबन्धित कई कथाएँ माच के विषय रहीं। मा
की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। समाज में होनेवाले परिवर्तनों के अनुस
माच के निर्माण में भी परिवर्तन आता रहा और कई अन्य नाट्यरूपों
प्रभाव इस पर पड़ा हुआ मिलता है। कई रंग शैलियों का मिला हुआ रू
इसमें प्रयुक्त किया जाता है। लोकप्रिय होने के कारण जनता की धार्मि
रुचि के अनुसार माच के विषय निर्धारित किए जाते हैं। पौराणिक कथा
जुड़ी हुई, कल्पना के धागे में बँधी हुई कई प्रेम कथाएँ इस नाट्यरूप
प्रयुक्त की जाती हैं। प्रेम के साथ साथ वीरता का चित्रण करनेवा
कथानक जैसे हीरा राँझा, मधुमालती, नीलावती, निहालदे सुलतान आ
का प्रयोग भी इस नाट्यरूप के अन्तर्गत किया जाता है। इसके पात्र क
विशेषताओं को लेकर चलते हैं। नायक अधिकांशतः वीर, साहसी एवं उच
कुलोत्पन्न होता है। मानवीय पात्रों के अतिरिक्त पशु पक्षियों को भी पात्र
के रूप में प्रस्तुत करने की परंपरा इनमें मिलती है। पात्रों की चारित्रि
विशेषता के साथ साथ दृश्यगत विशेषताओं को भी प्रस्तुत करनेवा
आकर्षक संवाद इस नाट्यरूप के केन्द्र रहे हैं। मुख्यतः ये पद्यबद्ध रहते
जिससे नाट्यरूप में सुन्दरता एवं आकर्षकता आ जाती है। ये संवाद मा
के आकर्षण हैं जो दर्शकों को हठात् आकर्षित करते हैं। चुटीले एवं व्यंग
भरे संक्षिप्त संवाद दर्शकों के सीने में तीर जैसे उतर जाते हैं। एक तर

हे लोकगीत नाट्य का रूप निखारता है। संगीत के सुरों में, ढ़ोलक की थप पर लोकगीतों के प्रभाव से इठलाता एवं बलखाता हुआ यह नाट्यरूप ती के साथ विकसित होता है। ढ़ोलक के बिना माच अधूरा है । ढ़ोलक केअतिरिक्त सारंगी, हारमोनियम, चिमटा, घुँघरू आदि भी इस नाट्यरूप के साथ चलते हैं।

माच का रंगमंच बिलकुल साधारण है। खुले तथा ऊँचे स्थान पर तख्त बिछाकर यह खेला जाता है। तीन ओर से खुला हुआ मंच इसकी विशेषता है। तख्त के एक कोने में गुरू का आसन है तो दूसरे कोने में ढोलकिया, सारंगिया आदि का स्थान रहता है। रात को शुरू किया गया नाटक सूर्योदय के पहले ही खतम हो जाता है। प्रकाश प्रभाव उत्पन्न करने के लिए प्राचीन काल में जहाँ मशालों का प्रयोग होता था, आजकल पेट्रोमाक्स या बिजली का उपयोग किया जाता है। पुरुष पात्रों के लिए पगड़ी, जरी का कोट, दुपट्टा, धोती और स्त्रियों के लिए लहंगा और ओढ़नी का उपयोग किया जाता है।

भगत

उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य परंपरा की श्रेणी में भगत का महत्वपूर्ण स्थान है। भगत की दो परंपराएँ प्रसिद्ध हैं। पहली है आग्रा की भगत परंपरा। दूसरी मथुरा और वृन्दावन की भगत परंपरा। यह नाट्यरूप धर्म से बँधा रहता है। इसी कारण से इनमें धार्मिक कथानकों का प्रयोग किया जाता है। जैन धर्म, नाथ पंथ, रामायण, पुराण आदि की कथाओं के साथ साथ ऐतिहासिक कथानक भी इसमें वर्तमान हैं। जैसे कि अन्य नाट्यरूपों में है, वैसे ही इसमें भी गीतों का प्रयोग बड़ी मात्रा में होता है। इसमें वेशभूषा को प्रमुखता दी जाती है और पात्रों को सजाने में दस पन्द्रह व्यक्ति मिलकर

पाँच छः घण्टों का श्रम करते रहते हैं। इस नाट्यरूप में लोकगीतों के सा साथ दोहा, सवैया, दुबोला आदि छन्दों का भी प्रयोग किया जाता है लोकवाद्यों के रूप में नगारा, तबला, ढ़ोलक आदि प्रयुक्त होते हैं। मं चारों ओर से खुला साधारण सा होता है।

नौटंकी

यह उत्तर प्रदेश का प्रमुख लोकनाट्य है। इसकी विषयशैली ए अभिनय में ही इसकी लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है कानपुर और लखनऊ इसके क्षेत्र रहे हैं फिर भी लोकप्रियता के कारण य नाट्यरूप प्रदेश का बंधन नहीं मानता। आज भारत में अनेक जगहों प नौटंकी का प्रदर्शन देखा जा सकता है। नौटंकी शब्द अपने अर्थ में ही इ नाट्यरूप का परिचय देता है। इस शब्द का अर्थ है लोकजीवन में बना शृंगार करनेवाली छिनाल स्त्री।[2] नौटंकियों का अभिनय प्रेमकथाओं क लेकर आगे बढ़ता है। यह किसी एक पहलू का चित्रण नहीं करता बल्कि पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक सभी कथानकों को अपने में स्थान देत है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, मोरध्वज और प्रह्ला आदि पौराणिक पात्रों के साथ साथ अमरसिंह राठौर जैसे ऐतिहासिक पा भी इस नाट्यरूप में मिलते हैं। लैला मजनू, हीर राँझा, गुलबदन आदि भ नौटंकी के लिए अपरिचित नहीं।

नौटंकी के कथानक के समान पात्र भी विविधता लिए हुए हैं प्रारंभ में इसमें केवल पुरुष ही अभिनय करते थे। बाद में ही स्त्रियों क नौटंकी के मंच पर उतारा गया। कहीं कहीं मानवेतर पात्रों की भूमिका भ इसमें मिलती है। अन्य नाट्यरूपों के समान सूत्रधार इसका संचालक होत है जो कथा को आगे लेकर चलता है। संवाद इसके प्राण रहे हैं और इनके

था नाटक का भारी काम भी आसानी के साथ प्रभावात्मक रूप से संपन्न होता है।

पात्रों की वेशभूषा, मुखसज्जा आदि की इस नाट्यरूप में प्रमुखता ता है। गीत संगीत इसके प्राण हैं। प्रमुख छन्दों में दोहा, गजल, शेर, व्वाली आदि का प्रयोग होता है। फारसी रंगमंच का प्रभाव इस पर खूब मिलता है। नौटंकी के प्रारंभ में समूहगायन की परंपरा है जिसका संबन्ध सी देवी देवता से होता है। इसके उपरान्त कथा का परिचय होता है। न्य नाट्यरूपों के समान नौटंकियाँ भी नृत्तमय अदायगी को लेकर आगे ढ़ती हैं। वाद्यों में प्रमुख नक्कारा है। इसके अतिरिक्त सारंगा, तबला दि का प्रयोग भी होता है। समूहगायन इसकी विशेषता है। इसका गमंच अन्य नाट्यरूपों के रंगमंच के जैसे साधारण होता है।

डॉ. सत्या गुप्ता ने नौटंगी, स्वांग और भगत तीनों को एक दूसरे ा पर्याय माना है।[3] भगत भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम है। स्वांग में गीतात्मकता ज़्यादा रहती है। इस कारण हम इसे संगीतरूपक कह कते हैं। इसमें प्रमुख लोककथाओं का खेल रहता है। विषय शृंगाररस-धान अथवा प्रेमगाथा की कोटि का होता है। रोमांस का यह संस्पर्श स्वांग ो मूल विशेषता है। नौटंकी में भी नौटंकवाली कोमलांगी नारी नायिका हती है। नौटंकी, स्वांग और भगत का मुख्य छंद चौबोला है। मेलों के वसरों पर इन नाट्यरूपों का विशेष आयोजन होता है। ग्रामीण जनता की ाट्यवृत्तियों का समाधान करनेवाले मुख्य साधनों में नौटंगी अत्यधिक हत्वशाली है।

स्वांग

स्वांग भी उत्तरप्रदेश की रंगपरंपरा को दिखाता है। यह लोकजीवन एवं लोकव्यवहार में प्रचलित शब्द है और लोकनाट्य के लिए स्वांग शब्द

का ही प्रयोग किया जाता रहा।[४] वैसे तो हरियाना और राजस्थान में प्राचं काल में ही स्वांग की परंपरा चलती आ रही है। इनमें प्रमुख रूप प्रेमकथाओं का प्रयोग होता रहा है। शृंगार रस के साथ वीर रस का प्रयो इसकी विशेषता रही है। अन्य लोकनाट्यों के समान स्वांग में भी विषय अनुरूप पात्रों में परिवर्तन देखा जाता है। इसमें भी सूत्रधार का अस्ति रहता है जिसके साथ साथ एक हास्य पात्र भी रहता है जो मुंशीजी के ना से प्रसिद्ध है। दूसरे लोकनाट्यों के समान इसमें भी गीत संगीत का मह रहता है। विभिन्न छन्दों और रागों के साथ साथ लोकगीतों का भी प्रयो रहता है। प्रदेश जो भी हो स्वांग की भाषा मूलत: हिन्दी रही है। स्थानी बोली का पुट भाषा पर अवश्य रहता है। संवाद मूलत: पद्यबद्ध रहे हैं रंगमंच खुले मैदान में तख्तों की सहायता से बनाया जाता है।

ख्याल

यह राजस्थान का लोकप्रिय नाट्यरूप है । इसके छब्बीस प्रका माने गये हैं।[५] ख्यालों के कथानक धार्मिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक र हैं। यह नाट्यरूप शृंगार रस के रंग में रंगा हुआ है। वीरता एवं पराक्रम वे ऐतिहासिक कथानकों का प्रचलन भी इसमें रहा है। अन्य नाट्यरूपों वे समान साधारण मंच पर ही इसका मंचन होता है। ख्याल में पात्रों की वेशभूषा और मुखसज्जा का भी अपना महत्व रहता है। वेशभूषा पात्रों वे अनुरूप रहती है और पात्रानुसार इसमें परिवर्तन आता रहता है। कहीं कहं इन पर स्थानीय रंग भी चढ़ा हुआ दिखाई देता है।

नाचा

नाचा छत्तीसगढ़ का अनमोल रत्न है। दिन भर काम करते हुए थककर लौटकर आनेवाला व्यक्ति जब नाचा के आयोजन की खबर सुनत

रन्त ही अपनी थकान भूलकर नाचा देखने के लिए दौड़ पड़ता है। जैसे ाम से स्पष्ट है यह नाट्यरूप नृत्यप्रधान है। इसलिए मनोरंजन का मूल ान माना जाता है। प्राचीन काल में मूल रूप से इसका आयोजन हार, मेले आदि के अवसर पर होता था। इसका कथानक धार्मिक ाओं के साथ साथ सामाजिक जीवन पर भी आधारित रहता है। इसका ानय सीधा सादा है। चार बाँस गाड़कर एक टट्टा बनाया जाता है सके चारों तरफ दर्शक सटकर बैठ जाते हैं। इसमें भी स्त्री पात्रों की ाका पुरुषों के द्वारा की जाती है। हास्य की सृष्टि के लिए दो पुरुष पात्र ी बनकर नाचते एवं गाते रहते हैं। पात्रों के चयन में गायकी को महत्व ा जाता है। एक वादक मंडली इसमें होती है, एक विदूषक तथा स्त्री ्रधारी पुरुष भी होता है। इन्हीं के द्वारा ही नाचा का कार्यक्रम प्रस्तुत या जाता है। वेशभूषा साधारण होती है। भाषा मूल रूप से छत्तीसगढ़ी ती है। हास्यपूर्ण संवाद दर्शक को हँसा हँसा कर लोटपोट कर देते हैं। लविवाह, विधवा-विवाह, छुआछूत, शोषण, आदि के विरुद्ध इसमें आवाज़ ठाई जाती है जिसमें इस नाट्यरूप की सामाजिक प्रतिबद्धता ठीक ठीक क्त होती है। वाद्यों में प्रमुख रूप से मंजीरा, तबला, हारमोणियम आदि ा प्रयोग होता है।

ादेसिया

यह बिहार की लोकसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह त्तरप्रदेश तथा बंगाल का लोकप्रिय नाट्यरूप रहा है। रामचरितमानस था रामलीला से प्रेरित होकर भिखारी ठाकुर ने विदेसिया की रचना की। वेदेसिया नाटक की मूल कथा एक नव विवाहिता की विरहकथा है जिसका ति जीविका कमाने के लिए शहर में जाता है। कोई खबर न मिलने पर

पत्नी किसी बटोही के साथ संदेशा भिजवाती है। शहर में आने पर प चलता है कि उसका पति किसी वेश्या के मोहजाल में फँसकर अपने कर्त से विमुख हो गया है। बटोही उसे तरह तरह से समझाता है और घर लौ के लिए प्रेरित करता है। अन्त में नायक नायिका मिलन के साथ नाट समाप्त हो जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता उसकी सामाजिकता विषयवस्तु की समसामयिकता, सामाजिकता, एवं लोकरंजन ही विदेसि का लक्ष्य रहा है। विदेसिया के पात्र अन्य नाट्यरूपों के समान लोकनाट शैली को लेकर आगे बढ़ते हैं। यहाँ भी स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुषों के द्व ही दिखाई जाती है। सूत्रधार के अतिरिक्त अन्य पात्र कथानुरूप होते हास्य की उत्पत्ति के लिए धोबी धोबिन का समावेश इसमें हुआ है। वेशभू चरित्र के अनुरूप होती है। प्रारंभ में भवानी की वन्दना होती है। नाट्य में संगीत एवं नृत्य का बड़ा महत्व है। चौबोला, दोहा, सोरठा, पूरब बारहमासा, सवैया, आल्हा आदि के उपयोग से संगीत का एक समां ही ब जाता है। संगीत के लय को बाँधने के लिए तबला, बाँसुरी, सारंगी, ढ़ोल आदि का प्रयोग किया जाता है। इनको बजानेवाले वादकगण को समार कहा जाता है जो रंगमंच पर पूरे नाटक के दौरान उपस्थित होते हैं। सा में वे अभिनय भी करते हैं। *साँच बरोबर तप नहीं* वाला दोहा पूरे नाटक दौरान बार बार दोहराते हैं। इस नाट्यरूप की भाषा मुख्य रूप से भोजपु है। संवाद पद्यमय हैं जो छन्दों एवं रंगों में बँधे होते हैं। रंगमंच साधार होता है जो तख्तों की सहायता से बनाया जाता है। बिहार के ग्रामीण जीव में आज भी यह लोकनाट्य आकर्षण का केन्द्र रहा है।

लोकनाट्यों में आम तौर पर संगीत और नृत्त की भरमार होती है बुन्देलखण्ड का स्वांग, उत्तर प्रदेश की नौटंकी, मालवा का माच, छत्तीसग का नाचा, बिहार का विदेसिया, सभी में संगीत और नृत्त को अलग करन

ंव नहीं है। पहले संगीत और नृत्त का उद्भव हुआ और इसके विकसित ो होते बाद में मंच की परिकल्पना की गई। घटना, चरित्र, संवेदना, भिनय और सज्जा में भी यह विकास दिखाई पड़ने लगा। बाद में अनेक माजिक और धार्मिक सरोकारों से परिव्याप्त होकर लोकनाट्य जीवन में क आशयों को प्रकट करनेवाला कलानिधि बन गया। लोकनाट्य किसी ो प्रदेश का क्यों न हो उसका मूल आधार सामाजिक संरचना के तर्द्वन्द्वों में रहता है। इसलिए जीवन की यथार्थपरक दृष्टियाँ इसमें लक्षित होती हैं। रास सामूहिक नृत्य का पर्याय है। इसकी लय और ीत कृष्णचर्या में लोकप्रेरणा से ही संभव हुई है। रामलीला पर तुलसीदास र उनके रामचरितमानस का प्रभाव रहा है। नाथ, सिद्ध संप्रदाय के सिद्ध वे कण्हप्पा के काव्य में स्वांग का उल्लेख है। सामान्य लोग अपने राध्य सगुण का अनुकरण करते रहते हैं। इस अनुकरण में लोकविश्वास, कमनोविज्ञान, लोकव्यवहार एवं लोकरंग का समावेश रहता है। वैष्णव क्ति आन्दोलन का इन लोकनाट्यों पर काफी प्रभाव रहा है। इसके पीछे राध्य का अनुकरण करते करते आराध्य को अपने अनुरूप इन नाट्यरूपों प्रस्तुत किया गया है। अनुकरण के साथ साथ अनुकार्य को अपने रोकारों से संपन्न करने की प्रवृत्ति इन लोकनाट्यों में मिलती है। क्षेत्रीयता आधार पर इनके भिन्न भिन्न रूप प्रस्तुत हुए हैं।

ोंकणी लोकनाट्य

कोंकणी लोकजीवन में नाट्य का बड़ा ही महत्व रहा है। समाज विभिन्न प्रकार के उत्सवों, मेलों एवं अनुष्ठानों से संबन्धित कलात्मक भिव्यक्ति में प्राचीन काल से ही इनका समावेश होता रहा है। इन ाट्यरूपों में चित्रित विषय एवं पात्र किसी न किसी प्रकार से जीवन से ो संबन्धित रहते हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य सामान्य लोगों का मनोरंजन

रहता है। मूलतः शिगमो (होली) के मंच पर नाट्यमयता की अनुभूति अ
रहती है। ये नाट्यरूप नगरों की अपेक्षा गाँवों में विशेष पद्धति के ज
चलते हैं। प्रत्येक प्रदेश के लोकनाट्य की अपनी अलग परंपरा रहती
कोंकणी में भी हम इसे देख सकते हैं।

यों तो कोंकणी में लोकनाट्य के रूपों की प्रायः कमी रहती
फिर भी जो चलते हैं वे समृद्ध होकर चलते हैं। जिनमें प्रकृति के वि
घटकों एवं लोकशैली का प्रयोग रहता है। कोंकणी के लोकनाट्यों
संदर्भ में मुख्य रूप से चार प्रकार के विषय एवं नाट्यरूप पाये जाते
(१) सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व की कथा। मुखौटों के प्रयोग से युक्त
पेरणी जागर नाम के नाट्यरूप में मिलता है। (२) दशावतार की संकल
पर आधारित सूत्रधार आदि से युक्त नाटक के रूप में गणना वि
जानेवाला नाट्यरूप जिसे *काला* कहते हैं। (३) लोकशैली से युक्त रामक
से संबन्धित *रणमाले*। (४) पुराणकथाओं से संबन्ध न रखते हुए के
सामाजिक विषयों से संबन्धित खेले जानेवाले *गावड जागर*। इनके अल
कोंकणी में नाट्यरूप का और एक प्रकार मिलता है जो ऊपर कहे गये च
प्रवृत्तियों के नाट्यरूपों से भिन्न रहता है। इसे *त्रियात्र* कहते हैं। ये विशि
लोकशैली पर बनाये गये होते हैं। पारंपरिक रूप से भिन्न इस नाट्यरूप
उत्पत्ति के बारे में व्यक्त जानकारी नहीं है। फिर भी इसका विक
बिलकुल हमारे आँखों के सामने रहा है।

पेरणी जागर

इसमें कथा सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व की रहती है। स्त्रियों
काम यहाँ स्त्रियाँ ही करती हैं। अनेक पात्र मुखौटों का सहारा लेते
नाट्य के प्रारंभ में गणेशवन्दना होती है। फिर सरस्वती की। ये ही पेर

ागर की विशेषता है। मन्दिर के प्रांगण में सभामंडप में इसका खेल चलता । गोवा के फोंडा, केपें और काणकोण प्रदेश के मन्दिरों में *जागर* का चलन रहा है।[६] पेरणी समाज देवदासियों के समाज के जैसा रहा है। इस माज में स्त्रियों का विवाह नहीं होता। जो स्त्रियाँ जागर में शामिल होती उन्हें घर पर ही ठहराया जाता है। संगीतरत्नाकर में इस पुराने समाज ा लक्षण इस प्रकार दिया गया है। *सभाजन मनोहारी यो नृत्यति स पेरणी* तरत्नावली में भी इस जाति से संबन्धित टिप्पणी मिलती है।[७] भारतीय ांस्कृति कोश (५ /६६०) में पेरना (पंजाब) समाज का संदर्भ दिखाई देता । इस समाज की स्त्रियाँ कसरत के खेल एवं नाचगान करती थीं। कन्नड़ ादेश में पेरना का अर्थ मुखौटे से युक्त नाच रहा है। इन सबसे गोवा के रणी समाज का संबन्ध रहा है। इस समाज के पचास परिवार गोवा में रहे हैं। वाघुर्मे, मळकर्णे, पैंगीण आदि प्रदेशों में *जागर* प्रस्तुत करनेवाले पेरणी होते हैं। उनके पास मुखौटे एवं जागर से संबन्धित अन्य साहित्य भी मिलता है। *जागर* अक्सर रात को प्रस्तुत किया जाता है। इसकी रंगभूषा पेरणी लोग स्वयं करते हैं। आस पास के गाँव से अनेक प्रेक्षक *जागर* देखने के लिए आते हैं।

पचीस से चालीस तक कई प्रकार के मुखौटों का प्रयोग इसमें होता है। मन्दिरों की अग्रशालाओं में इसकी वेशभूषा सजती रहती है। सर्वप्रथम गणेश का मुखौटा लेकर उस पर फूल सिन्दूर आदि चढ़ाया जाता है और उसकी वन्दना की जाती है। यह नाट्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए किया जाता है। ढ़ोलक और झाँझ का उपयोग इसमें होता है। जागर प्रस्तुत करनेवाला ईश्वर का नमस्कार करते हुए मण्डप में आकर पिटकोली (वन के लाल फूल) की माला पहनता है। उसके सामने एक सफेद परदा रहता है। फिर

पयले नमन करू सरस्वती माते
सरस्वती शारदा रंगे आली माया '

कहकर सरस्वती की वन्दना होती है। इसके बाद मन्दिर के प्रमुख दे देवताओं की वन्दना गाई जाती है। सर्वप्रथम गणपति और सरस्वती मुखौटे पहन कर नाच किया जाता है। गणपति की पूजा अन्य लोकना प्रकारों के समान होती है। सरस्वती का मुखौटा पहननेवाली कुमारी हो है। *जागर* में प्रथमतः किसी बूढ़ी का मुखौटा पहनकर कोई पुरुष आता बूढ़ी *आदिमाया पातली हो* जाती है। बूढ़ी के अनेक संवाद होते हैं जिस सारांश यही होता है कि आदिमाया का यह सब खेल है। इसके ब सौदागर पठान आदि सामाजिक पात्र आते हैं। इसके बाद तरह तरह मुखौटे पहनकर पात्र आते हैं। ये गाते एवं नाचते हुए लौट जाते हैं। अश्ली भाषण करनेवाले हिजड़ा पात्र भी इसमें हैं। इसके चालक पेरणी होता है यही पात्रों का परिचय कराता है और उनसे संवाद करता रहता है। म कैटभ (मादू, किट्टू) राक्षस आते हैं और विष्णु उनका वध करते हैं। घोड़ बाघ आदि भी पात्रों के रूप में रहते हैं। अन्त में इश्वर की प्रार्थना से जाग की समाप्ति होती है। स्त्रियाँ मुखौटा नहीं पहनतीं। पदन्यास एवं विशि हस्तमुद्रा स्त्रियों की विशेषता है।

गावडी जागर

गावडी जागर नाम का लोकनाट्य गोवा के गावडी समाज के द्वा प्रस्तुत किया जाता है। फोंडा के प्रियोळ, वेलिंग, तिसवाडी के चिंबल करमली आदि स्थानों पर इसका प्रचार है। मार्च या अप्रैल के महीने इसका खेल होता है। सायंकाल में गाँव के लोग एक स्थान पर जमा हो हैं और दिया जलाकर नारियल फोड़ते हैं। गाँव के लोग ईश्वर की प्रार्थन

ते हैं। इसके बाद रात के दस बजे जागर प्रस्तुत करनेवाली मंडली ती है और वेशभूषा की तैयारियाँ करती है। फिर विधिवत् ईश्वर वन्दना ती है और नाटक शुरू होता है।

इस नाट्यरूप के साथ आघातवाद्य, नगाड़ा, मंजीरा, झाँझ आदि र रहते हैं। इस नाट्यरूप की कथा पुराणों से संबन्धित नहीं है। गाँव के माज के सुनार, महर, चोर, आदि तरह तरह के अच्छे और बुरे पात्र मंच पर आकर नाचते हैं। दो चार पात्रों का इस प्रकार अभिनय रहता है स्त्रियों का अभिनय यहाँ पुरुष ही करते हैं। नमन के अवसर पर गणेश साथ अनेक ग्रामदेवताओं का नमन किया जाता है। गायक वादक सभी न के गीत गाते हैं। इन देवताओं में गणेश, नागेश, नागवन्ती माया, ाल, सांतेरी, केशव, कालभैरव, महालसा, मंगेश आदि का नमन होता । जागर ईसाइयों का भी होता है जिसमें फिरंगी युवतियों का विशेष शभूषा के साथ मंच पर आगमन होता है। इनके साथ दो फिरंगी पुरुष भी थ में लाठी लेकर कोट पतलून पहने हुए आते हैं। इनकी भाषा पुर्तगाली ब्दों से युक्त रहती है। सामाजिक समस्याओं से युक्त कथानक का ही समें प्रयोग रहता है। इस प्रकार स्थल- काल- भेद के अनुसार इसमें पात्र ाते हैं। ये गाँव के समाज का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करते हैं। कहीं हीं अश्लीलता का पुट भी दिखाई देता है। देवी देवताओं को जागृत करने कारण इसका नाम जागर रखा गया है। ऐसा विश्वास है कि जागर का खेल बन्द करने से देवताओं का क्रोध होता है। गोमन्तक पर शासन करनेवाली भिन्न भिन्न सत्ताओं के प्रतीकों के रूप में मुसलमान, पाखलो पुर्तगाली गोरा सैनिक) जैसे पात्र जागर में जीवन्त रहे हैं। इसी प्रकार समाज की विभिन्न जातियों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्रों के दर्शन भी इसमें होते हैं।

शिवोली जागर

बारदेश तालुके में शिवोली जागर का प्रचार है। इसका मं बुधवार या रविवार को होता है। हिन्दू, ईसाई दोनों धर्मों के लोग ए मिलकर इसका अभिनय करते हैं। हिन्दू लोग तेल का दिया जलाते है ईसाई लोग मोम बत्ती का प्रयोग करते हैं। हिन्दू लोग हाथ जोड़ नमस्कार करते हैं तो ईसाई क्रॉस लिखते हैं। खेती का नुकसान न हो की विनती करते हुए लोग जागर करने की मनौती माँगते रहते हैं। उन विश्वास है कि जागर देवता का ही प्रतीक है। घुमट, नगाड़े, झाँझ आ के साथ साथ नमन शुरू होता है। वह इस प्रकार होता है -

पयले नमन देव बप्पा, दुसरे नमन देवासुता
तिसरे नमन इस्पिरी संता, सर्वहि देव एकचि रे[९]

भावात्मक एकता का यह भाव मात्र जागर की विशेषता रही है।

खिस्ती जागर

इसमें केवल ईसाई धर्म को माननेवाले लोग भाग लेते हैं। हि जागर के जैसे ही इसका भी स्वरूप रहता है। इसका मंचन फरवरी महीने में होता है। नमन में ईसाई देवताओं और संतों से संबन्धित गीत ग जाते हैं। भरभरैया, फिरंगी आदि पात्र इसमें रहते हैं।

काला

काला नाम कोंकणी शब्द *कलकलाट* (कोलाहल) से उत्पन्न है उत्सवों के समय ही इसका मंचन होने के कारण कोलाहल से इसका ब संबन्ध रहा है।[१०] गोवा के लोकनाट्यों में काला नाट्यरूप बहुत लोकप्रि रहा है। ब्राह्मण, शूद्र, सभी लोग इस नाट्यप्रकार में भाग लेते हैं। अने

क्षित लोगों के भाग लेने के कारण इसके कथानक संगीत, रंग, वेशभूषा, भिव्यक्ति, सबमें नये नये प्रयोग मिलते हैं। सत्तरी तालुके में और सांगे लुके में प्रमुख मन्दिरों में काला का अभिनय होता है। यह कोंकणी का फी विकसित नाट्यरूप है। प्राचीन काल में काला की मण्डलियाँ गोवा थीं। यह भी मन्दिर के प्रांगण में चलता था। मन्दिर की अग्रशाला में ला मण्डली के लोगों के खानपान का आयोजन होता था। मन्दिर में वट ले आनेवाले दो व्यक्ति दिया जलाकर काला के बराबर चलते थे। ला की नृत्यपद्धति वैसे खास प्रकार की नहीं कही जा सकती । सामान्य कशैली में पाये जानेवाले पूतना के नृत्य एवं हस्तमुद्राएँ, शंकासुर का त्य आदि इसमें भी प्रयुक्त होता है। गणपति की आरती उतारते हुए जय जय पांडुरंग स्मरण *हरि विठ्ठल* कहकर काला की मंडली सभामण्डप में वेश करती है, मृदंग, पखवाज़, हरदास, झाँझ बजानेवाले हरदास के चार पाँच साथी *ॐ नमो गणनाथा, देवा एकदन्ता* वाला गाना गाते हैं। फिर गणपति बुद्धि सिद्धि सहित मंडप में आकर नृत्य करते हैं। गणपति की पूजा करनेवाले ब्राह्मण एवं हरदास के बीच संवाद चलता है। कहीं कहीं संवादों में अश्लील वाक्यों का भी प्रयोग होता है। विनोद, उपहास, विडंबना से युक्त पूजा लंबे समय तक चलती है। फिर गणपति की आरती होती है। सरस्वती का नृत्य चलता है। हरदास सरस्वती स्तवन करता है। सरस्वती आशीर्वाद देती है।

सरस्वती पुनः नृत्य करती है। चार मुखोंवाले ब्रह्माजी मुखौटा धारण करते हुए आते हैं और तप करने बैठ जाते हैं। संकासुर आकर ब्रह्मदेव के हाथों के वेद चुराता है। इसके बाद नरसिंह, वामन, परशुराम, राम इन अवतारों से संबन्धित पुराण कथाओं का एक एक प्रसंग नाट्यरूप

के अन्तर्गत दिखाया जाता है। पूतना मुखौटे में आती है और नृत्य कर है। कृष्ण जब उसका स्तनपान करता है तो वह मर जाती है। महा पार्वती आदि पात्र आते हैं। फिर चले जाते हैं।

अवतारसंबन्धी कथानक को प्रस्तुत करने के बाद परीक्षित रा या और किसी के पुराण कथाप्रसंग संबन्धी आख्यान, नृत्य, संगीत, संव आदि के माध्यम से होते हैं। फिर संकासुर आता है। हरदास *सांकासुर महावीर* वाला गाना सुनाता है। संकासुर एवं हरदास का विनोद भरा संव लोगों को बहुत आकर्षित करता है। हरदास संस्कृत मिश्रित भाषा बोल है और संकासुर देशी कोंकणी। हरदास के भरतवाक्य से काला समा होता है। दशावतार संकल्पना गणपति, सरस्वती, संकासुर वध इस नाट्यरू की विशेषताएँ हैं। इस नाट्यरूप का रात काला, संकासुर काला, दशावता काला आदि नाम भी प्रचार में हैं। इनके अतिरिक्त प्रदेशभेद इस नाट्यरू के नामों में भी भिन्नता लाता है। जैसै कड्डातलो काला, संख्याहरि काल चिंचुद्र्यी काला, गोपाल काला, गौळण काला आदि के साथ गोवा व काला संबन्धी उत्सव खतम होते हैं।

गोपाळ काला

यह काला का ही एक रूप है जो प्रस्तुतीकरण में निरालापन लि हुए है। रात को जब दशावतारी काला समाप्त हो जाता है तो सबेरे हरदास और अन्य मंडली सभामंडप में आते हैं। इनके दोनों ओर मृदंगवादक रहते हैं। लोग दो कतारों में रहते हैं। एक कतार कृष्ण और बलराम आदि गोपाल मंडली की तो दूसरी कंस, प्रलंबासुर आदि असुरमंडली की। कतार मे खड़े लोगों में थोड़े लोगों के हाथों में झाँझ, ताल, आदि रहते हैं। इस प्रकार में नृत्य नहीं है। गायन व खोल के थोड़े प्रकार इसमें रहते हैं। बीच बीच

ष्ट प्रश्न भी चलते हैं। प्रारंभ में गणपति स्तवन होता है। पारंपरिक गीतों क सामाजिक रीति से गाया जाता है । जैसे

धन्य पुण्य श्लोक रे
गोकुळीचे लोक रे [11]

ळण काला

काला के बाद दूसरे दिन दोपहर को यह नाट्यरूप प्रस्तुत किया ता है। यह श्रीकृष्ण की बाललीला से संबन्धित है। गीत और नाच एवं ाद इसकी विशेषताएँ हैं। श्रीकृष्ण की अनेक लीलाएँ, पराक्रम, राधा से नुनय, गोपालकों के खेल जैसे प्रसंग इसमें आते हैं। कलावन्त या दासी समाज के पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था के बच्चे ही गौळण काला ा अभिनय करते हैं। हरदास, वादक, गायक आदि इस समाज के प्रौढ़ ाग रहते हैं। हारमोनियम, तबला, झाँझ आदि लोकवाद्यों का प्रयोग रहता । गौळण काला में राधा कृष्ण, यशोदा, गोप , गोपी आदि पात्र रहते हैं। ष्ण का अभिनय सुन्दर मुखवाली कोई लड़की करती है। राधा की ष्णभक्ति, यशोदा का अनुनय, गोपियों की चेष्टाएँ इसमें दिखाई जाती । हास्य का समावेश बोबजा (चीखनेवाला), तोतरा (तुतलानेवाला) और ांकडा (विकृत बोलनेवाला) पत्रों के द्वारा किया जाता है। गीत, नृत्य, ंवाद, अभिनय आदि से युक्त यह नाट्यरूप लोगों को अत्यधिक प्रभावित रता है। प्रेक्षकों में अधिकांश स्त्रियाँ एवं बच्चे रहते हैं।

ळीत

धार्मिक उत्सवों के साथ साथ लोगों का मनोरंजन करनेवाला एक ाट्यप्रकार है लळीत। इसका अभिनय भक्तमंडलियों के व्यक्तियों द्वारा

किया जाता है। सांखळी के दत्त मंदिर में दत्त जयंती के दिन अनन्त मंि में चैत्र शुद्ध दशमी के दिन इस नाट्यप्रकार का प्रस्तुतीकरण होता है इसमें सूत्रधार परिपार्श्वक होता है। वाद्यों के अन्तर्गत हारमोनियम, तब झाँझ आदि रहते हैं। इस नाट्यप्रकार का मूल उद्देश्य वेदान्तोपदेश रह है। इसमें वैसे कथानक नहीं रहता। गीतों और संवादों के ज़रिए उपदेश का आयोजन होता है। रंग, वेशभूषा नहीं रहती। गोपाल काला, गौळ काला, लळीत आदि में गोवा के समाज एवं जीवन से संबन्धित विवरण न है। माना जाता है कि लळीत का प्रकार गोवा के बाहर से वहाँ आनेवा कीर्तनियों के द्वारा गोवा में लाया गया है और आज वह इस प्रदेश में रू बन गया है।

खेळ (हिन्दू)

कोंकणी नाट्यपरंपरा के अन्तर्गत खेल की लोकशैली निराली ह है। इस नाट्यरूप में स्त्रियों का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं। इसका सू संचालन करनेवाला *हरदास* अथवा *भागवत* होता है। इसमें दशावतार क एक एक कथा को लेकर नाट्यरूप का आयोजन होता है। सबसे पहल नृसिंहावतार का प्रयोग होता है। वाद्यों के रूप में समेळ, तबला व झाँझ क प्रयोग इसमें होता है। परंपरागत गीतों के साथ साथ कुछ नवीन रचनाएँ भ इसमें प्रयुक्त की जाती हैं। संवाद भी चलते रहते हैं। ये गद्यात्मक एव कथ के विकास में सहायक होते हैं। भागवत गाना गाता है और उसके अनुसा पात्र अभिनय करते रहते हैं। मन्दिर के सभामंडप में या नियोजित स्थान पर यह खेला जाता है। दुष्ट स्वभाव के पात्रों के लिए लाल या काले रंग का प्रयोग किया जाता है।

प्रारंभ में हरदास नमन करता है। इसके अन्तर्गत हनुमान, गुरु, ...त्रेय, पूर्णेश्वरी माता आदि का आवाहन होता है। खेल की निर्विघ्न ...प्ति के लिए प्रार्थना की जाती है। हरदास का पहनावा कर्नाटक का ...ा है जिसमें धोती, सदरा, उपरणे, मुंडासा आदि रहता है। नमन के बाद ...षक आता है। वह नाचता हुआ आता है। हरदास एवं विदूषक के बीच ...ानक संबन्धी चर्चा होती है। इस चर्चा में ग्रामीण विनोद पाया जाता है। ...दूषक स्त्रियों के जैसे *फुगडी* का नाच दिखाता है। इसके बाद मुखौटा ...लकर गणपति आकर नाचता है। विदूषक उसकी पूजा करता है। ...पति के चले जाने पर विदूषक एवं हरदास कथा की चर्चा करते हैं। फिर ...ाणों का कथाप्रसंग नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। नाट्य की ...ाप्ति तक हरदास और विदूषक रंगमंच पर रहते हैं। प्रत्येक पात्र नृत्य ...रता हुआ आता है। प्रत्येक पात्र का आगमन, निर्गमन खास वादन पद्धति ... होता है। युद्धनृत्य में एक पैर ऊपर उठाकर दोनों पैरों पर गोल गोल ...रते हुए नृत्य किया जाता है। युद्ध में किसी को भी मरते हुए नहीं दिखाया ...ता। खेल की समाप्ति पर सभी पात्र रंगमंच पर आकर ईश्वरवन्दना ...रते हैं। खेल के कथानक एवं नृत्य बड़े ही लोकप्रिय रहे हैं। खेल की ...ायन पद्धति गोवा की है। वादन पद्धति पर कर्नाटक की यक्षगान पद्धति ...ा प्रभाव रहा है। नृत्य में भी यक्षगान का प्रभाव देखा जा सकता है। वादन ... ताल लय पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता है।

...शावतारी खेळ

मन्दिरों के उत्सव से संबन्धित परंपरा के रूप में दशावतारी खेळ ...ा नाट्यरूप देखा जा सकता है। गाँव का जनसमूह जातिभेद के बिना ...शावतारी खेल में भाग लेते हैं। रंगभूषा अन्य नाटकों के जैसे है। स्त्रियों ...ा अभिनय पुरुष ही करते हैं। खेल के दो भाग हैं। पूर्वरंग और आख्यान।

पूर्वरंग में गणपति, सरस्वती आदि का स्तवन, आगमन एवं नृत्य रहता संकासुर के प्रवेश या मत्स्यावतार द्वारा किए गए संकासुर वध से पूर्व समाप्त होता है। आख्यान में अप्रचलित पुराणकथा स्थानीय रंग ले सामने आती है। मन्दिर के सभामंडप में या खुली जगह पर रंगमंच आयोजन रहता है। रंगमंच के तीनों ओर प्रेक्षक बैठते हैं। प्रमुख पात्रों आगमन झाँझ, तबला आदि के वादन के साथ होता है।

रणमाले

रणमाले में *रण* शब्द का अर्थ (उत्सव का) कोलाहल है। नाट्यरूप के अन्तर्गत अच्छा अभिनय करनेवाले के गले में माला डा जाती है। *माले* शब्द इसी की ओर संकेत करता है। किसी किसी का है कि कोंकणी के *रामाले* (राम का) शब्द से रणमाले की उत्पत्ति हुई है।

रंगपंचमी या गुड़ी पड़वा से संबद्ध होकर इस नाट्यरूप का मंच होता है। कहीं कहीं कुळवाडी नाम की शूद्र जाति इससे विशेष संब रखती है।[१३] यह नाट्य सायंकाल में शुरू होता है। मन्दिर के पुजारी ए भगत रणमाले में शब्द देते हैं। वाद्य के साथ नमन शुरू होता है। ढ़ो घुमट, कासाळें अथवा झाँझ ही रणमाले के वाद्य रहे हैं। पात्रों में रा रावण, हनुमान आदि होते हैं। इसमें सूत्रधार नहीं है। परंपरागत पद्यों इसमें प्रयोग होता है। गायक गाता रहता है। दूसरे लोग उसका अनुकर करते हैं। ये ही गाने तीसरी बार पात्र भी गाते हैं। कोंकणी नाट्यपरंपरा रणमाले एक स्वतंत्र नाट्यरूप रहा है। रामकथा का प्रस्तुतीकरण इस वैशिष्ट्य रहा है। लोकनाट्य के अन्य रूपों में रामकथा नहीं रहती हाँ,विवाहसंबन्धी लोकगीतों में गोड्डे रामायण, दशावतारी खेळ आदि रामकथा के कई प्रसंग आते हैं। लेकिन संपूर्ण रामकथा केवल रणमा लोकनाट्य में ही देखी जाती है। रामकथा के एकाध प्रसंग प्रस्तुत करने

कथा बीच में समाप्त होती है। फिर एक दो मनुष्य सामाजिक विषयों प्रहसन जैसा पद्यमय प्रसंग गाते हुए और नाचते हुए प्रस्तुत करते हैं। में आनेवाले इन पात्रों के द्वारा विनोद, उपहास, विडंबना आदि का नय रहता है। गाँव की कई घटनाओं की चर्चा भी इस समय की जाती स्त्रियों का अभिनय यहाँ भी पुरुष ही करते हैं। गणपति, कांचन मृग दे का अभिनय मुखौटों की सहायता से किया जाता है।

नाट्यरूप का प्रस्तुतीकरण ईश्वरनमन से होता है। प्रथम नमन स्वती का होता है। नमन के बाद गणपति का प्रवेश होता है। भट आकर श की पूजा करते हैं। इसके बाद रामकथा शुरू होती है। हर प्रसंग गद्य पद्य़ संवादों में चलता है। गद्य संवाद भी काव्य जैसे स्वरलययुक्त ते हैं। पात्रों के स्थान पर गायक ही संवाद प्रस्तुत करते हैं। रणमाले रात चलता रहता है। सबेरे समाप्त होता है।

ळ त्रियात्र

गोवा के ईसाई समाज को मनोरंजन प्रदान करनेवाला नाट्यरूप खेळ त्रियात्र। त्रियात्र शब्द नाटक के अर्थ में पुरतगालियों ने प्रयुक्त या है। साष्टी, मुरगांव, तिसमाडी आदि प्रदेशों में ईसाई लोकजीवन से न्धित यह खेल चलता रहता है। इत्रुज (ईसाई उत्सव) के समय यह लता रहता है। ईसाई, ब्राह्मण एवं चाड्डों को छोड़कर खारवी, सुधीर, भी समूह त्रियात्र में भाग लेते हैं। स्त्रियों का अभिनय पुरुष ही करते रहे । त्रियात्र के विषयों में रम्यकथा, परी कथाएँ, अमानवीय शक्ति को खानेवाली कथाएँ प्रयुक्त होती हैं। यह एक तरह का संगीतरूपक कहा ा सकता है। क्लॉरोनेट, ट्रंपेट, ड्रम्स आदि वाद्यों में प्रमुख हैं।

त्रियात्र

त्रियात्र भारतीय रंगभूमि के लिए गोवा की देन रही है। इताल ऑपेरा और गावडी जागर के मिश्रण के रूप में तैयार किया हुआ त्रिया बड़ा ही लोकप्रिय रहा है।[१४] त्रियात्र का प्रस्तुतीकरण लोकनाट्य की भू पर ही होता रहता है। नाट्यधर्मी लोकपरंपरा में इसका विशेष स्थान है कोंकणी रंगभूमि पर त्रियात्र का अनिवार्य स्थान है। इसका कथान सामाजिक और पारिवारिक स्वरूप से युक्त है। थोड़ा संघर्ष, कारुणि प्रसंग, विनोद, सब त्रियात्र में पाया जाता है। पारिवारिक कथानक लोग को इसकी ओर अधिक आकृष्ट करते हैं। गीतों के ताल और लय पर नृत्य करना इसका एक भाग है। क्लॉरोनेट, ट्रंपेट, ड्रम्स के साथ गीत गाये जात हैं। गोवा के ईसाई लोगों की संस्कृति के चित्रण की दृष्टि से कोंकण लोकनाट्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी तथा कोंकणी लोकनाट्यों में शैलीगत अनेक समानता दिखाई पडती हैं। दोनों के कथानक भी समान रूप से लिए जाते हैं। इ नाट्यों में संगीत एवं नृत्य प्रमुख होता है और जनजीवन को विशेष महत्व दिया जाता है। लोकजीवन के उल्लास के क्षणों में इनको अभिव्यक्ति मिलती है। दोनों भाषाओं के लोकनाट्यों में जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। ये नाट्यरूप किसी धार्मिक भावना या चेतना से जुड़े रहते हैं लोकनाट्य के अभिनय के लिए रंगमंच की या प्रसाधन की तैयारियाँ नह करनी पड़तीं। हिन्दी तथा कोंकणी लोकनाट्य का अभिनय खुले मंच प ही होता है। आम लोग नाटक का मंच की दृष्टि से नहीं बल्कि कथान और अभिनय की दृष्टि से मूल्यांकन करते रहते हैं। इन नाटकों क

जीवन में विशेष महत्व था और इनके धार्मिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों अनुसार इष्टदेवता को प्रसन्न करते हुए इन नाट्यरूपों में पौराणिक एँ अभिनय की जाती थीं। नाट्यरूप हिन्दी का हो या कोंकणी का कों का मनोरंजन या नैतिक उन्नयन इनका लक्ष्य रहता है। इस लक्ष्यगत नता के साथ साथ कहीं कहीं विषयगत समानता भी देखी जा सकती हिन्दी में रामलीला या रासलीला थोड़ी भिन्नताओं के साथ विभिन्न शों में होती रहती है। कोंकणी में तो रासलीला नहीं मिलती। लेकिन ग से संबन्धित कई कथाएँ नाट्यरूपों में देखी जा सकती हैं।

रामलीला में राम की कथा प्रमुख होती है। इसी राम की कथा के धार पर कोंकणी में *रणमाल* नाट्यरूप दिखाई देता है। कोंकणी में यह तन्त्र नाट्यरूप है। इसकी विशेषता मूलतः रामकथा की प्रस्तुति में ही ती है। फिर भी हिन्दी प्रदेशों में रामलीला का जितना प्रचार रहा है और ानीय रंग के चढ़ने से उसके कई रूप रहे हैं। कोंकणी में इस नाट्यरूप वैसा प्रचार नहीं है। दोनों भाषाओं में अधिकांशतः यह नाट्यरूप मन्दिरों संबन्धित रहा है। हिन्दी तथा कोंकणी में इन नाट्यरूपों की उत्पत्ति शेष रूप से धार्मिक त्योहारों और पर्वों पर ही होती रहती है। कोंकणी में तीन नाट्यरूपों का नामकरण ही इन धार्मिक समारोहों के कोलाहल नाम से हुआ है। जैसे *रणमाले, काला* आदि। नृत्य, संगीत और भिनय, ये तीनों तत्व भाषाभेद और प्रदेश भेद के बिना सभी नाट्यरूपों प्रयुक्त होते हैं जो आम जनता की उद्दाम प्रेरणाओं , कामनाओं की लापूर्ण अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं। इन नाट्यरूपों में चाहे हिन्दी हो या ोंकणी, विदूषक का अस्तित्व रहता है। कहीं इसका नाम *मुंशीजी* रहता तो कहीं *हिजडा*। मूल में भाव एक ही रहता है। हास्य से संबन्धित पात्र ोगों से विशेष रूप से संबद्ध रहता है। इन नाटकों में अभिनय करनेवाल

पात्र समाज के लोगों का ही जीता जागता रूप प्रस्तुत करते हैं जो आ जनता के मनोभाव एवं क्रिया प्रतिक्रिया को दिखाते हैं। यहाँ परंपराग तत्वों को खूब मान्यता मिली है। स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष पात्रों के द्वा निभाया जाना प्राचीन काल से लेकर आज तक दिखाई देता है। हिन्दी अ कोंकणी में यह समान रूप से अपनाया गया है। दोनों भाषाओं के नाट्यरू में व्यक्ति की अपेक्षा समूह जाति और समाज की भावनाएँ मंडलियों अभिनय के ज़रिए प्रस्तुत होती हैं। धार्मिकता की प्रमुखता होने के कार इन नाट्यरूपों में देवी देवताओं की स्तुतियाँ प्रारंभ में होती रहती हैं। *स्वाँ* जैसे हिन्दी नाट्यरूपों में भीं जिसका धार्मिकता से कोई संबन्ध नहीं प्रारंभिक सरस्वती वन्दना देखी जा सकती है। कोंकणी *जागर* और *काल* की तुलना में *स्वाँग* की यह सरस्वती वन्दना बहुत ही महत्व की है। स्वाँ में प्रेमलीला तथा रोमांस का संस्पर्श जैसा होता है उससे मिलता जुलत रोमांस कोंकणी त्रियात्र में देखा जाता है। हिन्दी तथा कोंकणी में लोकधर्म नाट्यरूपों का विषय अधिकांशतः सामाजिक रहे हैं फिर भी पुराणों क कथाएँ भी इनमें प्रस्तुत रही हैं। जमीन्दारों का अत्याचार, भाइयों के बी के झगडे, पतिपत्नी की नोक झोंक, पुरुषों की कामान्धता और स्त्रियों प उसका प्रभाव पुरुष द्वारा स्त्री पर अत्याचार आदि प्रसंग दोनों भाषाओं के नाटकों में चित्रित रहते हैं जो समाज के अस्वस्थ एवं दुःखदायी स्थिति के साथ साथ यथार्थ रूप को प्रस्तुत करते हैं। इन दुःखपूर्ण प्रसंगों का चित्रण मूल रूप से शोषण के विरुद्ध सामाजिक सुधार ही रहता है।

प्रेम मानव जीवन की शाश्वत अनुभूति है। यह महान होता है इससे संबन्धित त्याग, सुख-दुःख, सहानुभूति, ईर्ष्या आदि का उल्लेख इन नाट्यरूपों में मिलता है। सच्चे प्रेम के द्वारा मानवत्व को भी देवत्व में परिणत किया जा सकता है। इसका सन्देश नाटकों में प्राप्त होता है। दोनों

ाओं के ये लोकनाट्य अधिकांशतः रात के समय ही दिखाये जाते हैं। ऱेन कोंकणी काला नाटक के दो रूप गोपाळ काला और गौळण काला रे और दोपहर के समय दिखाया जाता है। हिन्दी कोंकणी के भेद के ा, कोंकणी के *रणमाले* को छोड़कर, सभी में सूत्रधार का अस्तित्व ता है। कोंकणी में कहीं कहीं इसका नाम हरदास रखा गया है तो कहीं णी । इसी प्रकार होली के पहले स्वांग नाटक का अभिनय होता है और कणी के लोकनाट्यों का भी होली के संदर्भ में मंचन होता है। प्रायः सभी सवों और त्योहारों से संबन्धित अवसरों पर हिन्दी तथा कोंकणी समाज इन नाट्यरूपों का मंचन होता है। भाषाभेद या प्रदेशभेद के बिना इन कनाट्यों में लोकमान्यता का पूर्ण रूप से समावेश रहता है। इनमें परागत रीति रिवाज़ किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है।

हावतें

कहावतें लोकमानव के अनुभवों से उत्पन्न सुन्दर अभिव्यक्तियाँ हैं। मानव मात्र की संपत्ति हैं। यहाँ देश काल का भेद नहीं रहता। संसार र की कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जिसमें कहावतों का प्रयोग न हुआ हो। कहावतें चूँकि जीवन के चिरन्तन सत्य को खोलती हैं इसलिए मानव के र व्यवहार में भाषा के प्रयोग में अर्थाभिव्यक्ति को शक्ति प्रदान करने के नए बीच बीच में इनका प्रयोग किया जाता है। ये कहावतें भाषा को सजीव नाती हैं। कहावतों के इस यथार्थ की ओर लक्ष्य करते हुए एक कहावत स प्रकार चलती है -*चाहे वेद भी झूठे हो जाये पर कहावतें झूठी नहीं ती।* प्रायः सभी भाषाओं में इस प्रकार की कहावतें चलती हैं जो इस विधा ा महत्व प्रकट करती हैं। कोंकणी में *म्हणी फाटली काणी* इसी बात को पष्ट करती है कि कहावत के पीछे कोई कहानी होती है।

कहावतों की परंपरा

संस्कृत में ऐसी अनेक कहावतें चलती हैं जो समय समय पर लो
को ज्ञान प्रदान करने के लिए बीच बीच में प्रयुक्त होती है। यहाँ इ
लोकोक्ति कहा गया है। ऐसी लोकोक्तियों से संस्कृत साहित्य भरा प
है। साहित्य के व्यवहार में इन्हें सुभाषित भी कहा जाता है। पंचत
हितोपदेश आदि ग्रंथ जो मानव जीवन के सत्य को खोल देते हैं, इस प्रक
के सुभाषितों का खूब प्रयोग करते हैं। इन ग्रन्थों में नीति संबन्धी उक्ति
ज़्यादा रहती हैं। अनेक कवियों ने अपनी कृतियों में स्थान स्थान पर इ
लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। कालिदास का साहित्य इस प्रकार
सुभाषितों का भण्डार कहा जा सकता है। उन्होंने *शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधन*
कहकर शरीर की रक्षा करने का जो उपदेश दिया है वह पार्वती के संद
में ही नहीं, हर किसी के जीवन के यथार्थ को प्रकट करता है।

हिन्दी कहावतें

संस्कृत की यही परंपरा हिन्दी में भी देखी जा सकती है। हिन्द
भाषा में संस्कृत की इन लोकोक्तियों का प्रयोग अनुवाद के ज़रिए होता है
यही नहीं इसी पृष्ठभूमि पर हिन्दी के साहित्यकारों ने कई नई लोकोक्तिय
भी गढ़ी हैं। सूरदास की *प्रीति करि काहू सुख न लह्या*, तुलसीदास क
कोऊ नृप होय हमै का हानी, कबीर की *जैसा अन जल खाइये तैसा ही म*
होय जैसी उक्तियाँ विशेष महत्व की हैं।

कहावतें साहित्य संदर्भ को एवं तद्वारा जीवन के संदर्भ को ह
स्पष्ट करने में सहायक रही हैं। इन कहावतों में किसी भी देश, जाति औ
समाज के आचार विचार, रीति रिवाज़ आदि का प्रतिफलन होता है।
कहावतें मूल रूप से समाज से जुड़ी रहती हैं और हिन्दी कहावतों में ह

दे सकते हैं कि हिन्दी समाज की रहन सहन, धर्म, नीति, खान पान आदि को भली भाँति प्रस्तुत करते हैं। ऐसे विषय नहीं हैं जो इन कहावतों में नहीं आए हों। उत्तर भारत की संस्कृति स्पष्ट रूप से इन में प्रतिफलित दिखाई देती है।

हिन्दी कहावतों को मूल रूप से तीन विभागों में बाँटा जा सकता है १. सामाजिक कहावतें, २.धार्मिक कहावतें, ३.नैतिक कहावतें आदि।

सामाजिक कहावतें

यों तो सभो कहावतें समाज से संबन्धित हैं फिर भी विभिन्न सामाजिक संबन्धों, सामाजिक सत्यों आदि को दिखानेवाली कहावतें इसके अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। समाज में परिवार का प्रमुख स्थान है और अनेक सदस्यों से परिवार बनता है। माता पिता, पुत्र पुत्री, मामा भानजा, दादा दादी, फूफा फूफी आदि कई संबन्ध परिवार के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। कोई भी माँ अपने बच्चे को वह जितना भी बुरा क्यों न हो, छोड़ने के लिए तैयार नहीं होती। माँ की इस ममता और स्वार्थ की ओर संकेत करनेवाली एक कहावत है - *गाय को अपने सींग भारी नहीं होत*। यहाँ गाय के प्रतीक के ज़रिए माता की अपने बच्चे के प्रति ममता दिखाई गई है। इसी प्रकार समाज के अन्तर्गत और भी कई ऐसे संबन्ध हैं जो कटुता का बोध कराते हैं। *अच्छे का भाई बुरे का जमाइ* - कहावत भाई के प्रति प्रेम एवं जमाई के प्रति घृणा दिखाती है। वैसे सास दामाद को लेकर सुन्दर कहावतें हिन्दी में चलती हैं। उदाहरण के लिए *अइले दामाद मन हरिअर भेल, कठउत के मांड हेन पतर भेल*। इसी प्रकार सास बहू का कटु संबन्ध भी निम्नलिखित कहावत में बहुत सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। *सास मोरा मरो, ससुर मोरा जियो, अचल राज बहुरिआ का होखो*[१५] जहाँ सास मरती है वहाँ बहू का राज चलता है। *आज मरी सासू कल आए आँसू* वाली

कहावत भी इसी ओर संकेत करती है।

व्यक्ति समाज का इकाई होता है। समाज में कई तरह के व्य होते हैं। उनके मनोभावों में भी अन्तर होता है। व्यक्तियों की चारि विशेषताओं को सूचित करनेवाली अनेक कहावतें हैं। उदाहरण के *जागेगा सो पायेगा, सोयेगा सो खोएगा*। सचेत रहनेवाला व्यक्ति सफ होता है और अचेत रहनेवाला असफल। जो जैसा कर्म करता है उसे वै ही भोगना पड़ता है। कहावत है - *अपनी करनी पार उतरनी।*[१६] धर्म अनुसरण करनेवाला जीवन में हमेशा विजयी होता है। हिन्दी की कहा है-*धरम करत में होखे हान तबहूँ ना छोड़ीं धरम के बान* [१७] अक्सर लो भाग्य में विश्वास करते हैं और इस भाग्य को प्रदान करनेवाले ईश्वर भी विश्वास करते हैं। तभी तो कहावत चलती है - *जब भगवान देते हैं छप्पर फाड़ कर देते ह*। ऐसे भगवान को भला लोग कैसे छोड़ सकते हैं इसीलिए जीवन में धार्मिक कार्य को जो ईश्वर से संबन्धित है, बड़ा महत्व दिया है।

धार्मिक कहावतें

जीवन में जिस धर्म का पालन होता है उसकी ओर संके करनेवाली कई कहावतें हैं। *अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्* का भाव हिन्दी भी चलता है। इसका प्रमाण है।[१८] ईश्वर का खेल अजीब होता है । उसके दरबार में न्याय का ही पक्ष चलता है। लोग अपने कर्म के अनुसार फल भोगते हैं। कहावत है *अपनी करनी पार उतरनी। कर्मानुगो गच्छति जीव एक:* तो प्रसिद्ध ही है। ललाटलेखा मिटाये नहीं मिटती। इसलिए हिन्दी की कहावत है - *करमहीन सागर गए जहाँ रतन का ढ़ेर, कर छुअत घोंघा भए यही करम का फेर*। इसी प्रकार भक्ति, वैराग्य, आचार, विचार, सत्य दर्शन आदि पर आधारित कहावतें भी मिलती हैं।

तिक कहावतें

जीवन और नौतिकता का अटूट संबन्ध रहता है। नैतिक कहावतों अपनी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए और भी विभाजित किया ता है जैसे अर्थनीतिसंबन्धी, राजनीतिसंबन्धी, व्यवहार नीतिसंबन्धी, त्रीसंबन्धी, परोपकार संबन्धी, आदर्शजीवन संबन्धी, उपदेश संबन्धी। नव जीवन में नैतिकता के जितने ही पक्ष हैं उतने ही प्रकार की कहावतें प्रचलित हैं। मानव के चार पुरुषार्थों में धर्म के बाद अर्थ का स्थान रहा । यह मानवजीवन में सबसे महत्वपूर्ण है। इस अर्थ से संबन्धित अनेक कहावतें समाज में प्रचलित हैं । एक उदाहरण है - *पैसा जिसकी गाँठ में सके ही सब यार।*[१९] जिसके पास पैसा है उसके साथ सब लोग होते हैं। इसके अन्तर्गत उपदेशात्मक कहावतें भी आती हैं जो भिन्न विषयों से संबन्धित हैं। आदर्श जीवन से संबन्धित एक कहावत है - *प्राण जाय पर मान न जाय*[२०] मानव जीवन में सत्य का बड़ा स्थान है। असत्य की जीत क्षणिक होती है । कभी न कभी सत्य तो सामने आ ही जाता है। इसीलिए तो कहावत है - *पानी में आंकड़ सड़ी*[२१] जीवन का सनातन सत्य है मृत्यु। मृत्यु कब कहाँ आती है इसका पता किसी को भी नहीं । इसीलिए तो यह कहावत प्रचलित है *मरन न जाने बेर कुबेर*[२२] इसी प्रकार अन्यान्य पशु पक्षियों से संबन्धित कहावतें भी प्रचलित हैं। इनमें प्राय: सभी कहावतें लक्ष्यार्थ से आपूरित रहती हैं और इसके द्वारा मनुष्य की ओर व्यंग्य करती रहती हैं। उदाहरण के लिए मूर्ख व्यक्ति पर व्यंग्य करनेवाली कहावत है- *करिया अच्छर भैंस बरोबर*[२३] काले अक्षर भैंस समान हैं, अर्थात् अक्षर का कुछ भी ध्यान जिसको नहीं है वह मूर्ख है।

इस प्रकार समग्र रूप से कहावतों का अध्ययन करने पर यह बात व्यक्त होती है कि जीवन के जितने पहलू हैं उनसे संबन्धित विभिन्न कहावतें

भी चलती हैं। किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, मनोवैज्ञा जैसी प्रवृत्तियों, विश्वासों तथा रीति रिवाज़ों का ज्ञान कहावतों से हम प्रा कर सकते हैं। इन विशिष्ट गुणों के कारण ही कहावतें इतनी लोकप्रिय हैं।

कोंकणी कहावत

कहावतें कोंकणी लोकसाहित्य का सशक्त प्रकार हैं। कोंकणी इसे *म्हण* या *म्हणी* कहते हैं। संस्कृत के कहना अर्थवाले *भण्* धातु से य शब्द निकला है। ये कहावतें अर्थाभिव्यक्ति में तेज़ होती हैं और कलेवर छोटी। लेकिन ये अनुभवों के भण्डार से उत्पन्न होती हैं। सामाजिक दाय में इनका बड़ा ही महत्व है। कोंकणी लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी इन्हें मौखि रूप में विरासत में प्राप्त किया है। कोंकणी कहावतें भाषाशास्त्रीय दृष्टि प्रमुख रही हैं। इनमें प्रयुक्त शब्दावली भाषा के विकास की लंबी प्रक्रिया व समझाने में अत्यन्त सक्षम हैं। चिरकालीन अनुभवों से उत्पन्न होने के कार ये जीवन के लिए शिक्षा एवं संदेश लेकर आती हैं। कोंकणी समाज संस्कृति, रीति रिवाज़, धर्म एवं नीतिपरकता इन कहावतों में प्रतिफलि होती है। हास्य, व्यंग्य, व्यक्तियों का महत्व एवं उनके जीवन दर्शन क अभिव्यक्त करनेवाली ये कहावतें कोंकणी समाज का एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए *पाँच जन मेळ्ळेले कडे परमेश्वर* (जहां पंच होते हैं वहाँ परमेश्वर रहता है) इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन काल से ही कोंकणी लोग पंचायत की प्रणाली पर चलते थे। राजा एवं पुरोहित की महानता और समाज में उनके उच्च स्थान को चित्रित करनेवाली कहावतें भी कोंकणी में मिलती हैं। जैसे *रायान म्हळ्ळेली पूर्व दिशा, भट्टान म्हळ्ळेली उमास* (राजा जो कहता है वही पूर्व दिशा है और पुरोहित जो

हता है वही अमावस्या) । कोंकणी कहावतों के विभाग बनाये जा सकते हैं। जैसे सामाजिक कहावतें, धार्मिक कहावतें, नैतिक कहावतें आदि।

ामाजिक कहावतें

कोंकणी में सामाजिक संबन्धों को लेकर कई कहावतें चलती हैं। नमें पति पत्नी का संबन्ध सबसे महत्वपूर्ण है। पति पत्नी में मेल जोल रहे तो समाज स्वस्थ रहता है । कहावत यों चलती है - *घोवु बायलेचें एक चित्त डकेंत जाता सीत* [२४] (पति पत्नी का मन एक हो तो मटके में धान पकता है।) इसके विपरीत यदि पति पत्नी सुखी न हो तो समाज नाश की ओर जाता है। कहावत यों चलती है - *घोवु पिस्सो बायल पिस्सी घराक जाल्लो बेळ्कूटा* [२५] (पति पागल पत्नी पागल घर के अन्दर आये बादल)। सास बहू के विकट संबन्धों को अत्यन्त सुन्दरता के साथ अंकित करनेवाली कहावत है - *अड्डळि मोळ्ळि मायिं मेल्ली सुन्नेक बुद्धि आयली* [२६] (पहँसुल टूटी, सास मरी, बहू सचेत हुई). झगडे में बहू द्वारा पहँसुल से सास को मारा जाना, सास का मरना और बहू का सजग हो जाना, सब कुछ इस छोटी सी कहानी में चित्रित है। कोंकणी समाज में यों तो स्त्रियों की स्थिति उतनी अच्छी नहीं कही जा सकती। निम्नलिखित कहावत में देखिए, लड़की के जन्म पर दुःखी माता को किस प्रकार सान्त्वना दी जाती है। *चेल्लि जल्लि म्होणु रोणक्का मस्सोलु वट्टून दित्तली ती तुक्का, चेल्लो जल्लो म्होणु हस्सुनक्का लस्सूनु भज्जनु खत्तोलो तो तुक्का* [२७] (लड़की के जन्म पर रोना मत, वह तेरे लिए नारियल पीसेगी, लड़के के जन्म पर हँसना मत, वह तुझे जला भुना कर खा जायगा।) इस कहावत में इस बात की ओर संकेत मिलता है कि कोंकणी समाज में लड़कों और लड़कियों को भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखा जाता था।

धार्मिक कहावतें

कोंकणी लोगों के जीवन में धर्म का आधार अनिवार्य माना ज है। यहाँ पर धर्म के कई पहलू देखे जाते हैं। धर्म की प्राप्ति केवल ध्या ही संभव है। मन जब धर्म से पवित्र रहता है तो वासना रूपी धूल सदा रहती है। धर्म का यह अनुकरण इन लोगों के जीवन में प्राणों के विक के लिए बहुत सहायक रहता है। धर्म का अनुसरण जो करता है धर्म उन रक्षा करता है। धर्म के अन्तर्गत ईश्वर की प्रमुखता रहती है, ईश्वर पूजा, आराधना की जाती है। कोंकणी लोग ईश्वर की बड़ी कदर करते इस ईश्वर के कई रूपों को वे मानते हैं। इनमें राम, कृष्ण, गणपा हनुमान, दामोदर आदि कई रूप आते हैं। लेकिन उनका विश्वास यही कि *सर्वदेवनमस्कारं केशवं प्रति गच्छति*। इसीलिए एक कोंकणी कहाव कहती है -*लेकल्यारि देवु ना जल्यारि फत्तोरु* [२८] (माने तो ईश्वर, नहीं त पत्थर). ईश्वर सबसे बढ़कर हैं । उनका कोई रूप नहीं होता। जो जैस सोचता है ईश्वर वैसा ही होता है । कहावत इस प्रकार है - *मन तशी भा भावु तशी देव* [२९] (जैसा मन वैसा भाव, जैसा भाव वैसा ईश्वर)। इसी ईश्व के लोकप्रिय नाम हैं राम, कृष्ण, गणपती आदि। भगवान की पूजा को लोग धार्मिक कार्य मानते हैं। लेकिन मन्दिर को उतना आवश्यक नह मानते। कहावत है - *देवळ कितले लग्गी, देवु तितलो दूर* [३०] (मन्दिर जितन निकट रहता है ईश्वर उतना ही दूर रहता है)। लेकिन सामान्य लोगों की तृप्ति के लिए मन्दिर के अस्तित्व को वे अनिवार्य मानते हैं और पूजा, उत्सव और अनुष्ठान मनाते रहते हैं। ईश्वर के विश्वास के साथ साथ इनके कई धार्मिक विश्वास भी रहते हैं जो अधिकांशतः कर्मवाद पर आधारित हैं। तभी तो कोंकणी कहावत चलती है - *आपण मेल्यारि आपणाक मोक्षु* [३१] (अच्छा कर्म करनेवाले को अच्छा फल मिलता है। कर्मवाद कोंकणी

ोों के जीवन में एक महान भूमिका अदा करता है। कहावत इस प्रकार ती है - *कर्मांत बरयलेलें जन्मांतु सुंटना*[32] (कर्म का लिखा जनम भर ता है) जिसके नसीब में जो लिखा है वह जनम भर छूटता नहीं। तीर्थों महत्व को दिखानेवाली कहावत भी कोंकणी में मिलती है। यद्यपि ये लोग र्थों के महत्व को मानते हैं फिर भी कर्मफल पर ज़्यादा विश्वास रखते हैं इसीलिए तो यह कहावत इस प्रकार कहती है - *काशींत गेल्यारीय श्वरांत गेल्यारीय पाप सुंटना।*[33] (काशी या रामेश्वर जाने से पाप नहीं ता।)

धर्म से संबन्धित अनेक व्रत तथा अनुष्ठान इस समाज में प्रचलित हैं शिवरात्रि, जन्माष्टमी, दीपावली, होली, नागपंचमी, गणेश चतुर्थी, ालय अमावस्या, एकादशी आदि के संदर्भ इन कहावतों में खूब मिलते हैं उदाहरण के लिए *असल्यार अष्टमि ना जल्यार एकादशी* [34](यदि खाने । है तो जन्माष्टमी मनाई जाती है, नहीं तो एकादशी ।) ये व्रत एवं नुष्ठान मानव जीवन को उन्नति की ओर ले जानेवाले माने जाते हैं। ऐसे ी कई संस्कारों का विवरण इन कहावतों में मिलता है। जैसा उपनयन, ववाह, अन्त्येष्टि आदि। ये संस्कार आत्मा की पवित्रता की रक्षा करने के लिए किए जाते हैं। श्राद्ध की ओर संकेत करते हुए एक कहावत चलती है *देवकार्याचें वायसा पान चुक्कुन्हयें वंकुन्हयें* [35] (श्राद्ध के अनुष्ठान में चूक नहीं आनी चाहिए।)

ैतिक कहावतें

कुछ कहावतें कोंकणी लोगों के प्रतिदिन के क्रियाकलापों से संबन्धित मिलती हैं। धन के महत्व पर अनगिनत कहावतें प्रचलित हैं। यहाँ तक कि इनमें धनहीन व्यक्ति के लिए कैलास भी पहुँच के बाहर कहा गया है। जैसे - *हातांत ना कास ताका खंचें कैलास ?*[36] (हाथ में पैसे नहीं तो

कैसे कैलास पहुँचे?) *गिरेस्तालो वाडो, न्हेस्सूक ना फाडा*[३७] (धनिकों
इलाका, पहनने के लिए कपड़ा तक नहीं) लोगों के खोखले जीवन
अभिव्यक्त करते हैं तो *दुडवा वयर वीष ना*[३८] (धन के समान दूसरा कोई
नहीं है।) धन के कारण उत्पन्न बुराइयों की ओर संकेत करते हैं। *लोख
उज्जा सिवाय मोवु जायना*[३९] (आग के बिना लोहा कभी नरम नहीं होता
विंदराक इत्याक लोखंडा व्यारु ?[४०] (चूहे को लोहे के व्यापार से क
लाभ?) आदि कहावतें कोंकणियों के लोहे के व्यापार की ओर संकेत कर
हैं। ऋण की बुराइयों को लेकर भी अनेक कहावतें चलती हैं जैसे *री
केल्यार घाण्यांत हातु दिल्या वरी*[४१] (ऋण लेना कोल्हू में हाथ रखने
समान है)। *रीण हाडतलें गोड पावयतना जीवा पाड*[४२] (ऋण मीठा होता
लेकिन चुकाना कठिन होता है)। इन कहावतों में गरीबी के दोषों का वर्ण
मिलता है।

कोंकणी में उपदेशात्मक कहावतों की भरमार है। *अपणाली साव
अपणाले पाया मूळांत*[४३] (अपनी छाया अपने ही पैरों तले) सदाचरण पर ब
देती है। *आचारु चलतल्याक विचारु ऊणे*[४४] (आचारों का पालन करनेवा
निश्चिन्त रहते हैं) सदाचरण के महत्व की ओर संकेत करता है। *पाप
गेल्लेले कडे पाव्ल भरि उद्दाक*[४५] (पापी जहाँ जाता है वहाँ घुटनों तक पा
रहता है।) पाप करने के दुष्फल की ओर संकेत करता है। *कोपु हक्क
नाशु, सन्तोषु वेगळ्याक*[४६] (क्रोध स्वयं को और सन्तोष दूसरों को नष
करता है) क्रोधजन्य बुराइयों की ओर संकेत करता है। *फटिये गेल्यारि क
लाभु*[४७] (झूठ का फल है दरिद्रता) झूठ न बोलने का उपदेश देती है
म्हलगड्यालें उत्तर प्रमाण कोरका[४८] (बडों के शब्दों को प्रमाण मानन
चाहिए) बड़ों का आदर करना सिखाती है तो *तोण्णांत सकून पळ्ळेलें उत्त
काड्डक जायना*[४९] (मुँह से कही हुई बात वापस नहीं जाती) मुँह से बुरी बा

ालने से लोगों को सचेत करती है।इस प्रकार ये कहावतें कोंकणी
ाज का दर्पण हैं जिनमें समाज का सही चित्र अंकित मिलता है। इनमें
णी लोगों की सभ्यता और संस्कृति देखने को मिलती है। सामाजिक
िहास, समाज का गठन, समाज में नारियों का स्थान, लोगों के धार्मिक
वास, उत्सव एवं अनुष्ठान दिन प्रतिदिन के कार्यकलाप और न जाने
क्या कोंकणी लोगों से संबद्ध सा़री बातें इन कहावतों में मिलती हैं।

नात्मक विवेचन

हिन्दी और कोंकणी एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण
में कई शब्दगत और अर्थगत समानताएँ पाई जाती हैं। जैसे कि हिन्दी
र कोंकणी लोकसाहित्य की अन्य विधाओं में देखा जाता है वैसे ही हिन्दी
र कोंकणी कहावतों में भी ये समानताएँ देखी जाती हैं। इन दोनों
षाओं को बोलनेवाले समाज एक दूसरे से बहुत दूर रहते हुए भी इनके
वनानुभव एवं विचारधारा में ज़्यादा अन्तर नहीं पाया जाता। दोनों
माजों में सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता भी पाई जाती है। हिन्दी तथा
ोंकणी कहावतें इसके संपुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दी और कोंकणी समाज में ऐसी अनेक सुन्दर कहावतें मिलती
जो दोनों भाषाओं से संबन्धित समाज का समान रूप प्रस्तुत करती हैं।
विभिन्न सामाजिक संबन्धों से संबद्ध ये कहावतें दोनों समाजों के आपसी
िकट्य को सामने लाती हैं। समाज में विभिन्न स्वभाववाले व्यक्ति रहते हैं।
नके बीच हमेशा मनमुटाव रहता है। इससे समाज में अक्सर झगड़े होते
हते हैं। स्त्रियों में यह प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। हिन्दी तथा कोंकणी
कहावतें समान रूप से इस बात को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत करती
हैं।

आ पड़ोसिन लडें (हिन्दी)

वोयीं उड्डूनु झगडूक येत्ता (कोंकणी)

एक हाथ से ताली नहीं बजती (हिन्दी)

एक हात्तान ताळियो वज्जुन्ना (कोंकणी)

समाज में दिखाई पड़नेवाले विभिन्न प्रकार के संबन्धों को लेकर भी, जै माँ बेटी, सास बहू, सास जमाई आदि, कहावतें चलती हैं। उदाः

जैसी माई वैसी जाई (हिन्दी)

अम्मा मेल्ली धूव उठायली (कोंकणी)

(माँ मर गई और बेटी सचेत हुई)

और भी ये बातें प्रतीकात्मक ढंग से सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त हुई है जैसे -

गाय को अपने सींग भारी नहीं होते। (हिन्दी)

कायळ्याक तग्गेलीं पिल्लां चंद (कोंकणी)

(कौए को अपने बच्चे अच्छे लगते हैं)

प्रस्तुत कहावतों में दोनों भाषाओं में गाय और कौए के प्रतीक के ज़रिए म की ममता को समान रूप से अभिव्यक्त किया गया है। माँ बेटी का संबन जितना सुन्दर एवं सुखी होता है उतना ही बदसूरत एवं दुःखी होता है सार बहू का संबन्ध। सास के जीवनकाल में बहू का सुखी रहना संभव नहीं है परस्पर लड़ते हुए भी दोनों का एक ही घर में रहना कहावतों का गंभी विषय बन गया है। यहाँ स्थानगत या भाषागत भेद देखने को नहीं मिलता बहू को हमेशा सास की प्रवृत्तियों पर शिकायत ही शिकायत है। हिन्दी की कहावत है - *होंठ हिले न जिभिया खोली, फिर भी सास कहे बड़बोली*।[5 और भी *जिस बहुआ की बैरन सास, वाका कभी न हो घर वास*।[51] सार

...स दुर्व्यवहार से पीड़ित बहू का चित्र *आज मरी सासू, कल आये आँसू*[५२] ...ावत में सुन्दरता के साथ चित्रित है। सास का यह दुर्व्यवहार सास बहू ...बीच लड़ाई झगड़े का कारण बन जाता है। और इस झगड़े से ऊब कर ... को कहना पड़ता है - *सास मोरा मरो, ससुर मोरा जिओ, अचल राज ...रेया का होखो।*[५३] कोंकणी समाज में भी सास का यह दुर्व्यवहार कुछ ... नहीं है। यहाँ सास की करतूतों क़ो असह्य पाकर झगड़े की तीव्रता में ... हाथ में आई चीजों को लेकर सास पर प्रहार करती है। कभी यह ...रेयल खुरचने का समय होता है तो कभी चूल्हे के पास खाना बनाने का। ...कणी की कहावत इस प्रकार चलती है - *अड्डळि मोव्ळि मायिं मेल्ली ...क बुद्धि आयली*[५४] (पहँसुल टूटी, सास मरी और बहू सचेत हुई) विवाह ... पहले ही लड़की के धरवाले लड़की को सास के दुर्व्यवहार के प्रति सचेत ...रते हुए कहते हैं - *अन्दण विन्दण ना गो धुवे,जिभेन सरि जा,मायंक ...वाक मार्नु भायर घालतल्ली जा*[५५] (हे बेटी, हमारे पास देने के लिए धन ...ही है। प्रीतियुक्त शब्दों के ज़रिए तुम उपाय से सास ससुर को घर से ...हर कर देना।) इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और कोंकणी समाज ... सास बहू के संबन्ध उतने अच्छे नहीं दिखाई देते। जिस प्रकार सास बहू ...हती है उसी प्रकार सास जमाई भी मन मुटाव के साथ ही एक दूसरे के ...ामने आते हैं। हिन्दी और कोंकणी कहावतें सास जमाई के ऐसे संबन्धों ...ो इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं। दामाद के आने पर सास को खुशी अवश्य ...ोती है। लेकिन उसके आगमन से कठौती में रखा हुआ माँड बरबाद हो ...ाता है। दामाद की उपस्थिति में सास उसे पी नहीं सकती। देखिए -

अइले दामाद मन हरिअर भेल
कठउत के माँड हेन पतर भेल

कोंकणी की कहावत इस प्रकार चलती है

जावंय आइला राति मायंचे तोण्णांत माति

(जमाई आया रात को सास के मुँह में माटी)-

हिन्दी तथा कोंकणी समाज में अक्सर ब्राह्मण पुरोहित को ᳚ दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से उनका इहलोक परलोक सुधर जाते हैं। लेकिन इन ब्राह्मणों के बीच समाज के लि हानिकारक पुरोहित भी रहते हैं जिनके प्रति समाज के लोग हमेशा सज रहते हैं और उनकी निन्दा भी करते हैं। ये कहावतों के ज़रिए इस प्रक अभिव्यक्त हुआ है।

कानी गाय ब्राह्मण को दान (हिन्दी)

अक्कूळेलि गाय अप्पा भट्टाक (कोंकणी)

गाय जो दूध नहीं देती वह ब्राह्मण को दान में दी जाती है। इस प्रकार दुर्जन निन्दा, बुरी नीयत, लेन देन, झूठी शान, स्वार्थ आदि स संबन्धित कहावतें भी हिन्दी तथा कोंकणी में चलती हैं।

धर्म के क्षेत्र में भी हिन्दी तथा कोंकणी समाज में कई समानता हैं जो कहावतों के ज़रिए प्रकट होती हैं। संस्कृत में अक्सर कहा जाता है *अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम*। हिन्दी की कहावत है - *अंधे का खुदा हाफिज़* और कोंकणी की कहावत *अनाथाक देवाली रक्षा* (ईश्वरअनाथों की रक्षा करता है), *दिक्कनत्तिल्याक देवु सहायु*[55] (अंधे को खुदा हाफिज़) ईश्वर के संबन्ध में समान विचारों को प्रस्तुत करती हैं। यों ईश्वर का खेल अजीब होता है। उनके दरबार में न्याय का पक्ष ही चलता है। सज्जनों का ईश्वर भला करते हैं और दुर्जनों को दण्ड भी देते हैं। कोंकणी की कहावतें *जाचें मन भोळें ताका देवु दित्ता केळें जाचें मन फाड़ ताका देवु दित्ता थापट*[56]

सका मन भोला है ईश्वर उसका भला करता है, जिसका मन टेढ़ा है र उसको दण्ड देता है।

इस प्रकार हिन्दी और कोंकणी में ऐसी अनेक कहावतें मिलती हैं भाषागत, रूपगत एवं विषयगत समानताएँ लिए हुए हैं। जीवन के हर क्ष में प्रयुक्त हिन्दी तथा कोंकणी कहावतें मिलती हैं जो दोनों समाजों के माजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का परिचय देती हैं।

हेलियाँ

पहेलियाँ मानवीय जिजीविषा के सच्चे प्रतिबिंब हैं। जीवन में कई मस्याएँ आती हैं और उनका समाधान भी होता है। पहेलियों में भी मस्यायें और समाधान रहता है। यह लोकवाङ्मय की सशक्त एवं समर्थ धा है जिसमें संस्कृत के मूलभूत तत्व निहित हैं। मानवीय जीवन से जुड़े हने के कारण पहेलियों में इतिहास, सामाजिक जीवन, लोकविश्वास, र्मदर्शन, प्रकृति आदि से संबन्धित प्रसंगों का उल्लेख हुआ है। एक अर्थ में पहेलियाँ प्राकृतिक व्यापारों की चित्र विचित्र रंगस्थली रहती हैं। इनमें कृति के शोभा- संस्कार रूपायित हैं। पहेलियों में प्रतिबिंबित प्राकृतिक जगत् के ज़रिए प्रत्येक स्थान का जीवन्त भूगोल पाया जा सकता है। पहेलियाँ कई तरह की होती हैं। कहीं वे प्रतिबन्धात्मक रहती हैं तो कहीं प्रश्नात्मक दिखाई देती हैं। इनकी विशेषता एकाधिक विशेषणों का कथन रहती है। जैसे ओस के लिए कहा गया है - *उज्ज्वल है पर पय नहीं , शीतल चन्दन नाहिं, विना छोह के बास है, निसि में देखन जाहिं।* उक्तिवैचित्र्य इनकी विशेषता है। उदाहरण के लिए *पीछे पीछे सबके जावे जिधर उजाला उधर नहीं आवै (छाया)।* खेती संबन्धी, भोजनसंबन्धी, घरेलू

वस्तुसंबन्धी, प्राणिसंबन्धी, प्रकृतिसंबन्धी कई तरह की पहेलियाँ मिलती ह
इनमें कई ऐतिहासिक प्रसंग भी मिलते हैं जिनके संबन्ध में परंपरा
ऐतिहासिक ग्रंथों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। ऐतिहासिक घटना
स्थानों और सामग्रियों का इनमें वर्णन होता है। प्राचीन रिक्थ को बन
रखते हुए आधुनिक सभ्यता के अनुकूल उसे प्रस्तुत करने के कारण आ
भी पहेलियों का बड़ा महत्व है। इनमें जीवन दर्शन के साथ साथ जीव
निर्माण का भी एक सशक्त आधार रहा है। यहाँ पर बुद्धि की प्रबलता औ
ज्ञान का विकास रहता है।

पहेलियों की परंपरा

पहेलियों का विकास बहुत प्राचीन है। गुफा और घने जंगलों
वास करनेवाले आदिम मनुष्य इनका खूब उपयोग करते थे। जीवन क
यथार्थ घटनाएँ ऐसी पहेलियों को जन्म देती रहती हैं। प्राचीन काल
ईश्वरसंबन्धी ज्ञान पहेलियों के ज़रिए ही दिया जाता था। उदाहरण
लिए -

ए जी कौन जगत् में एक है बीरा कौन जगत् में दोय
कौन जगत् में जागता ए जी कौन रह्या पड़ सोय

संस्कृत और प्राकृत का गाथा साहित्य पहेलियों से भरा हुआ है। कथासरित्साग
में अनेक ऐसी पहेलियाँ मिलती हैं जो देश की सीमा के पार तक फैली हु
हैं। शुकसप्तति, वेतालपंचविंशति, कादम्बरी जैसे संस्कृत आख्यानों ए
अन्य साहित्यों में पहेलियों का उल्लेख मिलता है।

हिन्दी पहेलिया

दूसरी भाषाओं की पहेलियों के समान हिन्दी की पहेलियाँ भी

खित रूप में बहुत कम ही मिली हैं। विषयवस्तु, रूप एवं प्रयोजन के ार पर इनका वर्गीकरण किया जाता है। फिर भी विषयवस्तु को ही खता दी जाती है। विषयवस्तु के आधार पर पहेलियों को मूल रूप से ी प्रकार से विभाजित किया जाता है।

१. घरेलू उपादान से संबन्धित पहेलियाँ
२. प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ ·
३. शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ

लू उपादान से संबन्धित पहेलिया

मनुष्य को जीने के लिए अनेक चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है। दिन तिदिन आवश्यकताओं के अनुसार मनुष्य कई वस्तुओं का प्रयोग करता ता है। पहेलियाँ यों तो समस्याओं और समाधानों को लेकर चलती हैं र घरेलू उपादान से संबन्धित पहेलियाँ इनका अपवाद नहीं हैं। जीवन ी वास्तविक घटनाओं को चित्रित करते समय जीवन में प्रयुक्त की ानेवाली सारी वस्तुएँ पहेलियों में स्थान पा जाती हैं जैसे -

भरपेट खिलाई लगे सुताई
जब जब मन करे तब तब उकसाई - अँगीठी[५७]

ड से बचने के लिए मनुष्य अँगीठी का उपयोग अक्सर करता रहता है ऊपर की कहावत में अंगीठी की प्रकृति का सुन्दर और यथार्थ विवरण दिया ाया है। प्रतिदिन उपयोग में लाये जाने के कारण और जीवन से संबन्ध खने के कारण इसका विवरण सुनते ही सुननेवाले के मन में वस्तु का आकार अपने आप रूप लेता रहता है। इसी प्रकार चूल्हा, जाँता, ढेंकी, सेकहर, घड़ा, दिया, लोटा, तवा, झाडू आदि घरेलू उपकरणों से संबन्धित पहेलियाँ भी मिलती हैं जो जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण करती रहती

हैं। उदाहरण के लिए

एक सींग की है वह गाय
जितना खिलावे उतना खावे --जाँता [५८]

जाँते का रूप और कर्मसंबन्धी वर्णन गाय के परिवेश में जब चित्रित हो
है तो सुननेवाले उसे अपने जीवन के अनुभवों से मिलाकर बिलकु
अपनेपन के साथ ग्रहण करते हैं। ढ़ेंकी का विवरण भी उसे बैल के सा
जोड़ते हुए मिलता है। जैसे

काठ का बैल लोहे की सींग
बैलवा नाचे ताक धिना धिने - ढ़ेंकी [५९]

प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ

मनुष्य जीवन में अकेला नहीं रहता। उसके साथ घर में उस
सगे संबन्धी भी रहते हैं। धर के बाहर वह कई प्रकार के जीव जन्तुओं औ
पशु पक्षियों से संबद्ध रहता है। इनमें गाय जैसे उपकारी पशु रहते हैं त
बाघ जैसे हिंस्र पशु भी दिखाई देते हैं। इनका विवरण पहेलियों से हमें प्रा
होता है। इनके अलावा पेड़ पौधे , फूल फल, सूर्य चन्द्रमा, हवा और पानी
पृथ्वी और आकाश, अंधेरा और उजाला आदि प्राकृतिक दृश्यों का भ
वर्णन इन पहेलियों के ज़रिए प्राप्त होता है। प्रकृतिसंबन्धी विवरण में पहे
के प्रयोक्ता ऊपर दी गई प्राकृतिक पृष्ठभूमि का समुचित निर्माण करते हैं
पहेलियों की प्रकृति मात्र भौतिक विश्लेषण न होकर लोकजीवन की आश
आकांक्षा, श्रेय प्रेय, राग द्वेष आदि को प्रकारान्तर से दिखाती है। अप
विभिन्न उपादानों और व्यापारों के साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में वे हमा
सामने आती हैं। प्रत्यक्ष रूप में वर्णित विषयवस्तु बनकर वह आती है त
परोक्ष रूप में सादृश्यमूलक अभिव्यक्ति का साधन बनकर वे हमारे साम

ा हैं। प्रकृति के उपादानों में मूलत: अंधेरा, प्रकाश, अग्नि, आकाश, ा, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, ताराएँ, छाया आदि आते हैं। पहेलियों में सूर्य, मा और ताराएँ प्रकाश फैलानेवाले हैं। इनके संबन्ध में आत्मीयतापूर्ण तियाँ प्राप्त होती हैं। प्रतिदिन के जीवन में व्यवहृत विभिन्न उपादानों के ध में ही इनका चित्रण हुआ है। सूर्य को उपला, कंडा, ढक्कन, गुलाब फूल, चाँदी का बटुआ आदि बिंबों के साथ चित्रित किया जाता है। हरण के लिए -

> प्रतिदिन फुलै गुलाबओ साँझ बेर झरि जाय
> माली सिंचन नहीं करै फुलिते देय जगाय [६०]

ाँ सूर्य की तुलना गुलाब से की गई है जो सबेरे फूलता है और शाम को ड़ जाता है। फूलने और झड़ने के लिए पानी की ज़रूरत नहीं हैं। इसमें र्य का आकारपरक चित्रण हुआ है। इसी प्रकार सूर्य के प्रकाश की ओर केत करते हुए उसकी तुलना दिये से की गई है। जैसे

> बिना तेल का बिन बाती का, दिन भर एक दिया जलता है
> और दीप जलने से पहले पश्चिम जाकर ढलता है। [६१]

कृति के इन उपादानों के अतिरिक्त उसको सजीव बनानेवाले पशु पक्षी वं जीव जन्तु, मच्छर, बिच्छू, मेंढक, सर्प, कुत्ता, गाय, हाथी, भौंरा, रगिट, जोंक आदि आते हैं। इनमें उपद्रवी एवं उपकारी दोनों तरह के ीवजन्तु रहते हैं। पहेलीकार कभी इन्हें नहीं भूले। गिरगिट को लेकर कतनी सुन्दरता के साथ उसने पहेली बुझाई है, देखिए -

> सिरे सुर्ख मुर्गा नहीं, नीलकण्ठ नहीं मोर
> लम्बी दुम बानर नहीं, चार पैर नहीं खोर [६२]

सी प्रकार जोंक का विवरण बिन हड्डी के जीव के रूप में दिया गया ह -

एक जीव अर जिसकी हड्डी है न पर [६३]

बिच्छू को लेकर बुझाई गई पहेली उसके गरल की तीव्रता को सुन्दरता साथ प्रस्तुत करती है। वह इस प्रकार है। जैसे -

तुम उत्ते बड़े, हम इत्ते बड़े
हमने छू दिया तुम रो पड़े [६४]

मच्छर तो बिन कहे ही मनुष्य के लिए बिलकुल परिचित रहा है। उसके लि थप्पड़ से अच्छी दवा नहीं मिल सकती। पहेलीकार को यही कहना है कुत्ता भुंके इलाहाबाद, मारा थप्पड़ लोट गया[६५] लेकिन इनमें सबसे सुन्दर एवं आकर्षक भौंरा होता है जिसकी प्रकृति काली होती हुई भी आकृति भ होती है। जैसी उसकी सुन्दरता वैसी एक सुन्दर पहेली इस प्रकार चल है

श्याम बरन पीतांबर कांधे, मुरलीधर नहीं होय
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझै कोय [६६]

इस प्रकार दिन प्रतिदिन के जीवन में मनुष्य के सुखदुःख का कारण बनकर प्रकृति में जीनेवाले जीव जन्तुओं का चित्रण पहेलियों में देखा ज सकता है।

इन जीव जन्तुओं के अतिरिक्त प्रकृति में विचरण करनेवाले पशु पक्षी भी पहेलियों के विषय बने हैं। मनुष्य के सर्वाधिक निकट रहनेवाले गाय और कुत्ता और मनुष्य से दूर वन में रहनेवाले बाघ और शेर भी पशु पक्षियों की सूची में हमें मिल सकते हैं। गाय और कुत्ते से संबन्धित द पहेलियाँ इस प्रकार हैं। कुत्ते का सबसे सुन्दर रूप जो पहरेदार का है पहेलियों के ज़रिए सुन्दरता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

पक्का पहरेदार हमारा धनी मानी का यह प्यारा
बिना वेतन का पहरा देता जो कुछ मिलता खाकर रहता।[६७]

ते के जैसा वफादार जानवर संसार में दूसरा नहीं। वह जितना तेज़ है तना ही विनयशील भी है। इस पहेली के ज़रिए कुत्ते के इन गुणों पर काश पड़ता है। गाय तो बहुरंगी होती है। उसका उपयोग भी बहुत तरह ा है। गाय का दूध, गोबर एवं मूत्र तरह तरह से मनुष्य उपयोग में लाता ड़ता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी उनका बड़ा महत्व रहा है। इसीलिए दूध नेवाली गाय के स्तनों का बखूबी से वर्णन पहेलियों में हुआ है। यहाँ तक क इन्हें अमृत का भाजन भी कहा जाता है --

चार अडर गडर, चार इमिरत भाजन
दूई सूखल काठी, एक हाँकेहे माछी [६८]

ाकृतिक छटा बनानेवाले वृक्ष, लताएँ, फल, फूल आदि भी पहेलियों के षय बनते हैं। पेड़ पौधों के अन्तर्गत धान, केले का पेड़, ताड़वृक्ष, महुआ का पेड़, शीशम का पेड़, नीम आदि आते हैं। उदाहरण के लिए

नाम बड़ा है, रूप बड़ा है जीव नहीं कोई रूखड़ा है
किन्तु बीज है छोटा उसका ऐसा पुत्र बताओ किसका [६९]

फलों के अन्तर्गत जामुन, नारियल, केला, कटहल, आम आदि का विवरण मिलता है। आम से संबन्धित पहेली बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। जैसे ाजा की बेटी, अटेरी पर लेटी, ऊपर से गिरी लुटेरे ने लूटी [७०]
इलायची केलिए पहेली का कहना है

सोने की डिबिया में मोती भरी है
पंचाएतों में झरी लगी है[७१] --

पहेलियों के अनुसार जामुन वन में ही मिलता है -

वन में कोइला टांगल है [७२]

पहेलियों के अनुसार केले की घौद *सतहत्तर भतियावाला एक फूल है*। कटहल के बारे में पहेलियाँ उसके आकार एवं परिमाण पर ही दृष्टि डालती हैं । उनके अनुसार कटहल *धमसूड़ पेड़ की पंसेरी के* समान माना जा सकता है। पहेली इस प्रकार चलती है -

एक पेड़ धमसूड़ का, फल उसका पंसेरी का
कच्चा वह तरकारी का पक्का लगे मिठाई का [७३]

शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलिया

शरीर के अंगों में आँख, नाक, उँगलियाँ, नाखून आदि से संबन्धित कई पहेलियाँ मिलती हैं। आँख शरीर का बहुत ही नाजुक अंग है। इसी ओर संकेत करनेवाली पहेली इस प्रकार चलती है-

आए तो दुख दे, जाये तो दुख दे
उठे तो दुख दे बैठे तो दुख दे[७४]

आखों का मूल्य किसी भी हालत में आँका नहीं जा सकता। उनके रूप, सौन्दर्य, आकार एवं कार्यव्यापार की ओर संकेत करनेवाली पहेली इस प्रकार है।

लाली लाली बैंगनी, पेटारी भरल जाय रे
लाख रुपया दाम लागे, तइयों न बिकाय रे [७५]

पहेलीकार का कहना है कि किसी भी हालत में लाख रुपया देने पर भी इस विचित्र बैंगन को खरीदा नहीं जा सकता। यह शरीर के अंगों में आँखों

प्रमुखता पर ही संकेत करती है। आँखों के बाद नाक का स्थान है नके बिना जीना ही असंभव है। इसके बारे में पहेलीकार यही कहते हैं

नारी एक पुरुष हैं दो एक चले एक रहवे सो
हरदम नार को है यही सांसा इन दोनों का एक ही बासा[७६]

क से ही सांस छोड़ी जाती है। सांस के बिना जीना कठिन होता है। नाक बाद पहेलीकार की दृष्टि हाथों और पैरों की ओर चलती है जिनके बिना ना और कुछ करना असंभव हो जाता है। बिना उंगलियों के हाथ पैर व्यापार ठीक तरह से चल नहीं सकता। पुरुष और नारी के प्रतीक को कर इस भाव का वर्णन पहेली में सुन्दरता के साथ हुआ है।

चार पुरुष और सोलह नारी चार चार मिली जोरे यारी
दिन में चले एक ही साथ रात में सोवै एकै साथ[७७]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी पहेलियों में जीवन के सभी अंगों ो महत्व दिया गया है और यह दिखाया गया है कि पहेलियाँ जीवन दर्शन साथ साथ जीवन निर्माण का भी सक्षम आधार रही हैं। सादृश्य योजना, लेष्ट कथन आदि के ज़रिए वर्णित वस्तु का सुन्दरता के साथ प्रतिपादन नमें किया जाता है। अप्रस्तुत के वर्णन के ज़रिए प्रस्तुत की अभिव्यक्ति नकी विशेषता रही है। ये पहेलियाँ मनोरंजन के साथ साथ बुद्धि का वेकास भी करती रही हैं।

ोंकणी पहेलियाँ

कोंकणी पहेलियाँ कोंकणी मानस की जिजीविषा के प्रतिबिंब हैं। नमें मूलतः समस्या और समाधान समाया रहता है। कोंकणी पहेलियों से ोंकणी के प्राचीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास के अंधकारपूर्ण

गह्वरों में प्रकाश फैल सकता है। ये पहेलियाँ कोंकणी मानस के चिन्त एवं रचनात्मक प्रतिभा का मिला हुआ रूप हैं। छोटे से कलेवर में भी ज्ञा के भंडार को लेकर चलनेवाली ये पहेलियाँ कोंकणी लोगों के जीवन व सही सही चित्रांकन करने में समर्थ हैं। कोंकणी लोकसाहित्य की ये समृ एवं सशक्त विधा हैं। जिन पहेलियों में वैदिक ऋषियों ने सत्यदर्शन व गूढ़ता को व्यक्त किया है उन्हींके मार्ग पर चलते हुए कोंकणी लोगों लोकसाहित्य के इस रूप को जीवन की गूढ़ताओं को पहचानने के लि प्रयुक्त किया। पहेलियों से ज्ञानवर्द्धन के साथ साथ मनोरंजन भी होत रहता है। कोंकणी में इन पहेलियों को *इुमाणें* (मराठी उमाण) या *आ* (संस्कृत हृदयालिका) कहते हैं। इनसे कोंकणी लोगों की मनीषा, प्रतिभ एवं विवेक का मूल्यांकन हो सकता है। इनका प्रतिपाद्य अवश्य ही अनुसंधे है जिसमें कोंकणी जीवन से संबन्धित सत्य के अनेक अंश सामने अ सकते हैं। सहज ही सुन्दर एवं मनोरम भाषा कोंकणी पहेलियों का साथ पाकर और भी निखर उठती है। विवरण इन पहेलियों की जान है। इसके द्वारा पहेली अपनी समस्या की आवृत्ति, क्रियात्मकता, स्थिति और उपयोगित को कलात्मक संप्रेषण देती है। विवरण को सादृश्यमूलक अलंकारों के ज़रिए व्यंजित किया जाता है। जैसे आमच्या मास्याक भायल्यान कांटे (बाहर से हमारे सूंस के कांटे हैं) फाळुं तर जायते वंटे[७८] (यदि फाडा जाय तो कई हिस्से बनते हैं।) (कटहल) कोंकणी पहेलियों को मूलतः तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है -

१. घरेलू उपादानों से संबन्धित पहेलियाँ
२. प्रकृतिसंबन्धी पहेलियाँ
३. शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ

ज़ू उपादानों से संबन्धित पहेलिया

प्रतिदिन के जीवन में मनुष्य कई चीज़ों का उपयोग करता है जो ने के लिए उसकी सहायता करती रहती हैं। घर से संबन्धित अनेक लू उपादान इसके अन्तर्गत आते हैं । जैसे चक्की, पहुंसल, ताला, सुई, ग, मूसल, झाडू, कैंची, आदि। चूँकि पहेलियाँ जीवन का चित्रण करती इसीलिए ये उपादान इनमें विषय के तौर पर अपने आप आ जाते हैं। कणी में इस प्रकार की कई पहेलियाँ देखने को मिलती हैं । उदाहरण लिए

इलो इलो पाको घर राकता [७९] - (बीग)
(छोटा छोटा चमगीदड़ घर की रक्षा करता है) - (ताला)

ड़े से बड़े घर की रक्षा करने के लिए छोटी सी छोटी वस्तु का उपयोग किया ता है। वही ताल है। वैसे ही सुई का भी घर में अपना अलग महत्व है। कणी में सुई को लेकर मनोहर पहेलियाँ सजाई गई हैं जिनमें एक है

आमगेर एकली म्हातारि
हात नांत पाय नांत, दोळो मात्र एकुच[८०] -(सुवि)
(हमारे घर में एक बूढ़ी है
हाथ नहीं हैं, पैर नहीं हैं, एक आँख मात्र है) - (सुई)

दिया तो अंधकार में लोगों के साथ रहता है। प्रकाश में उसकी ज़रूरत न होते हुए भी अंधकार में उसके बिना काम नहीं चलता। दिये को लेकर पहेलीकार ने सुन्दर कल्पना सजाई है जो इस प्रकार है

कोंडित मधें कुंवरन बरस्ल्या,
तानेन गळो सुकल्यार मरोन पडटा [८१] -(दिवो)

(तेलदान के बीचों बीच कुँवारा बैठा है
प्यास से गला सूखते ही मर जाता है) - (दिया)

इसी प्रकार और एक पहेली में दिये को एक छोटा सा बच्चा कहा है
अनेक राक्षसों को भगाता है।

एदेसो पिलो जय्त राक्सस धांवडायता [८२] -- (दिवो)

यहाँ पर अंधकार का राक्षसी रूप रूपकालंकार को सुन्दरता के सा
प्रस्तुत करता है।

रसोई में काम करते वक्त स्त्रियों की सहायता करनेवाली क
चीज़ें हैं । ये चीज़ें पहेलीकार की दृष्टि से किसी भी हालत में छूट नहीं गई
जिन चीज़ों को हम महत्वपूर्ण नहीं मानते उन चीज़ों का भी विवर
पहेलियों में देते हुए पहेलीकार ने उनके महत्व को जता दिया है। पहँसु
को लेकर उसने सुन्दर पहेली सजाई है। जैसे

अडकळ्यांतुल्या सूण्याक बाल मुखार [८३] - (आडळी)
(रसोई घर के कुत्ते की पूँछ आगे रहती है) - (पहँसुल

इसी प्रकार चक्की, मूसल आदि से संबन्धित पहेलियाँ भी कोंकणी
मिलती हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं -

एका शिंगाचो पाडो
शेजार सगळें गाजयता [८४] - (दान्तें)
(एक सींगवाला बैल
सारे पडोस में शोर मचाता है) - (जांता)

इसमें जांते की तुलना एक सींगवाले बैल से की गई है। मूसल का भ

ाविरण सुन्दरता के साथ दिया है -

काळें कापड न्हेसोन पायाक मुदि लायता
सरर करून उट्टा भरर करून पडटा [८५] -(मुसाळ)
(काली साड़ी, और पैर में अंगूठी पहनकर
सरर कर उठती है और *भरर* कर गिरती है) - (मूसल)

इस प्रकार घरेलू उपादानों के अन्तर्गत अनेक चीज़ों का विवरण हेलियाँ देती रही हैं जो लोगों को अपने अनुभवजन्य ज्ञान को फिर एक ार याद करने के लिए प्रेरित करती हैं।

ाकृतिक उपादान से संबन्धित पहेलियाँ

कोंकणी पहेलियों में प्रकृति अपने उपादानों और व्यापारों के साथ ो रूपों में विवेचित मिलती है। प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रथम रूप में प्रकृति के ंग प्रत्यंग पहेली के विषय रहे हैं। परोक्ष रूप में वे प्रकृति के सादृश्यमूलक अभिव्यक्ति के साधन हैं। इन दोनों रूपों में मनुष्य का प्रकृति से संबन्ध एवं लोकजीवन की आशा आकांक्षा, राग द्वेष एवं श्रेय प्रेय का वर्णन प्रकारान्तर से होता रहता है। प्रकाश और अन्धकार प्रकृति के प्रमुख प्रतिभास हैं। प्रकाश उत्पन्न करनेवाले प्राकृतिक उपादान संबन्धी एवं अन्धकार से संबन्धित अनेक पहेलियाँ कोंकणी में मिलती हैं। उदाहरण के लिए

आमगेर एक आंबो आसा कात्रुंक जायना
ताणें सोडेयलेली कांबळ दोडुंक जायना
ताणें जगवन दवर्लेलें धन लेखूंक जायना [८६]
-(सूर्यो, मळब, नकेत्रां)

(हमारे यहाँ एक आम है जो काटा नहीं जा सकता
उसकी कंबल की तह खोजी नहीं जा सकती

उसके कमाये धन की गणना नहीं हो सकती)

-(सूर्य, आकाश, नक्षत्र

इसमें लोकजीवन से संबद्ध करके प्रकृति के परोक्ष रूप का चित्रण रूपकालंकार के ज़रिए किया गया है। सूरज के साथ साथ आकाश एव ताराओं की भी पहेलियाँ इसमें बुझाई गई हैं। प्रकाश फैलानेवालें चन्द्रमा से संबन्धित पहेलियाँ इस प्रकार हैं -

१. एकाच आपोळान गांव सगळो धादोशी - (चन्द्रेम)[८७]
(एक ही पापड़ से सारा गाँव सन्तुष्ट - (चन्द्रमा)

२. आवयचो भाव नहिं आकयचो घोव नहिं
मामा म्हळ्या शिवाय आपंवचो नहिं - (चन्द्रेम)[८८]
(माँ का भाई नहीं दीदी का शौहर नहीं
मामा कहे बिना बुलाया जाता नहीं) - (चन्द्रमा)
ताराओं से संबन्धित एक सुन्दर पहेली इस प्रकार है
एका वाटलें भर्न फुलां - (मळबार नकेत्रां)[८९]
(एक थाली भर फूल) - (आकाश पर तारे)

प्रकाश से संबन्धित और एक उपादान है आग। इससे संबन्धित कोंकणी पहेलियाँ हैं

१. आमगेल्या देवाक मुस बसना, काळोक लागना [९०]- (उजो)
(हमारे देव पर मक्खियाँ नहीं बैठतीं,
उन्हें अंधकार नहीं छूता) (आग)

२. आमच्या आबाक कितें दिल्यारी खाता,
उदाक दिल्यार मर्ता -- (उजो) [९१]

रे बाबा को जो भी दें, खा जाते हैं, पानी दें तो मर जाते हैं) -(आग)

के सिवा संसार के समस्त पदार्थों को भस्मसात् करने की आग की ते सुन्दरता के साथ इसमें अंकित है। प्रकाश के फलस्वरूप उत्पन्न वाली छाया को भी कोंकणी पहेलियों में स्थान मिल गया है।

उदाहरण इस प्रकार है -

मेल्लें पाटीक लागलां, खंय गेल्यार पाट सोडिना[१२] (सावळी) -

मरा, पीछे पड़ा, जहाँ भी जाय पीछा नहीं छोड़ता) (छाया)

कार संबन्धी पहेलियाँ कोंकणी में सुन्दरता के साथ चित्रित हैं। जैसे

वचनाशिल्लो गांव ना , पळेनाशिल्लो मनीस ना[१३] (काळोक)
(ऐसा गाँव नहीं जहाँ वह पहुँचा न हो,
ऐसा मनुष्य नहीं जिसे उसने देखा न हो) (अंधकार)

सुर्यान देकोंक्ना, चन्द्राक वळक ना -[१४] (काळोक)
(सूर्य देखता नहीं, चन्द्र पहचानता नहीं)- (अंधकार)

सांजेर पळेतना आस्लोलो, साकाळिं सोध्ल्यार ना[१५] (काळोक)
(सांज को देखा था,सबेरा होने पर दिखाई नहीं पड़ता)
(अंधकार)

कितें तें बाडटा बाडटा अम्कां दिसना? (काळोक)[१६]
(वह क्या है कि फैलते फैलते हम नहीं देखते) (अंधकार)

न, रात, पक्ष महीना, वर्ष, समय आदि से संबन्धित प्राकृतिक उपादान जो अवश्यंभावी हैं। कोंकणी पहेलियों का क्षेत्र इनसे अछूता नहीं है। कृतिक उपादानों के अन्तर्गत वृक्ष लतादि एवं जीव जन्तु सर्वाधिक

महत्वपूर्ण हैं। इनका जिक्र पहेलियों में बराबर होता रहा है। इन पहेलि
को पढ़नेवाला कोंकणी लोगों की बुद्धि को दाद देता रहेगा। यों तो वृक्ष
ही स्थान पर गतिहीन अवस्था में है। उसकी पत्तों भरी डालियाँ जो छ
की तरह फैली हैं हमेशा चंचल रहती हैं। कोंकणी पहेली यों कहती है

आवय खडक्क निट, भुर्गिं सगळिं भंव्तिं नाचतात - (रुक)[९७]
(माता सीधी खड़ी है, बच्चे चारों ओर नाचते हैं) - (वृक्ष)

इसी प्रकार विविध प्रकार के पौधों से संबन्धित पहेलियाँ प्रत्यक्ष या पर
रूप में उनके रूप, गुण आदि का परिचय देती हैं। जैसे

१. आवय काळि, धूव गोरि, धुवेचा गळ्यांत पोवळ्यां सरि [९८]
- (मिर्सांगेचें- जड, फूल आनी सां
(माता काली, बेटी गोरी, बेटी के गले में प्रवाल का हार
- (मिर्ची - झाड़, फूल और मि

२. कट्टि आसा, कासव नहिं, शेंडि आसा, ऋशि नहिं तिन दोळे
आसात, शिव नहिं [९९] - (नाल
(खोल है, पर कछुआ नहीं, चोटी है पर ऋषि नहीं, तीन
आँखें हैं पर शिव नहीं) - (नारियल

३. आमगेर एक पेट्टूळ आसा,एकलो तें उगडटा, पुण शें भर
जाण मेळ्यारी तें धांपूक तांचान जायशें ना [१००] - (काजुचि बी
(हमारे यहाँ एक पेटी है, कोई उसे खोलता है तो
सौ लोग मिलकर भी उसे बन्द नहीं कर सकते) - (काजू

४. एका आवयचा भुरग्यांक सगळ्यांक तोप्यो [१०१] (पोपळां
(एक माँ के सब बच्चे टोपियाँ पहने हुए हैं) - (सुपारी

ामगेलें घर ल्हान, भितर भरल्या काळ्या गुळियांचि रास - (पोपाय)[१०२]
हमारा घर छोटा है, अन्दर पूरा काली गोलियों से भरा है) - (पपीता)

प्रकार कोंकणी लोगों से संबन्ध रखनेवाले अनेक जीव जन्तु इन
नयों में सहज रूप से स्थान पा गए हैं। इनमें प्रमुख हैं चींटियाँ, मधु
खयाँ, मच्छर. मछली, तोता, मोर आदि।

आमची कोंबि आनि पिलां धरणि पंन्दाक लिपल्यांत [१०३] (मुयो)
हमारी मुर्गी और उसके बच्चे भूमि के अन्दर छिपे हैं) - (चींटियाँ)

आमची मांय जिवान ल्हान, पुण रन्दता रुचिक खाण [१०४] - (म्होवा मूस)
(हमारी सास देखने में छोटी ,लेकिन स्वादिष्ट खाना बनाती है)
- (मधुमक्खी)

आमचो गायपी गायतां गायतां मरण मागता [१०५] - (जळार)
(हमारा गायक गाते गाते मृत्यु की माँग करता है।) (मच्छर)

आवाज ना, उतार ना, खाता पुण पियेना, तोंड आसा जीब ना
- (मासळी) [१०६]
(आवाज़ नहीं, उत्तर नहीं, खाती है, पीती नहीं, मुँह है, जीब नहीं)
(मछली)

कातो ना, चुनो ना, तोंड कित्या गो तांबशेलां
पावस ना, उदाक ना, रान कित्याक रे आंक्रेलां (कीर) [१०७]
(पान नहीं , चूना नहीं, मुँह क्योंकर लाल है
पावस नहीं, पानी नहीं, वन क्यों कर पल्लवित है) - (तोता)

आंग भर दोळे तरी पळेंवक मात्र दोनुंच दोळे - (म्होर)[१०८]
(देह भर आँखें, लेकिन देखने के लिए केवल दो आँखें) (मोर)

इनके अतिरिक्त मगरमच्छ, मोर, बाज, बकरी, गाय, बैल, केक आदि से संबन्धित पहेलियाँ भी कोंकणी में मिलती हैं।

शरीर के अंगों से संबन्धित पहेलियाँ

शरीर के विभिन्न अवयवों से संबन्धित पहेलियाँ इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पहेलिथों में कलात्मक सौन्दर्य खूब मिलता है। ज्ञा को बढ़ाकर बुद्धि को तेज करनेवाली ये पहेलियाँ सचमुच पढ़नेवालों व आश्चर्यचकित कर देती हैं। उदाहरण के लिए -

१. आकड पाकड तंब्या भाण, बत्तीस रुकांक एकच पान [१०९]

- (तोंड आनी जीब

(अनाज भरा तांबे का भांड, बत्तीस पेड़ों का एक ही पत्ता)

- (मुँह और जीभ

२. आमगेर दोगां पिलां आसात, एकामेका पळेवन नेणांत[११०]- (कान

(हमारे यहाँ दो बच्चे हैं, एक दूसरे को नहीं जानते) (कान

३. आमच्या घराक दोन बागलां,धांपल्यारी आवाज ना काडल्यारी आवाज ना [१११] - (दोळे)

(हमारे घर के दो किवाड हैं, बन्द करने पर आवाज़ नहीं, खोलने पर भी आवाज़ नहीं) - (आँखें)

कहीं कहीं इन पहेलियों में परीक्षणग्राहिका ज्ञानेन्द्रियाँ विभिन्न बिंदुओं की ओर भ्रमित होती हुई गतिशील होती हैं। विपरीतकथन से होकर इनका रहस्य प्रकट करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे -

१. विक्तें घेतलें नात, खातेलेय नात. आंग्डि दवर्न विक्वें नहिं, त्रासींत दवर्न तुक्वें नहिं[११२] -(शेण)

खरीदनेवाले नहीं, खानेवाले भी नहीं, दूकान पर नहीं
बेकता, तराजू पर नहीं तुलता) (गोबर)

काळें आसा काजल नहिं, धवें आसा चुनो नहिं
उदाक आसा बांय नहिं, पाकाठे आसात सुक्णे नहिं ११३ - (दोळे)
(काले हैं, काजल नहीं, सफेद हैं, चूना नहीं,
पानी है, कुआं नहीं, पंख हैं, पक्षी नहीं) (आँखें)

इस प्रकार कोंकणी पहेलियाँ कोंकणी लोकजीवन का सही चित्र अंकित करती हैं। कोंकणी लोगों का रहन सहन, आचार विचार आदि इनमें अभिव्यक्त हुए हैं। प्राकृतिक व्यापारों की चित्र विचित्र रंगस्थली इनमें देखने को मिलती है। इन पहेलियों के मुकुर में प्रतिबिंबित प्राकृतिक जगत के द्वारा कई अनदेखे तत्व सामने आ जाते हैं। इनके ज़रिए कोंकणी लोकजीवन की भौगोलिक, रागात्मक एवं बौद्धिक सत्ता संप्रेषित मिलती है। इनमें कोंकणी लोकजीवन का रूपायन हुआ है। मनोरंजन के साथ साथ ज्ञानवर्धन इनका लक्ष्य रहा है। कोंकणी पहेलियों में पाया जानेवाला यही गुण इस विधा को कोंकणी लोकसाहित्य की अन्य विधाओं से अलग रखता है।

तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी और कोंकणी में शब्दभंगिमा और उक्तिवैचित्र्य के साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबन्ध दिखानेवाली अनेक पहेलियाँ मिलती हैं। दोनों भाषाएँ पहेलियों का साथ पाकर ज़्यादा निखर उठती हैं। पहेलियों का सादृश्य और अनेकार्थता दोनों भाषाओं को और भी सुन्दर बना देती है। कहीं कहीं इनमें दोनों भाषाओं से संबद्ध समाज एवं संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन और लोकविश्वास समान रूप से और कहीं कहीं भिन्नता के साथ अंकित हैं। पहेलियों की गोपनीयता और सांकेतिकता जो पहेलियों के

प्रतिपाद्य में नये नये अर्थ प्रस्तुत करती है, दोनों भाषाओं में समान रूप चित्रित मिलती हैं। समस्या की आवृत्ति क्रियात्मकता, स्थिति और उपयोगि में कहीं कहीं समान दिखाई देती है। जीवन की भिन्नताएँ और प्रदेशगत कहीं कहीं दोनों भाषाओं की पहेलियों में भिन्नता भी दिखाते हैं। फिर अनेक ऐसे भाव समान मिलते हैं जो दोनों भाषाओं की पहेलियों के संबन्ध को दिखाते हैं।

हिन्दी तथा कोंकणी में मूल रूप से पहेलियाँ घरेलू उपादानों संबन्धित, प्राकृतिक उपादानों से संबन्धित और शरीर के अंगों से संबन्धि दिखाई देती हैं। ये पहेलियाँ जीवन के सभी पक्षों को छूती हुई आगे बढ़ हैं। घरेलू उपादानों से संबन्धित पहेलियों में हिन्दी और कोंकणी में सम रूप से जांते से संबन्धित पहेलियाँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए -

एक सींग की है वह गाय जितना खिलाए उतना खावे [114] (जां

कोंकणी में -एका सिंगाचो पाडो शेजार सगळें गाजयता [115] -(दान

(एक सींग का बैल पडोस में शोर मचाता है)

जाँते को लेकर प्रस्तुत दोनों भाषाओं की पहेलियाँ बिलकुल समान रही पहली में जाँते की तुलना एक सींगवाली गाय से की गई है तो दूसरी एक सींगवाले बैल से। गाय और बैल में जो अन्तर रहता है तदनुसार इन क्रियाओं में परिवर्तन दिखाया गया है। लेकिन दोनों के कार्य जाँते समानता रखते हैं। इसी प्रकार घरेलू जीवन में बहुत आवश्यक झाड़ू अ घड़ा भी हिन्दी तथा कोंकणी में पहेली के विषय बने हैं। झाड़ू प्रतिदिन घ की सफाई करने का उपादान है। इसका पिछला भाग रस्सी से बँधा रह है। बुहारते समय यह खड़खड़ाती रहती है। हिन्दी और कोंकणी व पहेलियाँ इसी ओर संकेत करती हैं।

कमर बाँधि के कोने में पड़ी, पड़ी सबेरे अब है खड़ी [116] - (झाड़ू)

खड खड करके रही जो सोय,
दिन पर दिन वह दुबली होय [117] (झाड़ू)

ाब इन्हीं भावों के समेटते हुए कोंकणी पहेलीकार थोड़ी भिन्न शैली में ाड़ू के गुणों की ओर इस प्रकार संकेत करते हैं -

आमचो नवकर नेवाळें तुटल्यार शेंभर जावन पासाळटा - (सारण)[118]
(हमारा नौकर कमरबंध टूटने पर सैकड़ों बनकर बिखर जाता है) (झाड़ू)

नों भाषाओं में पहेलीकारों की दृष्टि समान रूप से उस पर बाँधी हुई ास्सी की ओर रही है। दोनों भाषाओं के पहेलीकार समान रूप से झाड़ू र पहेलियाँ लिखकर घरेलू जीवन में उसकी आवश्यकता पर ही बल देते हैं।

प्राचीन काल से आज तक मनुष्य पानी भरने के लिए घड़े का उपयोग रता आया है। घड़ा घरेलू उपादानों में महत्वपूर्ण माना जाता है। पानी िकालने के लिए उसे रस्सी बाँध कर कुएँ में डाला जाता है। घड़े का यह पयोग हिन्दी तथा कोंकणी दोनों भाषाओं की पहेलियों में इस प्रकार िलता है

घट घट सब कोई कोई कहत है घटै नहीं तिल एक
एक लग डूबे, दो लग उठे, पंडित करो विवेक [119] (घड़ा)

कोंकणी - आयिल्ले गेल्ले सक्कट गळ्याक
पास घालन पाताळाक देंवयतात [120] - (कोळ्सो)
(आनेवाले और जानेवाले सब गले में रस्सी डालकर
नीचे उतारते हैं।) - (घड़ा)

प्राकृतिक उपादानों के अन्तर्गत सूर्य एवं चन्द्रमा पहेलियों के विषय गये हैं। सूर्य प्रकाश प्रदान करनेवाला प्रखर ग्रह है जिसके बिना संसार अस्तित्व नहीं है। इसके ठीक विपरीत चन्द्रमा पृथ्वी पर शीतल एवं स्नि प्रकाश बिखेरनेवाला एक लोकप्रिय ग्रह रहा है। सूर्यसंबन्धी आत्मीयताए उक्तियाँ लोकजीवन में पाई जाती हैं ।सूर्य की आकृति और प्रकृति लोकजनता अपने दैनिक जीवन में व्यवहृत चीज़ों से तुलना करती इसके प्रमाण हिन्दी और कोंकणी पहेलियों में समान रूप से प्राप्त होते है पहेलीकार उसे पुष्पित गुलाब, चाँदी का बटुआ, देदीप्यमान दिया आ मानता है। जैसे

बिना तेल का बिन बाती का दिन भर एक दिया जलता है
और दीप जलने से पहले पश्चिम जाकर ढ़लता है।[१२१]

सूर्य और चन्द्रमा, दोनों की तुलना करते हुए कोंकणी में एक पहेली इ प्रकार चलती है -

एकाच भाटयेंत दोन वाटल्यो एक जळटा, दोन थंड असात[१२२]
(एक ही टोकरी में दो थालियाँ, एक जलती है, दूसरी ठंडी है)

-(सूर्य और चन्द्रमा)

हिन्दी में भी इसी प्रकार की तुलना मिलती है, कुछ परिवर्तित रूप में । वह इस प्रकार है -

देखन में दुनो रोटी, एके बराबर[१२३] -(सूरज और चन्द्रमा

कोंकणी में भी चन्द्रमा की तुलना पापड से की गई है जो हिन्दी के रोटी के बहुत निकट पड़ता है। जो भी हो इन पहेलियों से दोनों भाषाओं के पहेलीकारों की समान कल्पनाओं पर ही प्रकाश पड़ता है।

प्रकाश एवं छाया प्रकृति की दृश्यसत्ता है। सूर्य और चन्द्रमा से प्रकाश ...पन्न होता है तो उसके साथ साथ छाया भी वर्तमान रहती है। हिन्दी तथा ...कणी पहेलीकार किसी भी हालत में छाया को भुलाने के लिए तैयार नहीं ... उन्होंने छाया संबन्धी कई पहेलियाँ लिखी हैं जिनमें छाया का मानवीकरण ...लता है। श्यामरंग उसकी विशेषता है और पति का अनुगमन करनेवाली ...नी जैसे वह व्यक्ति का अनुसरण करती रहती है। हिन्दी तथा कोंकणी इस भाव से संबन्धित समान पहेलियाँ मिलती हैं जैसे -

पीछे पीछे सबके जावे जिधर उजाला उधर नहीं आवे[१२४]

...ोंकणी में - एक मेल्लें पाटीक लागलां खंय गेल्यारि पाट सोडिना[१२५]

- (सावळी)

(एक मरी पीछे पड़ी जहाँ भी जाय पीछा नहीं छोड़ती) - (छाया)

...हिन्दी में छाया के विभिन्न गुणों से संबन्धित कई पहेलियाँ मिलती हैं। छाया ...ी गतिशीलता के व्यतिक्रम को विशेष रूप से उभारा गया है। जैसे - ...जन्मकाल में बीस गज, हाथि जवानी तीन[१२६] लेकिन कोंकणी में इनका ...अभाव है।

जैसे जल मानव के लिए आवश्यक रहा है वैसे ही आग भी अत्यधिक ...आवश्यक रही है। आग जल के सिवा समस्त चीज़ों को भरमसात् करती ...है। कई उपमानों के जरिए आग की इस प्रवृत्ति का वर्णन हिन्दी और ...कोंकणी पहेलियों में समान रूप से किया गया है। जैसे

भूरा बैला खूब खाय, जेते देय ओते खाय
पानी पीते मर जाय [१२७] - (आग)

यही भाव कोंकणी में इस प्रकार चित्रित है -

आमच्या आबाक कितें दिल्यारी खाता,
कित्लें खावयताय तित्लेंच खाता
पियेवंक दिल्यार फारा मरता [१२८] - (उजं

(हमारे दादा को जो भी दें खाते रहते हैं
जितना दें उतना खाते हैं
पीने को दें तो मर जाते हैं) - (आग

जीव जन्तुओं में मच्छर पहेलीकारों के लिए सर्वाधिक प्रियंकर र है। यह छोटा सा पंखदार जीव संध्या के समय उड़ना शुरू करता है औ उड़ते उड़ते गुनगुनाता भी है। मच्छर की इसी प्रवृत्ति को पहेलीकारों सर्वाधिक पसन्द किया है। हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से इसक वर्णन इस प्रकार मिलता है -

तन के छोटे मन के हीन बेसर ताल बजावे बीन[१२९] - (मच्छर

कोंकणी में - आमचो गावपी गायतां गायतां मरण मागता[१३०] - (जळार

(हमारा गायक गाते गाते मृत्यु की माँग करता है) - (मच्छर

यहाँ भी मच्छर की गाने की प्रवृत्ति की ओर संकेत मिलता है।

वनस्पतियों से प्रकृति हमेशा संपन्न रही है। प्रकृति के ये उपादान मनुष्य के लिए बहुत ही उपकारी हैं। *परोपकाराय फलन्ति वृक्षा:* यही तो प्रमाण है। प्रत्येक प्रदेश से संबन्धित पहेलियाँ उस प्रदेश की वनस्पतियों के बारे में ही मिलती हैं। लेकिन वृक्षसंपदा सब कहीं समान रूप से मिलती है आम, कटहल, जामुन आदि फलवृक्ष सब कहीं मिलते हैं। हिन्दी और कोंकणी में इनसे संबन्धित पहेलियाँ भी मिलती हैं कटहल के छिलके पर का काँटा कहीं कहीं समान रूप से इनका विषय बना हुआ है। कटहल के रूप रंग का सुन्दरता के साथ वर्णन निम्नलिखित हिन्दी पहेली में देखिए-

हरी हरी धरती काँटा जड़ी खोल के देखो तो चम्पाकली
एक संदूक काँटे जड़ी खोल के देखो तो चम्पाकली[131]

कोंकणी में इन्हीं काँटों का जिक्र इस प्रकार किया है -

आमगेले म्हातारेचें आंग सगळें कांटे कांटे [132] - (पणस)
(हमारी बूढ़ी के शरीर पर पूरे के पूरे कांटे हैं। - (कटहल)
आमच्या मास्याक भायल्यान कांटे [133] - (पणस)
(हमारे सूँस के बाहर से काँटे ही काँटे हैं) - (कटहल)

उत्तर भारत में सरसों का पौधा ज़्यादा दिखाई देता है। इसलिए सरसों से संबन्धित पहेलियाँ हिन्दी में खूब मिलती हैं। जैसे -

हरे रंग की साड़ी पहने, झूम झूम कर गाती गीत
सोने से गहनों से लदकर, खड़ी खेत में देखो मीत [134]
- (सरसों का पौधा)

कोंकणी में इसका अभाव है। लेकिन पपीते के पौधे गोवा एवं केरल में खूब मिलते हैं। इसलिए उनसे संबन्धित पहेलियाँ भी कोंकणी में ज़्यादा हैं। जैसे -

आमगेलें घर ल्हान भितर भरल्या काळ्या गुळियांची रास [135] - (पोपाय)
(हमारा घर छोटा है, अन्दर काली गोलियों का ढेर पड़ा हुआ है)
- (पपीता)

केला हिन्दी प्रदेश एवं कोंकणी प्रदेश में समान रूप से रोपा जाता है। केले के घौद को लेकर अधिकांश पहेलियाँ चलती रहती हैं। जैसे हिन्दी में - पेट सटका डाँढ लटका फूल गुलाबी, फर नवाबी[136]

कोंकणी में इसकी तुलना गाय के बछड़ों से की गई है--

आमच्या गोट्यांत सबारा गोरवां
शिंगां तांचीं धरणिक जोकल्यांत [१३७] - (केळ्यां घडा

(हमारे गोष्ठ में बहुत बछड़े हैं, उनके सींग घरती की
ओर झुके हुए हैं।) -(केले का घौ

यहाँ पर पहेलीकार की कल्पना को दाद देना पड़ता है। इनके अतिरि
फल फूल से संबन्धित अनेक पहेलियाँ हिन्दी तथा कोंकणी में मिलती है
ये रस से भरी एवं कौतूहल उत्पन्न करनेवाली होती हैं। अधिकांश रूप
मनुष्य के अनुभवों से संबन्धित होने के कारण ये लोकप्रिय भी रही हैं।

हिन्दी तथा कोंकणी की पहेलियों में शरीर के विभिन्न अंगों
महत्व भी आंका गया है। दोनों भाषाओं में अंगूठा और उँगलियों से संबन्धि
पहेलियाँ बहुत ही आकर्षक रही हैं। इनका विषय समान होते हुए
उपमान आदि भिन्न रहे हैं। उदाहरण के लिए -

एक पुरुष के नारी चार । सबै चतुर मिलि करैं विहार
काहू के घर जात न कोई । खान पान एक साथहि होई
- (अंगूठा और उँगलियाँ) [१३

कोंकणी की पहेली देखिए -

एका झाडाक पाँच फुलां ,फुला फुलाक एक नांव
देवाक समेत जाय ह्यें फूल [१३९] - (हात आनी बोटां

(एक झाड़ के पाँच फूल, हर फूल का अलग नाम
ईश्वर के लिए यह फूल आवश्यक है) - (हाथ और उँगलियाँ

यहाँ पर पहेली का उपमान हिन्दी पहेली से बिलकुल भिन्न रहा है। कोंकण
लोगों की ईश्वर के प्रति जो श्रद्धा भक्ति है वह इस पहेली के द्वार

अभिव्यक्त हुई है। *काहू के घर जात न कोई, खान पान एक साथहि होई* की हिन्दी की पहेली में यह भाव जो चित्रित है वह विरोधाभास के ज़रिए बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। यही भाव कोंकणी में आँखों से संबन्धित पहेली में इस प्रकार व्यक्त हुआ है।

आमच्या गांवच्यो दोगि कुंवरनि सेजारा रावतात
एकामेकागेर वचनात
एकली रडलि तर आनि एकलिय रडटा [१४] - (दोन दोळे)
(हमारे गाँव की दो कुमारियाँ अडोस पडोस में रहती हैं
एक दूसरे के घर नहीं जातीं
एक रोती है तो दूसरी भी रोती है) - (दो आँखें)

न पहेलियों की भावना अत्यन्त सुन्दर रही है।

इसी प्रकार नाक, कान, पेट, मुँह, जीभ, केश, सिर आदि से संबन्धित पहेलियाँ भी मिलती हैं। पेट से संबन्धित कोंकणी पहेली बहुत ही सुन्दर है --

अब्बळ पेट डब्बळ पेट बीग ताका लागना
पुण धन्याक ति उगडूंक जायना [१४१] -(पोट)
अब्बल पेटी डब्बल पेटी उस पर ताला नहीं लगता
मालिक तक उसे खोल नहीं सकता - (पेट)

हिन्दी में नाक से संबन्धित एक सुन्दर पहेली इस प्रकार है

नारी एक पुरुष हैं दो, एक चले एक रहवे सो
हरदम नार को है यही सांसा, इन दोनों का एक हि बासा[१४२]

हिन्दी और कोंकणी की पहेलियाँ इस प्रकार दोनों समाजों की

संस्कृति की संवाहिका रही हैं। इनमें इतिहास, जीवन, विश्वास आदि के दर्शन हो जाते हैं। उक्तिवैचित्र्य इनकी विशेषता रही है। अलंकारों की भंगिमाएँ सुननेवाले को आश्चर्यचकित कर देती हैं। प्राचीन रिक्थ को बनाए रखने का प्रयत्न दोनों भाषाओं की पहेलियों में सम्यक् रूप से हुआ है। ऐसी भी पहेलियाँ यहाँ मिलती हैं जिन्हें पढ़ते ही लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। लोकसाहित्य के मुक्तक वर्ग की एक स्वतन्त्र विधा के रूप में इनके दर्शन होते हैं। दोनों भाषाओं में कई समान पहेलियाँ मिलती हैं। कहीं कहीं भाव समान रहे हैं, शैली में अन्तर रहता है। लेकिन विषय की समानता सब कहीं देखी जाती है। प्रश्न, निदान, उत्तर ये पहेली के अंग रहे हैं। प्रस्तुत अप्रस्तुत इसके प्राण। इनके सूक्ष्म अध्ययन से दोनों संस्कृतियों में विद्यमान एकता के सूत्र का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का शिल्प सौन्दर्य

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य मूलतः मौखिक परंपरा पर आधारित होने के कारण इनका शिल्प भी इसके अनुकूल रहा है। यह शिल्प शिष्ट साहित्य के समान व्यवस्थित नहीं कहा जा सकता। आधुनिक पश्चिमी साहित्य चिन्तन का प्रभाव भी इस पर पड़ा नहीं है। इसलिए लोकसाहित्य का शिल्प कृत्रिमता से दूर सहज भावप्रधान एवं सुन्दर रहा है। यहाँ पर रस अलंकार आदि स्वाभाविक रूप में आए हैं। साधारण से साधारण शब्दों में अन्तर्वृत्ति का स्वाभाविक एवं मार्मिक प्रकाशन जो इस साहित्य में हुआ है वह लोगों को हठात् आकर्षित करता है। जिस प्रकार लोकसाहित्य का भावपक्ष अतिसुन्दर रहा है वैसे ही उसका शिल्पपक्ष भी सहज सौन्दर्य से भरपूर है। यहाँ स्थानभेद या भाषाभेद के कारण परिवर्तन नहीं होता। सर्वत्र समानता परिलक्षित होती है।

लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दों की रूपरचना सुन्दर विचित्र एवं रंगबिरंगी लों के समान है। ये शब्द कर्णसुखद लगते हैं और श्रोताओं को हठात् कर्षित करते हैं। तत्सम शब्दों की अपेक्षा यहाँ तद्भव एवं देशी शब्दों से त्पन्न विभिन्न भाव और विचारगत सौन्दर्य अधिक दृष्टिगत होता है। ोकसाहित्य लोकहृदय की स्वत;स्फूर्त अभिव्यक्ति होने के कारण उसमें युक्त शब्दों में सहज सौन्दर्य निहित रहता है। जैसे *प्रभात>परभात, ावण>सिरवण, शरद>सरद, प्रजा>परजा, तम्बाकू> तमाकू,* आदि । ोंकणी में भी शब्दों का यह सरलीकरण देखा जा सकता है। जैसे *ावण>शिरवण, स्वर्ण> सुवरन, अयोध्या>अयूदा, अशुद्ध> अशूद, सुख> ुक, स्वयंवर>सयंवर* आदि। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्यों में ऐसे अनेक शब्द देखने को मिलते हैं। ये सरल, सुन्दर एवं भावाभिव्यक्ति में क्षम रहे हैं। मैथिली, भोजपुरी आदि बोलियों में पाये जानेवाले अनेक शब्द कोंकणी शब्दों से मेल खाते हैं। इन शब्दों में *य* और *व* का आगम उच्चारण को सरल बनाता है, शब्दों के सौन्दर्य को बढ़ा देता है और भाषा में माधुर्य लाता है। जैसे हिन्दी शब्द - *भडुआ, बेटवा, पुतवा, लरिकवा, चानानावा, ानिया मछरिया, मैया, मयरिया, परदेसिया, ननदिया, चुनरिया, सुनरवा, बहुरिया* आदि। कोंकणी में भी *बंधुआ, फोडुआ, बापूय, आवय, हाड्या, ्हाण्यां, पाया* आदि शब्द इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं। ये शब्द लोकसाहित्य को हृदयस्पर्शी मनमोहक छवि प्रदान करते हैं। शब्दों के इस माधुर्य का संबन्ध ध्वनि और अर्थ से है। यह माधुर्य चित्त की शाश्वत अनुभूति है जिसका स्वरूप सुखात्मक है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में यह माधुर्य स्थान स्थान पर मिलता है। नदियों का कलकल, कोयल की कूक, पत्तों का मर्मर, पपीहे का पी कहाँ, झिल्ली की झनकार, दादुर की टर्र

टर्र सब में सहज माधुर्य है। लोकसाहित्य की भाषा का अर्थ, अभिप्राय, संकेतग्रह, भाव, विचार, अनुभूति की अभिव्यक्ति जितनी प्रीतिकर और और अनुकूल होती है इसे व्यक्त करनेवाली शब्दावली उतनी ही मधुर होती है।

आवृत्तिमूलक ध्वनियाँ

लोकसाहित्य, विशेष कर लोकगीतों की प्रमुख विशेषता उसके ध्वन्यात्मक, लयात्मक शब्दों, वाक्यांशों और काव्यों को दोहराने की प्रवृत्ति में दृष्टिगत होती है। *कसकत, रसकत, रिमझिम, बाबुल, दादुल* आदि शब्द इसके उदाहरण हैं। लय ताल के साथ बदलनेवाली ह्रस्व तथा दीर्घ ध्वनियों के आवृत्तिपरक रूप लोकधुनों तथा राग रागिनियों का निर्माण करते हैं। वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, समान वर्णों की आवृत्तियों के द्वारा लोकगीतगत भाषिक सौष्ठव की अभिवृद्धि की गई है। जैसै -

तरर तरर चुएं आँसु रूमलिया पौंछे
खटखट खटकत तेगा बाजै बोले ठपक ठपक तरवारि
छनन छनन छम पायल बाजै खन खन बाजै कंगनवा
इटकिन चिटकिन लोहा पिटकिन चोर चमर गौरैया

चटक-मटक, उरझि-पुरझि, चूर-मूर, लपकि -झपकि आदि शब्दों में शैली लयात्मक स्वरूप एवं चेतना प्रप्त करती हुई उन्मुक्त सरिता की तरह निर्बाध गति से प्रकाशित होती रहती है। अकृत्रिम अलंकरण और चित्र बहुलता में मिलते हैं। जैसे

झूल रे झूल बबुआ झूल, आम झूल आम पाकरी झूल
आमक ठैली कोइली झूल बाँसक फुनगी सुगना झूल

ये ध्वनियाँ प्राणजन्य होती हैं । इन्हें पढ़कर प्राण शान्त हो जाते हैं। इस

प्रकार उठनेवाली ध्वनियाँ शान्त सुरुचिपूर्ण, कोमल, सुबोध, एवं सुग्राह्य होती हैं। कोंकणी में भी इस प्रकार की आवृत्तिमूलक ध्वनियाँ लोकसाहित्य के सौन्दर्य में चार चाँद लगाती हैं। जैसे

भटो भटो आपलो भटो भटो शिक्किल्लें म्हणा
मांयि मरता सुन्ने ठांय सून मरता मिंडा ठांय
वोल्ली रन्नणि वोल्ली शेणि जेवंच्याक आयल्या बायले भयणि
फुग्गय फुग्गय मक्का फुग्गय हाँव तुग्गेलो व्होळ्ळो जाँवय

कोंकणी की ये आवृत्तिमूलक ध्वनियाँ अर्थ सौन्दर्य को भी लेकर आगे चलती हैं। आवृत्तिमूलकता के साथ साथ व्यंग्यात्मकता भी इनकी विशेषता रही है। कोंकणी लोकसाहित्य में सौन्दर्य के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। आवृत्तिमूलक ध्वनियों का यह सौन्दर्य निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए -

कुतूँ करता भूक भूक बिलू करता म्योव म्योव
चऊ करता चीव चीव काऊ करता कोव कोव

कोंकणी श्रमगीतों में अक्सर इस प्रकार की आवृत्तिमूलक ध्वनियाँ दिखाई पड़ती हैं जैसे -

हे हत्ता ! हे हत्ता ! भात तंडुल जाता
हो धरे ! हो धा ! फरंग्यालीं तारवां आयलीं सोळा सत्तेरा

इन ध्वनियों के साथ कठिनतर श्रम भी प्रियतर हो जाता है। ये श्रमजन्य क्लेश को मिटाती रहती हैं। यही नहीं ,हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में रस, भाव, प्रसंग, ऋतु, जाति, और प्रदेश विशेष के आधार पर भिन्न भिन्न प्रकार की लयात्मक शैलियाँ भी दिखाई पड़ती हैं। लयात्मक शैली के साथ साथ उपदेश शैली, प्रश्नोत्तर शैली, व्यंग्यशैली, पहेलियों और मुकरियों की शैली भी हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में मिलती है।

लोकसाहित्य में सहज ही आनेवाले अलंकार मिलते हैं जो सौन्दर्य बढ़ाने में सहायक होते हैं। अनुप्रास, उपमा, रूपक जैसे अलंकारों का प्रयोग हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में हुआ है। अन्य अलंकार गौण रूप में पाये जाते हैं। ये अलंकार कथ्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिये

तुम बिनु नाथ कटै नहि रतिया तलफौं जैसे मछरिया

प्रस्तुत पंक्तियों में प्रतिदिन के जीवन से संदर्भ निकाल कर उपमानों को सजाया गया है जो अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को चित्रित करता है। कोंकणी में भी इस प्रकार के उपमान स्थान स्थान पर चित्रित मिलते हैं। जैसे

उल्लैता तरी भरभरी, जोरान सोय कांतले वरी
(खरखर आवाज़ में बोल रही है जैसे नारियल ख़रोंच रही है)

यहाँ पर बोलने की आवाज़ की तुलना नारियल के खरोंचने के शब्द से की गई है। ऐसे उपमान आम जनता को संदर्भ समझाने में काफी उपयोगी बन सकते हैं। इससे आस्वादन का दर्जा कहीं अधिक बढ़ जाता है। मानवीकरण का एक उदाहरण इस प्रकार है -

हिन्दी - आलू की आई बारात, शकरकन्दी नाचन को आई
कोंकणी- कोंब्यालें व्होराण चमकीलें मुक्कार
तांबिडें भासींग कोंब्या मात्यार
तळि काडलेली चित्तळ राणयेन
सेरसारो धरिल्लो सिसर मायेन

हिन्दी में आलू की बारात में शकरकन्द का नाच हो तो कोंकणी में मुर्गे की

ारात में हरिणी के द्वारा तागपाट सँभाला जाता है।

प्रतिशयोक्ति का एक उदाहरण देखिए -

बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली
आमा के रोवले अन्हार रे
भइया के रोवले चरनधोंता भींजे
भऊजी नयनवां नालोर रे

बेटी की विदा के इस प्रसंग में माता पिता एवं भाई का दुःख तट तोड कर बह रहा है। इसीका अतिशयोक्तिपरक वर्णन यहाँ पर हुआ है। कोंकणी में इसी प्रकार की अतिशयोक्ति बहू को लेकर चित्रित है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

वोल्ली रन्नणि वोल्ली शेणि जेवंच्याक आयल्या बायले भयणि
सुक्कि रन्नणि सुक्कि शेणि जेंवंच्याक आयल्या बामणा भयणि
रांदप जायत वे संजे पुणि

जहाँ पति की बहन आती है तो अनुकूल परिस्थितियों में भी खाना तैयार नहीं होता। लेकिन जहाँ उसकी अपनी बहन आती है तो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी खाना तैयार रहता है। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन यहाँ सशक्त भावाभिव्यक्ति और प्रसंग का सौन्दर्य बढ़ाने में बहुत सहायक रहा है।

प्रतीकयोजना

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में प्रतीकों का खूब प्रयोग होता है। समग्र भाव को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। लोकसाहित्य में तरह तरह के भावों को प्रतिदिन के जीवन में पाई जानेवाली चीज़ों से संबद्ध करके चित्रित किया जाता है। इस प्रकार समुद्र गंभीरता का प्रतीक बनता है तो हिमालय दृढ़ता एवं विशालता को दिखाता

है। शेर वीरता का प्रतीक है और गीदड़ कायरता का। लोमड़ी हमेश चालाकी का प्रतीक रहता है। ऐसे संदर्भ चित्रित किए जाते हैं जिनका वर्ण प्रतीकों के सहारे प्रभावपूर्ण बनाया जाता है। कोंकणी का निम्नलिखित उदाहरण देखिए -

ताक चाळता ताक चाळता खोव्ल्या लागलो गोळो
तांत दिक्कीला तीळो कस्तूरिच्या

इन पंक्तियों में रुक्मिणी को दहेज के रूप में दिए जानेवाले खैले का जिक्र किया गया है। दहेज में सब कुछ दिया, पर घरवाले खैला देना भूल गए. इस भूल के परिहार के रूप में रुक्मिणी को सोने का खैला दिया जाता है। इस प्रकार रुक्मिणी का सुहाग अखण्ड बनाया जाता है। प्रस्तुत पंक्तियों में दधि मथते हुए खैले पर लगनेवाले मक्खन के गोले में कस्तूरी तिलक का प्रतिबिंब दिखाई पड़ने का जो वर्णन हुआ है, उसीको प्रतीक के ज़रिए सुन्दर बनाया गया है। प्रतीकात्मकता लोकसाहित्य की जान है। अनेक सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग इस साहित्य में मिलता है। कोंकणी में केला पातिव्रत्य का, अंजीर पौरुष का गाय वात्सल्य का हल्दी सृजनात्मकता का, कमल समृद्धि का, आम मांगलिकता का प्रतीक माना जाता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में पौराणिक पात्रों के संबन्धों को लौकिक संबन्धों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। कौसल्या, यशोदा, राम, कृष्ण, सीता-सब लौकिक संबन्धों के प्रतीक बन गए हैं। ये पात्र लोकमानस में जम गए हैं और लोकभाषा में प्रतीक बनकर सामने प्रकट हो जाते हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य प्रायः सभी विधाओं को लेकर विकसित हुआ है। इनके अन्तर्गत तालयुक्त संगीत मिलता है, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली रोमांचक घटनाएँ मिलती हैं,

उपदेशात्मक कथाएँ मिलती हैं, दृश्य श्रव्यात्मक मनोरंजनप्रद नाट्य मिलते हैं, अभिव्यक्ति में तेज गागर में सागर भरनेवाली कहावतें हैं और बुद्धि को तेज बनानेवाली पहेलियाँ भी मिलती हैं। हिन्दी और कोंकणी लोगों के अन्तस में सुख दुःख का जो अस्तित्व है उसके निरन्तर बहाव का सहज लोकराग इन लोकसाहित्यों में मिलता है। इनकी ऐतिहासिक सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यन्तं प्राचीन रही है। हिन्दी और कोंकणी लोकजीवन की झाँकी इनसे प्राप्त होती है। जीवन का आदिम सहज राग इनकी विशेषता है। सामान्य लोगों की अन्तःसत्ता को लेकर चलनेवाले इन लोकसाहित्यों में अर्थाभिव्यक्ति में सक्षम शब्दों की अमोघ शक्ति रहती है। लोक की असली चेतना इन्हीं शब्दों में है। चित्तवृत्तियों की समूहगत अभिव्यंजना यहाँ व्यष्टि में समष्टि चेतना को महसूस कराती है। जीवन के संघर्ष, ताप, संताप, सहनशीलता, उल्लास, उत्कर्ष सब कुछ अपने सहज रूप में यहाँ प्राप्त होते हैं। एक ओर सोहर के गीत हैं तो दूसरी ओर मृत्युबोध रहता है। एक ओर चरम आसक्ति है तो दूसरी ओर परम वैराग्य। हिन्दी तथा कोंकणी समुदायों की यह धरोहर, प्रचीन समूहमन की यह सहज अभिव्यक्ति स्वार्थ की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ होकर आत्मतत्व को समेटती हुई भौतिकता से संपृक्त आज के वैज्ञानिक युग में भी जीवित है और हमेशा इसी रूप में जीवित रहेगी, इसमें संदेह नहीं।

संदभ

१. नाट्यशास्त्र - भरत, १३ / ६६, ६७
२. आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन-डॉ. नीना शर्मा, पृ. १
३. खड़ी बोली का लोकसाहित्य- डॉ. सत्या गुप्त, पृ. ३०७
४. आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन- डॉ. नीना शर्मा पृ. २०
५. आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन-डॉ. नीना शर्मा पृ. २४
६. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ. २१३
७. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ. २१४
८. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.२१४
९. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.२३५
१०. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.२२०
११. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.२२२
१२. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.२३०
१३. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.२३१
१४. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ.३२८
१५. कहावत-कोश-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. ७५०
१६. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६७
१७. कहावत-कोश-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. ४४६
१८. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६७
१९. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६७
२०. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.७१
२१. कहावत-कोश-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. ४९९
२२. कहावत-कोश-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. ६३०
२३. कहावत-कोश-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. १५३
२४. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ.११५

२५. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ.११५
२६. कोंकणी म्हणी - कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोची, पृ.२
२७. Sociocultural Background of the Gowda Saraswat Brahmin Community as Reflected in the Konkani Proverbs -Dr. L. Suneetha Bai, p. १९
२८. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ११८
२९. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. १०२
३०. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ७४
३१. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६९
३२. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ३५
३३. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ३९
३४. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. २५
३५. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ७४
३६. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. १३५
३७. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ५१
३८. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ७१
३९. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ११८
४०. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. १२२
४१. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ.११७
४२. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ. २६४
४३. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. २०.
४४. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. १६
४५. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ. १९३
४६. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ. ९१
४७. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ. २११
४८. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ. २५७
४९. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश -डॉ.एल.सुनीता बाई पृ. १५०
५०. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६४

५१. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६५
५२. चिन्तन-अनुचिन्तन - डॉ. एल. सुनीता बाई, पृ.६५
५३. कहावत-कोश-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. ७५०
५४. कोंकणी म्हणी - कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोची, पृ.२
५५. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ६९
५६. कोंकणी म्हण्यां सोरु - केरळ कोंकणी अकादमी, पृ. ६१
५७. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.१८७
५८. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १८०
५९. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.१९०
६०. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १११
६१. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.१११
६२. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ११२
६३. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ११२
६४. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ११४
६५. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.११५
६६. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.११५
६७. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ११७
६८. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.११८
६९. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.१२०
७०. हन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १२१
७१. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १२१
७२. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १२४
७३. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.१२२
७४. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ५८
७५. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ५८
७६. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १४२
७७. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १४२

७८. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. २५
७९. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ४३
८०. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. १४
८१. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ७५
८२. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५०
८३. लोकधन - शरतचन्द्र शेणै, पृ.१३
८४. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५५
८५. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.६५
८६. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ११
८७. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५२
८८. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.३८
८९. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.५५
९०. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. १९
९१. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. २०
९२. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५७
९३. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.३२१
९४. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. २६१
९५. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.२५७
९६. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ७०
९७. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.३७
९८. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ३६
९९. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ६०
१००. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. १२
१०१. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५१
१०२. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. १८
१०३. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. २९
१०४. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ३०

१०५. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.३०
१०६. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ३८
१०७. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ६३
१०८. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ४२
१०९. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ६
११०. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.१६
१११. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.२२
११२. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ४२
११३. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ६५
११४. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १८९
११५. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५५
११६. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. २१५
११७. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. २१५
११८. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ३४
११९. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १९३
१२०. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ३५
१२१. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १११
१२२. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५४
१२३. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १११
१२४. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १०७
१२५. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ५७
१२६. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. रांजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १०७
१२७. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १०३
१२८. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. २०
१२९. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. ११५
१३०. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.३०
१३१. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.१२२

१३२. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.१७
१३३. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.२५
१३४. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १५०
१३५. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.१८
१३६. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १२२
१३७. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.२२
१३८. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १४२
१३९. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ.५२
१४०. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. २१
१४१. कोंकणी हुमिण्यो भाग-२ - सी. सी. ए. पै, एस. जे., पृ. ३
१४२. हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन -डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ. १४१

चौथा अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में समाज का स्वरूप

समाज और संस्कृति - प्राचीन भारतीय समाज - विभिन्न स्तर - ब्राह्मण, -जातिप्रथा - सामाजिक जीवन - पारिवारिक संबन्ध - पतिपत्नी -संबन्ध --माता-पिता-पुत्र -संबन्ध - माता-पिता-पुत्री -संबन्ध - सास-बहू-संबन्ध - भाई-बहन - संबन्ध - ननद-भौजाई -संबन्ध -- हिन्दी और कोंकणी समाज में स्त्री का स्वरूप - नारी जीवन की व्यथा-कथा - बाँझ को नागिन भी डसती नहीं - विधवा - संस्कृतियों का संगम -- नागसंस्कृति - नाग शब्द -राक्षस संस्कृति - ईसाई संस्कृति

चौथा अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में समाज का स्वरूप

समाज व्यक्तियों का समूह है और इसमें रहनेवाला व्यक्ति अपने अपने ढंग से जीवन का निर्वाह करता है। यह उसकी मूलभूत स्वतन्त्रता है। यह स्वतन्त्रता लोकसाहित्य में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। स्वतन्त्र होने पर भी मनुष्य समाज में बँधा रहता है। उसको दूसरे लोगों का साथ देना पड़ता है। प्राचीन भारतीय समाज में इसका सुन्दर उदाहरण मिलता है। यहाँ पर व्यक्ति अपना अपना धर्म निभाने के लिए स्वतंत्र रहता है। इस धर्म में उसे कई ऐसे बन्धनों का अनुभव करना पड़ता है जो उसके जीवन में कल्याणकारी सिद्ध होते हैं। लोकसाहित्य में ये बंधन व्यापक रहते हैं। यहाँ चित्रित समाज मनुष्य के साथ पशु पक्षी, पेड़ पौधे और जीव जन्तुओं को भी स्थान देता है। *वसुधैव कुटुम्बकम्* की भावना यहाँ देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति की इसी पृष्ठभूमि पर लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। चूँकि लोकसाहित्य मूलतः समाज की संस्कृति से जुड़ा रहता है इसलिए लोकसाहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जानने के लिए समाज के स्वरूप का अध्ययन आवश्यक है।

लोकसाहित्यकार पहले सामाजिक प्राणी होता है। वह अपने अनुभवों का विपुल भंडार समाज के बीच रहकर दैनंदिन जीवन से ही ग्रहण करता है और फिर उन्हीं अनुभवों की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में करता है। इस मामले में समाज उस पर इतना हावी हो जाता है कि आगे

चलकर मूल रचयिता का नाम ही विलुप्त हो जाता है और वह समाज मात्र की चीज़ बन कर रह जाती है। इसका कारण यही है कि इस साहित्य में अभिव्यक्त भाव पूरे समाज के भावों को ही दर्शाते हैं, किसी एक व्यक्तिविशेष के भावों को नहीं। इस प्रकार लोकसाहित्य़ इतने घनिष्ठ रूप से समाज से जुड़ा है कि दोनों को अलग रूप में नहीं देखा जा सकता। समाज में जितने भी व्यापार होते रहते हैं उनकी अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में भी होती रहती है, चाहे वे धार्मिक हों या अन्य, चाहे उनका संबंध आस्था से हो या विश्वास से, रीति से हो या रूढ़ि से। लोकसाहित्य में समाज के सभी पक्ष अंकित होते हैं । नीचे दी गईं किसी लोकगीत की पंक्तियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं -

दनवा चुनत गवरैया लिखु रे, गैया लिखु बछवा लगाय
कलसा लिखे चेरिया लौड़ी लिखु रे, ब्राह्मन पोथी लिहे हाथ
गाइ दुहत अहिरा छौंड़ा लिखु रे, दहिया बेचत अहिरिनि चेरि
आरी आरी बेली लिखु रे, अउरू लिखु पनवारि [१]

जैसा कि इन पंक्तियों में कहा गया है लोकसाहित्य में सामाजिक यथार्थ का ही वर्णन होता है, चाहे वह हिन्दी का हो या कोंकणी का। इसी कारण इसका विशेष महत्व भी है।

समाज और संस्कृति

समाज असल में लोक-व्यवहारों, लोक-रिवाज़ों लोक-प्रथाओं लोक-विचारों एवं आदर्शों से युक्त पूरी सांस्कृतिक परंपरा का ही ढाँचा होता है। संक्षेप में कहा जाय तो संस्कृति के सभी तत्व इस ढाँचे में प्रबल रहते हैं। क्रियात्मक दृष्टि से समाज एक प्रकार से किसी वर्ग का समष्टिगत रूप ही प्रस्तुत करता है। संस्कृति के क्षेत्र में इसका अन्योन्याश्रित संबन्ध

है जो एक दूसरे को प्रभावित करता है। यह मनुष्य को अपने जीवन व्यापार में लगे रहकर हर एक व्यक्ति को दूसरों के साथ रहते हुए भी अपनी इच्छापूर्ति एवं कर्तव्य निभाने में सहायक रहता है । विकासात्मक दृष्टि से समाज विभिन्न प्रकार के संबन्धों की प्रेरणादायक एवं विश्वसनीय प्रतिक्रिया है जो एक दूसरे के प्रभाव, संपर्क एवं सामंजस्य के साथ चलता है।

मनुष्य जीवन संस्कृति का प्रतिरूप है। जीवन की संपूर्ण क्रियात्मक शक्तियाँ संचित होकर संस्कृति को निखारती हैं और संस्कृति मनुष्य को संस्कृत बनाती है। मन, आचार विचार, व्यवहार, कलाएँ, चिन्तन, साहित्य सब कुछ संस्कृति के ही अंग हैं। यही मानव को पशुत्व से अलग करता है। संस्कृति के उच्च संकल्प मूल्यों के रूप में समाज में साकार होकर फूलते फलते रहते हैं। मनुष्य की क्रिया शक्तियों को नियोजित कर संस्कृति ही समाज को एक निश्चित दिशा या उद्देश्य की ओर ले जाती है। उदाहरण के लिए *परोपकारार्थमिदं शरीरम्, सत्यात् नास्ति परो धर्मः* आदि तत्वदर्शी ऋषियों की वाणी भारतीय संस्कृति एवं समाज का मूल है। लोकसाहित्य में इसी का समर्थन हुआ है। भारतीय समाज चाहे वह हिन्दी का हो या कोंकणी का, इन्हीं तत्वों पर आधृत है। संस्कृति की प्रकृति, उसके स्वरूप एवं गति का निर्धारण मूल्यों के आधार पर होता है जिनकी सिद्धि में कोई भी समाज अपने अस्तित्व की सार्थकता का बोध करता है। इन मूल्यों या आदर्शों के अन्तर्गत स्नेह, शान्ति, सौन्दर्य, धैर्य आदि समन्वित होते हैं । यही लोकचेतना है। यही संस्कृति का साधन है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में बहुत मात्रा में इसके दर्शन होते हैं।

संस्कृति की आत्मा साझेदारी में ही रहती है। प्राचीन काल से ही हम भारतीय इसे देखते और अनुभव करते आए हैं। भारतीय संस्कृति कई

संस्कृतियों का समन्वय ही प्रस्तुत करती है और समय समय पर भारती समाज में लेन देन एवं प्रभाव के कारण परिवर्तन होते आए हैं। लोकसाहित में स्थान स्थान पर इनका अंकन हुआ है। भारतीय संस्कृति एवं उr प्रतिफलित करनेवाला एक समाज इस साहित्य में देखा जा सकता है मानव की आशाएँ, प्रतीक्षाएँ और धारणाएँ, तनाव, संघर्ष एवं आदर्श एवं सब कुछ इस साहित्य में पाया जाता है। संक्षेप में यह साहित्य सार्थक रूप मे सामाजिक जीवन से संबन्धित कई सत्य हमारे सामने प्रस्तुत करता है और हमारे ज्ञान को बढाता रहता है।

प्राचीन भारतीय समाज - विभिन्न स्तर

प्राचीन भारतीय समाज में वर्णाश्रम धर्म का पालन किया जाता था। इसका समुचित अंकन लोकसाहित्य में हुआ है। इस समाज में चार वर्णों की प्रमुख़ता थी जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के नाम से जाने जाते थे। इनके अपने अलग अलग धर्म एवं कर्म भी थे। इन्हीं के आधार पर यह विभाजन हुआ था। ऋग्वेद से लेकर इसके प्रमाण मिलते हैं। लोकसाहित्य में इन चारों वर्णों और इनसे संबन्धित विभिन्न जातियों का जिक्र हुआ है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य इसका साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह वर्णधर्म एक तरह से समाज एवं संस्कृति से संबन्धित पदवी को ही सूचित करता था।

ब्राह्मण

इस शब्द की व्युत्पत्ति ब्रह्मन् से हुई है। ऋग्वेद में इसका अर्थ पुरोहित दिया गया है। चार पुरोहितों में सबसे उच्च ब्राह्मण ही माना जाता था। अन्य तीनों के नाम अग्नि, इन्द्र और बृहस्पति हैं। यास्क के अनुसार *ब्रह्मा सर्वविद्याः सर्वाणि वेदितुं अर्हति*[२] इसका अनुकरण कोंकणी की

निम्नलिखित कहावतों में भली भाँति अंकित है। ब्राह्मण से संबन्धित ये कहावतें इस प्रकार हैं-

पदां कळनत्तिल्लो भगवंत न्हंय, मंत्र येनाशिल्लो भट्ट न्हय
(जिस किसी को श्लोक नहीं आते वह भगवंत नहीं है और
जिस किसीको मंत्र नहीं आते वह पुरोहित नहीं है)
मंत्र तंत्र भट्ट जाण खावंचें जेवंचें हांव जाण[3]
(ब्राह्मण पुरोहित मंत्र जानता है और मैं केवल खाना जानता हूँ)

ये कहावतें ब्राह्मण पुरोहित की महत्ता का परिचय देती हैं। साथ ही सामान्य लोगों से उनके अंतर को भी स्पष्ट करती हैं। हिन्दी लोकसाहित्य में भी ऐसे कई संदर्भ मिलते हैं जो ब्राह्मण के महत्व का और समाज में उनकी प्रमुखता का बखान करते हैं। उदाहरण के लिए -

एक सूप देवौ देसरिया धान, तेकरे कुटिहें नाम नाम चूड़ा
बैठि जमविहें ब्राह्मण पूरा, ब्राह्मण पूरा देल आसीस
जीविहें रे बौआ लाख बरीस[4]

ये पंक्तियाँ तत्कालीन समाज का सही चित्र अंकित कर देती हैं। उस समय समाज में ब्राह्मण को श्रद्धा से देखा जाता था क्योंकि वह अज्ञान के अंधकार को दूर करनेवाला और संपन्नता लानेवाला माना जाता था। वही सामान्य जनता का आदर्श एवं मार्गदर्शक रहा था। पाप को वह विचार, शब्द एवं क्रिया से दूर रखता था। ऐसे ब्राह्मण को दान देकर पुण्य कमाने के संदर्भ लोकसाहित्य में प्राप्त होते हैं। *जैसे को तैसा* नाम की अवधी लोककथा इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है।[5] एक कंजूस बनिया संकट में पडने पर मन में संकल्प करता है कि संकट टल जाय तो वह सौ ब्राह्मणों को भोजन देगा।

समाज में कई प्रकार के अनुष्ठानों का पालन किया जाता था और ये अनुष्ठान ब्राह्मण पुरोहित के विना संपन्न नहीं होते थे। कोंकणी कहावत *तीर्थ असल्यार भट्टु ना* (तीर्थ के रहने पर पुरोहित नहीं है) इसी ओर संकेत करता है। ब्राह्मण जो भी कहता था लोग उसे आँखें मूँदकर मानते थे। इससे उनको जीवन में सफलता भी मिलती थी। तभी तो कहावत ऐसे चली, *रय्यान म्हळ्ळेली पूर्वदिशा भट्टान म्हळ्ळेली उम्मास* (राजा की कही हुई पुर्वदिशा है और ब्राह्मण की कही हुई अमावस्या) भोजपुरी में प्रचलित कहावत *बराह्मन वचन परमान* भी इसी ओर संकेत करती है। हिन्दी और कोंकणी समाज में समान रूप से पूजे जानेवाले ब्राह्मण पुरोहित की ओर ही यह लक्ष्य करता है। ब्राह्मण कहीं कहीं राजा के समान रहा तो कहीं कहीं राजा का भी उपदेशक रहा। ब्राह्मण संबन्धी विचारों का निषेधात्मक पक्ष भी हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में प्राप्त होता है। अधिकांश रूप में इस पक्ष को लेकर कहावतें ही मिलती हैं। इसका विशेष कारण भी है कि ब्राह्मण पुरोहित स्वार्थ की ज़्यादती के कारण कभी कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग भी करते आए हैं और धर्म के अनुष्ठान के बदले अधर्म की भी पूजा करने में तत्पर बन जाते हैं। ऐसे ब्राह्मण पुरोहितों की खाल उतारने में हिन्दी तथा कोंकणी समाज हमेशा तत्पर रहा है। कहावतें इस प्रकार चलती हैं -

व्होरेत चोयता व्होकले तोंड पुरोहित चोयता दक्षिणे तोंड
(दूल्हा दुलहन को देखता है, पुरोहित दक्षिणा देखता है)
व्होक्कल मोरो व्होरेत मोरो भट्टालि घडि तट्टांत पोडो [६]
(दूल्हा मरे या दुलहन मरे पुरोहित की जोड़ी थाली में रहे)

विवाह के मंगल अवसर पर इस प्रकार के विचार निश्चय ही ब्राह्मण के महत्व को कम करने के कारण रहते हैं। ये कहावतें अनुभवों की संपत्ति

होने के कारण सत्य ही बोलती हैं।

साधारणत: ब्राह्मण को निस्वार्थ होकर अपना धर्म निभाना पड़ता है। लेकिन जब वे स्वार्थ, भौतिक सुख सुविधाएँ आदि पर बल देते हैं तो समाज में निन्दा के पात्र बन जाते हैं। निम्नलिखित हिन्दी तथा कोंकणी कहावतें इस दृष्टि से समानता लिए हुए हैं -

अक्कूळेलि गाय अप्पय भट्टाक (काली गाय बाह्मन को दान)
तिळा जोन्नो भिक्कं भट्टाक (तिल का डोंडा भिक्कु भट्ट को)
कुशीलें कुवाळें कुष्ट भट्टाक[७] (सडा हुआ कुम्हडा कुष्ट भट्ट को).

ब्राह्मणों के इस स्वार्थ, धिक्कार एवं अहंकार का चित्रण हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में मिलता है। जब शिव पार्वती के विवाह में ब्राह्मण और नाई प्रस्ताव लेकर जाते हैं तो शिवजी दक्षिणा के रूप में कंकड देते हैं। ब्राह्मण गुस्से में आकर उसे फेंक देते हैं और नाई उन्हें अपनी झोली में डाल देता है। कंकड जब सोने की मुहरों में परिवर्तित हो जाते हैं तो ब्राह्मण जान जाता है कि उसके अहंकार ने स्वयं उसका नाश कर लिया है।[८]

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् कहते हुए मानव मात्र का कल्याण चाहनेवाले प्राचीन भारतीय समाज का ढाँचा ही आगे चलकर ब्राह्मणों के हाथों परिवर्तित किया गया। *जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः* वाली कहावत किसी मूल्य की नहीं रही। जात पाँत एवं तज्जन्य उच्च नीचत्व का अंधकार समाज में हर कहीं व्याप्त हो गया। ब्राह्मण स्वयं अपने को महान मानकर चलने लगा और छुआछूत उसका रक्षक बन आया। कोंकणी की *पिसा* नाम की कथा इस परिवेश का आलोचनात्मक चित्र प्रस्तुत करती है। यहाँ पर राह चलनेवाला कोई ब्राह्मण अपनी प्यास मिटाने के लिए तालाब का पानी पीना चाहता है, लेकिन महर जाति के स्त्री के

द्वारा छू लेने के कारण वह तालाब से पानी पी नहीं पाता। लेकिन प्यास को सहन न कर सकने के कारण वह किसी के जाने या देखे बिना कुएँ का पानी पीता है । [१]

क्षत्रियों और वैश्यों से संबन्धित संदर्भ हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में ब्राह्मण की अपेक्षा बहुत कम हैं। हाँ, तो कहावतों और कहानियों में थोड़े बहुत मिलते तो हैं । राजा रानी संबन्धी कथाओं में राजा एवं राजनीति के सन्दर्भ तो काफी मात्रा में आते हैं। लेकिन यहाँ पर आम आदमी के जैसे ही राजाओं के जीवन का चित्र खींचा गया है। इस प्रकार समाज का सामान्य पक्ष ही उभर आया है।

क्षत्रियों से संबन्धित कथाओं के समान वैश्यों से संबन्धित कथाएँ भी हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में कम ही मिलती हैं। दूसरी कथाओं में स्थान स्थान पर इनका जिक्र ही हुआ है। इनमें बनियों का आर्थिक स्तर विशिष्ट तथा उच्च बताया गया है। यह समाज का व्यापारी वर्ग है जो दूसरे लोगों से लेन देन करके जीता रहता है। लोककथाएँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। ब्राह्मण की अपेक्षा इन दोनों को हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में कम ही महत्व प्रदान किया गया है।

जातिप्रथा

चार वर्णों के अलावा तरह तरह के काम करनेवाले कई वर्गों का चित्रण भी लोकसाहित्य में मिलता है। लुहार, सुनार, नाई, व्यापारी, वैद्य, मोची आदि से संबन्धित कई संदर्भ इस साहित्य में उभर आए हैं। इनसे यह बात प्रमाणित होती है कि तत्कालीन समाज में इन लोगों को अपने अपने स्थान पर महत्व दिया जाता था। निरस्सन्देह ये समाज के ही अंग माने जाते थे और दूसरे लोगों के अनुष्ठान आदि इनके विना पूरे नहीं होते थे।

ब्राह्मणादि उच्च वर्गों के पुत्रजन्मोत्सव के अवसर पर भंगिन, दाई आदि का योगदान, ब्राह्मण के यज्ञोपवीत संस्कार के मुंडन में नाई के द्वारा छुरा देवता का पूजन, जनेऊ में गाँव भर के बालकों के साथ बैठकर ब्राह्मण वटु का खाना खाना, सभी वर्ण के लोगों का भिक्षान्न ग्रहण करना आदि इसीका सूचक है। समाज में डगरिन प्रायः अछूत जाति की होती है पर वह सवर्ण के घरों में भी प्रसव के लिए ससम्मान बुलाई जाती है। गीत गानेवाली औरतें भी हर जाति की होती हैं। यहाँ भेदभाव नहीं दिखाया जाता। गरीबों के घर भी इस समय सोहर गीतों से शब्दायमान रहता है। गानेवाली स्त्रियाँ संपन्न भी होती हैं और दरिद्र भी। सब मिलकर आनन्द मनाती रहती हैं। सामाजिक दृष्टि से यहाँ पर सहयोग की भावना बराबर रहती है।

कोंकणी समाज में आर्यों द्वारा प्रतिष्ठित वर्णभेद एवं जातिभेद के रहते हुए भी समन्वय के खूब प्रयत्न देखे जा सकते हैं। निस्सन्देह समाज में ब्राह्मण का आदर होता था। लेकिन उसके साथ साथ अन्य जातियों का भी समाज में अपना अपना अलग स्थान रहा था। अनुष्ठानों में मुख्यतः ब्राह्मण जाति के साथ *परया* का भी प्रतिनिधित्व रहा था। विवाह के अवसर पर, मृतक से संबन्धित अनुष्ठानों में, बच्चे के जन्म के नामकरण या बपतिस्मा के अवसर पर *परया* हमेशा ढोल बजाता रहा है। वह हमेशा ब्राह्मण के साथ रहता है। इसी प्रकार माना जाता है कि *महर* के बिना देवताओं को यज्ञांश स्वीकार नहीं होता । इसलिए *महर* जाति के किसी पति पत्नी को बुलाकर ब्राह्मण दंपति उनके साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं ।[१०] *गौड, कुडुंबी, वेलिप जल्मी, गोणविल* और *धनगर* समाज में समानता का भाव बरतते थे। *शिग्मा* के उत्सव में सब साथ साथ आनन्द मनाते थे। पुरोहितों के साथ साथ मन्दिर में *कलावन्ता* एवं *नाचिनों* को प्रमुख माना जाता था।

विवाह संस्कार में नाई नाइन और धोबी-धोबिन का सहयो सर्वाधिक महत्व का रहा है। छुआछूत को न मानते हुए धोबिनों से सुहा लेना, धोबी का विवाह संस्कार में आमंत्रण, लोकसमाज में उच्च नीचत को हटाकर शिष्टाचार की भावना का शक्तियुक्त समर्थन ही दिखाते हैं हिन्दी एवं कोंकणी समाज में यह चाल-चलन बड़े महत्व की है। हिन्द समाज में अनेक प्रसंगों में स्थान स्थान पर इसका चित्रण हुआ है तं कोंकणी समाज में ऐसे संदर्भ कम ही दिखाई पड़ते हैं। लेकिन दोन समाजों में ऐसे अवसरों में व्यष्टि से बढ़कर समष्टि का महत्व रहा था यज्ञसंस्कृति और यागपरंपरा में पले भारतीय समाज का प्रभाव हिन्दी एवं कोंकणी समाज पर है। इन पर सदैव यज्ञाग्नि का पवित्र प्रकाश छाया रहता था जिसमें जातिव्यवस्था का राक्षस स्वयमेव भस्म हो जाता था। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में ऐसे ही समाज का चित्रण मिलता है। इस समाज में हर व्यक्ति अपने स्थान पर महत्वपूर्ण माना जाता है। हिन्दी समाज हो या कोंकणी समाज, भारतीय समाज की विशिष्टता इन दोनों समाजों में समान रूप से देखी जा सकती है। विवाह संस्कार एवं उसके बाद बेटी की विदा के जो प्रसंग लोकसाहित्य में मिलते हैं वे इसी बात की सूचना देते हैं। लड़की के विवाह का उत्तरदायित्व मात्र माता पिता का नहीं बल्कि समाज के हर एक व्यक्ति का माना जाता था, विशेषकर नाई, धोबी एवं कहार का। लोकगीत की पंक्तियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं -

जब बरिअतिया गोंया भीड आयल
हजमा कलश ले ले ठार हे [११]
बाबा के डोलिया भैया के कहरिया
सीता देई जाइछथ ससुराल
--- --- --- ---

बाट रे बटोहिया तुहु मोर भईया
हमारे संदेशा ले ले जाऊ[12]

कोंकणी के *वोळारु* नामक काव्य में भी ससुराल से रुक्मिणी चुडिहरे के द्वारा मायके में अपना संदेश भेजती है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

वाटेन वतल्या वाटेचे वोळारा (बटोहिया चुडिहरा, रुक्मिणी के
रुक्मिणी कुळारा बोलावें सांगलां[13] मायके संदेशा ले जाना)

भाईचारे का यह सन्देश हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य की विशेषता है जो *वसुधैव कुटुम्बकम्* वाले भारतीय आदर्श को मानकर चलता है। इसी प्रकार मृतात्मा के अन्तिम संस्कार में सूतक से निवृत्त होने के लिए दसवीं, एकादश एवं तेरही में हेय समझे जानेवाले व्यक्तियों को भी दण्डवत् प्रणाम करते हुए उनके सन्तोष की पुष्टि की जाती है। गोसाइयों से टीका लगवाकर उन्हें श्रद्धापूर्वक दान दक्षिणा देना इस संस्कार की प्रमुखता रही है। इस प्रकार प्रेम से विरोध को जीतने एवं सामाजिक संयम बनाए रखने का कार्य लोकसाहित्य में भाषा या प्रदेश भेद के बिना ही संपन्न होता रहा है।

सामाजिक जीवन - पारिवारिक संबन्ध

समाज संघटित इकाई होता है और वह व्यक्ति से भी बढ़कर संबन्धों को महत्व देता रहता है। इन संबन्धों का केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होता है। असल में परिवार ही व्यक्ति के विकास एवं संस्कारों का मूल स्रोत रहा है। पारिवारिक वातावरण ही भविष्य में जीवन का मार्गदर्शक रहता है। प्रेम एवं सुरक्षा जीवन के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। इसका अभाव घरेलू वातावरण को तहस नहस कर देता है। मनुष्य अकेला नहीं रह सकता। सामाजिक संबन्धों से उसका अकेलापन दूर होता है। हिन्दी तथा

कोंकणी लोकसाहित्य में ऐसे ही अनेक संबन्धों से युक्त एक समाज का चित्र हमारे सामने आता है।

परिवार लोकजीवन का मूल आधार होता है। परिवार में भिन्न भिन्न संबन्धों के बीच रहकर मानव अपना जीवन बिताता है। इस जीवन में सुख दुःखों का अनुभव करता हुआ वह पुरुषार्थ की प्राप्ति करता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में भिन्न प्रकार के संबन्धों के बीच से परंपरागत संयुक्त परिवार के समस्त आचारों एवं व्यवस्थाओं से युक्त वर्णन मिलता है। इन संबन्धों की ओर संकेत लोकसाहित्य में स्थान स्थान पर मिलते हैं। बालगीतों में बच्चों को इन संबन्धों से परिचित कराने के लिए गीतों की योजना बनाई गई है। हिन्दी का निम्नलिखित गीत इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भैया रे तोर आजी कैसन? मचिया बैठी रानी अइसन
भैया रे तोर बाबा कैसन? सभवाँ बैठा राजा अइसन
भैया रे तोर बाबू कैसन? पोथिया बाँचै पंडित अइसन
भैया रे तोर भाई कैसन? घर घर घूमै बिलरिया अइसन
भैया रे तोर काका कैसन? हथवां गुलेलिया राजा अइसन
भैया रे तोर काकी कैसन? मूड फेंकारे बन मनसिन अइसन[१४]

कोंकणी समाज में धार्मिक प्रवृत्ति ज़्यादा मिलती है। इसलिए यहाँ पर बालकों को पारिवारिक संबन्धों के सूचक शब्दों का परिचय इस प्रकार दिया गया है कि उनमें प्रारंभ से ही ईश्वर के प्रति भक्ति भी उत्पन्न हो। गीत का वातावरण भक्तिमय रखा गया है। जैसे

वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली देवाबोली
वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली अबोली
वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली अय्येली

वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली अप्पाली
वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली अम्माली
वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली अक्काली
वोल्लग वोल्लग वोल्लग केल्ली बब्बाली [१५]

(सेवा सेवा सेवा ईश्वर की
सेवा सेवा सेवा ईश्वर की, दादा की ओर से
सेवा सेवा सेवा ईश्वर की, दादी की ओर से
सेवा सेवा सेवा ईश्वर की, बापू की ओर से
सेवा सेवा सेवा ईश्वर की, अम्मा की ओर से
सेवा सेवा सेवा ईश्वर की, दीदी की ओर से
सेवा सेवा सेवा ईश्वर की, लल्ला की ओर से)

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में संयुक्त परिवार का चित्र मिलता है। इसमें दादा-दादी, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पुत्र-पौत्र आदि सभी सम्मिलित रूप में रहते हैं और सुख से जीवन बिताते हैं। यहाँ पर पितृप्रधान समाज ही देखा जा सकता है। पिता ही परिवार में सब कुछ हैं। उनकी ही आज्ञा सर्वोपरि मानी जाती है। परिवार के सभी लोग इस आज्ञा को शिरसा वहन करते हैं। इस प्रकार के आदर्श परिवार में भी हम कहीं कहीं लड़ाई झगड़ा देख सकते हैं पति-पत्नी, सास-बहू, ननद-भौजाई, भाई-बहन आदि आपस में प्रेम करने के साथ साथ झगड़ा भी करते रहते हैं। इसका वर्णन लोकसाहित्य में मिलता है,फिर भी परिवार में अधिकांशतः मधुर संबन्धों का वातावरण ही मिलता है।

पति-पत्नी-संबन्ध

पति-पत्नी संबन्ध परिवार के अस्तित्व का मूल आधार है। हिन्दी

तथा कोंकणी लोकसाहित्य में इस गहरे संबन्ध का खूब वर्णन मिलता है लोकगीत हों, लोककथाएँ हों या कहावतें हों, पति-पत्नी के जीवन क उज्ज्वल एवं अंधकारमय, उत्साहपूर्ण एवं अवसादपूर्ण चित्र इनमें मिलते हैं दोनों भाषाओं के लोकसाहित्य में यह चित्रण अधिकांश रूप में समानत लिए हुए है। पति पत्नी का संबन्ध ऐसा होता है जो निर्व्याज एवं खुला रहता है। यह लोक की ही विशेषता है। सभ्यता के चक्र में इस प्रकार का खुलापन देखने को नहीं मिलेगा। इसी यथार्थपरकता के कारण लोकसंस्कृति सदा सर्वदा जीवन्त रहती है। यहाँ पर *आग लगे तोरे आती और पाती* कहकर पत्नी प्रवास पर जानेवाले अपने पति से खुलकर अपना दुःख सुनाती है जो एक संस्कृत नारी के लिए संभव नहीं है। कहीं कहीं यह सब भूलकर वह अपने पति के उदास मुख को देखकर उसकी कुशल जानने की कामना से पूछती है -

राजा काहे तोहरा मुँहवा उदासल
से हमसे बतावहु ना
राजा केहि सोंच देह दुबराइल
मुँह भइल पीअर ना[१६]

यहाँ पर प्रेम का स्वर्गीय रूप देखा जा सकता है। पति के मुँह पर की थोड़ी उदासी भी लोकसाहित्य की पत्नी सहन नहीं कर सकती। वह जानना चाहती है कि उसका कारण क्या है। कारण जानकर वह उसका परिहार भी करना चाहती है। इसी प्रकार पति भी पत्नी से इतना अधिक प्यार करता है कि वह उससे कई तरह के वादे करता रहता है। जैसे

चल चल चल तू चल मेरी रानिया,
तुझे में लेके जाऊँगा
संग ले जाऊँगा मेवा खिलाऊँगा[१७]

इन पंक्तियों की मधुरता देखते ही बनती है। यह मधुर प्रेम मधुरतर तब बनता है जब वह नोकझोंक का रूप ले लेता है -

हट जा बेदर्दी गंवारवा तेरे संग न जाऊँगी
तेरे संग जाऊँगी, भूखों मर जाऊँगी[१८]

सफल दाम्पत्य के लिए एकपत्नी-धर्म और पातिव्रत्य-धर्म के निर्वाह पर बल देना होता है। पति और पत्नी जीवनरूपी गाड़ी के दो पहिए होते हैं। दोनों समान रूप से न चलें तो जीवन की खैर नहीं। कोंकणी की कई कहावतें इस बात को आलंकारिकता के साथ व्यक्त करती हैं जिनमें पति पत्नी के गहरे और प्रेमपूर्ण संबन्ध की आवश्यकता प्रतिध्वनित होती है। जैसे -

घोवान जडलें बायलेन संभालें घर थोर जालें
(पति ने कमाया पत्नी ने संभाला और घर भर गया)
घोवा बायलेचें एक चित्त मडकेंत जाता सीत [१९]
(पति पत्नी का एक चित्त मटके में पकता है चावल)

कोंकणी की इन कहावतों में एक तरह से भारतीय परंपरा के अर्धनारीश्वर के तत्व का ही प्रतिफलन मिलता है। हिन्दी की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी तत्व का समर्थन करती हैं -

आधी फुलवरिया गुलाबवा आधा में केवड़ा गमकइ
तबहुँ न फुलवा सुहावन एक रे भँवर बिनु
सोने के सुपवा पछोरैं मोतिया हलोरैं
तबहूँ न पुरुष सोहावन एकरे सुनरी बिनु[२०]

हिन्दी की लोककथा, *तुम दो खाना और मैं तीन* में पति पत्नी का संबन्ध

बराबरी का हिस्सा देनेवाला चित्रित किया गया है।[21] इस प्रसंग में पति पत्नी के बीच न बनावटीपन रहता है, न मन का ऊहापोह। जीवन के बन्धन का जाल भी यहाँ नहीं है। पुरुष अपने संपूर्ण पुरुषत्व से और स्त्री अपने संपूर्ण स्त्रीत्व से समाज के समक्ष उपस्थित होते हैं और जीवन की पूर्णता का परिचय देते हैं।

पति ही पत्नी की गति है। पति के बिना पत्नी का अस्तित्व नहीं है। समाज में उसका कोई महत्व नहीं रहता। कोंकणी में एक कहावत है - *ब्रमणाक नक्का जल्लेलि बायल गांवचे लोकाकय नक्का* (जो पत्नी पति के द्वारा परित्यक्ता है, तो लोग भी उसे दुरदुराते हैं।) हिन्दी की लोककथा, *सूरजमुखी* में पति को न सुहानेवाली पत्नी का क्या हाल होता है, इसका वर्णन किया गया है।[22] लेकिन पत्नी हमेशा पति का मंगल ही सोचती है। उसको हमेशा अपने पति की याद सताती रहती है। इस दुःख को किस तरह से दूर किया जाय और दोनों का फिर से मिलन हो इसका वह उपाय सोचती है। सौत के पंजे में रहते हुए भी पत्नी उसे वापस पाना चाहती है। वह कहती है -

सुनि लेहो परोसिन यही मोरा गोतिन हो
ललना, हमारो बालम परदेश, संदेश ना पाइला हो
केकरा से भेजूँ विरही पतिया, जो पिया के हवलिया नु हो
ललना, कहवाँ गेले निरदइया, सो कहवाँ अरज भेजूँ हो[23]

सोहर गीतों में पति पत्नी के बीच अपेक्षित प्रेम, आदर और सहयोग का अभाव तथा पारिवारिक सदस्यों के बीच कटुता तथा अनादर का भाव भले ही वर्णित हुआ हो सामाजिक स्तर पर आपसी सहयोग का चित्र ही प्रस्तुत किया जाता है।

लोककथाओं में कहीं कहीं यह संबन्ध प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित मिलता है। यहां पर पुरुष एवं स्त्री के स्थान पर सियार और सियारनी, बटेर और बटेरनी आदि चित्रित मिलते हैं। कोंकणी कथा *कोलो आनी कोली* में सियार और सियारनी झगड़े में हैं। महालय पर्व का संदर्भ है। पर्व के दिन लोगों को कौन निमंत्रण देगा, इस समस्या के हल के लिए अन्त में सियारनी को ही हार माननी पड़ती है। वह सब कुछ भूलकर सियार को पुकारती हुई वन में घूमती फिरती है। यहाँ पर दिखाया गया है कि समाज के नियमों में जकड़ी हुई पत्नी को हमेशा पुरुष का अधीशत्व स्वीकार करना पड़ता है।[२४]

हिन्दी लोककथा *बटेरनी-बटेर* में बटेरनी बटेर के संबन्ध में हमेशा चिन्तित है। जब वह बाज़ार जाता है तो उसका ह्रदय धुकड़ धुकड़ करने लगता है। वह उसका रास्ता ताकती रहती है। अपने पति के कल्याण के लिए हमेशा शिव-पार्वती को मनाती रहती है।[२५] कोंकणी की *सुर्याचो उजवो घोडा* (सूरज का दाहिना घोडा) नाम की कथा में राजकन्या अपनी जान तक को खतरे में डालती हुई अपने खोए हुए पति को ढूँढ कर पाताल से ले आती है। वह उसे सारी विपत्तियों से बचाती रहती है। यह पत्नी का पति के प्रति जो स्नेह एवं आदर है उसीका सूचक है।[२६]

पति- पत्नी संबन्ध का दूसरा पक्ष भी इन कहानियों में वर्णित मिलता है। हिन्दी की लोककथा *जट्ट-जट्टिन* में स्त्री हमेशा अपने पुरुष को ताने देती रहती है। वह कहती है - *परदेश लोग जाते हैं तो जाने क्या क्या अपनी घरवाली के लिए लेकर आते हैं और एक यह है जो परदेश से यूँ ही हाथ डुलाते पहुँच गया जैसे माटी कोडने खेत गया हो।*[२७] इसी प्रकार *आदत से लाचार* कहानी में पति जब रात को थका माँदा लौटता है तो जान बूझकर पत्नी उसके लिए खाना नहीं पकाती। जैसे ही वह खाना माँगता

है, लड़ाई शुरू होती है।[२८] *भाट भाटिन* कथा में भाटिन भाट से छल करती हुई किसी मणिधर साँप के प्रेम में फँस जाती है और जब भाट साँप को मार डालता है तो वह चतुराई से भाट को अपने रास्ते से हटाने की सोचती है।[२९] कोंकणी की *फकीर आनी ऱाणी* (फकीर और रानी) में रानी अपने पति को धोखा देकर फकीर के साथ हो लेती है।[३०] इस प्रकार हिन्दी और कोंकणी लोककथाओं में ऐसी भी स्त्रियों का चित्रण हुआ है जो अपने स्वार्थ के लिए पति का गला घोंटने पर उतारू हैं। ये अपने पति के साथ वफादार नहीं रहतीं और अच्छे संबन्धों को नहीं निभातीं।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही पति-पत्नी संबन्ध को पवित्र मानते आए हैं। हिन्दी और कोंकणी समाज में इसीका प्रतिफलन देखा जा सकता है। लोकसाहित्य इस यथार्थ को चित्रित करता आया है। पत्नी की मृत्यु पर पति दूसरा विवाह कर सकता है। लेकिन पति की मृत्यु पर पत्नी दूसरा विवाह नहीं कर सकती। यही समाज का विधान है। यदि कोई उसे इसके विरुद्ध जाने का प्रोत्साहन देता है तो भी वह इसके लिए तैयार नहीं होती। उसके जीवन में पति का होना अनिवार्य माना जाता है जिसके अभाव में समाज उसको दुत्कारता रहता है।

माता-पिता-पुत्र-संबन्ध

भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन में माता- पिता का आदर किया जाता है। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव आदि उक्तियों में सन्तान के लिए माता पिता के प्रति जो कर्तव्य है, उसका चित्रण मिलता है। यही नहीं, पुरुषप्रधान समाज होने के कारण हिन्दी तथा कोंकणी समाजों में परिवार में हमेशा पिता का ही शासन चलता है। बच्चे यद्यपि माता से लगाव रखते हैं फिर भी पिता के आदेशों को खूब मानते रहते हैं। पिता की आदतों का

ो वे अनुवर्तन करते रहते हैं। पुत्र का पिता के प्रति विशेष प्रकार का संबन्ध हता है। लोकसाहित्य में इसका वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है। कोंकणी में एक कहावत है -

> *बपायलें व्यसन पुत्ताक बियेची कीडि झाडाक*
> (पिता का व्यसन पुत्र को भी लगता है जैसे
> बीज का कीडा झाड को भी खाता रहता है)

हिन्दी में कहावत यों चलती है - *पिता पतितो भला* । पिता पतित होकर भी भला ही होता है। उसकी बराबरी दूसरा कोई नहीं कर सकता। किसी भी दशा में पुत्र को अपने पिता का आदर ही करना चाहिए। हिन्दी और कोंकणी समाज परंपरा को मानकर चलते हैं। यह प्राकृतिक नियम रहा है कि पुत्र पिता जैसा और पुत्री माता जैसी रहे। इसी प्रकार पुत्र और पुत्री के अच्छे या बुरे कर्म अपनी माता या पिता की याद दिलानेवाले होते हैं। लोकसाहित्य वह चाहे हिन्दी का हो या कोंकणी का हो, उसमें इसका जिक्र मिलता है। भारतीय लोग प्रायः पुत्रजन्म के इच्छुक रहते हैं। इसका विशेष कारण भी है। भारतीय संस्कृति के अनुसार पुत्र माता पिता का उद्धारक होता है । उक्ति यह है कि *पुतात् त्रायते इति पुत्रः* । पुं नामक नरक से जो माता पिता की रक्षा करता है वही पुत्र है। पिता का जो जो उत्तरदायित्व रहता है वह पिता के साथ एवं पिता के बाद पुत्र को भी निभाना पड़ता है। यह संबन्ध हमेशा एक दूसरे पर निर्भर रहता है। पुत्र ही पिता का अंतिम संस्कार एवं तत्संबन्धी क्रियाओं का अधिकारी माना जाता है। इससे स्पष्ट है पिता किस प्रकार पुत्र पर आश्रित रहते हैं। पुत्र पिता का इहलोक ही नहीं परलोक भी सँवारता है। अक्सर बहुपुत्रोंवाला पिता भाग्यशाली समझा जाता है।

पिता से बढ़कर माता का स्थान परिवार में महत्वपूर्ण माना जात है। क्योंकि पुत्र को जन्म देनेवाली माता होती है। लोककवि स्पष्ट मानत है कि- *नारी निन्दा ना कोई करिबो नारी नर की खान*। हिन्दी तथा कोंकण लोकसाहित्य इस विचार में समानता बरतते हैं। इन लोकसाहित्यों म पुत्रजन्म से संबन्धित विचार प्रकट किए गए हैं जो माता-पुत्र संबन्ध क ओर प्रकाश डालने एवं माता के महत्व को चित्रित करने में अत्यन्त सक्षम हैं। जैसे

तिरिया के जनमे कवन फल, हे मोरे साहब
पुतवा जनम जब लेइहैं, तबै फल होइहैं
पुतवा के जन्मे कवन फल, हे मोरे साहब
दुनिया आनन्द जब होई, तबै फल होइहैं [३१]

इसलिए स्त्रियों के मन में पुत्र के बिना शून्यता का बोध होता है। पुत्र के बिना उसकी गोद सूनी रहती है। पुत्र को लेकर वह तरह तंरह के सपने देखा करती है। जैसे

कब लाल बड़ा कै होइहैं   कब बाबा कि बगिया जइ है
कब आम घवदि लै अइहैं   कब आजी के अगवाँ धरिहै
कब सब कर जिया जुडै हैं[३२]

कोंकणी समाज की गति भी इससे कुछ भिन्न नहीं है। पुत्रजन्म पर माता के साथ साथ संपूर्ण घर एवं गाँव भी खुशी से तरंगित हो जाते हैं। प्रत्येक पुत्र देवत्व की गरिमा लिए होता है जिससे माता देवप्रसवा के रूप में गौरवान्वित हो जाती है। ऐसी माता पुत्र के लिए सब कुछ होती है। इस संबन्ध को प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित करनेवाली एक कहावत कोंकणी में इस प्रकार मिलती है --*मिट्टा पशि रूच ना अम्मा पयले बंधु ना* (नमक से बढकर

वाद नहीं, माँ से बढ़कर बंधु नहीं) दूसरी कहावत इस प्रकार है - *राज्याक ायु जाल्यारि आवसूक पूतु* (राज्य के लिए राजा और माँ के लिए बेटा) ाता एवं पुत्र के बीच जो संबन्ध है उससे बढ़कर पवित्रता पारिवारिक ांबन्धों में और किसी संबन्ध की नहीं है। वेदों से लेकर आज तक हम ारतीय समाज में इसको देखते आ रहे हैं। पारिवारिक जीवन का केन्द्र ाता ही होती है और परिवार के सभी लोग किसी न किसी प्रकार उससे संबन्धित रहते हैं। कोंकणी समाज अच्छी तरह जानता है कि *शेता जाय ावसु पुता जाय आवसु* (खेत को चाहिए पावस और पूत को चाहिए माता) यह एक लोकसत्य है।

माता-पिता-पुत्री संबन्ध

समाज में पुत्र का जन्म जितना पवित्र माना जाता है पुत्री का जन्म उतना ही अपवित्र माना जाता है। हिन्दी और कोंकणी समाज इसके अपवाद नहीं हैं। हिन्दी की कहावतें - *बेटा भेल लोकि ले बेटी भेल फेंकि दे, बेटा से घर भरेला बेटी से घर सून होला* आदि इसी के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। *बेटी जात भाँसा* कहकर बेटी के प्रति जितनी अवज्ञा दिखाई जा सकती है उसकी तीव्रता दिखाई गई है। लोकसाहित्यों में बेटी को दुःख का पर्याय कहा गया है। पुत्रजन्म के अवसर पर जिन अनुष्ठानों का अनुसरण किया जाता है, वह पुत्री-जन्म के अवसर पर नहीं किया जाता। नारी के प्रति यह उपेक्षा भाव समाज में सब कहीं व्याप्त है। लोकसाहित्य में स्त्री के ही मुँह से यह इस प्रकार प्रकट हुआ है -

भैया जहि दिन तोहारो जलम भेला
सोनामा लुटावल गेला रे ना
जहि दिन हमारो जलम भेला
कछू ना लुटावल गेला रे ना [33]

इसका विशेष कारण भी है। वह है दहेज़ की समस्या। लड़की का जन्म होते ही उसके विवाह की चिन्ता माता पिता को सताए जाती है। संस्कृत का निम्नलिखित श्लोक इसकी पुष्टि करता है -

जातेति कन्या महतीह चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्क:
दत्ता सुखं यास्यति वा नवेति कन्यापितृत्वं खलुनाम कष्टम्[३४]

लोकसाहित्य में सर्वत्र इसी की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। यही हमारे समाज का विधान है। कन्या के जन्म लेते ही उसके विवाह की चिन्ता पिता को खाए जाती है। माता भी इसी कारण दु:खी है -

जहि दिन्न बेटी हो तोहरो जनम भइले
भइली भदउआ के रातए
सासु ननद घरे दियरोन बोरली
ठहो प्रभु बोलेले कुबोलए [३५]

यहाँ पर कन्या के जन्म की तुलना भादों की अंधेरी रात से की गई है जिससे समाज का उसके प्रति हीनभाव स्पष्ट हो जाता है। कोंकणी की कई कहावतों में इस भाव की ओर काफी संकेत मिलता है। एक कहावत है -

चेल्ली जल्ली म्होणु रोड्डूनक्का मस्सोलु वड्डूनु दित्तलि ती तुक्का
चेल्लो जल्लो म्होणु हस्सुनक्का लस्सूनु भज्जूनु खत्तोलो तो तुक्का

(लड़की हुई तो रोना मत वह घर के काम में हाथ बँटाएगी
लड़का हुआ तो हँसना मत वह तुम्हें भुन कर खा जाएगा)[३६]

इसमें समाज को चेतावनी दी गई है कि लड़के और लड़की में अन्तर नहीं करना चाहिए। यह कहावत समाज की इस बुरी आदत पर कुठाराघात है।

अर्थो हि कन्या परकीय एव कन्या घरोहर के रूप में परिवार में खी हुई दूसरों की संपत्ति है। जितनी जल्दी हो सके उसे सुरक्षित स्थान र पहुँचाना पिता का धर्म होता है। इसी कारण वह बोझ समझी जाती है। ता को उसके योग्य वर की खोज में स्थान स्थान पर भटकना पड़ता है ौर दहेज़ की तैयारियाँ भी करनी होती हैं। सबसे बड़े दुःख की बात यह ोती है कि पिता को कहना पड़ता है --

तुमही जोग बर कतहू न पावा अब बेटी रहइ कुँवार हो[३७]

कोंकणी समाज में भी लड़की का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता है। पति के ाम पर ही वह जानी जाती है। हास्य -व्यंग्य से युक्त निम्नलिखित गीत में इसका सुन्दर वर्णन हुआ है -

एक खंय एकु रायु	(कहीं एक राजा था
तज्जे गोयंड्याक पडलो घाय	उसकी गुदा पर एक घाव
घय्यांत भरताय मीट	घाव पर लगाते हैं नमक
ताका घालताय व्हिन्दुळ्यारि	उसे हिंडोले पर लिटाया जाता है
ताका काडताय जूं	पेग भर दी जाती है
तागेली बायल तूं[३८]	उसकी पत्नी तुम हो)

पति के साथ साथ लड़की का संबन्ध दहेज़ से भी होता है जिसके कारण उसका जन्म शाप माना जाता है। फिर भी लड़की से जन्म से लेकर ही दहेज़ की तैयारियाँ होती रहती हैं। निम्नलिखित गीत इसकी सूचना देता है -

चम्मक बाळे चम्मक तुजे निद्दांतुले दोळे
गोवंटेचे भारान करतना चोवंकूक जायना
चम्मक बाळे चम्मक तुजे निद्दांतुले दोळे

भंगरा पट्ट्या भारान करतना चोवंकूक जायना
चम्मक बाळे चम्मक तुजे निद्दांतुले दोळे
कुरटाचे एलेसा भारान करतना चोवंकूक जायना
चम्मक बाळे चम्मक तुजे निद्दांतुले दोळे
पांयंजळांचे भारान करतना चोवंकूक जायना[३९]

(चलो बेटी चलो तेरी नींद भरी आखें
गले के आभूषणों के भार से तू चल नहीं सकती
चलो बेटी चलो तेरी नींद भरी आखें
करधनी के भार से तू चल नहीं सकती
चलो बेटी चलो तेरी नींद भरी आखें
तावीज़ के भार से तू चल नहीं सकती
चलो बेटी चलो तेरी नींद भरी आखें
पैंजनियों के भार से तू चल नहीं सकती)

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में परंपरा, मर्यादा, नियम अनुशासन के जो संस्कार हैं वे बहुत कुछ समानता लिए हुए हैं। बेटी की विदा के प्रसंग में पुत्री की माँ, पिता, भाई तथा भाभी की वेदना को माप लिया गया है। माता की ममता असीम है, इसलिए उसके रुदन से नदी ही बहने लगी। पिता की पीडा अपेक्षाकृत कम है, इसलिए उनके अश्रु से तडाग ही का निर्माण हुआ। भाई की भारवाहक व्यथा से डबरे भर गए। लेकिन पराये घर से आई हुई भौजी के नेत्र सजल भी नहीं हो सके -

दाई के रोये नदिया बहत हे दादा के रोये तालाब
भाई के रोए डबरा भरत हे भौजी के नयन कठोर[४०]

लोकसाहित्य में विदा की पीडा को मापने और मर्यादा को मथकर संस्कार

देने की ऐसी लोकोपयोगी शिक्षा दी जाती है। स्वयं कालिदास ने अपने शाकुन्तल में इस पीडा का माप इस प्रकार दिया है-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्ठमुत्कण्ठया
कण्ठस्तंभितबाष्पवृत्तिकलुषः चिन्ताजडं दर्शनम्
वैक्लब्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते कथं नु गृहिणः तनयाविश्लेषदु:खैः नवैः[४१]

लोकसाहित्य में यही दु:ख तट तोडकर बहता हुआ चित्रित किया गया है। चिरकाल से हमारे समाज में यह देखा जाता है। रुदन की माप के आधार पर पीड़ा को प्रस्तुत करना लोकगीतकार को बहुत अच्छा लगता है। वाणी के ज़रिए वे उस माप को व्यक्त करना चाहते हैं। कोंकणी लोकसाहित्य में विदा की यह व्यथाजन्य पीडा चित्रित मिलती है । लेकिन हिन्दी की अपेक्षा यह बहुत ही कम है। यहाँ पर लड़की के माता पिता उसे समझा बुझाकर विदा करते हैं। जैसे

बापान केल्लि गो धनराशी	(पिता ने दे दी धन-दौलत
अजेन केल्लि गो कनकेशी	आजी ने दिये सोने के आभूषण
अम्मान वड्डेयली गो बाराय वर्षा	माँ ने बारह वर्ष तक पाला
आजि तुमचे हाती दिल्ली गो	आज तुम्हारे हाथों में सौंप दी
पालन कराय वो	इसका पालन करना [४२]

यहाँ पर बेटी के माँ बाप बहुत ही समझदार दिखाई पड़ते हैं। वे जानते हैं कि लड़की पराया धन होती है। उसे पति के हाथों में सौंप कर उनका भार हल्का हो जाता है।

हिन्दी और कोंकणी की लोककथाओं में भी ऐसे अनेक संदर्भ आए हैं। कोंकणी कथा *म्हांतारी आनी तिगेली सून* में सास बहू से साफ साफ

कहती है कि यदि तुम्हारी लड़की होगी तो तुम उसे इस घर में नहीं ल सकोगी। यदि लड़के का जन्म हो तो खुशी खुशी उसे इस घर में सकती हो।[४३] एक स्त्री के नाते माँ के लिए लड़का या लड़की समान रह है। लेकिन परिवार एवं समाज से डरकर इस प्रकार का भेद लड़के अ लड़की में करने के लिए वह मज़बूर हो जाती है। लड़की के लिए सब बड़ी समस्या दहेज़ की है। इसकी जड़ें दिन ब दिन मज़बूत होती चली रही हैं। समाज में स्त्रियों की अवस्था को ये कहीं बदतर बना देती हैं। इ प्रथा की खामियों को एक लोकगीत में करुणामय ढंग से इस प्रकार चित्रि किया गया है -

बाप गरीबे माय की करती, उमर देखि बेटी के झखती
बापक आँखि सँनोर देखि के भैया तेजलनि प्राण या[४४]

कोंकणी समाज में भी ये बातें चलती रहती हैं। लेकिन हिन्दी लोकसाहित्य के समान कोंकणी में इसका खुला वर्णन नहीं मिलता। हाँ, कोंकणी की एक कहावत समाज की इस बुरी आदत को दूर करने और इसे मिटाने का प्रयत्न अवश्य करती है। यहाँ ससुराल जानेवाली बेटी को यह उपदेश दिया गया है कि बेटी, मेरे पास देने के लिए दहेज़ नहीं है। इसलिए तू अपने स्नेहपूर्ण बोल एवं व्यवहार से ससुराल में रहना और अपनी सास, ससुर, ननद और देवर को उपाय से घर से निकाल देना। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

अंदण विंदण ना गो धुवे जिब्बेन सरी जा
मायंक मावांक नणदेक देराक भायर घालची जा[४५]

दहेज़ प्रथा के विरुद्ध ऐसी सशक्त प्रतिक्रिया अन्यत्र दुर्लभ है। एक हिन्दी लोकगीत लड़के और लड़की के बीच के इस भेदभाव को दूर करने के

उद्देश्य से इस प्रकार कहता है -

एकहि बँसवा के दुइ रे करैली, एक बाँसुरी दुइ बाँस रे
एकहि मइया के दुइ रे लरिकवा, एक पुता दुइ धीय रे[४६]

सादृश्य बिंब के ज़रिए यहाँ लोकसाहित्यकार ने यथार्थ बात कही है कि बेटा और बेटी एक ही माता से उत्पन्न् हैं । इनमें भेद दिखाना ठीक नहीं है।

सास-बहू-संबन्ध

बेटी की दशा परिवार में कैसी रही, इसका अन्दाज़ा तो लगाया ही। फिर भी अपने घर में बेटी बेटी ही रहती है। जिस घर में उसका जन्म होता है वहाँ उसे पूरी स्वतंत्रता एवं सुख का अनुभव होता है। जब वह ससुराल चलती है तो स्थिति उलटी पड़ जाती है। बेटी अपने घर में कुछ भी कर सकती है, लेकिन बहू के लिए यह स्वतंत्रता नहीं है। उस पर उत्तरदायित्व का बोझ लादा जाता है। जहाँ बेटी को दूध, चावल, शक्कर और घी दिया जाता है, वहाँ बहू को केवल दही, बाजरा और नमक लेकर तृप्त होना पड़ता है। इस विषय में लोकसाहित्य में किसी सास का कहना है - *बेटी के दुलार पुतोहू कैसे पाइथन?* बेटी और बहू में स्त्रियाँ होने के नाते उतना अधिक भेद नहीं है, फिर भी समाज या परिवार के घेरे में आकर दोनों के अधिकार एवं कर्तव्यों में भारी अन्तर पड़ता है। कोंकणी की कहावत - *सुन्नेक ह्या दिवाळेक त्या दिवाळेक, घुव्वेक ह्या शुक्रारा त्या शुक्रारा* (बहू को इस दीवाली में उस दीवाली में, बेटी को इस शुक्रवार को उस शुक्रवार को) दोनों के बीच के इस भारी अन्तर को ही दिखाता है। यहाँ पर शुक्रवार तो बार बार आता है और बेटी को बहुत प्यार मिलता है जहाँ दीवाली तो केवल साल में एक बार ही आती है जब बहू को कुछ दिया जाता है। हिन्दी समाज में भी यही रीत चलती है। किसी बहू का कहना है -

सासु ननद वैरिनियाँ बहुत दुःख दाहत हो

और भी - ससुरे मा मिलिहैं लात आउर घूँसा
मइके मा मीठी सी बात
ससुरे न जइवोरे[४७]

ससुराल में मिलनेवाले दुःख को लेकर बहू बहुत बेचैन है। वह माइके रहना चाहती है ताकि उसको थोडा सा आश्वासन मिल जाय। लेकिन य कैसे हो सकता है? उसे ससुराल में रहकर यह दुःख भोगना ही पड़ता है दुःख को असहनीय पाकर वह कहती है ---

सास बहु-कहि नाय बोले ननद भाभी ना कहे
न हो राजे वे हरि बाँझ कहि टेरें
तौ छतियाँ जु फटि गई
जाई दुःख डूबी हों, जाई दुःख डूबी हों [४८]

ससुराल का हाल इससे बढ़कर कैसे वर्णन किया जा सकता है?

सास बहू का झगडा तो प्रसिद्ध ही है। हिन्दी की कहावत *आज मरी सासू कल आए आस*, और कोंकणी की कहावतें *मांयि मेल्यार सुन्नेक दुःख ना* (सास मरे तो बहू को दुःख नहीं होता) और *मांयि मेल्यार सून येता हसांत* (सास के मरने पर बहू हँसती रहती है) इसी बात की ओर संकेत करती हैं। सास के भिन्न तरह के बर्ताव बहू को दुःखी बनाते हैं। उसके ये दुःखपूर्ण उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त हैं -

एक दिन सासु आदर बड कयलिन्ह बासी भात अरु दूधे
एक दिन सासु खोर नाट धय मारलन्हि तपत भात अरु छूछे [४९]

जलती हुई लकड़ी से बहू को मारना कुछ कम गुनाह तो नहीं है। फिर भी बहू को सह लेना ही पड़ता है। जैसे कि ऊपर की पंक्तियों में वर्णित है कभी

कभी बहू को लात एवं घूँसा भी पड़ता रहता है जिससे वह ससुराल को पसन्द नहीं करती। उसे मायका ही अच्छा लगता है। इस प्रकार लोकसाहित्य में जो परंपरा मिलती है, चाहे वह हिन्दी की हो या कोंकणी की सास हमेशा बहू के साथ कठोर व्यवहार करती हुई मिलती है। साथ ही वह बहू को काम में लगाती हुई बेटी को आराम करवाती रहती है। बेटी बहू पर अधिकार स्थापित करती हुई उस पर हुकुम चलाती रहती है। अपनी सहज क्रूरता के कारण आसन्नप्रसवा रहते हुए भी बहू को पनघट पर भेज देती है। वहीं पर बहू बच्चे को जन्म देती है।[५०] इस दुःख एवं पीड़ा में कहीं कहीं उसको प्रियतम का साथ तो मिलता है जैसे कि कहा गया है -

सास बहू जब लड़ पड़ी बन्ना किसकी ओर
बाहर से भीतर को गया हुआ बहू की ओर[५१]

कभी कभी प्रियतम भी उससे दूर रहता है। ऐसी हालत में सास एवं ननद के द्वारा दी गई पीड़ा को भोगने का वर्णन करते हुए वह विदेश में रहनेवाले प्रियतम को सुआ के ज़रिए सन्देशा भेजती है और अपने आप घुलती रहती है। इसका वर्णन देखिए--

सास मोर मारे ननद गारी देवै रे मोरे सुवा
राजा मोर गइसि विदेस
लहुरा देवर मोर जन्म के वैरी रे मोरे सुवा
लेइ जावे तिरिया सन्देस[५२]

लोककथाओं में भी सास का यह कठोर रूप जहाँ तहाँ मिलता है। *सात बहुओंवाली सास*[५३] नामक कथा में सातों बहुएँ सास के डर से थर थर काँपती रहती हैं। उन्हें खाना भी नहीं मिलता है और काम भी खूब करना पड़ता है। *आप हारे बहू को मारे* - हिन्दी की यह कहावत सास के कठोर

रूप एवं बहू के सरल स्वभाव की ओर ही संकेत करती है। कोंकण लोककथाओं में भी सास का यह कठोर रूप चित्रित मिलता है। *म्हातारी आनी तिगेली सून* (बुढ़िया और उसकी बहू) नाम की कथा में सास के आदेश पर बहू का बड़े सबेरे खेत में जाकर काम करना पड़ता है, वन से लकड़ी लानी पड़ती है, रसोई का काम करना पड़ता है, पनघट जाना पड़ता है और सारा काम उसीको निपटाना पड़ता है। तिस पर खाने के लिए कुछ भी नहीं। यही नहीं, आसन्नप्रसवा बहू से वह कहती है कि यदि पुत्री को जन्म देगी तो उसे धर में प्रवेश नहीं मिलेगा और यदि पुत्र का जन्म होगा तो उसे घर में रखा जायगा।[५४] सास का यह कठोर व्यवहार बहू को सहना ही पड़ता है। लेकिन कोंकणी लोकसाहित्य में बहू की प्रतिक्रिया देखने योग्य है। एक कोंकणी कहावत इस प्रकार कहती है -

अङ्डुळि मोळ्ळि मांयि मेल्ली सुन्नेक बुद्धि आयली[५५]
(पहँसुल टूटी, सास मरी, बहू सचेत हुई).

इसमें सास-बहू के झगड़े में बहू की विजय दिखाई गई है। कहीं कहीं ऐसी पंक्तियाँ भी देखी जा सकती हैं जिनमें लड़कीवाले लड़की को सिखाते हैं कि किस प्रकार ससुरालवालों से निपटना है। गीत इस प्रकार है --

अंदण विंदण ना गो धुवे जिब्बेन सरी जा
मायंक मावांक नणदेक देराक भायर घालची जा[५६]
(बेटी, हमारे पास दहेज़ देने के लिए धन नहीं है
प्रीतियुक्त शब्दों से सास ससुर ननद देवर को घर
से निकाल देना।)

ये बहुएँ अच्छी तरह जानती हैं कि सास के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए। वे केवल अपना, अपने पति और बच्चे का सुख चाहती हैं। गीत इस प्रकार ह -

हून सीत बमणाक पुत्ताक	(गरम भात पति-पुत्र को
शेळ सीत मावांक मांयक	बासी भात सास ससुर को
हूनि पेज अपण्याक धुव्वेक	गरम दलिया आप खाए
शेळि पेज देराक नणदेक	बासी दलिया देवर ननद को)[५७]

ऐसी बहुओं के सामने सास भीगी बिल्ली बन जाती है। फिर भी उसका स्वाभाविक रूप उसे बहू के पक्ष में बुराइयाँ खोजने के लिए निरन्तर प्रेरित करता रहता है। बहू इस प्रेरणा को भी समूल उखाड़ देती है। ऐसी ही एक सास बहू का चित्र निम्नलिखित लोकगीत में चित्रित है । प्रश्नोत्तर शैली में तैयार किया हुआ यह गीत बहुत ही मनोहर है -

येदो येदो चुन्नो गो सुन्नेक कोणे दिल्लोलो?
पूतु तुजो भर्तारु म्हजो ताणे गे दिल्लोलो
येदि येदि फडि गो सुन्नेक कोणे दिल्लेली?
पूतु तुजो भर्तारु म्हजो ताणे गे दिल्लेली
येदीं येदीं फडिचान गो सुन्नेक कोणें दिल्लेलीं?
पूतु तुजो भर्तारु म्हजो ताणे गे दिल्लेलीं
येदें येदें धूरापान गो सुन्नेक कोणें दिल्लेलें?
पूतु तुजो भर्तारु म्हजो ताणे गे दिल्लेलें[५८]
(थोड़ा सा यह चूना, बहू को किसने दिया?
तुम्हारा बेटा, मेरा पति, उन्होंने ही दिया
थोड़ी सी यह सुपारी, बहू को किसने दी?
तुम्हारा बेटा, मेरा पति, उन्होंने ही दे दी
थोड़े से ये पान, बहू को किसने दिये?
तुम्हारा बेटा, मेरा पति, उन्होंने ही दिये
थोड़ा सा यह तम्बाखू , बहू को किसने दिया?

तुम्हारा बेटा, मेरा पति, उन्होंने ही दिया)

सास का व्यंग्य एवं बहू का उत्तर लोकगीत को सुन्दर एवं सक्षम बनाने मे सहायक रहा है। ऐसी बहू के सामने सास प्रेमपूर्ण व्यवहार करने के लिए मज़बूर हो जाती है।

भाई-बहन का संबन्ध

लोकसाहित्यकार बड़े ही मनोहर ढंग से भाई-बहन संबन्ध का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार चने या मटर के दो पल्ले होते हैं, वैसे ही हैं भाई और बहन - चना मटर के दोऊ पला झिलमिलिया कौ बीजना[५९] वास्तव में बहन का प्रेम निस्वार्थ होता है और वही बहन वर्षों से अपने भाइयों को दुवाएँ देती रही हैं। रक्षाबंधन और भैयादूज भाई बहन के संबन्ध को पुष्ट करनेवाले त्योहार हैं। हिन्दी और कोंकणी समाज में इनका विशेष महत्व रहा है। यही एक अवसर है जब बहन अपनी शुभकामनाओं से भाई को नख से शिखा तक कृतज्ञ बना देती है। ऐसी ममतामयी बहन हमेशा भाई के पास नहीं रह सकती समाज का विधान ही ऐसा है कि उसे भाई को छोड़कर अपने ससुराल जाना पड़ता है। बहिन की विदा के समय भाई की अवस्था बड़े दुःख की होती है। बहुत कम शब्दों में लोकगीत की पंक्तियों में इस दुःख का वर्णन इस प्रकार किया है -

दान करत छतिया जै फाटइ
कइसे करऊँ तोर दान[६०]

बहन के लिए भाई के हृदय का गहरा प्रेम इससे सुन्दर अभिव्यक्ति नहीं पा सकता। वह जीजा से बहिन का ख्याल रखने को कहता है तो ऐसा लगता है मानो युगयुगों से हृदय में संचित प्रेम ही उमड़ पड़ा हो।

बहन तो युग-युगों से अपने हृदय को पावन उपकरणों से सजाकर

जा की थाली में रखकर स्नेह के दिये के साथ आरती उतारती रहती है ौर भाई हमेशा उसकी रक्षा का प्रण करते हुए प्राणों की बाजी लगाकर स प्रतिज्ञा की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। हिन्दी तथा कोंकणी समाज ें भाई का बहिन के प्रति यह प्रेम देखा जा सकता है जिसका वर्णन लोकसाहित्य में भी मिलता है। इसी प्रेम के बल पर भाई अपनी पत्नी के समक्ष भी बहन का ही पक्ष लेता हुआ दिखाई पड़ता है। वह कहता है -

तुम गुस्सा करो एक छल्ला न देबो
हम गुस्सा करई कंगन लैके जाबे [६१]

कोंकणी का इसीसे मिलता जुलता एक गीत है जिसमें ससुराल में भूख से तड़पती हुई बहन पेट भरने के लिए भाई के पास आती है। भाई अपनी पत्नी से कहता है कि बहन को चावल का एक बोरा दे दो। यहाँ बहन के प्रति भाई का प्रेम तट तोड़ता है तो भौजी तुरन्त ही इस पर रोक डालती हुई चावल के बदले चोकर भरा हुआ बोरा बहन को देती है। फिर भी बहन भाई या भौजी का बुरा नहीं चाहती । वह कहती है

म्हज्या बाय बाबाले	(मेरे माँ-बाप के
शेतां..................	खेत में........
पड पड रे मेगनाथा	जल बरसाओ हे, मेघ
म्हज्या बाय बाबाले	मेरे माँ बाप के
शेतां..................[६२]	खेत में ....)

बहन के दु:खों को सुननेवाला और उन्हें दूर करनेवाला भाई को छोड़ - कर कौन हो सकता है? कोंकणी गीत *ओव्ळारु* में जब चूड़िहारा बहन का दु:ख भाई तक पहुँचाता है तब तुरन्त ही भाई दूर रहते हुए भी बहन के हृदय की बात सुन लेता है। वह तुरन्त उसके पास आता है। भाई के आते

ही रुक्मिणी एक हाथ में पीढ़ा और दूसरे हाथ में तंबिया लेकर दौड़ी हुई उसके पास आ जाती है । भाई के पैर धोते धोते आँखों से गरम आँसू टपक पड़ते हैं जिसे देखकर भाई को बड़ा दुःख होता है। वह अपनी बहन के हृदय के दुःख को समझ जाता है। तुरन्त सुनारों को बुलवा कर सोने का खैला तैयार करवाता है और अपनी बहिन का सारा दुःख दूर कर देता है।[६३] हिन्दी लोकगीतों में बहन भाई के इस दायित्व की ओर संकेत करती हुई कहती है - *कौन रखे मेरा मान भैया के बिना?* जो अपनी *बहना को गले लगाय आँसू पोंछे।.* ऐसे भाई के आगमन की वह हमेशा प्रतीक्षा करती है। सावन के आने पर वह इच्छा करती है कि भाई उसे लेने आएगा और मायकेवालों से उसकी भेंट कराएगा।[६४]

कौए का रटना और उड़ जाना निकट संबन्धी के आने का सगुन माना जाता है। अपने भाई के आने के सगुन के लिए बहिन कौए को संबोधित करके कहती है कि

उड़ उड़ काग सुलोचने
काग भइया, जो बीरन आएँगे आज
सोने मढ़ाऊँ तेरी चोंचली
और रुपै मढ़ाऊँ तेरे पंख [६५]

बहिन का भाई के प्रति जो प्यार है उसीका प्रतीक है सगुन लानेवाले कौए की चोंच सोने से मढ़वाना और पंख चाँदी से मढ़वाना। इससे बढ़कर अपने प्यार को वह किस प्रकार व्यक्त करेगी? भोजपुरी में जनेऊ के लिए बहन के द्वारा काता गया सूत ही अपनाया जाता है। प्राचीन काल में घर में काते गये सूत से ही जनेऊ बनाया जाता था। यह भारत के प्राचीन कुटीर उद्योगों की भी सूचना देता है। गीत की पंक्तियाँ हैं -

जानकी सुहइया सुत कातेली भल ओटेली
पुरेले केसव राम जनेऊ बबन बरुआ पहिरसु [६६]

भाई अपनी प्रिय बहिन के लिए पियरी ले जाने को उत्सुक है, चाहे सकी ढाल तलवार और कमर की कटारी तक क्यों न बिक जाएँ।[६७] किन भौजी नहीं चाहती कि ऐसा हो। वह बहाना बनाती है। लेकिन बहन च्छी तरह जानती है कि भाई उसके दु:खों को हृदय में सँजोकर रखेगा ौर जब भी, जहाँ भी स्मरण करेगा तो रो पड़ेगा। वह अपने ससुराल के :खों को भाई से, केवल भाई से ही कहती है --

ई दु:खे जनि कह्यो भौजी के अँगवाँ टेना
भौजी दुइ चार घर बाँटि दैहैं रे ना [६८]

वल भाई ही ऐसा व्यक्ति है जिससे कहकर बहन अपने दु:ख को कुछ म कर लेती है। उसी पर उसका विश्वास रहता है, उसीको लेकर आशा ी।

हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में भाई -बहन के संबन्ध का चेत्र बहुत खूब उकेरा गया है। कोंकणी की कथा, *सातवी जाव* (सातवीं देवरानी) में चिता में से भाई बहिन की रक्षा करता है। जादू के सहारे मृत बहन को मांत्रिक छड़ी की सहायता से जीवित करता है। इस प्रकार बहन के प्रति वह अपने गहरे प्रेम और दायित्व का परिचय देता है।[६९] पालकी में बहन को बिठाकर गाजे बाजे के साथ उसको घर ले जाता है। उसकी पत्नी भी उसका साथ देती है। हिन्दी लोककथा *भाट भाटिन* में इसके ठीक उलटे बहन भाई की रक्षा करती है। भाटिन भाट से छल करती हुई किसी मणिधर साँप के प्रेम में फँस जाती है और जब भाट साँप को मार डालता है तो वह चतुराई से भाट को अपने रास्ते से हटाने की सोचती है। इसी

समय बहन आकर भाट की रक्षा करती है।[७०] भाईदूज के अवसर पर अक्सर यह कथा सुनाई जाती है।

सामा चकेबा में भी भाई-बहन के इस पवित्र संबन्ध का सुन्दर नमूना मिलता है। शांबा और चारुक्य को मनुष्य के रूप में वापस पाकर चारुक्य की बहन खरलीच बहुत ही सन्तुष्ट होती है। माना जाता है कि हर साल वह भाई से मिलने आती है और गीत गाती हुई भाई और भाभी के सुख और सुहाग की दुआ माँगती है।[७१] आज भी मिथिला में सामा चकेबा का खेल धूम धाम से होता है। कार्तिक सुदी चार से हर रात लड़कियाँ सामा का डाला सजाकर एक झुंड में इकट्ठे होकर यह खेल खेलती हैं। यह भाई-बहन का खेल भरा अनोखा त्योहार है। कार्तिक पूर्णिमा को सामा की बिदाई की जाती है।[७२]

सात भाइयों की एक बहिन लोककथाओं में बहुत ही प्रसिद्ध रही है। हिन्दी की *सोन चिरई* और कोंकणी की *सोन सावळें* इसी को दिखाती हैं। दोनों कथाएँ बड़ी ही समानता रखती हैं। भाइयों के लिए बहुत प्यारी सोनचिरई को उनके अभाव में भाभियाँ सताती रहती हैं। इस समय सारे जीव जन्तु उसकी सहायता करते हैं। जब भाई परदेश से लौटते हैं तो सोनचिरई के दुःख को देखकर दुःखी एवं क्रोधित हो उठते हैं। बड़ा भाई बहन को अपनी जाँघ चीर कर उसमें छुपाता है और सत्य जानने पर छहों भाभियों को उचित दण्ड देता है। सातवीं भाभी और सोनचिरई के साथ वह सुख से रहता है। इन दोनों कहानियों में भाई-बहन का स्नेह खूब उतर आया है।[७३] भाई-बहन का यह प्रेम-संबन्ध कहीं कहीं भौजाई के नाश का भी कारण बनता है। कोंकणी कथा *कवड्याची कवडुली* में यही होता है। यहाँ पर बहन भाई को उकसाती रहती है और भौजाई के विरुद्ध उसके

ान भरती है। बहन के कहने पर भाई जाँते के पत्थर से पत्नी को मार ालता है।[७४] लेकिन ऐसे प्रसंग लोकसाहित्य में बहुत कम ही मिलते हैं।

नद-भौजाई-संबन्ध

बहन के दुःखों को भाई अपने हृदय में संजोकर रखेगा और इन ुःखों को दूर करने के लिए लाख लाख प्रयत्न करता रहेगा। लेकिन ौजाई की बात इसके ठीक विपरीत है। लोकसाहित्य में इसका प्रभावपूर्ण र्णन स्थान स्थान पर मिलता है। अपनी भौजाई को लेकर ननद अपने ाई से कहती है कि

ई दुःख जनि कह्यो भौजी के अँगवा रे ना
भौजी दुइ चार घर बाँटि देहैं रे ना [७५]

ह स्वयं जानती है कि भाई के समान भौजाई उसकी सहायता करने के लिए तैयार न होगी। अपने जीवन के हर एक मोड़ पर उसका यही अनुभव रहा है। मायके से ससुराल की बिदाई के समय जब माता, पिता और भाई आँसू बहाते रहते हैं तो अकेली भौजी ही ऐसी है जिसकी आँखों से एक बूँद तक नहीं गिरती। लोकसाहित्य इसका चित्रण इस प्रकार करता है -

भाई के रोये डबरा भरत है
भौजी के नयन कठोर [७६]

हिन्दी लोकगीतों में भौजी की इस कठोरता का स्थान स्थान पर जिक्र हुआ है। जब भाई बहन के लिए पियरी लेकर जाना चाहता है तो भौजी बहाना बनाती हुई कहती है --*ये हि पेटरवा के कुंजिया ना जानों कहाँ गिर गई हा*। और एक स्थान पर वह कहती है -

ननदी अइहै गहना माँगि है
चाहे गुस्सा करो एक छल्ला न देबे [७७]

जब हिन्दी लोकगीतों में भौजी केवल बहाना बनाती है या ननद को कुछ देने से इनकार करती है तो कोंकणी लोकगीतों में वह एक कदम आगे बढ़कर यह बात अपने व्यवहार में भी दिखाती है। उसका पति जब उससे कहता है कि ननद को एक बोरा चावल दो तो वह तुरन्त एक बोरा चोकर देकर उससे निपटती है। यही नहीं ननद को वह ऐसी खीर बनाकर खिलाती है जिसमें शक्कर या गुड़ के बदले नमक एवं मिर्च डाल देती है जिसे खाकर ननद का पेट खराब हो जाता है।[७८] इसी प्रकार कोंकणी की एक कहावत *सुकि रांदणि, सुकि शेणि जेवंच्याक आयल्या बामणा भइणि, रांदप जायत वे संजे पुणि*[७९] (सूखा गोहर सूखा चूल्हा, खानेवाली पति की बहन, क्या सांज तक खाना बन जायेगा?) भौजी का बहाना साफ साफ प्रकट करती है। बहाना बनाकर ननद को बिना खाना खिलाए ही लौटाने का उसका इरादा है। हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य में ननद के प्रति भौजाई की क्रूरता कई स्थानों पर चित्रित है। अधिकांशतः लोककथाओं में ही इसका चित्रण हुआ है। मैथिली लोककथा *सोन चिरई* [८०] और कोंकणी लोककथा *सोनसावळें*[८१] इसका उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। यहाँ पर भौजियों के क्रूर व्यवहार से तंग आकर सोन चिरई भाइयों की याद करती हुई रोती रहती है। उसकी भौजियाँ शरीर पर जलती लकड़ी से दाग करती हुई, उसकी खाल उधेड़ने का भय देती हुईं उसे हमेशा सताती रहती हैं जंगल से लकडियों का भारी गड्डर बिना बांधे ले आने को कहती हैं। कोंकणी कथा, *भावजेचो शालू* में भौजाई अपने पति से हठ करती हुई अपनी ननद को मार डालने के लिए उसे प्रेरित करती है।[८२]

ननद-भौजाई के संबन्ध का और एक पक्ष वहाँ उभर आता है जहाँ पर भौजाई को मार डालने के प्रयत्न ननद की ओर से होते रहते हैं। शिव-पार्वती विवाह नाम की हिन्दी कथा में भैया भाभी की आरती उतारने के लिए

ब ननद आ जाती है तो भाभी का रूप देखकर वह बहुत जलती है।[८३] सी प्रकार कोंकणी कथा *कवड्याचि कवडुली* में ननद की निरन्तर प्रेरणा । पति पत्नी को सिर पर जांते के पत्थर से आघात करते हुए उसे मार ालता है।[८४] इस प्रकार की अनहोनी घटनाओं से बचने के लिए कोंकणी के ोककवि का निर्देश बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। वह कहता है -

नणदा भावजा आमी	(ननद और भौजी, हम
लागल्यो भांडूक	झगडने लगीं
स्वामी भरतार आमी	हे स्वामी, भर्ता हम
जावया वेगळ्या, घर बांदुया	अलग हो जायें, घर बनाएँ
पर्वता दोंगरीक[८५]	पर्वत की तराई में)

कहीं कहीं लोकसाहित्य में ननद भौजाई के संबन्धों के सत्पक्ष का चेत्रण भी मिलता है। यह संबन्ध ऐसा होता है कि भौजाई के पुत्र पैदा होने र ननद नेग माँगती रहती है। भौजाई को नेग देना ही पडता है। लोकसाहित्यकार कहता है-

जाहु तोरा भउजी होरिला होइहे तबे आइबि तोरा आँगनवा
नथिया भी लेबों झुलनी भी लेबों लेबों हार अवरु जोसनवा
तबे भउजी आइबि तोरा आँगनवा
हलका भी लेबों हँसुली भी लेबों लेबों जडाऊ कांगनवा
कंठा भी लेबों, टीका भी लेबों लेबों सब सोना के गाहानवा
तबे भउजी आइबि तोरे आँगनवा [८६]

होई माता नामक कहानी में भौजाई करुणा और ममता की देवी बनकर ननद केलिए अपनी कोख तक का बलिदान कर देती है।[८७] ननद भौजाई के संबन्ध का उत्कृष्ट रूप कोंकणी लोकगीत में मिलता है। भाई

विवाह के पश्चात् भौजी को लेकर जब घर में प्रवेश करता है तो ननद द्वार पर बैठकर अडचन उपस्थित करती है। अपना अधिकार दिखलाती हुई वह अपनी भौजी से इस प्रकार माँग करती है --

इत्तेंगे व्होनिये तू मत्तें बावगून बेसल्या	(भौजी,सिर नीचा क्यों करती हो
अत्तां इत्याक हसता सांग गे	अब हँसती क्यों हो
तुजेरि जल्लेल्या पुत्रेक तू दित्ता गे	तुम्हारी बेटी को मुझे दोगी न?
म्हज्जेरि ज़ल्लेले पुत्राक तू घेता वे?	मेरे बेटे को अपना लोगी न ?
दिता म्हणतागे अत्तां सोडता कव्वड[८८]	हाँ कहोगी तो द्वार से हटूँगी)

इस प्रकार एक ओर भौजी ननद पर रोब जमाती है तो ननद भी भौजी को कई तरह से सताती रहती है। भौजी को घर का सारा काम चुपचाप करना पड़ता है और घर के अन्य लोगों के साथ ननद का भी ख्याल रखना पड़ता है। बदले में ननद अपने भाई, माता एवं अन्य लोगों से मिलकर भौजाई को निरन्तर सताती रहती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जब तक समाज रहेगा इस तरह के खट्टे मीठे संबन्ध भी रहेंगे। लोकसाहित्य में इसका चित्रण भी होता रहेगा।

हिन्दी और कोंकणी समाज में स्त्री का स्वरूप

तिरिया के जन्मे कवन फल, हे मोरे साहब
पुतवा जनम जब लैइहैं तबै फल होइहै[८९]

स्त्री पुत्र को जन्म देकर माता बनती है। भारतीय संस्कृति में माता का उँचा स्थान है। *मातृदेवो भव* प्रसिद्ध ही है। हिन्दी तथा कोंकणी की कई लोककथाओं में स्त्री के इस माता रूप का चित्रण हुआ है। माता तीनों लोकों से भी श्रेष्ठ है। माता की परिक्रमा करना तीनों लोकों की परिक्रमा का फल देता है[९०] *जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी* इसी की ओर

संकेत करता है। लोकसाहित्य में स्त्री के इस रूप का खूब चित्रण हुआ है। *मातृदेवो भव* भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। माता अपनी धीरता और सेवापरायणता के कारण पृथ्वी से भी श्रेष्ठ मानी जाती है।

लोककथाओं में यथार्थ जीवन का ही चित्र रहता है। इसलिए दिन प्रतिदिन के अनुभवों के खुले चित्र यहां प्राप्त होते हैं। इन कथाओं के ज़रिए समाज में स्त्रियों का क्या स्वरूप है इसका अच्छा खासा चित्र मिल जाता है। यहाँ पर बुद्धिमती स्त्रियाँ हैं, बुद्धिहीन स्त्रियाँ हैं, घमंडी स्त्रियाँ हैं, कुटिल स्त्रियाँ हैं, लालची स्त्रियाँ हैं, जादूगरनियाँ हैं, सुन्दर स्त्रियाँ हैं, ईर्ष्यालु एवं लड़ाकू स्त्रियाँ हैं और वेश्यायें भी हैं। अधिकांशतः यहाँ स्त्रियों का काम भोजन पकाना होता है। इनके अलावा जलकन्याएँ, परियाँ आदि का चित्रण भी यहाँ मिलता है। ये अधिकांशतः आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले चरित्रों को प्रस्तुत करती हैं।

भारतीय समाज में पतिव्रता स्त्रियों का बडा महत्व है। धर्मशास्त्रों ने इस महत्व का चित्रण अत्यन्त विस्तृत रूप में किया है। मनु ने यहाँ तक लिखा है कि *यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।* हमारे समाज में स्त्रियों को परिवार का आधार माना जाता है। कोंकणी कहावत इस प्रकार चलती है। *पतिव्रता बायल घराचो दीवो सी* (पतिव्रता स्त्री घर के दिए के समान है।) वह घर की स्वामिनी है। विना स्त्री के घर भूतों का डेरा रहता है - *बिन धरिनी घर भूत के डेरा।* तभी तो संस्कृत में एक कहावत चलती है - *गृहिणी गृहमुच्यते* । हिन्दी और कोंकणी समाजों में पतिव्रता का बड़ा आदर किया जाता है। *सतवन्ती सीता* नाम की लोककथा में पतिव्रता का यह रूप निखर आया है।[९१] बटेरनी-बटेर में भी पूर्ण रूप से पुरुष पर आश्रित स्त्री का ही चित्र खींचा गया है।[९२] इस कहानी में कहा गया है कि पतिव्रता स्त्रियाँ जहाँ रहती हैं वहाँ पर सारे बिगड़े काम सँवर जाते हैं। यहाँ पर

स्त्रियों को घर का ऐश्वर्य माना है।[९३] कोंकणी की कथा *नाल्लबंद आनी माणकावंत* में माणकवंत राजकुमार के वेश्या के कुचक्र में पड़कर पत्नी की उपेक्षा करने पर भी उसकी पतिव्रता पत्नी अपने भाग्य को ही कोसती है, पति को दोष नहीं देती।[९४] यही भारतीय नारी का सच्चा रूप है। इसीका चित्रण हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में हुआ है।

भारतीय समाज में स्त्री का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण रहता है। फिर भी जो अवज्ञा समाज के ज़रिए उसे मिलती है वह उसके अप्रधान व्यक्तित्व का ही परिचय देती है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य इसका सही अंकन सामाजिक परिवेश में यथार्थपूर्ण ढंग से करता है। यहाँ पर स्त्रियों का ही योगदान अधिक है। मूलतः यह साहित्य स्त्रियों से ही संबन्धित है। स्त्री इसका केन्द्र है और पूरा समाज उसीके चारों ओर चक्कर काटता रहता है। इस संदर्भ में नीचे दिया जानेवाला उद्धरण बहुत ही सार्थक कहा जा सकता है। वह इस प्रकार है - Folklore is mostly the music of bracelets and anklets, armlets, bangles and costumes of folk women.[९५] लेकिन यह मनोहर संगीत वे अपने जीवन में नहीं पातीं। इसका कारण हमारा सामाजिक विधान ही है। पुरुषप्रधान होने के कारण यहाँ पर पुरुष का ज़्यादा महत्व रहता है। यही महत्व उसके घरवाले और संबन्धियों का भी रहता है। फलस्वरूप ससुराल जाते ही नई बहू के साथ सास ननद के झगड़े शुरू होते हैं। असल में इसका कारण नई बहू का सौन्दर्य, उसके वस्त्र एवं आभूषण ही होते हैं। इस प्रकार विवाह के पश्चात् ससुराल जाने पर स्त्री की व्यथा की शुरूआत होती है।

नारी जीवन की व्यथा कथा

ससुराल जाते ही कोमलांगी वधू को घर का सारा कामकाज

करना पड़ता है। सास और ननद उससे जबरदस्ती ये काम करवाती हैं। जेठानी किसी भी हालत में उसका साथ नहीं देती। उसकी स्थिति यहाँ पर बड़ी ही दयनीय होती है। नई बहू के इस दुःख को लोकसाहित्यकार ने खूब चित्रित किया है। उदाहरण के लिए -

रखिया बहावन हम गयनि रे करैली, भैया बिरछ तर ठाढ़
सासू गोसाईं पैयाँ तोरी लागूँ, कहो सासू भैया भेंटन हम जाब
हम का जानी बौहरी हम का जानी पूछि लेब जिठनिया हँकारि
जेठानी गोसाईं पैंया तेरी लागौं कहहु दीदी भैया भेंटन हम जाब
हम का जानी बौहरि, हम का जानी,पूछि लेब ननदिया हँकारि[१६]

अपने भैया से एक बार भेंट करने के लिए भी बहू को सास की अनुमति लेनी पड़ती है। सास अनुमति नहीं देना चाहती और उसे टाल देती है। यही व्यवहार जेठानी और ननद से भी उसे मिलता है। परिवार में उसका कोई स्थान नहीं रहता और जीने की स्वतंत्रता भी नहीं। वह केवल काम करने का मशीन रह जाती है। कहीं वह घर का झाडू बन जाती है और कहीं घर की छलनी। पौ फटने से पूर्व उठना, चक्की पीसना, चर्खा चलाना, झाडू लगाना, खाना पकाना, न जाने कितने काम उस पर मढ़े जाते हैं। यही नहीं, दोपहर की धूप में खेत खलिहान तक जाकर पति के लिए उसीको खाना पहुँचाना होता है। तिस पर खेत की निराई, पशुओं को पानी देना, उन्हें चराना उसीका काम होता है। सारे काम करने पर भी घर में उसको कटुवचन ही सुनने को मिलते हैं। उसकी व्यथाकथा संक्षेप में लोकगीतों में इस प्रकार अंकित है-- *मैं तो माडी हो गई राम, धंधा करके इस घर का*।दिन भर परिश्रम एवं सेवा शुश्रूषा में बीत जाता है। तिस पर कठोर अनुशासन। पति से एकान्त में बात तक करने का अधिकार नहीं। फिर भी पनघट पर जब वह पानी भरने जाती है तो सास की निगरानी में

ही यह होता है। संयुक्त परिवार में उसकी अवस्था बन्दिनी की जैसी होती है। नई ब्याही हुई बहू का दु:ख अलंकारों के ज़रिये लोककवि इस प्रकार वर्णन करता है --

सासु तो बीरा चूल्हे की आग, ननद भादों की बिजली
सौरा तो बीरा काला सै नाग देवर साँप संपोलिया
राजा तो बीरा मेंहदी का पेड़ कदी रचै कदी ना रचै [१७]

कोंकणी में भी इस प्रकार ससुराल में नई वधू का दु:ख चित्रित मिलता है। कोंकणी लोकगीत *वोळारु* दहेज़ प्रथा की बुराइयों से लोगों को सजग करता है। यहाँ पर नायिका रुक्मिणी के ससुराल में दहेज़ के रूप में सब कुछ पहुँचाया गया। लेकिन मायकेवाले खैला देना भूल गए। इस बात को लेकर रुक्मिणी को जो दु:ख सहने पड़े उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है--

खोवल्या खातीरि जावो अणकिती	(खैलर खातीर दुराय भसुरिया
जावो अण्किती णणदो शब्दु दितीं	दुराय भसुरिया छेडइ ननदा
शेजार घरकड्च्यो बायलो व्हय व्हय म्हणतीं	देत रहीं पड़ोसिनें हँकारा)[१८]

बाँझ को नागिन भी डसती नहीं

नारी की यह व्यथा बाँझ होने पर कई गुना ब्रढ़ जाती है। माता बनना ही नारी का सबसे बड़ा भाग्य होता है। स्त्री के इस आग्रह का वर्णन लोकसाहित्य में अनेक जगहों पर हुआ है। असल में स्त्री की पूर्णता माँ बनने में है। बाँझ का दु:ख तो असह्य रहता है। बाँझ को नागिन भी डसती नहीं क्योंकि उसको भी बाँझ होने का डर रहता है। यहाँ पर लोकसाहित्यकार की कल्पना देखने येग्य है --

सासु मोरी कहलि बाँझिनिया, ननद व्रजवासिनि हो

नागिनि जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो
नागिनि हमका जो तुम डस लेतिउ बिपतिया से छूटित हो
जहवाँ से तुम आइउ लउटि तहाँ जावो, तुमहि नाही डसिवइ हो
बाँझिनि, तुम का जो हम डसि लेबइ, हमहूँ बाँझिनि होबइ हो [९९]
और भी ----सासु मारे हुदुका ए दीनानाथ, ननदिया पारे गारी
संगे लागल पुरुखवा ए दीनानाथ देले उदबास[१००]

कोंकणी लोककथाओं में भी इसी प्रकार का विश्वास देखा जा सकता है। *नाल्लबंद आनी माणकावंत* नाम की कोंकणी लोककथा में बाँझ रानी के हाथों का खाना कोई नहीं खाता। उसका दिया हुआ पानी कोई नहीं पीता। लोगों का विश्वास था कि बाँझ के हाथों का खाना नहीं खाना चाहिए और पानी नहीं पीना चाहिए।[१०१]

लोकसाहित्य में नारी की व्यथा कथा कई तरह से वर्णित की गई है। मैथिली कथा *कौआ हँकनी* में छोटी रानी और उसके बच्चों की दुरवस्था नारी के द्वारा समाज या परिवार में भोगे जानेवाले अत्याचारों का अन्दाज़ा देती है।[१०२]

विधवा

विधवा होना भारतीय नारी के लिए महान शाप माना जाता है। इसके मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारण होते हैं। पति के जीवित रहने पर वह जिन सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों को पहनती थी विधवा होते ही उन्हें त्याग देना पड़ता है। यहाँ तक कि उसके केश तक काटे जाते हैं जो उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते थे। यह बात हर हालत में विधवा की मानसिक अवस्था में असन्तुलन पैदा करती है। कोंकणी कहावतों में विधवा की इस अवस्था का यथार्थ चित्रण मिलता है। कहावत इस प्रकार है --

कानफूल बुगड़ी नातिल्ले रांडेक मंजेश्वर सष्टि कित्याक?[१०३] (जो कर्णफूल एवं नथ नहीं पहन सकती, उसे मंजेश्वर की षष्ठी से क्या लेना देना?) पति के मरते ही गाँव या पड़ोस की स्त्रियाँ विधवा के मांग का सिंदूर पानी से धो लेती हैं अथवा तेल लगाकर उसे मिटा देती हैं। उसके हाथ की चूड़ियाँ जो सौभाग्य के प्रतीक हैं, फोड़ देती हैं। उसकी कोमल कलाई सौभाग्य के चिह्न से सूनी हो जाती है। इतना ही नहीं, उसे अपनी रंगीन साड़ी त्याग कर सफेद लूगा पहनने के लिए बाध्य किया जाता है। माथे की लाल बिंदी, जो सौभाग्य का तिलक है मिटाकर नष्ट कर दिया जाता है। महावर को धोकर साफ किया जाता है। इस प्रकार उसकी कंचन काया ठूंठ के पेड़ के समान दिखाई पड़ने लगती है। उसका संसार सबसे दयनीय, दुःखी और अभिशप्त होता है। सुख से उसका कोई संबन्ध नहीं रहता। वह लावारिस पड़ी रहती है। उसको पूछनेवाला कोई नहीं रहता। और एक कहावत ह-- *घोवु मेल्याकय बोड तासिल्लें दुःख चड* [१०४] (पति की मृत्यु से भी बढ़कर सिर के मुंडन का दुःख है)। विधवा का विवाह नहीं के बराबर था। समाज के हाथों उसे बहुत सारे दुःख झेलने पड़ते थे। आजकल स्थिति बदल गई है। फिर भी नारी तो नारी ही है । उसको ये दुःख भोगने ही पड़ते हैं। पति के मरने के साथ साथ उसके जीवन की सारी आशाएँ और आकांक्षाएँ खतम हो जाती हैं। उसे मन मारकर जीना पड़ता है। लोकसाहित्य में इसका स्थान स्थान पर अंकन हुआ है। हिन्दी लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

ए बाबा, सिर मोर जरेला सेतुर बिनु ,
त नयना काजर बिनु हो
ए बाबा, गोद मोर जरेला बालक बिनु,

त सेजिया कन्हैया बिनु हो[१०५]

जीवन की दुर्वह स्थिति विधवा को कहीं की नहीं छोड़ती. गांव की स्त्रियाँ उसकी सहानुभूति में अश्रुपात करती हैं। उसके भाग्य पर तरस खाती हैं। लेकिन आत्मीय जनों की सान्त्वनाएँ यहाँ निष्फल हो जाती हैं । ऐसी ही एक विधवा का चित्र लोकगीतों में इस प्रकार मिलता है --

नींद पलक मोरी लागत नाहीं
जेहि दिन ते बिछुड़े रघुराई
सविया मँ बइठै ससुर समुझावैं
माँग का सेंदुरा दुलुम भा है --बउहा
मचिया मँ बइठै जेठ समुझावै
हाथे की चुड़िया दुलुम भई दुलुम भई छोटी
कमरा मँ बइठै देवर समुझावै
पाँय की बिछिया दुलुम भई-- दुलुम भई भउजी
जइसे जंगल में लकड़ी खुहति है
वइसे खुहत शरीर- शरीर मोरे भाई[१०६]
नइया होय सबै कोउ ख्यावै
यह विपत्ति मोरि को ख्यावै हो रघुवर[१०७]
दौलत होय सबै कोउ बाँटै
विपतिया कोऊ न बाँटै[१०८]

संस्कृतियों का संगम

भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक रही है। प्राचीन काल से आज तक इसमें आर्य और अनार्य संस्कृतियों का संगम हुआ है। लोकसाहित्य में भी इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं। गुणाढ्य का बृहत्कथा संग्रह इस प्रकार की

संस्कृतियों को लेकर चलता है। यहाँ पर मानवेतर प्राणियों के रूप में अप्सराओं, गन्धर्वों, यक्षों, किन्नरों, असुरों, दैत्यों, दानवों, वेतालों, विद्याधरों, राक्षसों, नागों और पिशाचों का संदर्भ देखा जा सकता है[१०९] इनमें नाग स्वतंत्र मानवेतर प्राणियों में गिना जाता है। राक्षस मनुष्यों के शत्रुओं के रूप में आते हैं। अप्सराएँ देवताओं की सेविकाओं के रूप में प्रकट होती हैं। लोकसाहित्य में विशेषकर लोककथाओं में इनका चित्रण बहुत मात्रा में हुआ है।

नागसंस्कृति

भारतीय संस्कृति से सर्प एवं सर्पपूजक नागजाति का संबन्ध अतिप्राचीन काल से मिलता है । मोहनजोदडो और हड़प्पा की खुदाई से मिली मिट्टी की नागमूर्ति एवं साँप को दूध पिलानेवाली मूर्ति में इसी के प्रमाण मिलते हैं। ताँबे की मुहर पर योगी एवं उसके सेवकों के साथ कुंडली मारकर बैठे हुए साँप भी दिखाए गए हैं।[११०] प्राचीन काल से ही शिव जनजातियों के देवता रहे हैं और उनका नागों से संबन्ध भी दिखाया गया है। महाभारत में खांडववन नागों का वासस्थान बताया गया है। नागराज वासुकी की कन्या उलूपी के साथ अर्जुन के संबन्ध के बारे में यहाँ पर चित्रित है। लोकसाहित्य में इसके कई संदर्भ मिलते हैं। एक लोकगीत इस प्रकार चलता है -

द्रोपदी अर्जुन सेयां छया
एतुडी होये थोड़ा खीण ऐन भौत
सुपिना मां देख अर्जुन
बाली वासुदत्ता नागू की धियाण
मन ह्वै गे मोहित चित्त ह्वै गे चंचल

वीं की जवानी मां कनु उलार छौ[111]

हमारी संस्कृति में शेषनाग का विशेष स्थान है। विष्णु और लक्ष्मी की शय्या शेषनाग ही है। इसी शेषनाग को पृथ्वी का आधार माना गया है। लक्ष्मण के रूप में शेषनाग का प्रकट होना रामायण में वर्णित है। इसी नाग परंपरा को लोकमानस ने कायम रखा और आज भी अपने इस सांस्कृतिक आधार की वह आराधना करता रहा है। नागपंचमी का त्योहार इसी बात की ओर संकेत करता है।

प्राचीन काल में और आज भी बिहार में *नट* नाम की एक जाति है जिसका मुख्य पेशा सर्पों को पकड़ना और लोगों को तमाशा दिखलाना रहा है। इसका संबन्ध नृत्यविद्या से माना जा सकता है। मंत्र तंत्र और अभिचार की इनमें प्रमुखता रहती है।[112] शिव से संबन्धित सर्प, नाच, मंत्र एवं योग आदि तत्वों का चित्रण लोककथाओं में खूब मिलता है। इनमें प्राचीन जनजातियों के अवशेष ही देखे जाते हैं। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य पर इसका भी प्रभाव होने की संभावना है। क्योंकि बिहार दोनों समाजों का मूल केन्द्र रहा है। यही नहीं अहीर जाति जिसे आभीर भी कहा जाता है हिन्दी तथा कोंकणी समाज के लिए परिचित ही रहे हैं।[113] पाचीन काल में भोगपुरी (भोजपुर) का अधिपति वासुकी नाग था। यह आर्यजाति की ही शाखा थी जो आर्यों के साथ सप्तसिन्धु में भी बसती थी।[114] अनेक मैथिली लोककथाएँ और कोंकणी लोककथाएँ जिनमें नागसंबन्धी कथाएँ भी हैं, समानता दिखाती हैं।

नाग शब्द

नाग शब्द की व्युत्पत्ति *नगे पर्वते भवः अण्* के रूप में दी जा सकती है।[115] इससे व्यक्त होता है कि ये पर्वत के वनों में रहते थे। सह्याद्रि

शब्द (स + अहि + अद्रि) नागकुल की सघनता को ही दिखाता है। प्राचीन काल से ही इनकी आराधना करने की रीति दिखाई देती है। उनके महत्व को चित्रित करनेवाला श्लोक इस प्रकार है।

नागस्तु नागशततुल्य बलं ददाति
व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति
मृत्युञ्च विनाशयति सन्ततसेवित:[११६]

इनका मिथकीय रूप प्रसिद्ध है जिसके बारे में कहा गया है ---A mythical semidivine being having a human face with the tale of a serpent and the expounded neck of the cobra.[११७] प्राचीन भारत में जनजातियों द्वारा इनकी पूजा आराधना होती थी और इसी कारण नाग नाम की एक जाति का भी वर्णन प्राचीन भारतीय इतिहास में मिलता है। यह सरस्वती नदी के तट पर नागधन्वा तीर्थ में रहती थी।[११८] यह सर्प न होकर सर्पजाति से संबद्ध थी जो अपने को सूर्य का सन्तान मानती थी। इनका चिह्न साँप एवं साँप का फण था और इनके प्रधान तक्षक थे। पारंपरिक कथाख्यानों और लोकविश्वासों में नाग जाति का वर्णन मिलता है। ये लोग नाग को अपना चिह्न मानते हैं। जातक कथाओं, सोमदेव के कथासरित्सागर एवं गुणाढ्य की बृहत्कथा में इनका जिक्र मिलता है। स्वयं गुणाढ्य ही नागवंश के माने जाते हैं।[११९] मनुष्य के साथ इनका रागात्मक संबन्ध रहा है जिसका वर्णन लोककथाओं में कई स्थानों पर चित्रित है। लोकसाहित्य में कई जगहों पर इनके संपन्न राजमहलों का चित्रण हुआ है। ये महल जल के अन्दर पाताल में रहते हैं। नागों को उर्वरता का प्रतीक माना जाता है। ये अमरत्व, मोक्ष, दीर्घ जीवन, सन्तान प्राप्ति तथा सौभाग्य के भी प्रतीक माने जाते हैं। इनको परकाया प्रवेश और पुनर्जन्म से जुडा माना जाता है। भारत के

अनेक प्रदेशों में निस्सन्तान स्त्रियाँ सन्तानोत्पत्ति के लिए पत्थर की सर्पमूर्तियों की पूजा करती हैं। इन्हें पेड़ों के नीचे स्थापित कर फूल, चन्दन, धूप, दीप आदि पूजन सामग्री के साथ पूजा करती हैं।[१२०] नाग को विष्णु का अवतार माना जाता है और ऐसा विश्वास है कि ये जगत् को प्रकाशमय बनाते हैं। लोकसाहित्य में नाग का बडा प्रभावकारी रूप देखने को मिलता है। हिन्दी एवं कोंकणी लोककथाओं में नाग से संबन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं जिनमें मनुष्य एवं नाग के संबन्ध, नाग की अतिमानवीय शक्ति, नागों का आवास आदि के संबन्ध में विस्तार से वर्णन है।

नागों से मनुष्य के संबन्ध

लोककथाओं में अक्सर मनुष्य एवं नागों के बीच प्रेम संबन्धों का चित्रण रहता है। नागकन्या से विवाह करने के लिए कहीं कहीं नायक पाताल तक चला जाता है। मानवों का उपकार करनेवाले नाग उन्हें मणि प्रदान करते हैं और नागकन्या से उनका विवाह कराते हैं। नागकन्यायें सौन्दर्य एवं संगीतविद्या में पारंगत हैं। लोककथाओं के अनुसार नागकन्या को पत्नी के रूप में पाना काम्य माना जाता है। नागों के पास कुछ अमूल्य दिव्य पदार्थ भी हैं जिनकी मदद से इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो सकती है। हिन्दी की कहानी *विचित्र अंगूठी*[१२१] और कोंकणी की *अमृतमुदी*[१२२] में इसका खूब वर्णन हुआ है। *सर्पमणि की अंगूठी* नाम की कथा में बुढिया का लड़का साँप से सर्पमणि की अंगूठी माँगता है। वह उसे मिल जाती है और उसकी सहायता से वह धनी बन जाता है।[१२३] *नाग से कागा भयो*[१२४] नाम की कथा में भी साँप की मित्रता का बखान है। लोगों का विश्वास है कि सर्प किसी के सिर पर छत्र बनकर रक्षा करे तो वह धनवान बनता है।[१२५] *शेषनाग की मणिया* नाम की लोककथा में पाताल के राजा शेषनाग जिसके फणों पर पृथ्वी ठहरी हुई है, के महल का वर्णन इस प्रकार मिलता है -

पाताल लोक में शेषनाग की राजधानी। राजधानी में शेषनाग का सोने का महल। महल में जगह जगह पर मणियाँ जड़ी हुई थीं। ऐसा लग रहा था मानो हज़ारों सूर्य एक साथ चमक रहे हों। महल के दरवाज़े पर कमल की बनी हुई वन्दनवारें झूल रही थीं। कमलों से निकल निकल कर सुगंध उड़ रही थी। चारों ओर से नाच गाने की मधुर मधुर ध्वनि आ रही थी।[१२६] इसी कथा में शेषनाग को विक्रमादित्य को चार मणियाँ देते हुए चित्रित किया गया है जो इस प्रकार है --

लाल मणि	-- सोने के गहने देनेवाली
पीली मणि	-- सवारी की सुविधा देनेवाली
नारंगी मणि	-- धन देनेवाली
श्याम मणि	-- भजन प्रार्थना में लगानेवाली[१२७]

कोंकणी की लोककथा *अमृतमुदी* में भी शेषनाग के महल का, करीब इससे मिलता जुलता वर्णन दिया गया है।[१२८]

लोकसाहित्य प्रकृति का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। नाग प्रकृति के आश्चर्यपूर्ण जीव हैं। आश्चर्यकारक घटनाओं को आराधना की दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति सामान्य लोक में दिखाई पड़ती है। इसका प्रतिफलन लोकसाहित्य में भी हुआ है। यही नहीं नागों को पितरों का मूर्त रूप माना जाता है।[१२९] कुणबी लोगों में यह विश्वास इतना दृढ है कि वे अपने संरक्षक नाग की पूजा करते हैं। उनकी स्त्रियाँ वल्मीक की ओर जाती हैं और पुरोहित के कथनानुसार हाथ जोड़कर साँप के चारों ओर गाती और नाचती रहती हैं।[१३०] नाग जाति के लोग मानव स्त्रियों के साथ रहस्यमय ढंग से अपना संबन्ध रखते हैं। ऐसी भी कथाएँ लोकसाहित्य में मिलती हैं। हिन्दी की *भाट-भाटिन* कथा इसका जीता जागता उदाहरण है। यहाँ पर भाटिन

मणिधर साँप के प्रेम में फँसी हुई अपने भाट को साँप से डँसवाना चाहती है। साँप की जब मौत हो जाती है तो वह मन मारकर रह जाती है।[१३१] अवध का बैसवाडा क्षेत्र नागवंशी राजा शालीवाहन के कारण प्रसिद्ध रहा है। उन्हीं को बैसों का आदिपुरुष माना गया है। उनको लेकर यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि शेषनाग के वरदान से दक्षिण की अविवाहिता वैश्य कन्या से शालीवाहन का जन्म हुआ था। शेषनाग की आकृति आज भी बैस वर्ग के लिए श्रद्धा की वस्तु है।[१३२] कोंकणी कथा *नागघोव* में अपनी पत्नी की दोहदपूर्ति के लिए पति तालाब के तट से कुकुरमुत्ता निकाल लेता है तो उसी क्षण नागराज प्रकट होते हैं ओर शर्त लगाते हैं। शर्त के अनुसार उसे अपनी बेटी को नागराज को देना पड़ता है।[१३३]

लोकसाहित्य में नागों को मानव की सहायता करते हुए चित्रित किया गया है। बिहारी कथा *दयालु सर्प* इसका अच्छा उदाहरण है।[१३४] मैथिली कथा *सोनचिरई* में भाभियों की क्रूरता से दु:खी सोन चिरई को नाग आश्वासन देता है। स्वयं रस्सी बनकर उसकी गट्ठर बाँध देता है।[१३५] कोंकणी कथाओं में भी साँप आदमी की सहायता करने के लिए रस्सी का काम करता है।[१३६] कोंकणी के *मिर्‍याकोणाली काणी* नाम की कथा में बांझ ब्राह्मणी जब दु:ख में पडती है तो काली मिर्च उसकी सहायता के लिए आती है। जब सेठ मुद्राएँ देने से इनकार करता है तब काली मिर्च, साँप, रस्सी और लाठी मिलकर ब्राह्मण की सहायता करते हैं और ब्राह्मण को सेठ से स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त होती हैं।[१३७] *सूरजमुखी* में सौतेली माँ के द्वारा सताई गई सुखिया की रक्षा के लिए नाग आ जाता है और सुखिया उसे दूध पिलाती है। नाग युवक का रूप लेता है और उसके साथ शादी का प्रस्ताव रखता है। वह सुखिया को ढेर सारी अशर्फियाँ देता है और पुन: आने का वादा करके चला जाता है।[१३८] *भुजिंगबाळ* नाम की कोंकणी कथा

में संतानहीन राजा-रानी के लिए हार रूपी साँप बालक बन जाता है।[१३९] इस कथा में नाग को ले जानेवाले लकड़हारे के घर में साँप मणि का रूप ले लेता है और पूरे घर में प्रकाश फैलाता है।[१४०] नाग जाति की कृतज्ञता, शालीनता एवं संपन्नता का परिचय इन लोककथाओं में मिलता है। इन लोककथाओं में नागसंस्कृति मूर्तिमान हुई है। कहीं कहीं नागों का हिंस्र रूप भी इन कथाओं में मिलता है। *एक था नाग* कथा में वृक्ष के कोटर में रहनेवाला साँप रास्ते से जानेवाले सब को काटता रहता है।[१४१] ऐसे संदर्भों में साँप की प्रकृति बड़ी खतरनाक मानी जाती है जिससे बचना मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक रह जाता है। इसका एक ही उपाय है। साँप को सन्तुष्ट करना। साँप को संतुष्ट करने के लिए लोगों ने तरह तरह के विधि विधान बनाये हैं। नागपूजा, नागपंचमी त्योहार, मामा कहकर साँप का आदर आदि इनमें प्रमुख हैं। नागपूजा पवित्रता के साथ नहा धोकर बड़ी श्रद्धा के साथ की जाती है। कोंकणी भाषा एवं समाज पर नागभाषा एवं नागसंस्कृति का प्रभाव इसी को दिखाता है। अपने अहाते में ही सर्पों की स्थापना करके ये लोग पूजा करते आए हैं। नागपंचमी के दिन विशेष पूजा के समय सर्पों को दूध पिलाया जाता है और नैवेद्य भी किया जाता है। मध्य प्रांत में कुणबी लोग साँप के काटने पर चाँदी का साँप बनवाकर एक जीवित साँप को मार डालते हैं। गाँव के बाहर एक मंच तैयार करके चाँदी के साँप की वहाँ प्रतिष्ठा करते हैं और नागोबा देव कहकर उसकी पूजा करते हैं।[१४२] इस प्रकार हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में नागसंस्कृति से संबन्धित अनेक संदर्भ देखे जा सकते हैं।

राक्षस संस्कृति

राक्षसों का प्राचीन साहित्य में बार बार चित्रण मिलता है। लोकसाहित्य में भी इसका अनुवर्तन देखा जा सकता है। राक्षसों का रंगरूप, उनकी

प्रवृत्तियाँ आदि अक्सर आश्चर्य एवं भय उत्पन्न करनेवाले हैं और कथा सुननेवालों में एक प्रकार का तनाव उत्पन्न करनेवाले हैं। इसलिए लोककथाओं में इन्हें विशेष स्थान मिल गया है। प्राचीन चरित्रकोश के अनुसार उत्तरी बलूचिस्तान के चगाई प्रदेश में रहनेवाले आधुनिक रक्षानी लोग संभवतः इन्हीं के वंशज रहे हैं।[१४३]

अथर्ववेद में राक्षसों का विस्तृत रूपवर्णन प्राप्त है। उनके तीन सिर, दो मुख, रीछों जैसी ग्रीवा, चार नेत्र, पाँच पैर, रहते थे। वर्ण नीला, पीला या हरा रहता था। वे परिवार के साथ जीवन बिताते थे। वे भाई, पति, अथवा प्रेमी का रूप लेकर स्त्रियों को बहकाते थे और उनकी सन्तानों को नष्ट करते थे। *सात सितारे* नाम की लोककथा में राक्षस को राजकुमारी को ले जाते हुए चित्रित किया गया है। ये राक्षस मनुष्य और अश्वों का मांस खाते थे। गायों का दूध पीते थे। मांस एवं रक्त की क्षुधा तृप्त करने के लिए मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उन पर आक्रमण करते थे। राक्षसों की इस क्षुधा का चित्रण कहावतों में भली भाँति चित्रित है। जैसे *एक तो राकस दोसरे नेवता*।[१४४] राक्षस बुराइयों की खान है। *काल्ह कुँवर आज राकस भइल* वाली कहावत राक्षसों की इस बुराई की ओर संकेत करती है। राक्षस हमेशा रात को विचरण करता रहता है। अपनी इच्छा के अनुसार कई रूप ले लेता है। लोककथाओं में अक्सर इसका वर्णन होता है। उनका रूप भयंकर एवं डरानेवाला होता है। उनका श्वास सिंहगर्जन के समान होता है जिससे वह मनुष्यों को डराता रहता है। मनुष्य की गंध वह आसानी से पकड़ लेता है। कोंकणी लोककथा *आटवो आनी टिटवो* राक्षस की इस प्रवृत्ति का खूब वर्णन करती है।[१४५] इसी प्रकार कोंकणी कथा *पिसो* म राक्षस के शरीर के विभिन्न अंगों का वर्णन मिलता है। राक्षस का एक दांत कितना बड़ा होता है, उसका कान सूप जैसा होता है, उसके पैर और बाहू

कितने लंबे होते हैं इसके संकेत यहाँ पर मिलते हैं।[१४६] यह राक्षस बीच बी में आवश्यकता के अनुसार अपना रूप बदलता रहता है। कभी वह कुत्त बनता है तो कभी उल्लू का रूप ले लेता है। बंदर, गिद्ध और दूसरे रू भी ग्रहण करता है। वह मनुष्य का शत्रु है।[१४७] मनुष्य को मारकर उसक मांस खाता है। उनके घरों में डकैती डालता रहता है। लोगों को बहका कर उनका धन, पैसे सब ले जाता है। कोंकणी की *मंकडा पील आनी राकेस* नामक कथा में इसका खूब वर्णन मिलता है और राक्षसों को नष्ट करने के उपाय भी बताये हैं।[१४८] हिन्दी की *जादूगरनी बुढ़िया* में[१४९] और कोंकणी की *पातळ्यो आनी पोर* कथा में राक्षसी जादूगरनी बुढ़िया का रूप लेकर नरमांस खाने की इच्छा से बच्चों को पकड कर ले जाती है। उसके लिए लिट्टी (कोंकणी में पातळी) खाने के साथ साथ लिट्टियाँ देनेवाले लड़के का मांस भी स्वादिष्ट लगता है। वह मौसी कहकर बच्चों के पास आती है और उन्हें बहका कर ले जाती है।[१५०] *दादलो बेइमान की बायलो बेइमान* नाम की कोंकणी कथा में राक्षसियों के शरीर का वर्णन मिलता है। उनका हर एक पाँव बाँस जैसा होता है वे विशेष रूप से कदम रखती हैं। उनका सर तृणों के पर्वत जैसा है। एक एक दाँत हाथ जैसा विस्तृत है। एक एक कान सूप के समान है। एक एक आँख वृत्ताकार पतीले जैसी बड़ी है। वे दूर दूर कदम रखकर चलती हैं।[१५१]

आटवो आनी टिटवो नाम की कोंकणी कथा में राक्षस जोर जोर से शब्द करता हुआ आता है और लोगों को डराता है। उसका शब्द सुनते ही लोग छतों पर जाकर छिप जाते हैं मनुष्य की गंध पकड़कर हा हा करता हुआ वह इधर उधर टहलता है। लेकिन जब मनुष्य धैर्य संभाल कर राक्षस को डराने लगता है तो वह प्राणों को भी लेकर भागने लगता है।[१५२] इस

कथा में राक्षस के घर का शानदार चित्र प्रस्तुत किया गया है। यहाँ राक्षस के घर के सात कमरे बताये गये हैं। सातों कमरों में सामान भरा हुआ है। एक में चावल, दूसरे में गेहूँ, तीसरे में मूँग, चौथे में चना, पाँचवें में शक्कर, छठे में सोना और सातवें में पैसे । कितनी सुन्दर कल्पना है ! इसके साथ साथ राक्षसों के भयानक काम की ओर संकेत करनेवाला चित्र भी यहाँ प्राप्त होता है। मनुष्यों एवं जानवरों को खाकर हड्डियाँ एवं कपाल राक्षस के घर के एक कमरे में ढेर किए गए हैं। घर में प्रवेश करते ही इसकी बदबू आती रहती है[१५३]

राक्षस प्रायः बुद्धिहीन होते हैं। इसका प्रमाण कोंकणी कथा *आटवो आनी टिटवो, पिसो, मंकडा पील आनी राकेस* में मिलता है।[१५४] राक्षस मनुष्य स्त्रियों को खूब पसन्द करता है। वह उनसे शादी करता है और सुख से रहना चाहता है। लकड़ी की स्त्री बनाकर उसके सामने रखी जाती है तो भी वह उससे शादी करता है, उसके लिए खाना पकाता है, पकाया हुआ खाना उसके सामने रखता है।[१५५]

दादलो बेइमान की बायल बेइमान नाम की कोंकणी कथा में राक्षसियों का वर्णन दिया गया है जिनका मुख्य काम अपने पंजे में आनेवाले पुरुषों की बीस दिन तक सेवा करना और बाद में उन्हें खा जाना होता है। ये राक्षसियाँ सुन्दर स्त्रियों का रूप लेकर पुरुषों को बहकाती हैं। असल में ये राक्षसियाँ होती हैं। सामान्य राक्षसियाँ नहीं, महाराक्षसियाँ, बकराक्षसियाँ जिनके घर का एक कमरा मनुष्य की हड्डियों और कपालों से भरा रहता है।[१५६] यह दृश्य बहुत डरावना लगता है। इस प्रकार लोककथाओं में राक्षसों का भयावना रूप सब कहीं चित्रित है। हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी कथाएँ इनका वर्णन ज्यादा करती हैं।

ईसाई संस्कृति

लोकमानस अपने समय की संस्कृति का दर्पण होता है। परंपरा और सामयिकता का संकर इसमें रहता है। इस संकर के अन्तर्गत कोंकणी समाज में हिन्दू ईसाई संस्कृति का समन्वय बड़ा ही मनोरम रहा है। इसके कारण कोंकणी लोकसाहित्य में प्रतिफलित संस्कृति बड़ी ही विशेषता लिए हुए है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के इस प्रसंग में अनेक समानताओं के बीच कोंकणी समाज का यह रूप बिलकुल भिन्नता लिए हुए है। यही नहीं, इस संस्कृति का अध्ययन समन्वय की दृष्टि से बड़ा ही रोचक रहा है। पुर्तगाली लोग जब गोवा पहुँचे तो उन्होंने राजकीय शासन के साथ साथ मिशनरी कार्य भी शुरू किया और कोंकणी समाज में तब तक प्रचलित संस्कृति में अपनी संस्कृति को जोड़कर कमाल ही कर दिया। सामान्य जनता को आकृष्ट करने के लिए उन्होंने पुराण शैली में बाइबिल की कथा *क्रिस्तपुराण* के रूप में तैयार की। फादर थॉमस स्टीफन्स के द्वारा तैयार किया हुआ क्रिस्तपुराण इस समन्वयात्मक संस्कृति के मार्ग पर पहला कदम रहा।

ई. १५१० में गोवा में पुर्तगाली सत्ता कायम हुई। तब से लेकर आज तक उनकी संस्कृति का निरन्तर प्रभाव कोंकणी समाज पर रहा है। दोनों समाजों में एक ही तरह के लोकगीत और नृत्य प्रचलित मिलते हैं। पुर्तगालियों के धर्मपरिवर्तन के बावजूद ईसाई लोग अपनी पुरानी हिन्दू संस्कृति में अटल रहे हैं। *मांडो* एवं *ओवी* कोंकणी लोकगीतों के ऐसे दो प्रकार हैं जो समान रूप से दोनों समाजों में प्रचलित हैं। संस्कृतीकरण और संकर का सबसे बड़ा उदाहरण *मांडा* नृत्यपरंपरा का है। रीति रिवाज़ भी दोनों समाजों में समान रूप से प्रचलित हैं। केवल नाम का अन्तर रहा है। विवाह में हिन्दुओं की तेल लगाने की जो प्रक्रिया है उसका नाम बदल कर

तेल का *रोस* कर दिया गया है। हिन्दुओं की *ओवी* यहाँ *येर्स* बन गई है। केवल नाम बदल गया, भाव पुराने ही रहे। और भी, गोवा के ईसाई समाज में विवाहगीत के रंगों में चूडियों का महत्व है। भारतीय विवाह में जिस प्रकार माँ की आराधना एवं सुहाग का चूडा होता है वैसे ही ईसाई समाज में भी दुलहन चूडा पहनती है और माता मरियम तथा ईसामसीह से आशीर्वाद माँगती है।[१५७] यहाँ समन्वय का मंगलमय रूप उभर कर आया है। इस प्रकार विवाहगीतों में हिन्दू और ईसाई समाज का सांस्कृतिक संगम खूब पाया जाता है जो अपने में एक अलग ही ढंग का रहा है। इसके अतिरिक्त *जागर, धालो, शिग्मो, कार्नवाल, मूसलनृत्य, रणमाले, गौळण काला, धनगर नृत्य, तोण्या मेळ, गोफ, घोडे मोडणी, वीरभद्र आदि के साथ साथ सांगोड या सांगड, संज्यांव या सांज्यंव* भी मिलते हैं। पुर्तगालियों के द्वारा तैयार किए गए *क्रिस्तुपुराण* में एक तरफ से *ओम नमो* चलता है तो दूसरी तरफ से *क्रिस्तुदास* भी जुड़ जाता है।[१५८] यहाँ पर पुराण की धारणाओं को ईसाई कथा में ढाला गया। यों तो गोवा को Rome of the East[१५९] कहा जाता है। इस नाम में भी सांस्कृतिक समन्वय का समावेश देखा जा सकता है। *मांडो* का पहनावा मलेशियन माना जाता है। गिरजा घरों में गीत गाते समय इतालवी संगीत को ही आधार बनाया जाता है। *मांडो* में *मांड* (लोकमंच) की पूजा होती है। यह भारतीय विधान पर चलता है। लेकिन नृत्य एवं गीतविधान में पश्चिम का प्रभाव देखा जा सकता है। विवाह के समय ईसाई समाज में मांडो गाए जाते थे जिसकी ताल पर नृत्य भी होता था। इन रचनाओं में कोंकणी शब्दों के साथ पुर्तगाली शब्द भी पाये जाते हैं। जिन वाद्यों का प्रयोग यहाँ होता था उनमें पाश्चात्य वाद्य यन्त्रों के साथ साथ कोंकणी *घुमट* का भी प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार मांडो में पूर्व और पश्चिम संस्कृतियों का संगम देखा जा सकता है। यह कोंकणी

लोककला का ही रूप माना जा सकता है। लोकमानस के लिए कभी संस्कृतियों की भिन्नता स्वीकार्य नहीं है। जहाँ जो मिला उसका अपनी संस्कृति में समावेश कर दिया।

देखणी लोकनृत्य का इतिहास भी ईसाई संस्कृति और हिन्दू संस्कृति का मेल दिखाता है । यहाँ पाश्चात्य संगीत के ताल पर भारतीय पद्धति का नृत्य होता है।[१६०] *देखणी* शब्द का अर्थ है *सुन्दर दिखनेवाली।* देवदासियों के नृत्य से ही देखणी का जन्म माना जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि भारतीय पद्धति में पाश्चात्य संगीत को मिलाकर पुर्तगालियों को संतुष्ट करने के लिए यह नृत्य किया जाता था। हिन्दू , ईसाई दोनों समाज की स्त्रियाँ यह नृत्य करती हैं। नौ गज की साड़ी पहनकर बालों का जूडा बनाकर जूड़े में फूल लगाकर पारंपरिक गहनों के साथ वह नृत्य करती है। नाक में नथ और पैरों में पाजेब होती हैं। इसमें गितार एवं वायलीन का प्रयोग भी होता है। एक प्रसिद्ध कोंकणी लोकगीत इस प्रकार है -

हांव सायबा पलतडी वयता	(मैं उस पार जाती हूँ
दामुल्या लग्नाक वेतां	दामू की शादी में भाग लेने
म्हाका सायबा वाट दाखय	मुझे रास्ता बता दो
म्हाका सायबा वाट कोलोना	मुझे रास्ता मालूम नहीं है
हें म्हज्या नांकातुली नोथ	ये मेरे नाक का नथ
घे गा सायबा	ले ले
हें म्हज्या पायांतलीं पांयजणां	ये मेरे पैरों के पाजेब
घे गा सायबा[१६१]	ले ले)

भारतीय एवं पुर्तगाली संस्कृति के समन्वय का और एक उदाहरण है कोंकणी का *मूसल नृत्य*। इसमें चन्द्रपुर गाँव के इतिहास के सूत्र पाये जाते हैं। ईसाई लोगों के इस नृत्य की यही विशेषता है कि इसका आधार हिन्दू

पुराण हैं। ये लोग पुरानी जातिप्रथा को भी मानते हैं। इसी प्रकार *सांगोड* या *सांगड* नावों की जोड़ी को सूचित करता है। प्राचीन काल में और आज भी नावों की जोडी पर सेतु बनाकर उसमें भगवान की मूर्ति को बिठाकर उत्सव की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। गोवा में पुर्तगालियों ने इसे अपना लिया और अठारहवीं सदी में सांगोड की शुरूआत की। आज भी कांदोलिम के ओडॉ गाँव में जून के महीने में संत पीटर की याद में *सांगोड* मनाया जाता है।[१६२] बाँस के सहारे यहाँ गिरजा घर का आकार बनाया जाता है, उसे कपड़ों से सजाकर उस पर फूलों का सिंगार किया जाता है। गीत भी गाये जाते हैं। *सांज्यांव* ज्युवांव संत की याद में जुलाई के महीने में मनाया जानेवाला त्योहार है। इसमें वाद्य एवं गीतों की प्रमुखता रहती है। *पातोळ्यो* (पके हुए कटहल से बनाया हुआ मधुर एवं स्वादिष्ट पकवान) इस त्योहार की विशेषता है। *सांज्यांव* में भारतीय परंपरा मिश्रित है। दिवाली का नरकासुर और आषाढ़ महीने का *चिखल कालो* (पौराणिक लोकनाट्य) *सांज्यांव* में स्फूर्ति डालता है। पीढ़ियों से चलती आई लोकमन की चाल एवं रीति-रिवाज़ *सांज्यांव* के ज़रिए सामने आता है ।[१६३] इस त्योहार में सास अपने नये जमाई को घर बुलाकर उसका मान सम्मान करती है । इनके अतिरिक्त छोटे मोटे कई त्योहार कोंकणी ईसाइयों के बीच मनाए जाते हैं जो सांस्कृतिक समन्वय को दिखाते हैं।

लोकसमाज की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी लोकतात्विकता। यहाँ पर समान गुणधर्मी एवं अन्य गुणधर्मी पात्रों का समन्वय मिलता है। जड़ चेतन में कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता। पक्षिमृगादियों की बातों को मनुष्य समझता है और मनुष्य की बातों को वे भी। यह समाज आज के जैसा सीमित नहीं है यह जड़ से चेतन, गुण से अवगुण, सत् से असत् तक फैला रहता है। इसमें अनजान बातों की समझ एवं भविष्य की तैयारी

के लिए निश्चित सूचनाएँ मिल जाती हैं। परंपरागत भावना इस साहित्य से होकर और एक बार सजग हो जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमश; दरिद्रता, वीरता, कंजूसी एवं सेवाभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस लोकसमाज में भाई बहन का प्यार निश्चल, माता-पुत्र का प्यार निस्पृह, देवर भाभी या ननद भौजाई का प्यार कभी हास परिहासपूर्ण और कभी लड़ाई झगड़े से युक्त रहता है। भातृप्रेम भरत और लक्ष्मण के जैसे कर्तव्यनिरत रहता है। इस प्रकार हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में चित्रित समाज दरिद्रता में भी संपन्नता को दिखाता है। प्रेम ही इसका लक्ष्य रहता है। इसमें थाली जैसी भी हो वह सोने की होती है, चौकी चन्दन की, ऊँची अटारी, बैठने के लिए मचिया, रेशम की डोरी, सात भाइयों की एक बहिन, सास बहू और ननद भौजाई के बीच का कटु होता हुआ भी सहज प्यार, भाई- बहन का प्यार, पुत्र की वरीयता के साथ साथ पुत्री के प्रति अगाध स्नेह, सब कुछ अपने अपने स्थान पर मौजूद हैं। हिन्दी तथा कोंकणी दोनों समाजों का चित्र कई समानताओं के साथ लोकसाहित्य में मिलता है। सामाजिक जीवन की मनोरम झाँकी यहाँ पर मिलती है। पारिवारिक जीवन में एक ओर पिता का अनुशासनपूर्ण वात्सल्य मिलता है तो दूसरी ओर माँ का ममता भरा प्यार। दाम्पत्य प्रेम के सुखमय और दुःखमय पक्षों का चित्रण भी इस समाज की विशेषता है। बेटी की विदा, देवरानी जेठानी की ईर्ष्या, बाँझ की कुंठा, वियोगिनी का विरह, विधवा का शोक आदि अगणित प्रतिकूल संवेदनों को भी इस साहित्य में वाणी मिली है। आज जब कि आर्थिक बेबसी या पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण समाज नाश के कगार पर खड़ा है, ऐसे समय में लोकसाहित्य में चित्रित संयुक्त परिवार एवं उसमें जीवन के मूल्यों का स्थापन समाज में नई चेतना को जगा सकता है। यहाँ पर हिन्दी कोंकणी का भेद नहीं मिलता। प्राचीन

विश्वास, आस्थाएँ, मान्यताएँ एवं रूढ़ियाँ हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य के ज़रिए फिर से सजग हो रही हैं।

संदर्भ

१. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ.२८

२. निरुक्त-यास्क, १/८

३. Socio-Cultural Background of the Gowda Saraswath Brahman Community as Reflected in the Konkani Proverbs - Dr. L. Suneetha Bai, p.१५

४. लूर - लोरी विशेषांक, २००४, पृ. २९

५. लोककथा कोश- भाग - १ - संगीता, पृ.१८

६. कोंकणी म्हणयां सोरु - केरल कोंकणी अकादमी, पृ. १३८, १३७

७. कोंकणी म्हणयां सोरु - केरल कोंकणी अकादमी, पृ. ४२

८. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-२, सावित्री देवी वर्मा, पृ. २५

९. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ११७

१०. Goa through the mists of History-Luis de Assis Correia, p.१४

११. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७०.

१२. इन्द्रप्रस्थभारती, लोकसंस्कृति विशेषांक, १९९८. पृ. ७२

१३. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ८

१४. लूर - लोरी विशेषांक, २००४, पृ. ३४

१५. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ.१९

१६. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ.४६

१७. लोकगीतों में समाज- डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ३०

१८. लोकगीतों में समाज- पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ.२९

१९. कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश-डॉ. एल सुनीता बाय. पृ. ११५

२०. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ.६९

२१. हिमाचल की लोककथाएँ - संतोष शैलजा, पृ. २०

२२. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ.५७
२३. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन- डॉ. छोटेलाल बहरदार, पृ. ४०
२४. गाँवरान - जयंती नायक, पृ.३
२५. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-१, सावित्री देवी वर्मा, पृ. १५
२६. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ.८०
२७. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ.५६
२८. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ.७६
२९. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ.५२
३०. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. ५१, ५२
३१. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ.२९
३२. लूर - लोरी विशेषांक, २००४, पृ. ३४
३३. Women in Indian Folklore - Sankarsen Gupta, p. ८०
३४. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् - नारायण राम आचार्य , ९० / १
३५. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन- डॉ. छोटेलाल बहरदार, पृ. ८०
३६. Sociocultural Background of the Gowda Saraswat Brahmin Community as Reflected in the Konkani Proverbs -Dr. L. Suneetha Bai, p. १९
३७. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन- डॉ. छोटेलाल बहरदार, पृ. ८१
३८. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ. २२
३९. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ. ३८
४०. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१-डॉ. सुरेश गौतम, पृ.२७७
४१. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - कालिदास, ४ / ५
४२. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ४९
४३. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १३७
४४. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन- डॉ. छोटेलाल बहरदार, पृ. ८३

४५. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ. ४२
४६. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ.१०२
४७. भारतीय लोकगीत - सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. १२२
४८. भारतीय लोकगीत - सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ५६
४९. कहावत कोश बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ.१२६
५०. संस्कृति की धरोहर- डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. २४८
५१. लोकगीतों में समाज- डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ३३
५२. भारतीय लोकगीत - सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. २६९
५३. बिहार की लोककथाएँ - प्रकाशवती, पृ. ४
५४. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १३६,१३७
५५. Sociocultural Background of the Gowda Saraswat Brahmin Community as Reflected in the Konkani Proverbs -Dr. L. Suneetha Bai, p. ६८
५६. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ. ४२
५७. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ. ४२
५८. एदेच कोंकणी लोकगीत- कोंकण जनता, कोच्ची, पृ. ५७
५९. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ.३७
६०. लोकगीतों में समाज- डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ३९
६१. लोकगीतों में समाज- डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ४०
६२. लोकवेद- एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभुदेसाय, पृ.९
६३. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ९
६४. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ३९
६५. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ३९,४०
६६. भोजपुरी लोकगीत- भाग-१,डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.११२
६७. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ४१.
६८. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ७९

६९. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ३८
७०. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. ५३
७१ मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. ९६
७२. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. ९७
७३. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. १३ ; गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ५९
७४. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ८९
७५. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ७९
७६. भारतीय लोकगीत - सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. २७७
७७. लोकगीतों में समाज- डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव, पृ. ४०
७८. लोकवेद- एक लोकजीण- श्रीनिवास प्रभुदेसाय, पृ . ११
७९. Konkani Proverbs and Idioms with Riddles, Lullubies and Nursery Songs - S. S. Talmaki, p.७३
८०. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. १३
८१. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ५९
८२. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १४२
८३. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-२, सावित्री देवी वर्मा, पृ.२८
८४. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ८९
८५. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक पृ. ६१
८६. भोजपुरी लोकगीत- भाग-१,डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. १०९
८७. हरियाणा की लोककथाएँ - देवीशंकर अवस्थी, पृ. १८
८८. कोंकणी लोकगीत (केरल) कोंकणी भाषा प्रचार सभा, पृ. ५१
८९. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ५८
९०. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-१, सावित्री देवी वर्मा, पृ. ४
९१. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-१, सावित्री देवी वर्मा, पृ. ३९
९२. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-१, सावित्री देवी वर्मा, पृ. १४
९३. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-१, सावित्री देवी वर्मा, पृ. १७

९४. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. २८
९५. Women in Indian Folklore - Sankarsen Gupta, p. ६०
९६. लोकजीवन में नारी विमर्श - डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ७६
९७. भारतीय लोकगीत - सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. २६६,२६७
९८. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल) - कोंकणी प्रचार सभा, पृ. ९
९९. लोकजीवन में नारी विमर्श - ड्ॉ. गोपाल बाबू शर्मा, पृ. ५३
१००. भोजपुरी लोकगीत- भाग-१-डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ५६
१०१. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. १९४
१०२. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. ११
१०३. कोंकणी म्हणयां सोरु - केरल कोंकणी अकादमी, पृ.३८
१०४. कोंकणी म्हणयां सोरु - केरल कोंकणी अकादमी, पृ.५५
१०५. Women in Indian Folklore - Sankarsen Gupta, p. ९६
१०६. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. १२१,१२२
१०७. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. १२३
१०८. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ.१२४
१०९. Ocean of Story - Charls Henry Tawny, p. १९९
११०. मगध की लोककथाएँ -अनुशीलन- डॉ. रामप्रसाद सिंह, पृ.११८
१११. भारतीय लोकगीत - सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१-डॉ. सुरेश गौतम, पृ. २४७
११२. मगध की लोककथाएँ -अनुशीलन- डॉ. रामप्रसाद सिंह, पृ ११७
११३. नागवंश - मिथक, इतिहास और लोकसाहित्य -विमलेश्वरी सिंह, पृ.२९
११४. नागवंश - मिथक, इतिहास और लोकसाहित्य -विमलेश्वरी सिंह, पृ. ४४
११५. वाचस्पत्यम् - पञ्चमो भाग:
११६. शब्दकल्पद्रुमम्-द्वितीयो भाग:
११७. A Classical Dictionary of Hindu Mythology and Religion-John Dowson, p. २२१
११८. नागवंश - मिथक, इतिहास और लोकसाहित्य -विमलेश्वरी सिंह, पृ. २४, ३२

११९. Ocean of Story - Charlės Henry Tawney, p. ६१
१२०. नागवंश - मिथक, इतिहास और लोकसाहित्य -विमलेश्वरी सिंह, पृ.१५
१२१. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-२, सावित्री देवी वर्मा, पृ. १
१२२. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १२७
१२३. लोककथा सागर -भाग-३ - डॉ. विजय अग्रवाल, पृ.८७
१२४. ब्रज की लोककथाएँ - श्रीनिवास आर्य, पृ. ३९
१२५. दिल्ली अंचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ.१३७
१२६. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ -महेश भारद्वाज, पृ. ४७
१२७. भारत की श्रेष्ठ लोककथाएँ -महेश भारद्वाज, पृ. ४८
१२८. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १२९
१२९. Religion and Folklore of Northern India - William Crooke p. ३८८
१३०. Religion and Folklore of Northern India - William Crooke p. ३९५
१३१. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. ५१
१३२. संस्कृति की धरोहर -डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, पृ. ३९
१३३. कोंकणी लोककाणयो - जयंती नायक, पृ. १५०
१३४. लोककथा कोश - भाग-१ - संगीता , पृ.११०
१३५. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. १५
१३६. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ४८
१३७. होळ्ळम्मालो काणयांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ५२,५३,५४
१३८. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. ६१
१३९. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. १४१
१४०. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. १४०
१४१. मध्यप्रदेश की लोककथाएँ - रमेश बख्शी, अचला शर्मा, पृ.३६
१४२. Religion and Folklore of Northern India - William Crooke p. ३९५
१४३. प्राचीन चरित्र कोश - सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, पृ. ७१४
१४४. कहावत कोश - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ.१२४

१४५. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २००

१४६. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. ११८

१४७. Indian Mythology - Veronica Ions, p. ११५

१४८. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २३६, २३८

१४९. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी, पृ. २२, २३.

१५०. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २४२

१५१. कोंकणी लोककाणयो - जयंती नायक, पृ. १४२

१५२. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २००

१५३. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २३६

१५४. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २००, ११९, २३८

१५५. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २३७

१५६. कोंकणी लोककाणयो - जयंती नायक, पृ. १४२

१५७. लोकसरिता - विनायक विष्णू खेडेकार, पृ. २६३ - २६७

१५८. गोवा का लोकसाहित्य (लेख) - डॉ. चन्द्रलेखा, मडई २००२, पृ.१३७

१५९. A Garland of Mando, Dulpods & Dekhni, Part -२ C.M. Estibevio,p.९

१६०. कोंकणी विश्वकोश - भाग- १, मनोहरराय सरदेसाय, पृ.२१६

१६१. A Garland of Mando, Dulpods & Dekhni, Part-२,C.M. Estibevio,p.५८

१६२. गोवा का लोकसाहित्य (लेख) - डॉ. चन्द्रलेखा, मडई २००२, पृ. १४०

१६३. गोंयच्या लोकवेदाचो रूपकार - श्याम वेरेंकार, पृ. ५७, ५८

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में धर्म एवं नीति

धर्म - ईश्वर की कल्पना - गणेश - शिव - शक्ति - सरस्वती - विष्णु - तुलसी - लक्ष्मी - हनुमान - लोकदेवता - भय्यां - खुंटी माया - भैरव - साँझी - सांतेर - ब्रह्मो - लोकविश्वास - पीपल - नीम - अंजीर -गंगा - ग़ाय - कौआ - सूर्य और चन्द्र - स्वर्ग - नरक - मृत्यु - पुनर्जन्म -भूत - दृष्टिदोष -- व्रत एवं उत्सव - विजयादशमी - दीवाली - धालो - होली - शिगमो - नागपंचमी - रक्षाबंधन - श्रीकृष्णजन्माष्टमी गणेश-चतुर्थी - करवाचौथ - - महाशिवरात्री - - सत्यनारायणव्रत - इंत्रूज - सांज्यांव - लोकनृत्य एवं लोकवाद्य -संस्कार - जन्मोत्सव - उपनयन - विवाह - अन्त्येष्टि - -आचारलक्षणो धर्मः

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में धर्म एवं नीति

भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र धर्म है। भारतीय समाज धर्म पर अवलंबित है। जीवन के प्रत्येक छोटे बडे कार्य धर्म के आधार पर व्यवस्थित होते हैं। *धारयतीति धर्मः* । जो समाज का, व्यक्ति का धारण करे वही धर्म है। यही धर्म का सर्वप्रचलित लक्षण है। जीवन में धर्म को अपनाने से विकास होता है और उसके त्याग से विनाश हो जाता है। यही लोक का विश्वास रहा है। *धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः* । धर्म का जो नाश करता है धर्म उसका नाश करता है और धर्म की जो रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। जिससे लौकिक उन्नति और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति हो वही धर्म है। *यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः* । प्राचीनकाल में समाज में एकता लाने का यह अत्यन्त प्रभावशाली साधन था। इसी कारण धर्म को आपसी संबन्ध दृढ़ करनेवाला साधन माना गया। इसी कारण महाकवि कालिदास ने अपने कुमारसंभव में कहा - *अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भामिनि* ।[१] भारतीय दृष्टि के अनुसार पुरुषार्थ का जीवन में बड़ा महत्व है। ये पुरुषार्थ चार माने गये हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म को प्रारंभ में रखा गया है और मुक्ति को अन्त में। बीच में अर्थ और काम आते हैं। अर्थ यदि धर्ममूलक और मुक्तिसाधक न हो तो अनर्थ हा जाता है। काम यदि धर्ममूलक और मुक्ति का साधन न हो तो वह सारे जीवन का नाश करता है। अर्थ और काम का अधिष्ठान

धर्म होना चाहिए और उनकी परिणति मोक्ष। धर्म के दो तल माने जा सक हैं। आध्यात्मिक और व्यावहारिक। व्यावहारिक तल पर धर्म का अर्थ समत की सिद्धि है। समत्व की आकांक्षा ही असल में प्रवृत्ति की प्रेरणा होन चाहिए। तभी उसका परिपाक मुक्ति में हो सकता है, समान हित औ समान सुख में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। अर्थ के क्षेत्र में धर्म अपरिग्रह और काम के क्षेत्र में वह ब्रह्मचर्य होता है। वासनानिरपेक्ष सुरक्षित सहजीवन ही ब्रह्मचर्य का ध्येय होता है। यहीं पर जीवन की सफलता निहित है।

धर्म का संबन्ध मनुष्यों की मनोवृत्ति के साथ होता है। यह विशिष्ट मनोवृत्ति केवल साथी मनुष्यों तक नहीं अपि तु लोकोत्तर सत्ता तक फैली हुई है। इसका वर्णन असंभव है। केवल अनुभव ही किया जा सकता है। समाज की धार्मिक प्रक्रियाओं में यही भाव प्रतिफलित होता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार सांसारिक सफलता महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती। यहाँ अन्तर्मुखता का प्रयत्न ज्यादा रहता है। इसी को धर्म माना जाता है। प्रत्येक कार्य यहाँ पर आत्मोन्नति के लिए किया जाता है। शास्त्रविहित कर्म को ही धर्म माना गया है। यह कर्म आत्मा के उद्धार में मनुष्य की सहायता करता है, उसमें मनुष्यत्व जगाता है और लोककल्याण में सहायक बनता है। भारतीय विश्वासों के अनुसार इहलोक और परलोक का गहरा संबन्ध है। जो वस्तु परलोक की उपेक्षा कर इहलोक के कल्याण साधन में समर्थ रहती है वह हमारे आदर का भाजन नहीं बन सकती। इहलोक एवं परलोक का सामंजस्य ही भौतिक एवं आध्यात्मिक मंगल का सामंजस्य है और इसका प्रधान साधन धर्म ही है। धर्म के अनुष्ठान से मनुष्य को भौतिक साधनों की उपलब्धि तो होती ही है, साथ ही मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। असल में मानव धर्म का आश्रय रहता है। उसमें धर्म और अधर्म दोनों हैं। जब वह धर्म का आचरण करता है उसका व्यक्तित्व एवं समाज स्वस्थ, सुन्दर एवं

न्धनों से मुक्त प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर, पुरुष के निर्विकार स्वरूप का दर्शन कर कृतकृत्य हो जाता है तथा जब मानव अधर्म के पथ पर अग्रसर होता है तब न केवल वह स्वयं अधोगति को प्राप्त होता है, वरन् संपूर्ण समाज को भी लेकर डूबता है।

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य जीवन के मूल्यों को लेकर चलता है। इसलिए इनमें स्थान स्थान पर धर्म के महत्व पर ज़ोर दिया गया है। उदाहरण के लिए हिन्दी की *रामनाम की महिमा* नामक लोककथा में बुढ़िया पोती को उपदेश देती है - *बेटी, मेरी एक बात याद रखियो । यह माया तो आनी जानी है। असली धन तो धर्मज्ञान है। तू उसे मत छोड़ियो। यह तू आज जो कुछ देख रही है वह सब हरिभजन का प्रताप है। सो तुम भगवान का नाम लेना मत छोड़ना।*[२] इन पंक्तियों में धर्म की महत्ता की खूब अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार भोजपुरी के एक लोकगीत में जीवन में धर्म की आवश्यकता की ओर ज़ोर शोर से इस प्रकार संकेत किया गया है-

धीरे बहो गंगा तू धीरे बहा — मोरा पिया उतरइ पार
काहे की तोरी नइया रे — काहे की पतवार
कहाँ तोरा नइया खोवइया रे — के धनि उतरइ पार?

\+ \+ \+

धरम की मोरी नइया रे — सत लागी पतवार[३]

इन पंक्तियों में दर्शन की पवित्र एवं आध्यात्मिक अनुगूँज मिलती है। अपना आराध्य खेवैया के रूप में एवं सत्य पतवार के रूप में मिल जाय तो धर्म की नाव पार क्यों न लगे? मुक्ति का मार्ग खुल क्यों न जाये? यहाँ पर लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य का रूप निखर आया है। लोकसाहित्य, की परख की वास्तविक कसौटी जगजीवन और जनमत का सत्य है, चाहे

वह हिन्दी का लोकसाहित्य हो या कोंकणी का। यह सत्य परम पवित्र एवं धर्ममय है। इसी सत्य का नाम अध्यात्म है। यही लोकसंस्कृति की आधारशिला है। लोकगीतों में यही सत्य शिव, सौन्दर्यमय होकर अभिव्यक्ति पा निखर उठा है। धर्म के विविध रूप इसमें मिलते हैं। इनमें सामाजिक धर्म एवं मानवीय धर्म सबसे प्रमुख माने जाते हैं। समस्त जगत का सम्यक् दर्शन कर उसके अनुकूल व्यवहार करना ही सामाजिक धर्म है। लोकसाहित्य में हर कहीं इसके दर्शन होते हैं। *आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्*, यही मानवीय भावना इस धर्म का मूलाधार है। मानवीय धर्म एवं सामाजिक धर्म एक दूसरे से इतने संबद्ध हैं कि किसी एक की अनुपस्थिति में दूसरा जीवित नहीं रह सकता। मानवीय धर्म के अन्तर्गत परोपकार, दान, तप, सत्यवादिता, इन्द्रियों का निग्रह आदि जीवन मूल्य रहते हैं जिनके अनुवर्तन से धर्म की वृद्धि एवं अधर्म का नाश हो जाता है। लोकसाहित्य में इसका व्यावहारिक रूप देखने को मिलता है।

भारतीय संस्कृति में वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि के पश्चात् पौराणिक धर्म की बारी आती है। पुराणकथाओं के माध्यम से धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ। इसका प्रभाव हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य पर काफी मात्रा में पड़ा है। यहाँ पर विष्णु सर्वाधिक शक्तिशाली बने। दान, व्रत, उपवास आदि की महत्ता एवं देवताओं की संख्या में वृद्धि हुई। भूत प्रेत पिशाच आदि पूज्य बने। काली, हनुमान के संप्रदाय संगठित हुए। मोक्ष के स्थान पर स्वर्गप्राप्ति की कामना जागृत हुई। लोकसाहित्य में यही भावना प्रतिफलित हुई है।

ईश्वर की कल्पना

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य के आधार के रूप में एक

विस्तृत सांस्कृतिक क्षेत्र रहा है। यह मूल रूप से धर्म पर आधारित है। यहाँ लोकजीवन भी मूल रूप से धर्म पर ही आधारित रहा है। धर्म के इस व्यापक क्षेत्र की सीमा में सर्वशक्तिमान ईश्वर से लेकर सामान्य व्यक्ति तक आता है। ईश्वर यहाँ सबसे महत्वपूर्ण है। वह परमेश्वर है, संसार का स्रष्टा एवं रक्षक है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में उनकी महत्ता, उनके विभिन्न रूप एवं कार्य का वर्णन मिलता है। यह भागवत छवि प्रेम की कालिन्दी के सौष्ठव से ओतप्रोत है। यहाँ भगवान जनता जनार्दन के रूप में प्रकट होते हैं। यह लोकमनोविज्ञान में प्रभु की लोकप्रियता एवं स्वरूप के महत्व को दिखाता है। लोकसाहित्य में अनेक देवताओं का अस्तित्व माना जाता है। ये सारे देवता लोक के द्वारा पूजे जाते हैं। इनसे संबन्धित कई अनुष्ठान चलते हैं । अधिकांश रूप में यहाँ पर पौराणिक शैली का ही अनुवर्तन हुआ है। दशावतार का वर्णन और चित्रण इसका उज्ज्वल प्रमाण है।

लोकसाहित्य में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की स्थान स्थान पर महिमा गाई गई है। यहाँ पर ब्रह्म निर्गुण एवं सगुण दोनों है। लोकमानव उसे साकार रूप देना अधिक पसन्द करता है। कंकड से लेकर पहाड़ तक सब जगह ब्रह्म किसी न किसी रूप में वर्तमान है। *जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत तिन देखी तैसी* । अपनी अपनी इच्छा के अनुसार उसे आकार प्रदान किया जाता है। कहीं पर पौराणिक देवता से वह मेल खाता है तो कहीं ग्रामदेवता के रूप में पूजा जाता है। कहीं कहीं प्राकृतिक दृश्यसत्ता बन कर प्रकट होता है। लोक इन सबकी पूजा आराधना करता रहता है। किसी भी रूप में कोई भेद नहीं मानता । यही समन्वयात्मकता उसकी विशेषता है।

कहीं निर्गुण ब्रह्मविषयक चिन्तन भी हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य

में मिलता है। लेकिन अधिकांशतः ऐसे एक ब्रह्म की कल्पना की गई है जो जगत् की पृष्ठभूमि में कर्ता के रूप में है। सर्वव्यापक सर्वनियन्ता ब्रह्म की खोज आसान नहीं। मायारहित होकर ही यह अनुभव किया जा सकता है। कहा गया है -

तेहि नाभी से केंवल पैदा भा मजल मा करै पसारा
तिन तै कहै सृष्टि तुम सिरजो तन मन भक्ति सिधारा[४]

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन रहनेवाले इस ब्रह्म याने ईश्वर की प्राप्ति उतनी आसान नहीं है। फिर भी लोकमानव उसे ढूँढ़ता भी है और कहीं कहीं पाता भी है जिससे ब्रह्मविषयक जानकारी उसको आसानी से प्राप्त होती है। कोंकणी में भी ब्रह्म के इन दोनों रूपों की ओर इस प्रकार संकेत किया गया है -

आकारी देवा यमुण निराकार यमुण बा
आकारी देवा यमुण निराकार यमुण मू
\+ \+ \+ \+
दायी वाट दाकयतल्या बरमदेवा यमुण बा
दायी वाट दाकयतल्या बरमदेवा यमुण मू [५]

पहले कहा गया है कि पौराणिक सम्मति से बहुदेवोपासना भी लोकसाहित्य के लिए ग्राह्य रही है। पञ्चदेवोपासना के अनुसार पाँचों देव - गणेश, देवी, शंकर, विष्णु तथा सूर्य - क्रमशः जल, तेज, पृथ्वी, आकाश एवं वायु के प्रतीक रहे हैं। सनातन धर्म में आधारस्वरूप विद्यमान इस उपासना को लोकजीवन में भी स्वीकार किया गया है। लेकिन शिव एवं शक्ति की उपासना यहाँ पर अधिक दिखाई देती है। इनके साथ साथ सूर्य, गणपति तथा विष्णु की उपासना की परंपराएँ भी यहाँ मिलती हैं। विष्णु के प्रमुख

अवतारों में राम और कृष्ण की पूजा ज़्यादा मिलती है। विष्णु की उपासना के अंग के रूप में तुलसी की उपासना भी मिलती है। विष्णुपदी गंगा यहाँ की प्रत्यक्ष देवता है।

गणेश

गणेश लोकसाहित्य में प्रथम पूज्य और सर्वसुलभ लोकप्रिय देवता हैं। सभी मांगलिक कार्यों में गणेश की पूजा सर्वप्रथम की जाती है। वे विघ्नों को नष्ट करनेवाले देवता माने जाते हैं। उनकी पूजा करने से विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। ओंकार और स्वस्तिक के चिह्न गणेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। गजानन, लंबोदर, एकदंत, विनायक, विघ्नराज, विघ्नेश, गणाधिपति, गणपति आदि उनके नाम हैं। लोककवि श्रद्धा के साथ गणेश की पूजा करता है-

आज हमारै गणपत आए री आनन्द हुए
संग में रिधि सिध लाए री गणेशजी [६]

कोंकणी में गणेश की पूजा ज़्यादा मात्रा में देखी जा सकती है। यह दक्षिणी प्रभाव माना जा सकता है। दक्षिण भारत में गणेश के अनेक मन्दिर हैं। महाराष्ट्र में पेशवाओं ने गणेशपूजा को विशेष स्थान दिया। गणेशोत्सव यहाँ नवजागरण तथा राष्ट्रजागरण के रूप में भी मनाया जाता है। कोंकणी लोकसाहित्य पर इसका खूब प्रभाव देखा जा सकता है। गणेश का नमन करने का एक उदाहरण इस प्रकार है -

चौती दिसा जन्मल्ल्या गणेसदेवा यमूण बा
चौती दिसा जन्मल्ल्या गणेसदेवा यमूण मू [७]

(चतुर्थी के दिन जन्मे गणेश देव को नमन)

यहाँ पर एक ही वाक्य का दो बार कथन हुआ है जो लोकशैली की विशेषत है। विषय पर बल देने के लिए और ताल लय के उद्देश्य से ही शायद ऐस किया जाता है। हर छोटे बड़े कार्य के प्रारंभ में गणेशवन्दना बराबर की जाती है। प्राचीन काल में जब पीसने के लिए मिल नहीं था उस समय पीसना घर पर ही किया जाता था। शादी के समारोह से संबन्धित होकर पीसने का एक विशेष अनुष्ठान रहता था। काम सही सलामत पूर्ण होने के आग्रह से देवी देवताओं की अर्चना की जाती थी। साथ ही गीत भी गाये जाते थे। एक तरह से ये गीत मंत्रों के समान महत्वपूर्ण माने जाते थे। स्त्रियाँ ही इनको गाती थीं। कोंकणी में गणेश को लेकर ऐसा एक गीत प्रचलित है -

दांतें मांडून गे दांत्या केले तिबे
मानाचे उबे गणेसदेव
गणेसदेव रे जावूनका पयस
मांडी मोडून बैस आमच्या कार्या लागीं [6]
(जाँता तैयार करके उस पर तिलक लगाया
आदरणीय गणेशजी को इसमें आवाहित किया
गणेशदेव दूर मत जाना
हमारे कार्य के समीप पलत्थी लगाकर बैठ जाना)

लोकगायक और लोककथाकार सभी अपना कार्य गणेशवन्दना से प्रारंभ करना शुभ मानते हैं। इसके पीछे गणेशजी के स्मरण तथा कार्य की निर्विघ्न समाप्ति की भावना काम करती है। गणेश के साथ साथ अन्य देवता भी पूजे जाते हैं जिससे माना जा सकता है कि लोकसाहित्य में बहुदेवोपासना का प्रचलन था जो समन्वयात्मकता की ओर संकेत करता है। गणेश और गौरी का स्मरण करते हुए कहा गया है -

गौरी गणेश मनायो री मेरी अंबे राणी
हरा हरा गोबर आँगन लिपाया
मोतियन चौक पुराओ री मेरी अंबे राणी[९]

गणेशपूंजन से कार्यसिद्धि आसानी से होती है, यही लोकविश्वास है। गोपियों के कहे अनुसार यशोदा माता अपने लाडले बालकृष्ण को सद्बुद्धि देने के उद्देश्य से गणेशजी को मोदक खिलाने की मन्नत माँगती है। इस गणेशपूजा का जीता जागता चित्र कोंकणी में इस प्रकार दिया गया है--

धन्य धन्य म्होणु कोर्नु उपवास	(धन्य धन्य कह उपवास करते हुए
पूजिता विघ्नेशु यशोदाम्मा	यशोदाम्मा ने विघ्नेश का पूजन किया
शर्करेचो लाडू वीस आनी एकु	शक्कर के लड्डू बीस और एक
केल्ले ते मोदक नैवेद्याक	नैवेद्य के लिए मोदक भी बनाये
दवर्ल्याचि हाडून	लाकर रख दिए,
निमगीता श्रीकृष्णु	श्रीकृष्ण पूछने लगे
केद्दाणा दिशी लाडू हातु भोर्नु[१०]	हाथ भर लड्डू कब दोगी ?

गणेश कोंकणी लोकसाहित्य के प्रिय देवता रहे हैं। इनके साथ साथ कभी कभी सरस्वती को भी जोड़ दिया जाता है। गणेश बुद्धि के देवता हैं तो सरस्वती वाग्देवता। दोनों की आराधना साथ साथ की जाती है। उदाहरण के लिए -

ॐ नमो गणेन्द्रा पार्वतीनन्दन गाण्डा
चौदायि विद्यांचे स्वामी तुम गजानन गा
सिद्धि विनायका नमन करतां तुका
स्वर दी माका होवी मणचाक[११]

ओवी गाने के लिए स्वर प्रदान करने के लिए लोककवि हमेशा गणेशजी की

वन्दना करता है।

लोककथाओं में गणेश का वर्णन अधिकांशतः व्रत त्योहारों से संबन्धित होकर आया है। गणेश चौथ प्रमुख त्योहार रहा है जिसमें गणेश पूजन का विधान विस्तार से वर्णित है। यहाँ पंडिताइन पैसों के अभाव में गणेश चौथ भली भाँति मनाने में असमर्थ होने के कारण अत्यधिक दुःखी है। फिर भी उसकी भक्ति त्योहार मनाने के लिए उसे प्रेरित करती है। पैसों के अभाव में त्योहार के लिए वह थोड़े लड्डू मात्र खरीदती है। लेकिन उस दिन गणेश रूप बदलकर वहाँ पहुँच जाते हैं और पंडित- पंडिताइन की रक्षा करते हैं। उनकी कृपा से टूटी मड़ई के स्थान पर अच्छा सा घर बन जाता है और गणेश की एक सुन्दर मूर्ति भी वहाँ पर उन्हें मिल जाती है। यह सब गणेश की महिमा के कारण ही होता है।[१२] कोंकणी में भी *भटणीली चवथ* नाम की एक कथा है जिसमें पंडिताइन चार आने का गणपति खरीदकर उसकी पूजा करती है। उसके पास पैसे न होते हुए भी वह चौथ का आचरण करती है। यह गणेश के प्रति उसकी श्रद्धा एवं भक्ति को ही दिखाता है। गणेश मन की इच्छा पूरी करनेवाले माने जाते हैं। यहाँ भी उन्होंने पंडिताइन के मन की इच्छा पूरी कर दी। गणेश की कृपा से पंडिताइन को चोरों का सोना और पैसा मिल जाता है और वह धूमधाम से चौथ का त्योहार मनाती है। वह कहती है - *देवान गणपतीनच दिल्ल्यात आसतले म्हण्टा आपल्याक* (गणपति देव ने ही मुझे यह सब दे दिया होगा) और गणपति का आभार मानती है।[१३] *मातृभक्त गणेश* नाम की हिन्दी लोककथा में गणेश की मातृभक्ति का वर्णन हुआ है जिससे प्रसन्न होकर शिवजी उन्हें आशीर्वाद देते हैं कि सभी देवताओं से वे अधिक बुद्धिमान, धीरवान, एवं पूज्य बन जायें।[१४] ये सारे वर्णन लोगों की गणेश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति को ही चित्रित करते हैं।

शिव

लोक में गणपति की वन्दना के साथ साथ शिव शंकर एवं सरस्वती का भी स्मरण किया जाता है। जैसे -

प्रथम सुमरूँ गुरु गणेश कूँ निशि दिन नवाऊँ शीश
शिवशंकर सुमरूँ शारदा जगदाता जगदीश[१५]

लोकसाहित्य में शिव एवं पार्वती के खूब संदर्भ मिलते हैं। विशेषकर लोककथाओं में वे अपने भक्तों के दुःख देखकर स्वयं दुःखी हो जाते हैं और उनके दुःख को दूर करने का उपाय करते रहते हैं। लोकपरंपरा अपने बदलते परिवेश में अपने शंकर को विभिन्न प्रकार से आविष्कृत करती रहती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार शिव एक महत्वपूर्ण देवता रहे हैं। प्राकृतिक प्रतीकों से लेकर लोकविश्वास के घरेलू और निजी प्रतीकों तक शिव सब कहीं व्याप्त दिखाई देते हैं। शिवजी लोकजीवन में लोकानुभूतियों से परिचालित रहे हैं। लोककथाओं में इसका सुन्दर उदाहरण मिलता है। शिवजी का भोलापन, सर्वप्रसन्न छवि, औढ़रदानी प्रवृत्ति, आशुतोष होने का भाव, सब कुछ इन कथाओं में अभिव्यक्त हुआ है। ऐसा लगता है मानो लोक ने अपने भोलेपन की तलाश भोलेबाबा शिव में कर ली और ऐसी लोककथाओं का निर्माण किया जिनमें वे आशुतोष एवं औढ़रदानी बने।[१६]

शिवलिंग की उत्पत्ति के मूल में लोकचित्त की परिकल्पना खूब दिखाई देती है। लिंगपूजा बहुत ही पुरानी रही है। इसका संबन्ध मूल रूप से उर्वरता से है। हिन्दी और कोंकणी लोककथाओं में इसकी खूब चर्चा मिलती है। वैदिक काल में रुद्र के रूप में प्रसिद्ध देवता जो बाद में चलकर शिवजी, हर हर महादेव, शंकर, भोलेनाथ, भूतनाथ, शंभू, गौरापति, आदि नामों से स्मरण किए जाते हैं वे लोकसाहित्य के लिए अत्यन्त प्रिय रहे हैं।

कई लोकगीतों और लोककथाओं में उनके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का भाव देखा जा सकता है। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को महाशिवरात्रि का व्रत रखा जाता है। शिव की पूजा अक्सर लिंग के रूप में ही की जाती है।

शिव आशुतोष माने जाते हैं, इसलिए लोकप्रिय भी रहे हैं। शिवसंबन्धी लोकसाहित्य लोकगीत एवं लोककथाओं में उपलब्ध है। इस साहित्य में उनका अलौकिक, मानवीय तथा गृहस्थ रूप चित्रत हुआ है। अन्य देवताओं के समान शिव से संबन्धित जागरण गीत भी हिन्दी में मिलते हैं जैसे -

जाग जाग सिम्भू भोले सवेरा हुआ
बालक भी जागे, बच्चे भी जागे
जागी सै परजा सारी, सवेरा हुआ [१७]

इस अपार शक्ति के सामने लोकसाहित्यकार नतमस्तक हो जाता है। वह भले ही हिन्दी का हो या कोंकणी का, शिवजी की पूजा करने में कुछ उठा नहीं रखता। हिन्दी लोकगीत की थोड़ी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

स्वावत ते महदेव का जगाय आयूँ
काँच के सीसी बाँस के कामरि सरजू का जल असनान करा आयूँ
अच्छत चारि बेल की पाती बीच मँ चाउर चढ़ा आयूँ
कनयेर फूल बेल की पाती धतूर के बीज चढ़ा आयूँ
कंचन थार कपूर की बाती शंकर गौरा की आरती गा आयू[१८]

कोंकणी लोकसाहित्य में भी शिवजी की इस अपार शक्ति को देखते हुए उनसे कल्याण की कामना की जाती है। लोकगीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

जय शिवशंकर भं भोलानाथ	(जय शिवशंकर भं भोलेनाथ
देव समर्थ सिद्ध मादवनाथ	देव समर्थ सिद्ध माधवनाथ

कानीं कुण्डळां गळीं सर्पाची लुण्डा	कानों में कुण्डल, गले में सर्प
गंगा किरीं मस्तकार स्थापना	गंगा की मस्तक पर स्थापना
आनी गंगेचे आदारान	गंगा का आधार लेकर -
सय सृस्ट सांबाळणारा[१९]	सारी सृष्टि संभालनेवाले)

शिवजी की इसी शक्ति ने अमृतमंथन के समय विष निगलने की प्रेरणा उन्हें प्रदान की। अमृतमंथन में शिवजी के इस स्वरूप का चित्रण कोंकणी लोकगीत में इस प्रकार किया गया है --

समदीर घुसळीता	(समुद्र-मंथन के समय
विख भायर येयले बा	विष बाहर आया
समदीर घुसळीता	समुद्र-मंथन के समय
विख भायर येयले मू	विष बाहर आया
तें वीख सगळें	वह सारा विष
म्हादेवान गिळलें बा	महादेव ने निगल लिया
तें वीख सगळें	वह सारा विष
म्हादेवान गिळलें मू	महादेव ने निगल लिया
म्हदेवासो गळो	महादेव का गला
काळो नीळो जालो बा	काला नीला पड़ गया
म्ह.देवासो गळो	महादेव का गला
काळो नीळो जालो मू[२०]	काला नीला पड़ गया)

लोककथाओं में भगवान पर विश्वास करनेवाले भक्तों के सामने भगवान की प्रतिमाएं भी बोलती हैं।[२१] *म्हांतारे पोरालें कामत* नाम की कोंकणी कथा में काम करनेवाले बच्चे को शिव-पार्वती सहारा देते हैं। करुणामय ईश्वर उसके पास आकर पूछता है कि उसका दु:ख क्या है? वह रो क्यों रहा है ?[२२]

म्हातारे पोर देवाक सौद्नु वयता नामक कहानी में बुढ़िया के बेटे के दुःख में शिवजी उनका सहारा बन जाते हैं।[23] *रोने का शौक* नाम की हिन्दी लोककथा में शिव पार्वती आकर अपने भक्त की समस्या को सुलझा देते हैं।[24] कोंकणी की *भांगरा पेट्टारो* नाम की कथा में दूसरों की सहायता करनेवाली लाकी का दुःख महादेव और पार्वती दूर कर देते हैं।[25] शिवजी कोंकणी जीवन का लोकप्रिय देवता हैं। शिव के अनेक रूपों की आराधना यहाँ की जाती है। मुदेश्वर. चन्द्रेश्वर, महाबलेश्वर, महेश्वर, सप्तकोटेश्वर, वामनेश्वर, विमलेश्वर, नागेश, मंगेश आदि इनमें हैं।[26] इनके अलग अलग मन्दिर भी हैं जिनमें इनकी पूजा आराधना की जाती है। चन्द्रेश्वर के संबन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

चन्द्रेश्वरा भूतनाथा अविचल कळा	(चन्द्रेश्वर, भूतनाथ, अविचल हो
दाव्या पाया किरांगळी	बायें पैर की छोटी ऊँगली पर
धरली शिळा [27]	शिला धारण किए हुए हो)

शिवजी से जुड़ी हुई अनेक कथाएँ भी यहाँ प्रचलित हैं। प्राचीन काल में लिंगपूजा के साथ साथ योनीपूजा के प्रमाण भी कोंकण में मिलते हैं। इसे कोंकण की विशेषता ही माना जा सकता है।[28] चन्द्रपुर के सांस्कृतिक जीवन में चन्द्रनाथ पर्वत पर रहनेवाले शबर जाति के लोगों के बीच भूतनाथ की आराधना एक लंबे पत्थर के रूप में की जाती है और यहाँ पर वे जातियाँ कई अनुष्ठानों का पालन करती आई हैं। कोंकण की इस जनजातीय आराधना में शिवजी का बड़ा महत्व देखा जा सकता है। चन्द्रपुर के मूसल नृत्य की शुरूआत शिव की वन्दना से की जाती है-

ऊँ	(ऊँ
ईश्वरा ईश्वरा होळिवरा	ईश्वर को नमस्कार

ॐ
सात-शेगुण गज-गौरी[29]
ॐ

ॐ
हे ईश्वर हमें सात गुणों से युक्त बनादे
ॐ हाथी पर सवार तुम्हारी सखी
हमें अनुग्रह प्रदान करे)

यहाँ पर शिव के साथ गौरी के भी अनुग्रह की माँग की गई है। लोकसाहित्य में अक्सर शिव के साथ पार्वती भी रहती है। दोनों मिलकर लोगों का दुःख दूर करते हैं।

शक्ति

महादेव के साथ गौरा जी की भी पूजा-आराधना लोकसाहित्य की विशेषता रही है। लोकमानव को जीवन में प्रतिक्षण जिस शक्ति की आवश्यकता है उसकी प्राप्ति के लिए उसने शक्ति की उपासना को प्रश्रय दिया। शक्ति के बिना ब्रह्म की भी कल्पना सचमुच अधूरी ही रहती है। देवी की उपासना का लोकप्रसिद्ध रूप निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

देवी आई मोरे अँगना निहुरि मैं पइयाँ लागौ
काह देखी देवी मगन भयू है काइ देखि मुसक्यानिउ
लउगैं देखि णइया मगन भई है गजरा देखि मुसक्यानी
काह पहिरि मइया मगन भई हो काह ओढ़ि मुसक्यानिउ
पेरी पहिरि मइया मगन भई हैं चुनरी ओढ़ि मुसक्यानो[30]

गुण और प्रकृति के कारण शक्ति को अनेक रूपों में पूजा गया। शिव की पत्नी के रूप में शिवा, पार्वती, सती कल्याणकारिणी मानी गई। गौरा, कुमारी, ललिता, शांकरी आदि उनके अन्य नाम थे। इसके अतिरिक्त उमा, चंडी, चंडिका, रणचंडी, शत्रुदाहिनी, शत्रुमर्दिनी, आदि रूप भी

देखने को मिलते हैं। ये सब नाम असद्शक्तियों का दमन एवं सद् शक्तिय का उन्नयन करनेवाली शक्ति के पर्याय माने गये। लोकसाहित्य में अने जगहों पर वे शिवपत्नी और कल्याणकारी रूप में पार्वती के नाम से ह जानी जाती हैं। हिन्दी और कोंकणी में उनका यही रूप सर्वाधिक प्रचलि है। पार्वती की लोकप्रियता ही इसका मुख्य कारण कहा जा सकता है बालिकाओं और महिलाओं की इच्छापूर्ति करके उन्हें मनचाहा वर औ अचल सुहाग प्रदान करने के कारण पार्वती स्त्रियों की आराधना का पा बन गई।

लोकसाहित्य में ऐसे अनेक गीत हैं जो उनकी वरदायिनी शक्ति से संबन्धित हैं। सामान्यतः विवाह के अवसर पर इनका गायन होता है। हिन्दी में ये ज्यादातर दिखाई देते हैं। कोंकणी में नहीं के बराबर हैं। विवाह का मांगलिक उत्सव निर्विघ्न संपन्न होने के लिए एवं वधू का सौभाग्य अचल रहने के लिए अम्बा के रूप में पार्वती की पूजा की जाती है -

लाडली गौरी को पूजन चली
लाडली अम्बे को पूजन चली
पूजपाज के बर माँगत है
हाँ बर मिलै श्याम हरी
लाडली गौरी को पूजन चलो[31]

दयालु पार्वती शंकर के साथ हमेशा अपने भक्तों की रक्षा करती रहती हैं। जब जब भक्तों को कुछ आर्थिक या मानसिक कष्ट होता है तब तुरन्त शिव-पार्वती के द्वारा इन विपत्तियों से उन्हें बचाने का वर्णन इस साहित्य में मिलता है। हमेशा शंकर पार्वती से विपत्तियाँ दूर करने की प्रार्थना की जाती है। जैसे -

तेरे लिए मैं भरके लाया गंगा जी का पानी हौ शंकर दानी
हर हर शंकर दानी
कितने पापियों को तुमने तारा है जिसने नाम तुम्हारा पुकारा है
छोड़ चले कैलासपति संग में लेकर गिरिजा रानी हौ शंकरदानी
हर हर संकरदानी [३२]

कोंकणी में देखिए --

शंभो शंकर पार्वती रमणा
निराकार देवा रूद्रावना ता बोले हा[३३]

शंकर-पार्वती संबन्धी इन गीतों में लोग अपनी भक्तिभावना के पुष्प ही अर्पित करते हैं और कष्टनिवारण की कामना करते हैं।

लोकसाहित्य की यह विशेषता रही है कि ये ईश्वर मानवों के बीच रहते हैं। उन्हीं का जैसा व्यवहार करते हैं। लेकिन बीच बीच में ईश्वर की विशेष शक्ति के बारे में संकेत अवश्य देते रहते हैं। यहाँ पर शिव-पार्वती होली खेलते हैं। [३४] कोंकणी में भी शिव-पार्वती को होली खेलते दिखाया गया है--

शिगमो खेळता जगन्नाथ बा शिगमो खेळता जगन्नाथ मू[३५]

और एक स्थान पर शंकर -पार्वती को पाँसे का खेल खेलते चित्रित किया गया है -

ईश्वर पार्वती देव खेळू बैसली बा	(ईश्वर पार्वती खेलने बैठे हैं
ईश्वराशी पड़ली बारा देवाची बा	ईश्वर के पड़े बारह
पार्वती पड़ली सोळा देवाची बा	पार्वती के पड़े सोलह
देवराजा स्वामी रागाने उठला बा	देव क्रोध में आकर चल दिये)[३६]

कहीं पर गौरी को आम पत्नी के जैसे शिव की करनियों से चिन्ताग्रस्त चित्रित किया गया है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं--

गौरी सोचै दिनरात गौरी सोचै दिनरात
हमरो भंगिया नहीं मानथिन बात
निशि दिन फाँके छथिन भांग के पात
खोआ, दूध, मिसरी, कबहुँ नहिं खात
अँगना में बेल गाछ तारि पात खात
धथूर के बिया देखति तनि न डरात[३७]

असल में शिव-पार्वती विवाह लोक के लिए एक उत्सव ही रहता है। इससे संबन्धित कई गीत और कथाएँ हिन्दी में मिलती हैं। यह साहित्य शिवजी के मानव एवं गृहस्थ रूप को दिखाता है। एक उदाहरण देखिए -

आई शिवजी की बरतिया ,हिमाचल नगरी
छत पर चढ़ चढ तिरिया निरखें कौन रंग का दूल्हा[३८]

शिव-पार्वती-विवाह नाम की हिन्दी लोककथा में शिवजी के गृहस्थ रूप के साथ साथ उनकी अपार शक्ति का वर्णन है।[३९] उन्होंने पत्तलों पर रेत परोसकर गंगाजल डाल दिया तो बूरे पर घी का काम कर गया। वैसे ही कंकड़ों से ब्राह्मण और नाई की झोली भर दी तो कंकड़ सोने की मोहरें बन गये। उसी प्रकार ननद भौजाई के रूप को देखकर जलती है तो उसके हाथ का आरती का सोने का थाल पाप के कारण मिट्टी का हो गया। उस पर रखा हुआ दिया अपने आप बुझ गया। इसी शिवजी की पूजा अर्चना लोकसाहित्य में खूब मिलती है।

सरस्वती

सरस्वती वाग्देवता मानी जाती है। यह पवित्रता, शुद्धता, समृद्धि

और शान्ति प्रदान करनेवाली देवी मानी जाती है। लोक में यह विद्या एवं कला की अधिष्ठात्री देवी है। पुराणों के अनुसार वह सब गुणों से संपन्न, ब्रह्मा के मुँह से उत्पन्न ज्ञानस्वरूपिणी है। वह ब्रह्मा की मानसपुत्री मानी जाती है। देवताओं की प्रेरणा से समय समय पर मनुष्यों के मुँह में घुसकर उनके ज़रिए वाग्परिवर्तन एवं घटनाविघात करनेवाली चित्रित की गई है। लेकिन लोक के सामने वह परमपूंज्य ज्ञान की देवी रही है। उनसे संबन्धित कई लोकगीत मिलते हैं जिनमें एक गीत इस प्रकार है -

तोहि सुमरो सारदा भवानी, मेरे हिरदै में-बोलेगी बानी
मैइया तेरी गेल में पर् यो भुजंगी नाग
पापी पापी डसि लिए मइया धरमी उतरे पार
मैइया तेरे भवन में घंटन की घनघोर
मोर-पपीहा बोलते और कोयल करि रहीं सोर [४०]

कोंकणी में भी सरस्वती को शारदा-भवानी कहकर संबोधित किया है। कहीं सरस्वतीस्तवन में सरस्वती को शिवजी का प्रतिबिंब माना गया है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

वरदे रुचिराधरबिम्बे शारदे शशिमानव अम्बे
तारि हो मज आज शिवप्रतिबिंबे, जय जय जगदम्बे [४१]

पापियों का नाश एवं सज्जनों की रक्षा करनेवाली वाग्देवी से मन के अन्धकार को दूर करने की प्रार्थना और सरस्वती की मन में प्रतिष्ठा करने की माँग कोंकणी लोकसाहित्य में की गई है -

सरस्वती सारदा सों रेंगी माया	(सरस्वती शारदा सों रंगी माया
खेळो रे बाळा खेळो रे बाळा	खेलो रे बालक खेलो रे
नितळ मन राबोवया	मन पवित्र रहे

सरस्वती सारदा सों रेंगी माया   सरस्वती शारदा सो रंगी माया)[४२]

कहीं कहीं उनको वाचा द्वारा इन्द्र को शक्ति प्रदान करनेवाली बताया ग है। सरस्वती का वाहन हंस एवं मयूर माना जाता है। लोक में सरस्वत सुरस्ती, विद्या, बिद्या और देब्बी के नाम से ये जानी जाती हैं। नामकर संस्कार में वाणी में मधुरता के लिए चाँदी की शलाका को शहद में डुवोक जिह्वा पर श्री शब्द लिखा जाता है। गुरुवार इसके लिए श्रेष्ठ माना जात है। इस दिन हाथ जोड़कर विद्यादेवी से आशीर्वाद माँगा जाता है। पुस्तक में विद्यादेवी का वास है, इसलिए उन्हें पैरों से नहीं छुआ जाता। भजनीक स्वांगी और प्रचारक अपने गायन प्रवचन से पूर्व सरस्वती की वन्दना इस प्रकार करते हैं।

आ री सुरस्ती वास कर मेरे घट के परदे खोल
सतगुरु मिलै माई शुद्ध शब्द मुख बोल [४३]

सरस्वती के साथ साथ भवानी, वाणी और शारदा नामों से भी सरस्वती जानी जाती है। कोंकणी के *जागर* की शुरूआत में सरस्वती की वन्दना इस प्रकार की जाती है -

पयले नमन करू सरस्वती माये   (पहला नमन सरस्वती माता का
सरस्वती शारदा रंगे आयली माये [४४]   सरस्वती माता मंच पर आ गई)

कोंकणी में किसी सत्कार्य के पहले सरस्वती पूजन का विधान माना गया है। गणपति और सरस्वती के मुखौटे पहनकर नाच किया जाता है। सरस्वती का मुखौटा पहननेवाली कुमारी होती है। *काला* के प्रारंभ में सरस्वती का नृत्य चलता है। यहाँ भी सरस्वती स्तवन होता है। आश्विन शुक्ल सप्तमी से दशमी तक सरस्वती की पूजा का विशेष विधान है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष के उपलक्ष्य में विद्याव्रत रखा जाता है। इस

प्रकार हिन्दी समाज हो या कोंकणी समाज सरस्वती की पूजा आराधना सब कहीं होती रहती है।

विष्णु

भारत में धर्म के क्षेत्र में विष्णु का काफी महत्व रहा है । हिन्दी तथा कोंकणी क्षेत्रों में यद्यपि पहले शिव की आराधना को प्रबलता मिली, फिर भी बाद में चलकर लोक में विष्णु लोकप्रिय बने। दशावतार की कल्पना विष्णु के विभिन्न अवतारों को लेकर हुई है। इनमें राम और कृष्ण की लोकसाहित्य में विशेष महत्ता है। घर घर का बालक राम या कृष्ण होता है। हर कहीं इन दोनों अवतारों की महत्ता मानी जाती है।

सत्यनारायण की कथा के अवसर पर सालिग्राम की वन्दना के गीत गाये जाते हैं। हिन्दी का एक लोकगीत इस प्रकार है-

सालिगराम सुनौ विनती मेरी, जि वरदान दया करि मांगू
प्रातःसमय उठि मंजन करिकै प्रेम सो हाथ स्नान कराऊँ
छप्पन भोग, छत्तीसों व्यंजन, भोग लगाय कै भोजन पाऊँ ..[४५]

विष्णु की उपासना शालग्राम-पूजन के रूप में यहाँ प्रचलित है जिनके सान्निध्य से तुलसीदेवी को विशेष महत्ता मिली है और वे लोकजीवन के प्रतिष्ठित देवता बन गई हैं। विष्णु के अवतारों में रामकृष्ण की उपासना का लोक में अधिक प्रचार है। हिन्दी तथा कोंकणी समाज में वे इतने लोकप्रिय बन गये हैं कि हर परिवार में किसी न किसी रूप में उनका अस्तित्व रहता है। कोंकणी लोकसाहित्य में विष्णु के कई संदर्भ आये हैं। चौरंग के अन्तर्गत कई देवताओं से नमन के साथ साथ विष्णु का नमन इस प्रकार मिलता है -

उजया वाटेन वैतल्या इष्णूदेवा यमूण बा

उजया वाटेन वैतल्या इष्णूदेवा यमूण मू[४६]

सागर-मंथन के समय अमृतोत्पत्ति एवं मोहिनी के रूप में अमृतकलश व ले जाने का संदर्भ भी यहाँ चित्रित मिलता है । समुद्रमंथन के समय रत से लक्ष्मी की उत्पत्ति और विष्णू के द्वारा उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार कर का प्रसंग भी इस साहित्य में मिलता है। जैसे -

त्यास वेळार इष्णून घेयलें रुप मोइनीशें बां
त्यास वेळार इष्णून घेयलें रुप मोइनीशें मू
(उसी समय विष्णु ने धारण किया रूप मोहिनी का)
घुसळीता घुसळीता रत्न भायर सरलें बा
घुसळीता घुसळीता रत्न भायर सरलें मू
(समुद्र को मथते मथते रत्न आया बाहर)
तें रत्न नक्षीम इष्णू बायल जाली बा
तें रत्न नक्षीम इष्णू बायल जाली मू
(वह रत्न, लक्ष्मी , विष्णू की पत्नी बनी)[४७]

शिगमो (होली) के अन्त में समाप्ति गीत में भी विष्णू का नाम आया है। जैसे-

आमचो विश्णू आयलो, ब्रह्मा आयलो
ध्यानी समजलो मनी समजलो
खैरीची बी म्हणून त्याची परीक्षा केली
विश्णून घेतलें खोरें कुदळ
गुरून घेतली खैरीची बो[४८]

तुलसी

तुलसी को पवित्र पौधा माना जाता है। भागवत तथा अन्य पुराणों में तुलसी के जीवनसंबन्धी कई कथाएँ मिलती हैं। वैष्णव लोग तुलसी को

पवित्र मानते हैं और पूजा में इसके पत्तों का उपयोग करते हैं। तुलसी की उपासना विष्णु की पटरानी के रूप में होती है। जन्म से मृत्यु तक तुलसी का जीवन में विशेष महत्व रहा है। मरणासन्न व्यक्ति के मुँह में तुलसीदल डालकर उसके उद्धार की कल्पना लोकजीवन में सर्वविदित है। तुलसीदल के बिना विष्णु और कृष्ण की पूजा अधूरी मानी जाती है। प्रसाद में भी तुलसीदल का उपयोग हमेशा किया जाता है। ऐसा विश्वास भी है कि तुलसी किसी दैत्य की पत्नी थी और उसके पातिव्रत्य से प्रभावित होकर विष्णु ने लक्ष्मी के अंश को लेकर तुलसी का पौधा बना दिया जो वृन्दा के नाम से प्रसिद्ध है। भागवत पुराण के अनुसार तुलसी-शालिग्राम का विवाह भी रचाया जाता है। तुलसी के लिए सुरस और सुरसा नाम भी प्रचलित हैं। लोकमानस में इसे देवी माना गया है और आंगन में रोपकर उसकी हमेशा पूजा की जाती है। स्नान करके पवित्रता के साथ इसे सींचा जाता है। संध्या के समय दीपक जलाया जाता है। जीवन में ऐश्वर्य आनन्द एवं पारिवारिक सन्तोष के लिए ऐसा किया जाता है। चतुर्मास के समय तुलसी की पूजा अत्यन्त फलदायक मानी जाती है। हिन्दू संस्कृति के चिह्न के रूप में तुलसी के पौधे की आंगन में प्रतिष्ठा करके घर के ऐश्वर्य एवं धार्मिक हित को बढ़ाया जा सकता है। तुलसी को हरिप्रिया भी कहा जाता है जिसका अर्थ है विष्णु के लिए प्रिय। वे भूतों को भगानेवाली मानी जाती हैं। इसलिए उन्हें भूतघ्नी भी कहते हैं। लोकविश्वास भी यही है कि जहाँ तुलसी का पौधा है वहाँ भूत नहीं आते। तुलसी के संबन्ध में अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। जैसे -

> तुलसा महारानी नमो नमो, हरि की पटरानी नमो नमो
> जो तुलसी ऐ सबेरे पूजै, भगवान के दरसन पावै
> मेरी री आंगन तुलसा, अरे तुलसा झलरि रही रे [४९]

तुलसी की उपासना में उनकी महिमा का गायन प्रमुख अंग है।

लोकजीवन के विविध कार्यों की आधारभूमि तुलसी देवता ही हैं किसी गीत में तुलसी से दलों की माँग की जाती है -

नमो नमो तुलसा महारानी
तुम्हारे अंग सहसदल सो हैं
एकु दलु हमका देव विष्णु-रानी [५०]

कोंकणी लोकसाहित्य में भी तुलसी को आंगन में रखने एवं उसकी पूजा करने का चित्र मिलता है -

अंगणांतल्या तुळशी माये पार्वतीक यमूण बा
अंगणांतल्या तुळशी माये पार्वतीक यमूण मू[५१]

अन्यत्र उसकी महिमा इस प्रकार गाई गई है -

तुलसी माये तुका नमन घालूँ[५२]

कहीं तुलसी के पौधों के बीच कावड रखने की बात कही गई है। जैसे

भरली कावड घेवन देसाय घरि चालला बा
तुळशीच्या पिंडवानी कावड ठेविली बा[५३]

लोकविश्वास यही मानता है कि -

जिस घर में सै तुलसां का बिड़ला उडै नित उठ आवै भगवान [५४]

तुलसी में हमेशा भगवान का वास होता है। तुलसी की पूजा हर दिन की जाती है । उसे भगवान कृष्ण की पत्नी मानकर सोमवती अमावस्या का व्रत रखकर उसकी पूजा की जाती है। कार्तिक मास में इसकी विशेष पूजा होती है। कार्तिक मास की शुक्ला द्वादशी को तुलसी का विवाह रचाया

जाता है। स्त्रियाँ नित्य प्रति प्रातः तथा सायं उसकी पूजा अक्षत, रोरी, पुष्प और नैवेद्य चढाकर करती हैं। संध्या के समय दीपक जलाया जाता है और उस पर गंगाजल चढ़ाकर मंत्रपाठ किया जाता है

करिया तुलसी साँवर बान, तुलसी लाई सदा फल पाई
पाँच पदारथ सोना पाई, तुलसी महारानी एहि जग नाहिं
जनम जनम के पाप कटित करीं तुलसी महारानी नमो नमः[५५]

रविवार और मंगलवार को तुलसी की पत्तियों को तोड़ना निषिद्ध माना गया है। भोजन में तुलसी के पत्तों को डालकर भक्त लोग भगवान का भोग लगाते हैं। विवाहादि भोज के अवसर पर भी तुलसी की पत्तियाँ मंत्र पढ़कर भोजन में डाल दी जाती हैं। हिन्दी और कोंकणी के लोकसाहित्य में इस प्रकार धार्मिक वातावरण से संबद्ध करके तुलसी की महत्ता चित्रित की गई है।

लक्ष्मी

लक्ष्मी विष्णु की पत्नी हैं जो वस्त्र, भोजन, पेय तथा धन की प्रदात्री रही हैं। लक्ष्मी प्रकृति है और नारायण (विष्णु) पुरुष। लक्ष्मी का जन्म समुद्रमंथन के समय चौदहों रत्नों के साथ हुआ था। लोकसाहित्य में इसके संदर्भ देखे जा सकते हैं। कोंकणी लोकसाहित्य में समुद्रमंथन के चित्रण के संदर्भ में लक्ष्मी की उत्पत्ति इस प्रकार कही गई है -

घुसळीता घुसळीता रत्न भायर सरलें बा
घुसळीता घुसळीता रत्न भायर सरलें मू
ते रत्न नक्षीम इष्णू बायल जाली बा
ते रत्न नक्षीम इष्णू बायल जाली मू [५६]

क्षीरसागर से उत्पन्न इस देवी का रूप, सौन्दर्य, महिमा तथा कां‍ अद्वितीय थी। उन्होंने विष्णु को अपने पति के रूप में चुना और विष्णु ने उ‍ अपने वक्षस्थल पर स्थान दिया। सीता, रुक्मिणी और तुलसी लक्ष्मी ‍ अवतार माने जाते हैं। गोबर में देवी का वास माना जाता है। लोकजीव‍ में गोबर का बड़ा महत्व रहा है। कोंकणी लोकसाहित्य में शिगमो (होली के चित्रण में *धालो* नृत्य की समाप्ति पर गोबर का तिलक लगाने की वि‍ रहती है। लोकगीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

धालांच्या माथ्यार शेणाचा काला	(धालों के माथे पर गोबर का तिलक
आयच्यान धालो सोंपोवया गे	आज धालो समाप्त करेंगे, री
आयच्यान धालो सोंपोवया [५७]	आज धालो समाप्त करेंगे)

लक्ष्मी का वास अष्टदल कमलासन पर है। हाथों में कमल, अमृतघट, श्रीफल तथा शंख होता है। इनके मस्तक पर मुकुट, वक्षस्थल पर हार, कानों में कुंडल, बाहुओं में केयूर, मणिबन्धों पर चूडी-कंगन,कटिप्रदेश में करधनी और नाक में नथ है। वे हमेशा आभूषणों से सुसज्जित रहती हैं।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दिवाली के दिन हिन्दी तथा कोंकणी समाज में लक्ष्मी की पूजा का प्रचलन है। लोकविश्वास यही है कि इस दिन लक्ष्मी घर घर में आकर झाँकती रहती है। इसलिए दिवाली के दिनों में घर सजाने और सँवारने की प्रथा चलती है। इसके साथ साथ लक्ष्मी के आगमन के उपलक्ष्य में सभी लोग नवीन एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करते हैं। घर में लक्ष्मी की पत्थर, धातु एवं चाँदी की मूर्तियों की पूजा की जाती है। पूजन के समय विपुल मात्रा में सोने चाँदी के गहने सिक्के आदि भी लक्ष्मी के साथ रख दिए जाते हैं।

दीपावली के दिन लक्ष्मी का व्रत रखा जाता है। लक्ष्मी प्राप्ति के

लिए फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को लक्ष्मी सीताष्टमी का व्रत रखा जाता है। संसार में दूर दूर रहनेवाले भी इसे वर्ष भर का मुख्य त्योहार मान घर लौटते रहते हैं। लक्ष्मी पूजन से मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला आदि को बहुत ही प्रोत्साहन मिला है। इन दिनों लक्ष्मी के चित्रों और मूर्तियों की भारी माँग रहती है।

हनुमान

हनुमान की गणना चिरंजीवियों में की जाती है। कहा ही गया है

> अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः
> कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरंजीविनः

हनुमान को शंकरसुवन, पवनसुत, तथा केसरीनन्दन कहा जाता है। हनुमान के संबन्ध में अनेक लोककथाएँ प्रसिद्ध हैं। जब वे बालक थे तब भूख से तड़पते हुए हनुमान ने सूर्य को रोटी समझकर निगल लिया था। इन्द्र ने क्रुद्ध होकर उनकी हनु पर वज्र से आघात किया। उसी प्रकार रामभक्त हनुमान का भी रूप लोक में प्रसिद्ध है। ये सब कथाएँ हनुमान के शक्तिशाली व्यक्तित्व एवं दिव्यता का स्मरण दिलानेवाली हैं। लोगों का विश्वास है कि वे आज भी कैलास पर्वत पर कदलीवन में श्रीराम के ध्यान में मग्न हैं।[५८] हनुमान वानरजाति के माने जाते हैं । रामावत वैष्णवधर्म के विकास के साथ साथ लोक में उनका देवीकरण हुआ।[५९] हिन्दी क्षेत्र में हनुमान की पूजा जोरों पर है, लेकिन कोंकणी क्षेत्र में केवल देव के रूप में उनकी पूजा की जाती है। उतनी धूमधाम से नहीं जितना कि हिन्दी क्षेत्र में। रामलीला में हनुमान पात्र के रूप में लोगों के सामने आते हैं।

लोगों के बीच बजरंगबली के रूप में उनकी पूजा होती है। अखाडों में उनकी मूर्ति की स्थापना करके उनके वीरत्व की पूजा, आराधना होती

है। भक्तजन मंगलवार को हनुमान जयंती के उपलक्ष्य में व्रत रखते हैं औ लवणयुक्त भोजन का प्रयोग नहीं करते। दिल्ली, राजस्थान आदि स्थान पर हनुमान के नाम पर मन्दिर एवं तीर्थ बने हुए हैं। वाराणसी में संकटमोच मन्दिर, और प्रयाग में संगम पर स्थित मन्दिर, अयोध्या में हनुमान गढ़ी क मन्दिर प्रसिद्ध है।[६०] यह उनकी लोकप्रियता का ही सूचक है। कोंकणी कहावत *घाटावेलो हनुमंत सो शोभे पुरतें* (घाट के हनुमान के जैसे शोभित होता है) इसी ओर संकेत करता है। ग्रामवासी उन्हें ग्राम के रक्षक के रूप में स्वीकार करते हैं। हिन्दी लोकसाहित्य में और लोककला में उनका अक्षुण्ण स्थान है। लोगों का विश्वास है कि जहाँ रामकथा होती है हनुमानजी वहाँ आते हैं। हनुमान की लोकप्रियता इस बात से व्यक्त होती है कि लोग अपने अंगों पर हनुमान के अतिसुन्दर चित्र गोदते रहते हैं। कहीं कहीं शुभंकर के रूप में मन्दिर के प्रवेश द्वार पर भी इनकी मूर्ति लगाई जाती है। धर्मशालाओं, मन्दिरों, अखाड़ों और पुरानी हवेलियों में हनुमान के चित्र उत्तम शैली में चित्रित रहते हैं। गले के तावीज़ में भी इनके चित्र धारण किए जाते हैं। राममन्दिरों में हनुमान की मूर्ति भी पाई जाती है।

कोंकणी लोकसाहित्य में भी हनुमान की उत्पत्ति, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उनके कार्य, आदि के बारे में चित्रित मिलता है। जैसे -

नोव मयन्यांनी	(नौ महीने बाद
अंजनी बाळांत जाली	अंजनी प्रसविनी हुई
हनुमंत जल्मलो	हनुमान का जन्म हुआ
उडण तेचें आकाशाक	उसकी उडान आकाश की ओर रही
आमरूत फळ म्हणोन	अमरूद का फल मानकर
हनुमंत खावोंक गेला	हनुमान खाने चला

आकाशींचो सूर्य याकूळ जाला[६१]   आकाश के सूर्य को)

रावण द्वारा अपहरण की गई सीता को खोज कर राम की मुद्रिका उन तक पहुँचाने का कार्य हनुमान ने किया । कोंकणी लोकसाहित्य में इसकी ओर भी संकेत मिलता है। जैसे -

हनुमंतान केलां उड्डाण	(हनुमान उड़ गये
हुस्केच्या बनांत पावला	अशोकवन में पहुँचे
शितेक देकून मुदी टांकला	सीता को देखा मुद्रिका डाली
मुदी टांकली आपूण लिपलो	आप छिप गए
मुदी तयेन देकिली [६२]	मुद्रिका उन्होंने देख ली)

अन्य देवताओं के साथ हनुमान का भी नमन कोंकणी लोकगीतों की विशेषता रही है। हनुमान का नमन करते हुए लोककवि कहता है -

इकणसायें नोमोन कोरा	(उन्नीसवाँ नमन
ईर हनुमंता गा	वीर हनुमान को
ईर हनुमंत यमूण[६३]	वीर हनुमान को नमन)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्यों में ईश्वर के प्रति आस्था, वैराग्यभावना, भक्ति की प्रमुखता, देवी देवताओं की उपासना आदि समान रूप से मिलते हैं। इन भावनाओं से प्रभावित अनेक गीत दोनों भाषाओं के लोकसाहित्य में मिलते हैं। लोकसाहित्य में ईश्वर को दृश्य् एवं आश्चर्यपूर्ण शक्ति के रूप में देखा जाता है। जहाँ तक ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर की बात है, ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता, विष्णु को रक्षक और शिव को संहारक माना गया है। कहीं कहीं प्रतीक के रूप में ब्रह्मा को बीज बोनेवाला, विष्णु को कुदाल से पृथ्वी को खोदनेवाला माना गया है।[६४]

लेकिन ऐसे प्रसंग बहुत कम हैं। कोंकणी में ईसाई संस्कृति के प्रभाव के कारण हिन्दू संस्कृति के कई अंश फीके ही रह गए हैं। जैसे -

पयलें नमन देव बप्पा	(पहला नमन देव पिता को
दुसरें नमन देवा सुता	दूसरा नमन देव पुत्र को
तिसरें नमन इस्पिरि संता	तीसरा नमन ईश्वर के संत को
सर्वहि देव एकच रे [६५]	सभी देव एक ही हैं)

यहाँ पर सभी देव एक ही हैं कहकर धर्मों की भिन्नता को मिटाने का श्रम किया गया है। *शिवोली जागर* में तेल के दीपक के स्थान पर मोमबत्ती जलाई जाती है। इसी प्रकार

एदि एदि सांक्षी शबरांची	(इतना बड़ा मन्दिर शबरों का
तिंतु आसा सायबीण भांगराची[६६]	अन्दर सोने का बिंब देवी का)

यहाँ पर सायबीण शब्द ईसाई संस्कृति का ही वाचक रहा है जो माता मरियम की ओर संकेत करता है।

हिन्दी की कहानी *बात का दाम* और कोंकणी की *जाली म्हाजी गोश्ट आतां टाक म्हाजी म्होर* नाम की कथाओं में ईश्वर अपने भक्तों की रक्षा करते दिखाए गए हैं। कोंकणी में एक कहावत है - *जांचें मन भोळें तांका देव दिता केळें* (जिनका मन भोला है उनको ईश्वर सब कुछ देता रहता है) और हिन्दी की कहावत *भगवान देलन तो छप्पर फार के देलन* इसी ओर संकेत करती हैं। कोंकणी की कथा *म्हातारे पोर देवाक सोदूंक वयता* (बुढ़िया का बच्चा ईश्वर की खोज में चलता है) में ईश्वर में विश्वास एवं असंभव कार्यों को संभव कराने की ईश्वर की शक्ति की ओर ही संकेत किया गया है। हिन्दी और कोंकणी लोककथाओं में ईश्वर शरणार्थियों का तारण करते रहते हैं। *चमत्कारी अतिथि* नाम की कथा में लक्ष्मी और विष्णू

भूमि पर घूमने आए हैं। धनवान के द्वार पर खटखटाने से उन्हें अन्दर प्रवेश नहीं मिलता। दरिद्र के घर में स्वामिनी उन्हें अन्दर प्रवेश देती है।[६८] जब विश्व की कोई भौतिक शक्ति उलझनों को सुलझाने में असमर्थ हो जाती है तब यह आवश्यक हो जाता है कि कोई दैवी शक्ति अपने अलौकिक चमत्कार एवं युक्ति से उलझन को सुलझा दे। हिन्दी एवं कोंकणी की लोककथाओं में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं। इन दैवी शक्तियों की दया से एक ही पल में सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और पाठक मन ही मन आनन्दित हो जाते हैं। इन शक्तियो में कभी प्रकृति के देवता, स्वर्ग की देवियाँ और स्वयं भगवान ही अवतरित होते हैं। इनसे धर्म पर हमारी आस्था बढ़ती है और ईश्वर में विश्वास हो जाता है। संकट के समय भगवान की सहायता मिलने का धैर्य हमारे मन में पैदा होता है। भगवान भक्त के पास आता है, क्योंकि वह करुणामय है। उनके ज़रिए भक्त का दुःख देखा नहीं जाता। मिथिला की कथा *विद्यापति के घर भगवान* में यह वर्णित है।[६९] ईश्वर में विश्वास उसको जीवन में सफलता देता है।

लोकदेवता

लोकसंस्कृति असल में हर प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर होती है जो आदिकाल से चली आती है। इस लोकनदी की निश्चल धारा में जनजीवन के दर्शन किए जा सकते हैं। उस प्रदेश की धरती के स्वर, संस्कार, जीवनदर्शन, लोकविश्वास एवं लोकचिन्तन के प्रतीक इस संस्कृति में पाये जाते हैं। इसकी मुख्य विशेषता यही होती है कि यह जनमानस की सामूहिक चेतना का सदियों से भोगा हुआ यथार्थ होती है। इनकी आचारसंहिता नहीं है, कोई धर्मगुरु भी नहीं होता। यह अनुभवजन्य नैसर्गिक संस्कृति का स्वरूप ही होता है। इसीसे लोकदेवताओं का उदय होता है। हिन्दी तथा कोंकणी समाज में इस प्रकार के लोकदेवताओं का अस्तित्व एवं उनसे

संबन्धित कई विश्वास तथा आराधनाएँ होती रहती हैं। बोलचाल की भिन्नत के बावजूद दोनों समाजों में समान रूप से लोकदेवताओं की आराधना की जाती है। उनके नामों में अन्तर है पर कामों में समानता रहती है। इन लोकदेवताओं का उदय जनपदीय परंपराओं से जुड़ा हुआ है। इनका स्थापित धर्मों से कोई संबन्ध नहीं है। मठ मन्दिरों का प्रश्न ही यहाँ नहीं उठता। ये पूर्णतः ग्रामीण संस्कृति एवं धरती माता की देन हैं। इन देवताओं का जन्म गाँव की मिट्टी से ही हुआ है। हिन्दी क्षेत्र के कुछ प्रमुख देवता हैं- - भय्यां, भैरूजी, बालाजी, साँझी, नागदेवता, भूत आदि। इनमें से कोई खेती का रक्षक होता है और कोई वर्षा देनेवाला होता है। ऐसा विश्वास है कि ये लोकदेवता लोगों की पीड़ा हरते रहते हैं, उन्हें समृद्धि देते हैं और खुशहाल रखते हैं। लोकविश्वास के अनुसार ये कण कण में, पात पात में बसते रहते हैं। कहीं सूखा पड़ने पर कहीं कृषि की संपन्नता के अर्थ, कहीं से मनुष्य एवं पशुओं के रक्षकों के रूप में इनका वर्चस्व दिखाई पड़ता है। हिन्दी समाज में लोकदेवियों में धरती मैया, होरी मैया, खों खों मैया, कैला मैया, शीतला देवी आदि प्रसिद्ध हैं।

कोंकणी समाज में भी इस प्रकार के लोकदेवताओं की आराधना मिलती है। पुरूस, म्हाल जल्मी, बेताल, आठोळो, शिमरो देव, काळभैरांव, भूतनाथ , रवळनाथ आदि देवताओं की पुरानी पत्थर की मूर्तियाँ मिलती हैं। इन्हें क्षेत्रदेवता भी कहा जाता है। इनके अतिरिक्त नागेश, मंगेश, रामनाथ, दामोदर, केशव, श्री अनंत, देवकीकृष्ण, कामाक्षी, भगवती, विठोबा, आदि कुलदेवता भी अपने छोटे छोटे मन्दिरों के साथ मिलते हैं। इन्हें सात्विक एवं कुलदेवता माना जाता है। स्त्री देवताओं में सांतेर, शीतलादेवी, भुमका देवी, खुंटीमाया, केळबाय,मावली आदि का उल्लेख किया जा सकता है। गाँवों के इन देवी-देवताओं की पूजा अर्चना में धर्मभेद या जातिभेद की

अड़चन नहीं है। सभी धर्मावलंबी समान रूप से इनकी पूजा करते रहते हैं। कवळी के शांतदुर्ग (सांतेर) के मन्दिर में साल में एक बार महर जाति के लोगों को भी गर्भगृह में प्रवेश करने की अनुमति है।[७०] गोवा में महर जाति का कुल सबसे प्राचीन माना जाता है। इसलिए महर को *बड़े घर का* कहकर पुकारा जाता है। जब इस कुल का मूल पुरुष मर गया तो उसे *म्हारू* कहा गया और लोग उसकी पूजा अर्चना करने लगे। आज भी उससे कुल की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। ग्रामदेवताओं में म्हार का विशेष महत्व रहता है। लोकगीत इस प्रकार है --

घाटाची ताळी कोंकणाची माळी	(घाट का ताल, कोंकण का तल्ला
दरयाचो किनारो	सागर का किनारा
इतलें सत्त गाजयणारो	शक्तियुक्त गरजनेवाला
तूं पाज्जेचो म्हारू	तू मेंड का महर
खट्टां भुतां वदयिल्लो	दुर्गम भूतों को दण्ड देनेवाला
इतली भुतां खटां तुजे मुठींत घेवन	इतने दुर्गम भूतों को मुट्ठी में लेकर
आतां राखण दी आनी बरें कर[७१]	अब रक्षा कर और कल्याण कर)

कोंकणी लोकमानस ने इस प्रकार अनेक लोकदेवताओं और देवियों को उपासना दे रखी है। यह किसी न किसी विश्वास पर आधारित है।

कोंकणी समाज में इसी प्रकार *खापरी* की पूजा अर्चना भी होती है। विश्वास है कि यह परिवार को नाश से बचाता है। बालकों के दोष दूर करता है। रोग, अपघात आदि से बचाता है और परिवार की रक्षा करता है। तालाब, मैदान, खेत का बाँध, गाँव की सीमा, सब कहीं इनका वास रहता है। सीमा पर रहनेवाला देवता लोगों को रास्ता दिखाता रहता है।

इनमें कुछ देवताओं का वास वृक्षों पर होता है। अधिकांश देवता वट, पीपल, गूलर, बकुल, बहेड़ा, आदि वृक्षों पर वास करते हैं।

भय्यां

भय्यां, भौमिया आदि नामों से कई प्रदेशों में पूजे जानेवाले इस देवता का हिन्दी क्षेत्र में बड़ा ही महत्व रहा है। पश्चिम में इसे पुरुष और अयोध्या में भूमिया रानी कहकर स्त्री के रूप में इसकी आराधना होती है। पुरुष हो या स्त्री, यह देवता असल में उर्वरता लानेवाला माना जाता है। मिट्टी से इसका विशेष संबन्ध है। गाँवों में भौमिया का मन्दिर सजाया जाता है। लुनाई के बाद इसकी पूजा की जाती है। जब गाँव विशेष को बसाया गया तब सबसे पहले पाँच या सात ईंटों की एक आधारशिला रखी गई जो बाद में चलकर यह गाँव के सभी वर्गों का पूजास्थल बन गया। आम तौर पर भौमिया का स्थान छोटे से ईंटों के स्तंभ के रूप में बनाया जाता है जिसके चारों ओर दिये रखने के स्थान होते हैं। जब घर में बच्चा पैदा होता है तब छठी पर दीपक जलाकर औरतें भौमिया की पूजा करती हैं। शादी पर दूल्हे को भौमिया की *धोक* देनी होती है। इस समय इसके नाम पर ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता है। इतवार के दिन स्त्रियाँ बच्चे को इसके मन्दिर ले जाती हैं। गाय या भैंस का पहला दूध इसी पर अर्पित किया जाता है। स्त्रियों का गीत इस प्रकार है -

भय्यां म्हारा दई देवता इस पै जोत जलावैं
सुख देवै समृधि देवै हम इसके गुण गावैं [७२]

भौमिया के लिए चतुर्दशी पुणयतिथि मानी जाती है। कहीं कहीं उसे ब्राह्मण माना जाता है जो देवता के रूप में पूजा जाता है। भौमिया को दो प्रकार का माना जाता है। उपकार करनेवाला और हानि करनेवाला। हानि से

बचने के लिए इनकी विशेष पूजा की जाती है। उर्वरता के देवता के रूप में कहीं कहीं मृत्यु के उपरांत छोड़ दिए जानेवाले साँड को भी भौमिया कहा जाता है। लोगों का विश्वास है कि मृत व्यक्ति के समस्त पापों को वह हर लेता है। उत्तर के प्रदेशों में भौमिया को उपकारी देवता माना जाता है। हर एक गाँव में उसका मन्दिर रहता है। बीज जब बोया जाता है तब उसकी रक्षा के लिए भौमिया को पूजा जाता है। उपकारी देवता के रूप में वह सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का नाश करता रहता है।[73]

खुंटी माया

हिन्दी क्षेत्र में जहाँ भौमिया का पूजन होता है वहाँ कोंकणी समाज में खुंटी माया का पूजन किया जाता है। गाँवों में शिगमो (होली) के समय खूँटियों की याद की जाती है। लोकगीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

म्हाल खुंटयेक नमन करी	(म्हाल खुंटी का नमन करो
पाँच खुंटियांक नमन करी [74]	पाँच खूँटियों का नमन करो)

ऐसा विश्वास लोगों में है कि खूँटियों के सामने होली गाढ़ देने के सिवाय यह उत्सव पूरा नहीं होता।

जैसे हिन्दी समाज में भौमिया का पूजन इतवार को होता है, वैसे कोंकणी समाज में खुंटी माया की पूजा इतवार को ही होती है। इतवार के दिन उसके स्थान पर दिया जलाया जाता है । इतवार उसका विशेष दिन माना जाता है। जहाँ इस देवता का वास होता है वहाँ मुर्गी, सुअर आदि मृग नहीं जा सकते। वैसे रजस्वला की छाया तक पड़ना मना है। ऐसा होने पर लोग विश्वास करते हैं कि वह गाँव पर क्रोध करती है और रोग आदि गाँव में प्रवेश करते हैं। इसकी स्थापना गावडी समाज के द्वारा

हुई है। फिर भी ब्राह्मण और समाज के दुसरे वर्ग के लोग, यहाँ तक ईसाई भी उसकी याद किए बिना नहीं रहते। किसी भी मांगलिक अवसर पर उसकी पूजा अर्चना की जाती है।

खुंटी माया का नाम कोंकणी खूँट शब्द से ही निकला है। पाषाण युग से ही लोक में इसका प्रचार रहा है। इस समय खूँटियाँ भी पत्थर की बनी होती थीं। खूँटियों का तेज़ भाग ज़मीन में गाड़ दिया जाता था। गाँव बसाते बसाते गाँव की सीमा निर्धारित करने के लिए ही ऐसा किया जाता था। बाद में गाँव की रक्षा करने की प्रक्रिया में उसको देवी रूप मिल गया। गाँव के म्हाल पुरुस के द्वारा स्थापित होने के कारण इसे म्हाल खुंटी कहा जाता है। गाँव की चारों सीमाओं पर रहकर वह गाँव की रक्षा करती हैं। ऐसा विश्वास है कि वह गाँव में रोग, पीड़ा आदि के आने से रोकती रहती है। ऐसा भी विश्वास है कि गाँव की भूत बाधा को खुंटी माया अपने पैर के नीचे दबा कर रखती है। कारस्कर वृक्ष पर उसका वास रहता है। जैसे हिन्दी क्षेत्र में भौमिया की आराधना कहीं पुरुष के रूप में की जाती है और कहीं स्त्री के रूप में वैसे ही खुंटी की आराधना कहीं पुरुष के रूप में और कहीं स्त्री के रूप में की जाती है।[७५]

भैरव

यह शिव के गणों का मुखिया माना जाता है। उंसके दाहिने हाथ में डमरू और बायें हाथ में त्रिशूल रहता है। यह एक लोकप्रिय देवता है जो नगर का रक्षक माना जाता है। कालभैरव उसका दूसरा नाम है। वह शिवालयों में द्वारपाल का काम करता है। कालभैरव का मन्दिर काशी में प्रसिद्ध है। इसे वाराणसी नगर का कोतवाल माना जाता है। काशी के निवासियों तथा वहाँ पर आनेवाले लोगों की यह रक्षा करता है। लोगों की

रक्षा करने के लिए .यह हाथ में दंड लिए रहता है। अतः इसे दण्डपाणि भी कहा जाता है। डेक्कान में इसे बालभैरव कहा जाता है। घी और मक्खन देकर इसको सन्तुष्ट किया जा सकता है। हर नगर में इसका मन्दिर रहता है। लाठ भैरव इसका और एक नाम है। बनारस में इसे भैरवनाथ भी कहते हैं। भूतों का मालिक होने के नाते भूतभैरव इसका और एक नाम है। इस रूप में वह राक्षस, पिशाच और प्रेतात्माओं को दूर भगाता है।

भैरव शब्द का अर्थ भयानक है। चूँकि यह भूत प्रेतादि को भगाता है इसलिए उसका नाम सार्थक है। उसकी पूजा दूध और मिष्ठान्न से की जाती है। रविवार के दिन इसके दर्शन बड़े ही महत्व के माने जाते हैं। हिन्दी और कोंकणी समाज में समान रूप से काळभैरव का अस्तित्व माना जाता है। कोंकण में तो काले पत्थर पर खुदी हुई इसकी काली मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।[७६] भैरव का वाहन कुत्ता है। प्रेतबाधा से पीड़ित लोगों की झाड़ फूँक भैरव के मन्दिर में की जाती है। सर्पदंश और भूतबाधा जब होती है तब भैरव की पूजा की जाती है। ऐसा करने से सारा भय दूर हो जाता है। हिन्दी क्षेत्र में छोटे बच्चों को भैरव का *गण्डा* पहनाया जाता है ताकि उन्हें नज़र न लगने पाये। उसकी विभूति भी बच्चों को लगाई जाती है।

साँझी

यह हिन्दी समाज में पूजी जानेवाली एक प्रसिद्ध देवी है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके कई नाम हैं। जैसे साँझी, संझ्या माई, साँझी देवी, गुलबाई, रली, मामुलिया, साँजी, झिंझी आदि। दिल्ली में यह नवरात्रों में पूजी जाती है जब कि बिहार में विवाह के पाँच दिन पूर्व इसकी पूजा होती है। व्रज में यह सोलह दिन तक पितृपक्ष में पूजी जाती है। बुन्देलखंड में कहीं कहीं भाद्रपद में भी इसकी पूजा होती है। साँझी का ग्रामीण क्षेत्रों में नवरात्रों म

गीतों और आरती के साथ पूजा होती है। महिलाएँ उन्हें कभी गुरुबहन और कभी रावण की साँझी कहती हैं। साँझी की जलविसर्जित प्रथा बंगाल की दुर्गाविसर्जन प्रथा से मेल खाती है। साँझी-गीत हिन्दी लोकसाहित्य में बड़े ही महत्व के रहे हैं। इन गीतों में लोगों की देवी के प्रति श्रद्धा , कौटुम्बिक संबन्ध, सामाजिक एवं धार्मिक आस्था, हास्य विनोदपूर्ण व्यवहार आदि का आभास मिलता है।[७७] जैसे -

साँझी माई साँझी माई खोल किवाड़ी
कै ल्याई सैं कै ल्याई सैं देखण आली
चम्पा के फूल चमेली की आरसी
ये ल्याई सैं ये ल्याई सैं देखण आली [७८]

आसोज शुक्ला प्रथमा से लेकर दसवीं तक याने दशहरे के दिन तक गाँव के घर आँगन में साँझी के गीतों के मधुर स्वर हर साँझ गूँजते हैं। हर साँझ मुहल्ले की औरतें और युवतियाँ एकत्र होती हैं और साँझी के गीत गाती हैं।-

साँझी संझा हे कनागत परती पाई
देक्खण चाल्लो हे संझा के लणिहार
वोह तै देख्या भाला है, चंदा लाम जड़ाय [७९]

सांतेर

यह कोंकणी समाज की लोकप्रिय देवी रही है। कुडाल से कारवार तक ऐसी एक भी जगह नहीं है जहाँ सांतेर का मन्दिर न हो। लोकगीत इस प्रकार चलता है -

सांतेरी मायेची उंच उंच देवळां (सांतेरी माता के ऊँचे ऊँचे मन्दिर
भांगराच्या कळसा वयर सोबीतचंवरा[८०] स्वर्णकलश पर शोभित हैं चामर)

सांतेर का अर्थ है वल्मीक । ज़मीन से निकलकर यह ऊपर की ओर छोटे से पर्वत के रूप में बढ़ता रहता है सांतेर के मन्दिरों में इस वल्मीक की ही पूजा होती है। गोवा में इसकी पूजा अर्चना सहज ही है। सांतेर को शान्तदुर्गा भी कहा जाता है। शान्तदुर्गा की मूर्ति के साथ साथ कहीं कहीं मन्दिरों में वल्मीक की भी पूजा अर्चना की जाती है। सांतेर की मूर्ति शान्तस्वरूप है, दुर्गा रौद्ररूपिणी है। उसके दाहिने हाथ में तलवार एवं बायें हाथ में राक्षस की खोपड़ी रहती है। उसके पाँवों के नीचे दैत्य है जिसका आकार भैंसे का है। इसके अतिरिक्त भुमका, भगवती, शीतला देवी, कालिका आदि भी मिलती हैं। ये सब सांतेर के ही विविध रूप हैं। दुर्गादेवी तिरहुत की मानी जाती है। वहाँ के ब्राह्मण गोवा आए तो इसे भी साथ ले आये।[८१] दुर्गा के यहाँ सात रूप मिलते हैं - दुर्गा, नवदुर्गा, शान्तादुर्गा, जयदुर्गा, विजयदुर्गा, आर्या दुर्गा और आजा दुर्गा। लोग सांतेर को सात तरह के, सात रंगोंवाले, फूलों की सात मालाएँ पहनाने की मन्नत माँगते हैं। गाँव पर जब संकट आ जाता है तो लोग सांतेर को बुलाते हैं।

ब्रह्मो

ब्रह्मो या बिरमो कोंकणी समाज का एक लोकदेवता है। ब्राह्मण जब आग में पड़ता है या सर्प या बाघ के द्वारा मारा जाता है तो लोगों का विश्वास है कि वह बिरमो बन जाता है।[८२] गाँव में भारद्वाज गोत्र के, गौतम गोत्र के और वसिष्ठ गोत्र के ब्राह्मणों के तीन ब्रह्म देखने को मिलते हैं।[८३] ये तीनों भट के घर के मूलपुरुष रहे हैं। उनकी स्थापना उनके ही घर के पार्श्व में की गई है। यदि गाँव के लोग इनसे मन्नत माँगते हैं तो सामान्य ब्रह्म की ही होती है। भट के ब्रह्मो की मन्नत आम जनता नहीं मान सकती।

ब्रह्मो का दिन सोमवार होता है। उसके सामने पाँच बत्तियों का

दिया जलाया जाता है। कोई कोई यह आराधना गुरुवार को मानते हैं। जो वस्तुएँ उसे दी जाती हैं वे पवित्रता के साथ दी जाती हैं। लोग उसे पान बीड़ा व फल (नारियल) देने की मन्नत करते रहते हैं जिसे इसी समय पूरा किया जाता है। धान उसका विशेष नैवेद्य माना जाता है। साल में एक बार उसके नाम पर ब्रह्मभोज भी दिया जाता है। यह अक्सर पौष के महीने में दिया जाता है। यह चाल चलन पहले केवल भट लोगों के घरों में ही हुआ करती थी। लेकिन बाद में सब जातियों में इसका प्रचलन हुआ और अपने घराने के मूल ब्राह्मण की याद करके उनका अनुग्रह लेने का अधिकार सबको मिल गया।

सर्प को ब्रह्मो का प्रतीक माना जाता है। जहाँ ब्रह्मो का वास रहता है वहाँ सर्प रहता है। कहीं कोई चूक होती है तो वहाँ सर्प दिखाई पड़ता है। तुरन्त उसका परिहार किया जाता है।

लोकविश्वास

संस्कृत में एक श्लोक है -

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम्
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः

यही तत्व हम हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में पाते हैं। सामान्य लोक हमेशा सकारात्मक ही रहते हैं। वे सरल एवं विश्वासी होते हैं। प्रकृति में जो भी मिलता है उसके साथ वे आत्मीयता बरतते हैं। सूर्य, चन्द्र, नदी, पहाड़, वट, पीपल, तुलसी, पृथ्वी सब उनकी आराधना की वस्तुएँ हैं। लोक के लिए पहाड़ भी देवता है, आकाश भी देवता है, पृथ्वी भी देवता है। मिट्टी में वे चैतन्य को देखते हैं। भले ही वे ज्ञानी न रहे हों, फिर भी अपने आचारों

के पालन से वे जीवन में सफलता प्राप्त करते रहते हैं।

पीपल

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसमाज में पीपल को पवित्र एवं पूज्य वृक्ष माना जाता है। इसे समस्त वनस्पतियों का राजा कहा जाता है। इसकी जड़ में विष्णु, तने में केशव, शांखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान हरि तथा फलों में सब देवताओं से युक्त अच्युत का निवास माना जाता है। लोग विश्वास करते हैं कि इसकी सेवा हजार पापों का विनाश करती है। भागवतपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण स्वर्ग जाने के पहले ध्यानमग्न होकर इसी यज्ञीय पवित्र वृक्ष के नीचे बैठे थे। पीपल को ब्राह्मण माना जाता है। पूजा के समय इसे यज्ञोपवीत पहनाया जाता है। पीपल को काटना पाप माना जाता है। इसे काटनेवाला पितृमातृघाती के समान माना जाता है। इस वृक्ष की लकड़ी यज्ञ के काम आती है। इसकी छाया पुण्यदायक मानी जाती है। पुत्रजन्म या अन्य शुभ अवसरों पर पीपल की शाखा मंडप के द्वार पर लटका दी जाती है। जच्चा जब कुआँ पूजने जाती है तो उसका कलश पीपल की पत्तियों से मंडित किया जाता है। लोकसाहित्य में अनेक जगहों पर पीपल के संदर्भ मिलते हैं। बन्ने बन्नी की आरती उतारते समय एक लोकगीत इस प्रकार गाया जाता है -

तेरा हर्या ए पीपल सुफल फलिए,डाली तै डाली भौं पड़ै
तेरै हाथ लोटा, गोद बेटा कर हे सुहागण आरता[८४]

एक गीत में प्रोषितपतिका अनेक वृक्षों को इस आशा से सींचती रही है कि एक दिन उसका पति घर लौटेगा और उसका मन हरा भरा हो उठेगा -

पीपल सींचूँ तुलसा सींचूँ केले का सिरहूँ
म्हारै है बागा मैं खड़ाए केला

कद आवैगा जोबन का भर्या मेला ८५

लोगों का विश्वास है कि शनिवार के दिन पीपल पूजने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शनिवार के दिन लोग पीपल को दूध, दही और चीनी से सींचते हैं।

नीम

नीम का वृक्ष बहुत ही पवित्र माना जाता है। शीतला माता का निवास नीम पर माना जाता है। लोकगीतों में इस विषय का उल्लेख मिलता है। शीतला माता का निवासस्थान होने के कारण इसे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। चेचक के रोग से पीडित व्यक्ति की चारपाई पर नीम की पत्तियों को बिछाकर सुलाया जाता है। इसकी टहनियों से पंखा झलाई जाती है। नीम का फल रोगी के पास रखा जाता है जिसकी सुगन्ध इस रोग के लिए हितकर मानी जाती है।

लोगों का विश्वास है कि यदि कोई मनुष्य बारह वर्षों तक नीम की दातौन करे, इसकी लकड़ी से पकाए गए अन्न का भोजन करे, इस वृक्ष की वायु का सेवन करे, तब सर्प के काटने का उसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ता। नीम को भूतभगवान माना जाता है। उसकी पत्तियों का प्रयोग दुष्ट प्रेतात्माओं को भगाने के लिए किया जाता है। भूत से आविष्ट व्यक्ति को नीम की पत्तियों को जलाकर उसका धुआँ दिया जाता है । इस धुएँ के प्रभाव से भूत भाग जाता है। प्रसूतिकागृह के मुख्य द्वार पर जलनेवाली अँगीठी में नीम की पत्तियाँ जलाई जाती हैं। इस प्रकार घर में प्रवेश करनेवाले दुष्टात्मा को भगाया जा सकता है। मृतव्यक्ति की शवयात्रा से उत्पन्न स्पर्शदोष को दूर करने के लिए इसकी पत्तियों का प्रयोग किया जाता है। शवयात्रा से लौटनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को नीम की पत्तियाँ चबाने

के लिए दी जाती हैं और इसकी टहनियों से उनके ऊपर जल छिड़का जाता है। इस प्रकार लोकजीवन के प्रारंभ से लेकर अन्त तक नीम लोगों के साथ रहता है।

अंजीर

कोंकणी लोकसाहित्य में अंजीर का बड़ा ही महत्व रहा है। इस वृक्ष को दैवी माना जाता है। लोकसाहित्य में इस वृक्ष के फूल को लेकर कई कल्पनाएँ की जाती हैं। यह फूल आधी रात के समय फूल कर क्षण भर में नष्ट हो जाता है। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

फूल फुलता मद्यान राति	(आधी रात को फूल फूलता है
तें फुल जायता देव सोबी	वह फूल दैवी सौन्दर्य से युक्त है)[८६]

अंजीर पुराने मूल्यों का और नूतन आशाओं का प्रतीक माना जाता है। कोंकणी लोकसाहित्य में अनेक जगहों पर इसका संदर्भ देखा जा सकता है। निम्नलिखित पंक्तियों में समाज में सब लोग बिना किसी भेदभाव के अंजीर के पौधे के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हुए चित्रित हैं और गाते रहते हैं -

दोन पान रुमोड तीनि पान जालो	(दोपत्तोंवाला अंजीरतीनपत्तोंवाला बना
आजून रुमोड फुलोना मू[८७]	वह आज तक फूला नहीं)

मुसोल नाच में इस वृक्ष की प्रदक्षिणा दायीं ओर और बायीं ओर की जाती है। दायीं ओर की प्रदक्षिणा जीवन, विवाह, उर्वरता, गर्भ एवं बच्चे के जन्म से संबन्धित है तो बायीं ओर की प्रदक्षिणा रोग, मृत्यु एवं नाश से संबन्धित है। कहीं कहीं शादी के गीत के रूप में रुमोड का गीत गाया

जाता है। इसमें लड़के के प्रतीक के रूप में रुमोड को माना जाता है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

मारीली कुदळ काडिलो धेंपो	(मारी कुदाल, निकाली मिट्टी
तिंतु रोया रोंपो रुमडाचो[८८]	रोपा गया अंजीर का पौधा)

रुमोड (अंजीर) के रोपण में जातिभेद नहीं दिखाई देता । कहा गया है

म्हारालें पटें कुमारालें खोरें	(म्हार की भूमि कुम्हार का फावडा
रुंदोलें आळें रुमोडाचें[८९]	चौडी बनाई अंजीर की क्यारी)

विवाह के मंडप का पहला खंभा जब गाड़ दिया जाता है तब उस पर अंजीर की शाखा लगा दी जाती है। दूल्हे के घर पर यह दिखाई पड़ता है।

लोगों का विशवास है कि अंजीर का वृक्ष त्रिमूर्तियों का वासस्थान है और इस कारण से स्त्रियाँ पुत्र को प्राप्त करने के उद्देश्य से उसकी प्रदक्षिणा हज़ार बार करती रहती हैं।[९०] ऐसा भी विश्वास है कि फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन धुंध नाम की राक्षसी के द्वारा बच्चे जब सताए जाते हैं तब उसको सन्तुष्ट करने और बच्चों को बचाने के उद्देश्य से स्त्रियाँ अंजीर वृक्ष के चारों और प्रदक्षिणा करती रहती हैं। इसे एक अनुष्ठान का रूप दिया गया है। इससे कोंकणी लोकजीवन में अंजीर के महत्व का सही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। ऐसा भी विश्वास है कि अंजीर के वृक्ष पर ब्रह्मो (ब्राह्मण का भूत) वास करता है जो बच्चों को डराता रहता है। अंजीर की आराधना इस भूत को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से की जाती है।

गंगा

नदियों से संबन्धित अनेक मान्यताएँ लोक में प्रचलित हैं। इनमें गंगा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह हिन्दुओं की परम पवित्र नदी है। हिन्दी

तथा कोंकणी लोकसाहित्य में इस नदी की पवित्रता स्थान स्थान पर चित्रित है। गंगा में नहाने से समस्त पापों का नाश होता है। ऐसा विश्वास है कि इस नदी में स्नान करने से शरीर एवं मन को शान्ति मिलती है। *भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च ददाति नित्यम्* यही गंगा के बारे में कहा गया है। गंगा का माहात्म्य इस श्लोक में व्यक्त है -

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि
मुच्यते सर्वपापेभ्यो स्वर्गलोकं स गच्छति

हिन्दी की कहावत है - *गंगा नहइले सब कुछ पावले* । ग्रहण के दिन गंगा में स्नान करना अनन्त फलदायक माना जाता है। कहावत यों चलती है - ग्रहण को दान गंगा को असनान। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन गंगा में स्नान करने का अत्यधिक महत्व माना गया है। इस दिन उत्तर भारत में गंगास्नान का बहुत बड़ा मेला जुटता है। कार्तिक, माघ वाराणसी के पंचगंगाघाट पर स्नान करने के समधिक माहात्म्य हैं। माघ मास में त्रिवेणी संगम पर तथा वैशाख मास में हरिद्वार में हर की पैड़ी पर गंगास्नान की बड़ी महिमा मानी जाती है। गंगा समस्त प्राणियों को आवागमन के बन्धनों से मुक्त करनेवाली पवित्र शक्ति है। गंगाजल के अभाव में किसी देवता की पूजा पूर्ण नहीं होती। इनके नियमित सेवन एवं अर्चन से भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। गंगा की पावन हिलोर लोकगायिकाओं के हृदय में उतरकर भावनाओं का वेग उत्पन्न करती है। जैसे

आहे सुनु सखिया चलु देखे गंगाजी के लहरिया
गंगा नहैले से पाप कटित होइहैं, निर्मल होइहैं देहिया
आहे सुनु सखिया चलु देखे गंगाजी के लहरिया[११]

मायामोह से पार उतारनेवाली गंगा से लोककवि की यही प्रार्थना है -

हम भरमाओल छी माया में, पार लगावहुँ हे गंगे
कर जोड़ि विनमउ विमल तरंगे
दरसन दिया मोहि पुनमति गंगे
पापोद्धारिणी, सुबुद्धिदायिनी, शान्तिप्रदायिनी हे गंगे [१२]

गाय

पशुपक्षियों से संबन्धित कई लोकविश्वास प्रचलित हैं जिनमें सर्वाधिक प्रमुख हैं गाय और कौआ। ये दोनों मनुष्य के नित्यप्रति के जीवन से बड़ संबन्ध रखते हैं। गाय को तो लोकपरंपरा की माता माना जाता है। इसलिए लोकजीवन में उसका बड़ा ही महत्व है। हिन्दुओं के लिए गाय पवित्र रही है। प्राचीनकाल में गाय से असंख्य यज्ञीय पदार्थ जैसे घी, दही, दूध, प्राप्त होते थे। वस्तुविनिमय के रूप में भी गाय बैल का प्रयोग होता था। पुराण गाय को माता मानते हैं। उसमें सभी देवताओं का निवास माना जाता है। गाय की पूजा की जाती है। उसका वध महापातक माना जाता है। गोहन्ता को प्रायश्चित्त के रूप में गोव्रत रखना पड़ता है। लोकगीत और लोककथाओं में स्थान स्थान पर गाय एवं गोदान के महत्व के संदर्भ आते हैं। गाँवों में गाय के पहले दूध को एक मिट्टी के पात्र में बाँधकर खूँटी पर देवों के दानार्थ टाँग देते हैं।[१३] गृहप्रवेश के समय जलघट एवं गाय के साथ घर में प्रवेश करने का विधान है। प्रात:काल गाय के दर्शन शुभ माने जाते हैं और काली गाय के दर्शन सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। लोगों का मानना है कि गाय जहाँ जहाँ अपने खुरों से भूमि स्पर्श करती है वहाँ उसके रोम गिरने से भूमि उपजाऊ हो जाती है। मकरसंक्रान्ति, दीपावली, आदि से संबद्ध होकर गायों को सार्वजनिक रूप से चारा डाला जाता है। दीपावली के दिन उन्हें

सजाया जाता है। उनके गले में घुँघुरू बाँधे जाते हैं। सींगों को सरसों के तेल से लीपा पोता जाता है। शरीर पर मेहँदी के गोल चिह्न लगाये जाते हैं। गोपाष्टमी के दिन मन्दिरों और शहरों में गोपूजन होता है। कोंकणी लोकसाहित्य में भी गाय की वन्दना की जाती है। जैसे

धर्तरेशेर गाय उबी तये यमूण बा॰ (धरती पर खड़ी गाय को नमन है
धर्तरेशेर गाय उबी तये यमूण मू[९३] धरती पर खड़ी गाय को तो नमन है)

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में गोमाता का विशेष महत्व रहा है जिसका कोंकणी लोकसाहित्य के विभिन्न संदर्भों में चित्रण हुआ है।श्रीकृष्ण जिसे कोंकणी लोग प्रिय देवता मानते हैं, गोपालक के रूप में चित्रित हैं। श्रीकृष्ण की गायों को कौन पसन्द नहीं करता? वेदों में तो गायों का *माता रुद्राणाम् दुहिता वसूनाम्* माना गया है। तीर्थस्नान, ब्राह्मणभोजन, महादान, भगवत्सेवा, समस्त व्रतोपवास, समस्त तप, पृथ्वी पर्यटन और सत्यभाषण से जो पुण्य मिलता है वह सब केवल गाय की सेवा करने से प्राप्त होता है, ऐसा लोकविश्वास है। गाय लोक के लिए दुग्धभुवन की देवी है। वह भूखों को खिलाती है। कोंकणी लोग उसे देवी मानते हैं। धर पर दूध देनेवाली गाय हो तो घर का ऐश्वर्य बढ़ जाता है। लोकगीत इस प्रकार है -

गाये मागे कान गे	(मेरी गाय के कान
आसडपाचे सूप गे	ओसाने के सूप हैं
मागे घर सूद गे	मेरा घर शुद्ध है
तये शेणान [९४]	उसके गोबर से)

लोगों का मानना है कि सपने में गौ के दर्शन कल्याणकारी एवं व्याधिनाशक है। उनका विश्वास है कि गोबर एवं गोमूत्र में लक्ष्मी का वास है। गोसेवा से पुत्रप्राप्ति संभव होती है। इस प्रकार लोकजीवन में धार्मिक एवं व्यावहारिक

दृष्टि से गाय का महत्व रहा है। गाय प्रतिदिन के जीवन में लोगों के साथ जीती रहती है । इसके प्रमाण कोंकणी लोकसाहित्य में खूब मिलते हैं। जैसे -

चोय्याय यशोदी	(देखो यशोदा
एक गायक धार काडता	एक गाय को दुहती है
खोल्लो धोर्नु एक चेर्डुं रडता	कटोरा ले एक बालक रोता है
दूध मग्गूनु पिवंचाक आशा करता	दूध पीने की आशा करता है
यशोंदो गल्लाक उम्मा दिता [१५]	यशोदा के गालों को चूमता है)

यहाँ पर यशोदा एक साधारण सी माता है जो गाय को दुहती है और दूध माँगनेवाले अपने बच्चे को दूध पिलाती है। यह एक आम बात है जो हर घर में हर दिन होती रहती है। कृष्ण के लिए प्रभाती गाते समय गाय और बछड़ों का संदर्भ इस प्रकार आया है -

उठ रे कृष्णा वेळु जल्ला वासरां सोडूक[१६]
(उठ रे कृष्ण समय आया बछड़े चराने का)

हमारी संस्कृति में गाय की विशेष भूमिका रही है। गाय का दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर सब मिलाकर पंचगव्य कहा जाता है। इसे पवित्र माना जाता है। कहा गया है -

पञ्चगव्येन पूतं तु वाजिमेधफलं लभेत्
गव्यं तु परमं मेध्यं गव्यादन्यद् न विद्यते
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पञ्चगव्यं तु यः पिबेत्
यावज्जीवकृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते

जन्म मरण की अशुद्धियों को दूर करती हुई गाय मानव को शुद्ध बनाती है। होली के उत्सव में कोंकणी समाज में धालो नृत्य को पूर्ण करने के लिए गोबर का तिलक लगाया जाता है। गाय की इस महत्ता को दिखानेवाले

संग कोंकणी लोकसाहित्य में मिलते हैं। गाय के संबन्ध में जितने लोकविश्वास हिन्दी और कोंकणी समाज में चलते रहे हैं उतने और किसी जानवर को लेकर नहीं। गोमाता कहने से हिन्दू श्रद्धा से अवनत हो जाता है। मृत्युशय्या पर पड़े हुए व्यक्ति के द्वारा गोदान कराया जाता है। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से मृत्यु के पश्चात् वैतरिणी को पार करते समय बड़ी सहायता मिलती है। ऐसा विश्वास है कि मृतात्मा गाय की पूँछ को पकड़कर वैतरणी को आसानी से पार कर जाती है। ग्रहण के अवसर पर तीर्थों में गोदान की परंपरा चिरकाल से चली आती है। ब्राह्मण को दिया हुआ गोदान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। विश्वास इस प्रकार रहा है कि -

गवार्थे ब्राह्मणार्थे च प्राणत्यागं करोति यः
सूर्यस्य मंडलं भित्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति

कौआ

कौए से अनेक लोकविश्वास जुड़े हुए हैं। लोक मों कौआ विशेष रूप से स्त्रियों से जुड़ा देखा जा सकता है। वह उनको अपने प्राणप्यारे प्रियतम की सूचना देता रहता है। लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

मोरे रे आँगानवा चनन के री गँछिया
ताहि चढ़ि कुरुरे काग रे
सोने के चोंच मढ़इबो तो हि कागा
जो पिया आवहु आज रे[९७]

यदि कौआ घर के मुंडेर पर आकर कांव कांव करने लगता है तो यह समझा जाता है किसी प्रिय व्यक्ति का आगमन होनेवाला है।[९८] भोजपुरी में इस बोलने को *कउआ का उचरना* कहा जाता है। प्रियतम के आने पर स्त्रियाँ वास्तव में कौए को कटोरे में दूध भात रखकर खिलाती हैं। ऐसे लोकविश्वास

हिन्दी लोकसाहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए

उड़ उड़ काग सुलोचने
काग भइया, जो बीरन आयेंगे आज
सोने मढ़ाऊँ तेरी चोंचली
औ रुपै मढ़ाऊँ तेरे पंख
उड़त में चमके तेरी चोंचली
बैठत में दोऊ पंख[९९]

यदि आज मेरे भाई के आने का समाचार लाओगे तो तेरी चोंच सोने और चाँदी से मढ़वा दूँगी। वह काग को भाई के आने का सगुन बन जाने को कहती है। कोंकणी में भी प्रियजनों की खबर ले आने की बात कौए से जुड़ी हुई है। कोंकणी लोकगीत की पंक्तियाँ देखिए

काक्क्या तूं गोंयां गेलोलो वे?	(कौए तू गोवा गया था क्या?
पुतोले मामा दिकीलो वे?	लल्ला के मामा को देखा था क्या?
आज फाय येतलो म्हण्टालो वे?[१००]	आज या कल आने की बात कहता था?)

सामान्यत: लोकसमाज कौए को सम्मानित दृष्टि से नहीं देखता। कोंकणी लोकगीत की पंक्तियाँ देखिए --

काको मेंडो चोरू	(कौआ बाबा चोर है
काक्याक मारलो मारू	कौए को पड़ा मार रे
काक्याक मारलो पाकारी	कौए को मारा पाँख पर
काको रे धावलो तेकारी	कौआ उड़ा दक्षिण की ओर)[१०१]

लेकिन शकुन और श्राद्ध में इसकी उपेक्षा नहीं की जाती। मुंडेर पर कौए का बोलना अतिथि के आने का संकेत है। लेकिन रात के समय उसका बोलना आगामी अशुभ का सूचक है। जैसे

रातां बोले कागले, दिन बोलैं सिरगाल
चलो सखी इस देश से विपत पड़ेगी हाल [१०२]

सूर्य और चन्द्र

सूर्य और चन्द्र, ग्रह एवं नक्षत्रों से संबन्धित शकुन अपशकुन लोक में प्रचलित हैं। संपूर्ण वर्ष को सूर्य-की गति को आधार बनाकर दो भागों में बाँटा गया है। इसे उत्तरायण तथा दक्षिणायन कहा जाता है। अयनान्त एवं विषुव संकट का काल माना जाता है। इस समय भूत प्रेत आदि से रक्षा पाने के लिए अनुष्ठान किए जाते हैं। दक्षिणायन को दुर्भाग्य का समय माना जाता है और लोगों का विश्वास है कि इस समय मंगल कार्य नहीं किए जाते। मकरसंक्रांति के समय तीर्थों में नहाना और सूर्य की आराधना करना शुभ माना जाता है। लोगों का विश्वास है कि इससे दुर्भाग्य दूर हो जायगा। कहीं कहीं लड़कियाँ अच्छे वर की प्राप्ति के लिए और विवाहिता स्त्रियाँ पुत्रप्राप्ति के लिए सूर्य की आराधना करती हैं। बच्चे की दीर्घायु के लिए भी माता सूर्य की आराधना करती है। पहली बार बच्चे को सूर्य को दिखाना अनुष्ठान के रूप में किया जाता है। ऐसा भी विश्वास है कि सूर्य की दृष्टि से उर्वरता बढ़ती है। लोगों में ऐसा भी विश्वास है कि सूर्य की कृपा से स्त्रियों का बाँझपन दूर हो जाता है।

अमावस्या के दिन चन्द्र का प्रकाश नहीं रहता । इसलिए लोग विश्वास करते हैं कि अमावस्या अपने साथ दुर्भाग्य को लेकर आती है। सोमवार को आनेवाली अमावस्या को पवित्र माना जाता है। इस दिन लोग नहा धोकर व्रत लेते हैं और ब्राह्मणों को दान देते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से भाग्य आ जाता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में ऐसे प्रसंग बीच बीच में दिखाई पड़ते हैं जो लोगों के इस विश्वास का प्रमाण

प्रस्तुत करते हैं। चन्द्रमा से ऐश्वर्य एवं आनन्द की प्रार्थना की जाती है। *भंगरा केसाची राजकुमारी* नामक कोंकणी कथा में राजकुमारी अपने मा पिता के दुर्निश्चय से बचने के लिए और उनसे रक्षा प्राप्त करने के लि चन्द्र के आश्रय में चली जाती है। वह कहती है --

चेंद चेंदा सूत घाली, सूत घाली	(चाँद रे चाँद डोरी डाल दो
हाँव तुगेली बायल जायन,	मैं तुम्हारी पत्नी बनूँगी
बायल जायन[१०३]	पत्नी बनूँगी)

तुरन्त ही चन्द्रमा डोरी डालकर उसे ऊपर की ओर खींच लेता और दोनों वहाँ पर सुख से रहते हैं। *कोंकणी लोककाणयो* नामक संग्र में भी इसी कथा का अनुवर्तन मिलता है । कथा का नाम है भांगरा *केसांची राजकन्या*। इसमें राजकुमारी चन्द्र के बदले सूर्य से विनती करती है और ऐन मौके पर सूर्य उसको सहारा देता है।[१०४] भादों के चन्द्रमा को लेकर एक विश्वास ऐसा भी है कि इस महीने में अमावस्या के बाद पहले दिन चन्द्र को देखनेवाले व्यक्ति को वर्ष भर कई तरह के अभियोग सहने पड़ते हैं। गणेश चतुर्थी के दिन चन्द्रमा को देखना अशुभ माना जाता है। जैसे सूर्य है वैसे ही चन्द्र को भी प्रजनन का देवता माना जाता है। चन्द्रमा को पितरों का वासस्थान भी माना जाता है। उत्तरायण के शुक्लपक्ष में जिनकी मृत्यु होती है, ऐसा विश्वास है कि वे सूर्यलोक को पहुँचते हैं। इसी प्रकार दक्षिणायन के कृष्णपक्ष में मरनेवाले फिर से पृथ्वी पर लौटते हैं।

सूर्य एवं चन्द्रग्रहण का सार्वजनिक और पारिवारिक अनुष्ठानों में विशेष महत्व माना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ग्रहण के समय राहु सूर्य और चन्द्र को निगलता है। नाग लोगों का विश्वास है कि आकाश के महान कुत्ते के द्वारा सूर्य और चन्द्र को निगलना ही ग्रहण कहा

जाता है। ग्रहण के १२ घंटे पहले से खाना पीना मना है। घर का सारा पानी ग्रहण के पहले ही फेंक दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ग्रहण के समय इस पानी में राक्षस का वास होता है। इससे बचने के लिए कहीं कहीं कुश का पत्ता पानी में डाला जाता है। कहीं कहीं इसके लिए तुलसीदल का प्रयोग किया जाता है। ग्रहण की अपवित्रता को दूर करने के लिए परिवार की देवी देवताओं की मूर्तियों के साथ साथ परिवार के लोग भी पवित्र स्नान करते रहते हैं। ग्रहण के समय गर्भिणी स्त्री को कमरे में बन्द रखा जाता है ताकि उसके बच्चे पर इसका प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। कहीं कहीं ग्रहण के बाद तीर्थों में जाकर पवित्र स्नान करना प्रभावकारी माना जाता है। इसके बाद मन्त्रोच्चारण भी किया जाता है। चन्द्रग्रहण के समय काशी में गंगास्नान पवित्र माना जाता है। *ग्रहण को दान गंगा को असनान।* सूर्यग्रहण के बाद कुरुक्षेत्र में नहाना अच्छा फल देनेवाला होता है।[१०५]

कई नक्षत्रों में जन्मे व्यक्तियों का जीवन उनके दुष्प्रभाव से ग्रस्त रहता है, ऐसा भी लोग विश्वास करते हैं। मूल नक्षत्र में जन्मा व्यक्ति पितरों के क्रोध का शिकार बनता है। ऐसे बच्चे को जन्म लेते ही त्याग दिया जाता है। कहीं महत्वपूर्ण अनुष्ठान से पितरों और देवताओं को सन्तुष्ट किया जाता है। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि ऐसे बच्चे पर पिता की दृष्टि न पड़े।

जन्म और मृत्यु

जन्म एवं मृत्यु से संबन्धित कई लोकविश्वास हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं। हिन्दी में एक कहावत है -*तेतर बेटी राज रजावे तेतर बेटा भीख मंगाव* तीन पुत्रों के बाद बेटी जन्म ले तो

उसे धन धान्य एवं राज्य की संपदा मिलती है। उसका गाँव में बड़ा आद होता है। इसके ठीक विपरीत तीन पुत्रियों के बाद पुत्र का जन्म निर्धनत का कारण माना जाता है। कोंकणी समाज में भी लड़की और लड़के वे जन्म से संबन्धित कई विश्वास प्रचलित हैं जैसे -*जग्गो बेसल्यागेरि चेल्ली, निद्देल्यागेरि चेल्लो*(बेटे के जन्म की प्रतीक्षा में जो बिना सोये रहता है उसके घर बेटी का जन्म होता है , जो सुख की नींद सोता है उसके घर बेटे का जन्म होता है।)

मृत्यु से संबन्धित कई विश्वास लोक में प्रचलित हैं। इनका प्रतिफलन हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में भी हुआ है। एकादशी, रामनवमी और शिवरात्रि के दिन मृत्यु प्राप्त करना शुभ माना जाता है। लेकिन *पचरवा* में मरनेवाला व्यक्ति पाँच व्यक्तियों को लेकर मरता है। इस अशुभ की शान्ति के लिए पूजा पाठ किया जाता है। दक्षिणायन में मृत्यु अशुभ मानी जाती है। व्यक्ति के मरने के दूसरे दिन से लेकर उसको तिलांजलि एवं पिंडदान दिया जाता है। ऐसा करने से लोग विश्वास करते हैं कि उसकी आत्मा को शान्ति मिल जाती है और मृतात्मा को भोजन और जल प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मणदान यहाँ पर अनिवार्य माना जाता है। महाब्राह्मण को चारपाई, बिस्तर, बरतन, पहनावा, गहने, जूते, छड़ी, छाता देना अच्छा माना जाता है। ऐसा विश्वास है कि ब्राह्मण को दी हुई ये चीज़ें मृतात्मा को परलोक में मिल जाती हैं।[१०६] इसी विश्वास के अनुसार ब्राह्मण को मिष्टान्न तथा पक्वान्न खिलाए जाते हैं। इसी विश्वास को दिखलानेवाली कहावत कोंकणी में इस प्रकार मिलती है-- *अशिल्याक भुकेक दीना अन्न, मेल्लेल्याक पिंडदान* (जीवित व्यक्ति को खाने को भी नहीं देता, मृत व्यक्ति को पिंडदान करता है।) मृत व्यक्ति के लिए वृषोत्सर्ग भी अच्छा माना जाता है।

विश्वास किया जाता है कि मृत व्यक्ति की आत्मा इस साँड में संक्रमित होकर चली आती है। इसलिए इस साँड का बड़ा आदर किया जाता है। तेरही के दिन ब्रह्मभोज होता है। यह मृतात्मा की तृप्ति का अन्यतम साधन माना जाता है।

शनिवार को मरने से उस परिवार में मृत्यु के आवर्तन की संभावना मानी जाती है। इसे दूर करने के लिए किसी जीवित पशु को मारा जाता है और उस व्यक्ति की अरथी के साथ जलाया जाता है। कहीं कहीं अरथी के साथ मुर्गे की बलि भी दी जाती है। ऐसा विश्वास है कि इससे मृतात्मा स्वर्ग पहुँचती है। मृत्यु के समय मरनेवाले को घर से बाहर रखा जाता है। मृत्यु के दुष्प्रभाव से घर को बचाने के लिए ऐसा किया जाता है। मरनेवाले के शरीर पर दर्भ चढ़ाये जाते हैं। विश्वास है कि ऐसा करने से मृतात्मा का उद्धार हो जाता है।

भूत

ऐसा विश्वास किया जाता है कि मृत व्यक्ति की दो आत्माएँ होती हैं। एक सशक्त होती है जो व्यक्ति के मरने पर यमधाम पहुँचती है। दूसरी लघुतम होती है जो उसके सगे संबन्धियों के बीच घूमती रहती है। ऐसा भी विश्वास है कि अपमृत्यु से व्यक्ति भूत बन जाता है। जहाँ उसके लिए समुचित मृत्युसंस्कार नहीं किए जाते तो वह और भी तीव्र बन जाता है। भूत कई प्रकार के होते हैं। उस व्यक्ति का भूत जिसका कोई बच्चा न हो उसे *अऊत* कहते हैं। किसी परिवार का सदस्य विवाह के पहले मर जाता है तो उसके संबन्धी उसका लोहे का रूप बनाकर माघ महीने के सोमवार एवं शुक्रवार को आराधना करते हैं। इस आत्मा को *मुजिया*[१०७] कहा जाता है। कोंकणी समाज में इसे

मुंजो[१०८] कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति का भूत दूसरे भूतों से अलग होक अकेला घूमता रहता है। जहाँ मृतात्मा का समुचित संस्कार नहीं होत तो वह भूत बन जाता है और जीवित संबन्धियों को सताता रहता है

भूतों में सबसे कुख्यात *चुडैल* कही जाती है। कोंकणी प्रदेश में इसे *आळवन्तीण* कहा जाता है। गर्भ रहते हुए, प्रसव के समय य सूतक के समय मरनेवाली स्त्री के भूत को ही इस नाम से पुकार जाता है। चुडैल देखने में सुन्दर होती है। लेकिन उसका पृष्ठभाग काला माना जाता है। ऐसा विश्वास है कि यह युवा लोगों को आकर्षण देती रहती है और उसे अपनी दुनिया में ले जाती है। हिन्दी तथ कोंकणी लोककथाओं में ऐसे संदर्भ देख़ने को मिलते हैं। इन भूतों से बचने के लिए अक्सर लोहे का प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्त्रियों की अरथी के साथ साथ या तो बाजरे के बीज डाले जाते हैं या सरसों के। ऐसा विश्वास है कि रात भर इन बीजों को चुनते चुनते सबेरा हो जाता है और वह अपने वासस्थान को लौट जाती है।

पति की मृत्यु के बाद जो भी स्त्री पुनर्विवाह करती है माना जाता है कि मृत पति का भूत उसे सताता रहता है और उससे बचने के लिए चावल, फूल एवं तुलसीदल ताँबे से निर्मित किसी छोटी सी पेटी में रखा जाता है और उसको तावीज़ के रूप में पहनाया जाता है। ऐसा करने से, लोगों का विश्वास है कि वह स्त्री भूत के पंजों से मुक्त हो जाती है। कहीं कहीं मृत पति की मूर्ति बनाकर प्रतिदिन उसकी आराधना की जाती है और इस प्रकार दुष्टात्मा से वह बच जाती है। अक्सर भूत क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के मरने पर बनते हैं, लेकिन ब्राह्मण के भूत को विशेष बताया जाता है। यह ज्यादा हानिकारक होता है।

वेताल एक घूमंतू भूत है जो समय पाकर दूसरों के शरीर में प्रवेश करता है। एक हाथ में दिया और दूसरे हाथ में तलवार लेकर रात के समय वह चलता रहता है। ऐसा विश्वास है कि उसे देखते ही लोग बेहोश हो जाते हैं।

सामान्यतः ऐसा विश्वास है कि भूत पनई ताड़ जैसा लंबा होता है। वह दुबला रहता है और उसका रंग काला होता है। भूत अन्धकार में घूमते रहते हैं। कोंकणी की कहावत इस प्रकार है - *भुता नंबून काळकांत वचप* (भूत के पीछे अन्धकार में पहुँचना) जो भूतों के इसी स्वभाव की ओर संकेत करती है। अक्सर उसका वास वृक्षों पर होता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में इनका संदर्भ देखने को मिलता है। कोंकणी के *गाँवरान* नामक संग्रह में[१०९] *म्हातारो आनी भूत* नाम की कथा में एक भूत का चित्रण है जो बिलकुल अच्छा काम ही करता है। उसका वासस्थान इमली के पेड़ पर है और वह गरीब बूढ़े की तरह तरह से सहायता करता रहता है । यह इस बात का प्रमाण है कि भूत बुरे ही नहीं भले भी हुआ करते हैं। लेकिन सामान्यतः ये बुरे होते हैं ।आधी रात होते ही बाहर निकलते हैं। लोगों को डराना उनका मुख्य काम है। भूत के संदर्भ में जो भी लोकसाहित्य लिखा गया है वह अधिकांशतः भूत के इसी रूप को दिखाता है। जैसे कोंकणी की *भट-भटीण आनी वडे* नामक की कथा में कहा गया है - *-सरणांतल्यान आवाज़ येता म्हण्टकच भुतांच आवाज़ करतात म्हणून लोक भिले . तेणी मेळत ते वाटेन धांव मारूक सुरवात केली* [११०](चिता से आवाज़ निकलते ही लोग डरने लगे कि कहीं भूत ही आवाज़ कर रहे हैं। उन्हें जो भी रास्ता दिखाई दिया उधर से होकर वे भागने लगे)। भूत शब्द के साथ हमेशा डर शब्द जुड़ा हुआ है। हिन्दी की कई

कहावतें इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। जैसे *भूत न मारे मारे भय, भूत जान न मारे हैरान करे* आदि।[१११] *भूत आनी भीति एक गाँवची*[११२] (भूत और भीति एक ही गाँव की है) वाली कोंकणी कहावत भी इसी ओर संकेत करती है। भूतों को गन्दगी बहुत पसन्द है। वे मन्दिरों के आसपास घूमते रहते हैं लेकिन अन्दर घुस नहीं पाते। यहाँ पर घंटानाद एवं शंखनाद से उन्हें दूर भगाया जाता है। भगवान के नाम से वे दूर भागते हैं।

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म या जन्मांतर में लोगों का बड़ा विश्वास रहता है। इसका प्रतिफलन हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में खूब हुआ है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति विश्वास करता है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार दूसरी योनि में जन्म लेता है। इसलिए मृत व्यक्ति के श्राद्ध के समय उसे अन्न, वस्त्र, शय्या, ओढ़नो, बिछौना आदि सभी वस्तुओं को प्रदान किया जाता है जो उसे इस लोक में प्रिय थीं। निर्धन लोग हमेशा अपनी गरीबी को कोसते रहते हैं कि यह उनके पूर्वजन्म के पाप के कारण है। वे इस बात से सन्तोष प्राप्त करते हैं कि अगले जन्म में उनको सुख और समृद्धि प्राप्त होगी। कर्मवाद और जन्मान्तरवाद में विश्वास हमारे लोगों को बहुत सुख एवं शान्ति प्रदान करनेवाला है।

जीवात्मा अनन्त एवं नित्य होता है। उसका जन्म भी नहीं होता और मृत्यु भी नहीं। पुनर्जन्म केवल शरीर का होता है। हिन्दू लोग इस सिद्धान्त में पूर्ण विश्वास करते हैं। लोकसाहित्य पर इस विश्वास का खूब प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त कई स्थानों पर चित्रित मिलता है। कहावतें तो इसका

भण्डार ही हैं। मनुष्य का पुनर्जन्म, इसमें नई नई उपलब्धियाँ प्राप्त करने का आग्रह, कर्म का अनदेखा प्रभाव, आदि पर विश्वास लोगों को वर्तमान जन्म के कर्मों के निर्धारण में सहायक बन जाता है। यहीं पर भाग्यवाद भी शुरू होता है। विधि का विधान और उसके विभिन्न पक्ष इन कहावतों में खूब चित्रित हैं। हिन्दी में कृर्मवाद को दिखानेवाली कई कहावतें मिलती हैं। जैसे *करमरेखा ना मिटे करे कोई लाख चतुराई, करमहीन खेती करे बैल मरे या सूखा परे, करमों के बलिया पकाई खीर, हो गया दलिया*[११३] आदि। इस कर्म की गति कोई नहीं जानता - *करम की गति कोई न जाने*। लेकिन लोक में कर्म को ही महत्वपूर्ण माना जाता है - *करम प्रधान सत्य कह लोगू*[११४] कोंकणी लोकसाहित्य में भी कर्मवाद एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त बडा प्रबल दिखाई देता है। कर्म वही आध्यात्मिक नियम है जो मनुष्य के यथार्थ स्वरूप को दिखाता है। कोंकणी कहावतों में कर्म के सभी पक्षों के महत्व को खूब चित्रित किया गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं *कर्मांत बरयललें जन्मांत सुंटना* (कर्म का लिखा जन्म भर छूटेगा नहीं) - *कर्म धुल्यारि परिहारु ना* (कर्म को धोना परिहार नहीं है।) *केल्लेलें कर्म फाटि घेता* (किया हुआ कर्म पीछे आता रहता है।) *केल्लेलें कर्म ह्याचि जल्मांत खांवका* (किया हुआ कर्म इसी जन्म में भोगना है)[११५] *कर्मणो गहना गतिः*। आज जो पाप किया जाता है उसका तुरन्त ही फल निकल आता है। कर्म हमेशा अच्छे एवं बुरे फल को प्रदान करते हैं। चूँकि पूर्वजन्म के कर्म इस जन्म में भी पीछा करते रहते हैं इसलिए यह विश्वास लोगों को पाप और पुण्य के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करता है। पापकर्मों से बचने के लिए तीर्थों में जाकर पूजा आराधना करने का विधान रहा है। यहीं से तीर्थों का महत्व शुरू होता है। हिन्दी की एक कहावत - *काशी*

की बेटी, मथुरा की गाय , करम फूटे तो अंते जाय कर्म की अपरिहार्यता को ही दिखाती है। यहाँ कर्मफल के संधान में तीर्थ भी हार जाते हैं। कोंकणी की कहावत *काशीं गेल्यारीय रामेश्वरांत गेल्यारीय पाप सुंटना* (काशी जायें, रामेश्वर जायें तो भी पाप नहीं छूटता) इसी ओर संकेत करती है। इन तीर्थों में जाकर मरना साधारणतः पुनर्जन्म के लिए मंगलकारक माना जाता है।

लोककथाओं में पुनर्जन्म के कई संदर्भ मिलते हैं। कहीं मनुष्य को दूसरे जन्म में पक्षी का शरीर ग्रहण करते दिखाया गया है तो कहीं पक्षी को मनुष्य का रूप ग्रहण करते हुए चित्रित मिलता है। कहीं नाग को अपना शरीर अच्छा नहीं लगता । वह दूसरे जन्म की इच्छा करता है और मनुष्य बन जाने का प्रयत्न करता है।[११६] कोंकणी की कई कथाओं में जन्मांतर में ऋण चुकाने का विवरण मिलता है। यह ऋण शरीर के नष्ट होने पर समाप्त नहीं होता। दूसरा जन्म चाहे कुत्ते का हो, बिल्ली का हो या कुक्कुट का हो ऋण तो चुकाना ही पडता है।[११७]

दृष्टिदोष

लोकसमाज में सर्वाधिक रूप में प्रचलित दृष्टिदोष को हिन्दी लोक नजर शब्द से ही जानता है। लोकसाहित्य में चाहे वह हिन्दी का हो या कोंकणी का नजर लगने और नजर उतारने की बात चित्रित मिलती है। अक्सर बच्चों के वर्णन के सन्दर्भ में इसके दर्शन होते हैं। लोकसमाज में जादू टोना, तंत्र मंत्र, भूत पिशाच, ओझा गुणी पर अत्यधिक विश्वास रहता है। जब माँ अपने बच्चे को लेकर हर समय शंकित रहती है तो घर के लोगों पर भी उसका विश्वास नहीं रहता। किसी कारण से उसका शिशु नहीं सोता है तो माँ बेचैन हो जाती है।

ाह विश्वास करती है कि किसीने उसके बच्चे को नजर लगा दी है। ाह अपने पति से विनती करती है कि वह नेपाल की तराई में बसे ाहान शक्तिपीठ मोरंग मधेश से नज़र उतारनेवाले झड़वइया को बुला दे। मिथिला नगर के ओझा गुनी को बुला दे तथा आसाम से कारू कामाख्या से जोगिनी को बुला दे । लोरी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

मोरा लालन के लागल नज़रिया,
निंदिया ना आवे री
आरे मोरा लालन के लागल नज़रिया,
हाय मोरा बाबू के लागल नज़रिया[११८]

कोंकणी समाज में भी बच्चे की माँ की उत्कंठा का खूब वर्णन हुआ है। देखिए -

बाळ गुणी मोतयां मणी दिस्ट जाली रे
उवाळू ताका मिटा कणी हट्ट सोड रे[११९]
(बाल गुणी मोती जैसा नज़र लग गई रे
नज़र उतारनी है, हठ छोड़ दे रे)

नज़र उतारने के लिए बच्चे के चारों ओर तीन बार नमक उतारकर चूल्हे में डाला जाता है। और विभूति से ललाट पर तिलक लगाया जाता है । मंत्र इस प्रकार पढ़ा जाता है -

वार् या सुत्राची, किडी मुयेची,	(हवा की, कीडे की, चींटी की
घरच्या भायलांची आवय बापायची	घर की स्त्रियों की, माता पिता की
वाश्या कण्णेची दिस्ट जाली	बाँस की, नज़र लग गई
जाल्यार चूलींत पडूं -- [१२०]	तो वह चूल्हे में जाय.)

उत्तर भारत में नमक की सात डलियों के साथ साथ सात राई के दाने सात लाल मिर्च, कुछ केश, कुछ झाडू की सींके आदि दो मुट्ठियों में लेकर इक्कीस बार बच्चे के ऊपर से उतारकर जलती आँच में डाला जाता है ।[13] कोंकणी समाज में भी सीपी, मनुष्य के केश, मुर्गे की पंखें, गाय का सींग काला टुकड़ा, नींबू ,काली डोर, काजल, कुंकुम, सब चीज़ें नजर उतारने में उपयोग में लाई जाती हैं। महर के द्वारा उतारी गई नज़र बहुत जल्दी उतर जाती है, ऐसा भी विश्वास है। नज़र उतारने के लिए बच्चों के मुख पर काजल का टीका एवं उसकी आँखों में काजल लगा देते हैं। खेत में खाना पहुँचाते वक्त खाने को नज़र से बचाने के लिए टोकरी में काठकोयला रख देते हैं। काली और सफेद धारियोंवाला मटका जो घर के छप्पर एवं खेत में डण्डे पर लगाया जाता है। मृगों को दृष्टिदोष से बचाने के लिए उनके गले में मणिकाएँ लगाई जाती हैं। विवाह या प्रसव के समय स्त्रियों को दृष्टिदोष से बचाने के लिए उनके मुख पर काजल लगाया जाता है। कहीं कहीं इस बुरी नज़र को दूर करने के लिए चिंगनों का भी प्रयोग किया जाता है। नज़र से बचाने के लिए नाम को भी बदला जाता है। बच्चों की बायीं बाहू पर कहीं कहीं लोहवलय पहनाया जाता है।

व्रत एवं उत्सव

अथर्ववेद में लोकजीवन का व्यावहारिक पक्ष निखर आया है। मनुष्य को अनिष्ट से बचने के लिए आनुष्ठानिक कार्य करने पड़ते हैं। इन्हींका विधान अथर्ववेद में बताया गया है। लोकजीवन के व्यवहार प्रतिपादन के लिए अथर्वकार ने औषधियों के साथ तंत्र मंत्र का भी प्रयोग किया है। इसमें मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं का आख्यान करनेवाले तंत्र, मंत्र और यंत्र मिलते हैं। जादू टोना आदि की क्रियायें भी मिलती हैं। *टोने*

ोटके, भूतप्रेत की अवधारणा ने कलाओं के क्षेत्र में कर्मकांडीय अनुष्ठानों ा समावेश कराया जो बाद में धार्मिक अनुष्ठानों में परिवर्तित हुए। कृषि ंस्कृति ने त्योहारी और उत्सवी मानसिकता को विकसित किया। यहीं से ार्मिक कर्मकांड में परिपोषित होनेवाली कलादृष्टि विकसित हुइ। [१२२]

धर्म का विकास आचारों से होता है। हिन्दू लोग आचारों को बहुत ानते हैं। हिन्दी एवं कोंकणी समाज में इसके कई उदाहरण मिलते हैं। दोनों भाषाओं का लोकसाहित्य धर्माचरण से भरा पडा है। लोकगीतों, लोककथाओं में ही नहीं कहावतों तक यह विषय फैला पड़ा है। कोंकणी कहावत इस प्रकार चलती है - *आचारु चलतल्याक विचारु ऊणें* (आचार का पालन करनेवाला कभी चिन्ताग्रस्त नहीं रहता।) इन आचारों का पालन जीवन में श्रेय एवं प्रेय ले आता है। जो व्यक्ति इसका अभ्यास करता है वह हमेशा जीवन में विजयी बनता है। यही आचार धर्म की निशानी है। व्रत, उत्सव आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। धर्म और व्रत में गहरा संबन्ध है। धर्म में हमेशा व्रत के आचरण का महत्व रहता है। व्रतों के निर्णय एवं उनके अनुष्ठान में यहाँ के लोग प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहे हैं। साधारणतः उपवासादि नियम विशेष को व्रत कहते हैं। इसके विशेष उद्देश्य भी होते हैं। मुख्यतः आत्मशुद्धि एवं परमात्मचिन्तन ही व्रत का मूल उद्देश्य रहता है। अन्न जल के वर्जन मात्र से व्रत नहीं हो सकता। आत्मशुद्धि ही यहाँ प्रमुख है।

प्राचीन काल में लोग प्रकृति से इतना नाता रखते थे कि उनके समस्त काल प्रकृति के विभिन्न कालों से संबद्ध रहा करते थे। व्रतों का संबन्ध तो षड्ऋतुओं के परिवर्तन से विशेषतः रहता था । नए ऋतु का आगमन नवीन व्रत एवं उत्सव को लेकर आता है। हिन्दी एवं कोंकणी समाज में इसका अक्सर पालन किया जाता है। वसन्तपंचमी एवं होली

इसके उत्तम उदाहरण हैं। परमात्मचिन्तन के साथ ये त्योहार आनन्द ए
उल्लास को भी लेकर चलता है। रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी आदि में व्र
एवं त्योहार मिलकर आता है। दोनों समाजों पर इसका प्रभाव भी रहा है
जो व्रत एवं त्योहार लोग मनाते रहते हैं उसका प्रभाव लोकसाहित्य प
अवश्य रहता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकगीतों एवं लोककथाओं में , यह
नहीं कहावतों में भी व्रत त्योहारों या लोकोत्सवों के संदर्भ देखे जा सक
हैं।

विजयादशमी

सामान्य लोगों के लिए यह एक मूल्यवान त्योहार है जिसे वे बड़े उत्साह एवं लगन से मनाते हैं। आश्विन शुक्ल दशमी के दिन मनाए जानेवाले इस उत्सव में कोंकणी समाज में लक्ष्मी देवी एवं सरस्वती की पूजा होती है। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक के नौ दिनों को कोंकणी समाज में नवरात्र उत्सव के रूप में मनाया जाता है। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के दिन घटस्थापन के साथ साथ नौ प्रकार के धान्य उगाए जाते हैं। नवमी के दिन विशेष पूजा होती है और दशमी के दिन इसका विसर्जन होता है। विजयादशमी के दिन जो कार्य शुरू किया जाता है, वह सफल होता है, ऐसा लोक-विश्वास है। इस दिन राजा रामचन्द्र रावण को मार कर लौटे थे, पाण्डवों का अज्ञातवास इसी दिन खतम हुआ था और चामुण्डी ने महिषासुर का वध इसी दिन किया था।[१२३]

हिन्दी समाज में यह दशहरे के नाम से जाना जाता है। राम के रावण पर विजय पाने के उपलक्ष्य में इस दिन जुलूस निकाला जाता है और अनाचार पर सदाचार की स्थापना का सन्देश दिया जाता है। इस दिन दुर्गा पूजा के साथ साथ उसकी मूर्ति को दशाश्वमेध घाट तक ले जाया

ाता है और गंगा में विसर्जित किया जाता है। इस समय प्रयाग का जुलूस ड़ा ही प्रसिद्ध माना जाता है।[१२४]

ेवाली

दीवाली हिन्दी और कोंकणी समाज में समान रूप से मनाई जाती ः। यह जनसाधारण का उत्सव है और इस दिन अनेक दीपों को एक साथ जलाकर प्रकाश फैलाया जाता है। इसीलिए इसे दीपावली कहते हैं जिसका अपभ्रंश रूप है दीवाली। यह त्योहार कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन मनाया जाता है। कोंकणी समाज में दीवाली को जलाये जानेवाले दियों का प्रकाश ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। कहावत इस प्रकार चलती है --*अशें म्हणचे न्हय तशें म्हणचे न्हय दीवाळेचे दीवे रे पुता* (बेटे, ऐसा कहो या वैसा कहो, ये तो दीवाली के दीप हैं।)दीवाली के दियों का संदर्भ हिन्दी कहावतों में भी मिलता है । जैसै *दीवाली का दीया दीठा, काचर बेर मतीरा मीठा, दीवाली का दीया चाटके आए और होली की जूतियाँ खाकर जाएँगे* आदि। त्रयोदशी से लेकर यमद्वितीया तक पाँच दिन सन्ध्या के समय दीप जलाकर प्रकाश फैलाने पर लोगों का विश्वास है कि अकालमृत्यु, अपमृत्यु आदि से बचा जा सकता है। इस त्रयोदशी को धनत्रयोदशी कहते हैं। हिन्दी में यह *धनतेरस* है। इसे छोटी दीवाली भी कहते हैं। इस दिन यमराज की प्रसन्नता के लिए दीपदान किया जाता है। लोग घी और तेल के दिये जलाते हैं। यमराज की पूजा इस दिन विशिष्ट रूप में की जाती है। चतुर्दशी के दिन को नरकचतुर्दशी कहते हैं । इस दिन श्रीकृष्ण ने नरकासुर का वध किया था, ऐसा पुराणों में वर्णित है। उस समय नरकासुर की अन्तिम इच्छा के रूप में यह कहा गया कि इस दिन लोग तेल लगाकर नहाएँ, नए वस्त्र पहने और अच्छा अच्छा खाना बनाकर खाएँ। हिन्दी की कहावत *दीवाली की मिठाई* इसी ओर संकेत करती है।

इस दिन लोग बड़े सबेरे उठकर नरकासुर के इस आग्रह की पूर्ति करते हैं। बच्चे पटाखे जलाकर आनन्दित होते हैं।

दीवाली मनाने के लिए हिन्दी तथा कोंकणी समाज में दो दिन पहले से ही सफाई का यज्ञ शुरू होता है। उत्तर भारत में लोग दीवाली के पहले घर की सफाई के साथ साथ मरम्मत भी करते रहते हैं। साल भर का कूडा कर्कट बटोर कर उसे बाहर फेंक दिया जाता है और घर को पवित्र बनाया जाता है। चतुर्दशी के पहले दिन शाम को कोंकणी समाज की सुमंगलियाँ घर के आँगन में तुलसी के चारों ओर दिया जलाकर दीपालंकार करती हैं। कहीं आकाशदीप भी जलाया जाता है। चतुर्दशी के दिन बड़े सबेरे नहाकर मन्दिर में जाकर भगवान की पूजा आराधना की जाती है। दोपहर को समूहभोज होता है और तरह तरह के मधुर पदार्थ बनाए जाते हैं। बन्धुओं में नये वस्त्र बाँटे जाते हैं।

दीपावली के दिन सायंकाल को लक्ष्मीपूजन होता है। उत्तर भारत में मिट्टी की बनी हुई गणेश और लक्ष्मी की प्रतिमा का पूजन होता है। लक्ष्मी का नवीन वस्त्रों से मंडप बनाकर पत्र पुष्पों से सुसज्जित करके षोडशोपचार पूजा करने का विधान होता है। विश्वास है कि इस पूजा से धन धान्य की वृद्धि होती है। लक्ष्मी के आगमन के लिए रात भर घर का द्वार खुला होता है और रात को जागरण किया जाता है। कोंकणियों का ऐसा विश्वास है कि वामनावतारी विष्णु ने महाबलि के कारागार से इस दिन देवों को मुक्त किया था। देवों ने क्षीरसागर में जाकर लक्ष्मीसमेत विष्णु की पूजा की थी। लक्ष्मीपूजन से इसका स्मरण भी होता रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रथमा का दिन कोंकणी लोग *बलिप्रतिपदा* के रूप में मनाते हैं जिस दिन बलि के साथ साथ विन्ध्यावली को भी स्मरण किया जाता है। गायों एवं बछड़ों के साथ साथ बैलों को भी नहलाकर, नए वस्त्र पहनाकर अलंकृत करते हुए खाना

ब्रलाया जाता है । उनकी विशेष पूजा की जाती है। गाँव भर उन्हें घुमाया ाता है।

यमद्वितीया को कोंकणी लोग *आडदीवाळी* कहते हैं। विश्वास है के इस दिन यमुना नदी ने उसके भाई (यमराज) को बुलाकर विविध कवानों के साथ भोजन खिलाया था। इसी के स्मरणार्थ इस दिन ग्रमपूजन किया जाता है। ऐसा करनेवालों को नरकयातनाएँ नहीं हुआ करतीं, यही विश्वास है। भाई बहिन के घर जाकर फूल, वस्त्र, आभूषण आदि प्रदान करते हुए उसे सन्तुष्ट करता है और उसके साथ भोजन करते हुए घर लौटता है। कहीं कहीं बहिन को घर भी बुलाया जाता है। ये संपत्ति और सुख के लिए पालन किए जानेवाले आचार होते हैं। उत्तर भारत में इसे *भैयादूज* कहा जाता है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहिन में प्रेमसंबन्ध की स्थापना है। भाई बहिन के घर जाकर उसको कई उपहार प्रदान करता है और उसके यहाँ भोजन करता है। बहिन भाई को मिठाइयाँ खिलाती है।

धालो

कोंकणी समाज में पौष के महीने में चाँदनी रातों में थंड के साथ साथ *धालो* उत्सव मनाया जाता है। यह स्त्रियों का उत्सव है जिसमें तरह तरह के सुगन्धित फूलों का उपयोग किया जाता है। आम, कटहल, जामुन सब कुछ *धालो* के मंच पर विराजमान रहता है और इनके साथ साथ सुमंगली स्त्रियाँ कछाट लगाकर नाचती रहती हैं। *धाला* से संबद्ध कई लोकगीत कोंकणी समाज में प्रसिद्ध रहे हैं। उदा;

शेवकां बाये शेवकां	(मंजरी री मंजरी
तांबडे माड्याची शेवकां	लाल नारियल की मंजरी
थळा मांडाची पांचय देवतां	थल के मंच के पाँचों देवता

तीं आयली धावतां	आए दौड़ते दौडते
तीं आयली धावतां[१२५]	वे आए दौडते दौडते)

पौष महीने की पूर्णिमा से लेकर कृष्णपक्ष की षष्ठी तक *धाला* का उत्स मनाया जाता है। बुधवार या रविवार के दिन से उत्सव शुरू होता है। त से लेकर *घालो* के मंच पर हर रात दिया जलाया जाता है। गाँव का को आदरणीय व्यक्ति नारियल एवं चावल की थाली आराधनास्वरूप ईश्वर क सामने रखता है। एक दिया भी जलाया जाता है। साथ ही *विडो, चुडो,* गु एवं केले भी रखता है। तिल, चन्दन, काजल एवं कुंकुम लगाए हुए अक्षत भी रखता है और ईश्वर की पूजा करता है। गाँव के मंगल की प्रार्थना की जाती है। वहाँ पर जमी हुई स्त्रियाँ *हाय सायबा !* कहकर ईश्वर को पुकारती हैं। दिये पर अक्षत डाले जाते हैं और ईश्वर से रक्षा की भीख माँगते हैं। *धालो* स्त्रियों का उत्सव है। स्त्रियाँ माथे पर चन्दन लगाकर *धाला* करती रहती हैं। रामायण और महाभारत की कथा पर आधारित गीत भी गाती रहती हैं। इस उत्सव में कई तरह के गीत होते हैं। ये गीत कोंकणी संस्कृति और जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन गीतों में ताल और लय रहता है और ये काव्यमय रहते हैं। जैसे -

औवळीचें ओवळ	(बकुल का फूल
वतान करपलें	धूप में झुलस गया
वार् यान झडपलें	हवा में झड गया
पडलें भुंयेवरी गे	पृथ्वी पर पड गया री
पडलें भुंयेवरी	पृथ्वी पर पड गया
हातांत काडिलें	हाथ में ले लिया
माथ्यांत माळिल्लें	केशों में सजाया
भोगिलें आयावपण गे	बन गई सुमंगली री

भोगिलें आयावपण[१२७] बन गई सुमंगली)

और भी

सवाशिणी बायलो आमी	(सुमंगली स्त्रियाँ हम
कांदळां खुंटूं गेल्यो गे	फूल तोडने चलीं री
आमी कांदळां खुंटूं गेल्यो गे	हम फूल तोडने चलीं
होंटींत कांदळां हातांत कांदळां	गोदी में फूल, हाथों में फूल
आमी भांग नेटीत आयल्यो गे	हम माँग सजाकर आईं री
भांग नेटीत आयल्यो[१२८]	माँग सजाकर आईं)

इन गीतों में ताल लय और काव्य के साथ साथ स्त्रियों के मन की धार्मिक भावनाओं एवं सुख दःखों का भी परिचय मिलता है। कहीं कहीं उनकी व्यथाकथा भी कही गई मिलती है।

होली

फागुन जीवन में रस बरसाता, रंग भरता और उल्लास बिखराता आता है। लहलहाती फसलें महकती आम्रमंजरियाँ बहुरंगी फूलों से सजी हुई धरती गुनगुनाते भौरे, पंचम स्वर में कूकती कोयल और फगुनाई बयार सर्वत्र मादकता भर देती है। चारों ओर सुरीले गीतों की अनुगूँज लेकर मानव भी इस में शामिल हो जाता है। ढोलक की थाप और मंजीरे की खनक के साथ होली की मादक धुनें वातावरण को संगीतमय बना देती हैं। होली का त्योहार हिन्दी समाज का प्रसिद्ध एवं सर्वाधिक लोकप्रिय त्योहार है। इसे सभी आबालवृद्ध बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। होली, दशहरा और दीवाली में होली का ही स्थान पहला है। इस दिन सभी वर्णों के लोग साथ साथ आनन्द मनाते हैं।

होली का गीत देखिए -

व्रज में खेले फाग कन्हाई राधे संग सुहाई
चलत अबीर रंग केसर को नभ अरुनाई छाई
लाल लाल व्रज लाल लाल बन बीचन कोच मचाई
ईसुर नर नारिन के मन में अति आनन्द सरसाई[१२९]

चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। ब्रज हो या कोई दूसरा अंचल, होली तो बड़ा उत्साह लेकर आती है। किसी भी भेदभाव के बिना लोग सब कुछ भूलकर उन्माद से भर उठते हैं। लोकसंस्कृति में इस उत्सव की बड़ी महत्ता है।

होली की सबसे बड़ी विशेषता मस्ती, मौज और आनन्द है। हिन्दी की कहावत *भरि फागुन बुढ़वा देवर लाग* इस ओर संकेत करता है कि मुरझाए तथा खूसट मन में भी जवानी का जोश भर जाता है। इस दिन व्रत लेकर स्नानादि के अनन्तर होलिका के पूजन का संकल्प करते हुए पूर्णिमा तिथि को सायंकाल किसी अछूत के घर से अग्नि माँगकर होलिका को जलाया जाता है। आग के प्रचंड होने पर मंत्रपाठ होता है और अर्घ्य देकर उसकी प्रदक्षिणा की जाती है। गेहूँ, चना, जौ आदि की बाली को इस ज्वाला में सेंका जाता है और पकाए हुए इस अन्न को लेकर गाँव के लोग घर लौटते हैं। सामान्य जनता का विश्वास है कि यदि होलिका में बालकों को उबटन लगाकर इसमें जलाया जाय तो साल भर वे स्वस्थ रहते हैं। होलिकादहन के दूसरे दिन होली मनाई जाती है। शहर के लोग गुलाल और पीले रंग को पानी में डालकर एक दूसरे पर रंग डालते हैं। रंगों के इस खेल में देवी देवताएँ भी भाग लेते रहते हैं जैसे -

होरी खेलें रघुवीरा अवध में होरी खेलें रघुवीरा
केकरे हाथ कनक पिचकारी, केकरे हाथ अबीरा
राम के हाथ कनक पिचकारी सीता के हाथ अबीरा[१३०]

होली खेलनेवाले आपस में प्यार के प्रगाढ़ बन्धन में बँध जाते हैं। इसका सर्वाधिक प्रभाव व्रजदेश में दिखाई देता है --

आज बिरज में होरी रे रसिया
बाजत ताल मृदंग झाँझ ढप
और नग्गरे की जोरी रे रसिया[१३१]

होली के दिन बालक एवं स्त्रियाँ नया वस्त्र धारण करती हैं। गरीब व्यक्ति के घर में भी इस दिन पूड़ी, पुआ और खीर खाया जाता है। गवैयों का दल होली के गीत गाते हुए गाँव में घर घर घूमता है। पृथ्वी पर पाप, अन्याय, अत्याचार का समापन और एक नवीन सृष्टि का उत्थान जिसमें प्यार एकरसता में रंग जाये। वर्ष भर के परिश्रम का फल लहलहाती फसलों के रूप में जो उसे मिलनेवाला है उसे बाँटकर जी सके, थिरक सके, नाच गा सके, एकजुट होकर रह सके।

कोंकणी समाज में भी यह उत्सव घूमधाम से मनाया जाता है। यहाँ पर यह ***शिगमो*** नाम से जाना जाता है। यहाँ पर कामगार एवं दरिद्र लोगों का यह उत्सव होता है। उत्सव शुरू होते ही मंच सजाया जाता है और उसकी पूजा-अर्चना होती है। मंच पर देवताओं की पूजा की जाती है। ढोल, ताशा, कांसळे आदि वाद्य तैयार होते हैं । उनकी भी पूजा होती है। वाद्यों की सहायता से ईश्वर का नमन होता है। प्रथम गणेश पूजा का विधान है। फिर गाँव के सभी देवताओं जैसे बेताल ग्रामपुरुष, सांतेर और स्थान स्थान पर मिलनेवाले अन्य देवताओं की आराधना एवं गायन वादन होता रहता है। गाते गाते सभी देवताओं को मंच पर आवाहित किया जाता है। खिचडी का नैवेद्य भी रहता है। दूसरे दिन से उत्सव की शुरूआत होती है। साँझ के समय पाँच बजने पर लोग यहाँ एकत्र होते हैं और उत्सव शुरू

करते हैं। यहाँ स्त्रियों को स्थान नहीं, नाच गान पुरुषों के द्वारा ही होता है उनका *तालगडी नृत्य* बहुत प्रसिद्ध है। शिगमो के खेल में राम, कृष्ण हनुमान आदि पौराणिक पात्र, शिवाजी जैसे ऐतिहासिक पात्र, राक्षस, बूढ़े बन्दर जैसे पात्रों का भी समावेश रहता है। मेले के साथ साथ छोटे छोटे कार्यक्रम भी चलते रहते हैं। कहीं नाटक खेला जाता है। सब लोग अपना शरीर सजाते रहते हैं। व्यापार भी होता रहता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सुनार को छोड़कर सभी वर्गों के लोग उत्सव में भाग लेते हैं। *रोंमट* नाम का वाद्य इस उत्सव के तेज को बढाता है। दो व्यक्ति मिलकर इस बाज को बजाते हैं। *सींग, कोन्नो, बाँको* आदि वाद्यों का प्रयोग भी होता है। यह पुर्तगालियों के प्रभाव से ही हुआ है।

आजकल उत्तर भारत की प्रथा का अनुकरण भी यहाँ होता है। रंग का खेल जो पहले मात्र पुरुषों द्वारा होता था आज स्त्रियाँ भी इसमें शामिल हो जाती हैं। शहरी जीवन का प्रभाव इस उत्सव पर आ गया है। शिगमो वर्ष के अन्तिम महीने में मनाया जाता है। यह फाल्गुन का उत्सव है जो वसन्तऋतु का स्वागत करता है। यह दो प्रकार का होता है - *बड़ा शिगमा* और *छोटा शिगमो*। *शिगमो* के दिन अनेक खेल खेले जाते हैं। *गोफ, भुरांटो, चौरंग, लेजीम, तळिया* आदि प्रशंसनीय हैं। रास्तों पर, मन्दिरों में, घर के आंगन में समूहनाच होता है और रोमटों की आवाज़ आती रहती है। यहाँ पर रामायण और महाभारत के साथ साथ मानव जीवन के सुख-दुःख संबन्धी पद भी गाये जाते हैं । कहीं शिगमो नाच की मन्नत भी माँगी जाती है। ऐसा विश्वास है कि यदि एक वर्ष *शिगमा* का खेल न रहे तो गाँव पर दैवकोप हो सकता है। गाँव में अकाल पड़ सकता है। *शिगमो* के इस अवसर पर अनेक रस भरे गीत सुनने को मिलते हैं। जैसे --

घुमटाच्या तालार शिगमो नाचता
शोभीत पोल्यार रे गुलाब फुलोता !
चोय ! चोय !
(घुमट के ताल पर शिगमो नाचता है
सुन्दर गालों पर गुलाब फूलता है !
देखो तो ! देखो तो !)[१३२]

कोंकणी समाज में *शिगमा* का महत्व निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

माया लावुंनी संसार रचिला हो
माया लावुंनी संसार रचिला
मागीर पांच दिसांचा देवांनी शिगमो रचिला हो ,
पांच दिसांचा देवांनी शिगमो रचिला[१३३]
(माया के ज़रिए संसार रचा है
माया के ज़रिए संसार रचा
फिर देवों ने पाँच दिन का शिगमो रचा
देवों ने पाँच दिन का शिगमो रचा)

होली की पूर्णिमा से *छोटे शिगमो* का मंच तैयार होता है। उस रात में मंच पर सारे के सारे खेल खेले जाते हैं। इसके बाद कई अन्य कार्यक्रमों के साथ छोटे शिगमो का अंत होता है। अन्तिम रात को होली जलाई जाती है। छोटे शिगमो के समाप्त होते होते *बड़ा शिगमो* शुरू होता है। फाल्गुन की पूर्णिमा से चैत्रमास की प्रथमा (गुडी पडवा) तक बडा शिगमो मनाया जाता है। कहीं कहीं कलावन्तों का नाच रहता है। रात के समय नाटकों का भी अभिनय होता है। अन्तिम रात को वीरभद्र का नाच शुरू होता है।

होली आते ही *आमची होळी आंब्याची शेटीची .... तांब्याची* (हमारी होली आम की, सेठ की होली ताँबे की) कहकर उम्मीद के साथ बच्चे नाचते रहते हैं। यह होली के महत्व को ही दिखाता है। *परबेरि पोळि शिग्म्यारि होळी* वाली कोंकणी कहावत इसी ओर संकेत करती है। हिन्दी प्रदेश के समान कोंकण में भी थोडे से परिवर्तन के साथ होली का त्योहार धूमधाम से मनाया जाता है।

नागपंचमी

श्रावण शुक्ला पंचमी को नागपंचमी कहा जाता है। इस दिन नाग की पूजा की जाती है । इसलिए इसे *नागपंचमी* या *नागपचैया* कहते हैं। उत्तर दक्षिण सब कहीं इसका प्रचार रहा है। हिन्दी प्रदेश में इस दिन स्त्रियाँ प्रातःकाल उठकर गोबर से सारे घर को साफ करती हैं और दीवारों पर भी गोबर की रेखाएँ बनाती हैं। गृह के प्रधान द्वार के दोनों ओर नाग की दो प्रतिमाओं का चित्र बनाती हैं। जहाँ गोबर नहीं मिलता वहाँ कागज़ पर प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं और उन्हें द्वार पर चिपकाया जाता है। इन चित्रों की विधिवत् पूजा होती है। कटोरे में धान का लावा और दूध भरकर किसी एकान्त स्थान में घर के कोने में रखा जाता है। लोगों का विश्वास है कि नागदेवता स्वयं प्रकट होकर दूध पीते हैं। इस दिन नागपूजा करनेवालों को सर्पदंश का भय नहीं रहता। हिन्दी के लोकगीतों में नागपंचमी के गीत बड़े ही प्रसिद्ध रहे हैं, लोग बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ ये गीत गाते हैं। जैसे -

नागबाबा दीन्ह्यो वरदान हमैं रे ।
दूधे क जाउरि तुमका चढ़इबे, सोने क छत्रु लगाय। नागबाबा ।।
धरती के रछपाल तुमही, जिसनू के रखवार तुमही रे

ुम्हरी महिमा को धौ बखानै. सोभा बरनि ना जाय । नागबाबा[१३४] ाग उर्वरता के देवता माने जाते हैं । इसलिए संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से नाग की विशेष आराधना की जाती है। जो व्यक्ति नाग को भिक्षा देगा वह जीवन में सुखी रहेगा। गीत इस प्रकार है --

जेहो गलिया हम कबहु ना देखली,
ओहो गलिया देखवेलह हो, मोर नाग दुलरुवा।
जो मोरा नाग के गेहूँ भीखि दीहैं,
लाले लाले बेटवा पायल हो, मोर नाग दुलरुवा।
जो मेरा नाग के कोदो भीखि दीहैं,
करिया करिया मुसरी पायत हो, मोर नाग दुलरुवा।
जो मेरा नाग के भीखि नहीं दीहैं
वोकरो बड़ पाप लागत हो, मोर नाग दुलरुवा।[१३५]

प्रचीन काल से ही भारत में नागाराधना का प्रचार रहा है। भारतीयों ने नागाराधना का यह तत्व नागसंस्कृति से ही अपनाया है। प्राचीन काल से ही भिन्न संस्कृतियों को अपनाने की उदार भावना और सहिष्णुता भारतीयों में रही है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य पर इसका प्रभाव खूब देखा जाता है। हिन्दी की कई लोककथाएँ नागों का संदर्भ लेकर कही गई हैं। अधिकांश कथाओं में ये मनुष्य के सहायक बनकर आते हैं।

कोंकणी लोग भी मानते आए हैं कि नाग शक्तिशाली देवता हैं। इनका विश्वास है कि नाग संपत्ति की रक्षा करते हैं। वे रोग को भी दूर करते हैं। कोंकणी लोककथाओं के सांस्कृतिक विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि ये लोग नागसंस्कृति से बिलकुल परिचित थे। नागों से रागात्मक संबन्ध कई कोंकणी कथाओं का विषय भी रहा है। कोंकणी

की *नागघोव* नाम की कथा इसका उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। असल में नाग सात्विक धर्म एवं गुणोंवाले और लोगों की रक्षा करनेवाले माने जाते हैं। प्राचीन काल में कोंकणी लोगों के घर के अहाते में ही नाग का मन्दिर रखा जाता था। प्रतिदिन शाम को यहाँ पर दिया जलाया जाता था और नागपंचमी के दिन विशेष पूजा होती रहती थी। यह पूजा नहा धोकर पवित्रता के साथ की जाती थी। घर का मुखिया तरह तरह से इस दिन नाग की आराधना करता था। यहाँ पर नागों को दूध फल आदि दिया जाता था। आज भी कहीं कहीं इसका आचरण होता रहता है। कोंकणी की कहावत *गरुडाले गांवातु नागरपंचमी* (गरुड के गाँव में नागपंचमी) इसी नागाराधना की ओर संकेत करती है।

रक्षाबन्धन

श्रावणपूर्णिमा का यह त्योहार हिन्दी तथा कोंकणी समाज में प्रचलित रहा है। उत्तर भारत के गाँवों में इसे राखी कहा जाता है। यह त्योहार भाई-बहन के स्वाभाविक प्रेम को चित्रित करनेवाला होता है । इस दिन पंडित लोग पीले रंग से रंगा हुआ सूत यजमान के हाथ में बाँधते हैं और यजमान पंडित को दक्षिणा भी देते हैं। कोंकणी समाज में इस दिन जनेऊ डालकर पंडित दक्षिणा ग्रहण करते हैं। उत्तर भारत में बहिन भाई को राखी बाँधती है, उसको तिलक लगाती है और नारियल एवं मिष्टान्न देती है। राखी का यही रक्षासूत्र रक्षाबंधन में प्रमुख रहता है। इसके साथ भाई द्वारा बहिन की रक्षा की कामना जुड़ी रहती है। भाई इस दिन बहिन की इज्जत की रक्षा करने की प्रतिज्ञा लेता है। कोंकणी समाज में इसी दिन *सुत्तां पुन्नव* (सूत की पूर्णिमा) मनाया जाता है। इस अवसर पर ब्राह्मण जनेऊ डालते हैं। स्त्रियाँ और बच्चे मांत्रिक सूत पहनते हैं जिसको लोक में *तिस्ति* कहा जाता है।

ीकृष्णजन्माष्टमी

भादों के कृष्णपक्ष की अष्टमी को जन्माष्टमी मनाया जाता है। सी तिथि को भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। हिन्दी और कोंकणी माज में इस तिथि को धूमधाम से उत्सव के रूप में मनाया जाता है। गेंकणी की कहावत *असल्यारि अष्टमि ना जल्यारि एकादशि* (पैसे हों तो न्माष्टमी नहीं तो एकादशी) इसी ओर संकेत करती है। इस दिन उपवास त लिया जाता है। उपवास न करनेवाले फलाहार लेते हैं। कृष्णमन्दिर को फूल पत्तियों से सजाकर भगवान कृष्ण की आराधना की जाती है। रात को बारह बजे भगवान का जन्मोत्सव मनाया जाता है। विशेष पूजा भी होती है। फिर प्रसाद वितरण होता है। उत्तर भारत में विशेषकर मथुरा तथा वृन्दावन में यह बड़ी ही ठाट-बाट से संपन्न होता है। यह बड़ा ही लोकप्रिय उत्सव है। कोंकणी समाज में भी अन्य उत्सवों से बढ़कर जन्माष्टमी प्रमुख उत्सव माना जाता है। जन्माष्टमी का सन्देश है अन्याय और अधर्म से संघर्ष करना।

गणेश चतुर्थी

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी के दिन गणेश चतुर्थी का व्रत एवं उत्सव किया जाता है। कोंकणी प्रदेश में यह उत्सव बड़ी धूम घाम से मनाया जाता है। इस उत्सव को चित्रित करनेवाली लोककहानियाँ कोंकणी में मिलती हैं। इस दिन घर घर में गणेश प्रतिमा की प्रतिष्ठा एवं पूजा होती रहती है। इस उत्सव में लोगों का बड़ा आकर्षण रहता है। घर पूरा गोबर से साफ किया जाता है और घर में सब कहीं गणपति की मूर्तियाँ सजाई जाती हैं। कोंकणी लोकसाहित्य में अनेक जगहों पर गणेश चतुर्थी के संदर्भ चित्रित मिलते हैं। मूर्ति को बनाने से लेकर, उसकी पूजा, नैवेद्य एवं

विसर्जन तक लोकसाहित्य को बहुत कुछ कहना होता है। मूर्ति तैयार करने के संदर्भ में देखिए -

माती खणीला कुदाळानी	(मिट्टी खोदी कुदाल से
माती खणील्या दाण्या मुळानी	मिट्टी खोदी खाद्यान्न के जडों से
मुर्त घडली गणेसाची	गणेश की मूर्ति बना ली
मुर्त घडली भटमामा	मूर्ति बना ली भटमाम ने
मुर्त कसलो उत्सव केला	मुहूर्त देखा उत्सव किया
आवय माजे गे[१३६]	ओ मेरी माँ !)

मूर्ति को घर ले आते समय तिलक, आरती लगाकर उसकी आराधना की जाती है। यह काम घरवाली का होता है। तरह तरह के फल सजाए जाते हैं। सायंकाल को स्त्रियाँ गणपति के सामने फुगडी नाचती हैं। जैसे

कचे बाय कचे वल्ली भर कचे	(कच्चे बाय कच्चे वल्ली भर कच्चे फल
आमचे गणपती भांगराचे मोचे	हमारे गणेश के सोने के हैं चप्पल
बोरां बाये बोरां वल्ली भर बोरां	बेर बाये बेर वल्ली भर बेर
आमचे बरोबर खेळूंक येयल्या	हमारे साथ खेलने आये
खारव्यालीं पोरां[१३७]	खारवी के बच्चे)

पाँच प्रकार के खाद्यपदार्थ इस उत्सव की विशेषता है। नैवेद्य के रूप में लड्डू एवं मोदक सुप्रधान होते हैं! पंचमी के दिन नैवेद्य के रूप में *पातळ्यो* (एक मधुर पकवान) बनाया जाता है। फिर खीर एवं करंजे भी बनाए जाते हैं। चतुर्थी के दिन इस प्रकार मिष्टान्न का बडा महत्व रहता है। इनके अतिरिक्त लोग अपनी अपनी इच्छा के अनुसार कई मिष्टान्न बनाते हैं। कोंकणी की कहावत *चोवतीचो रग्गोडो* (चतुर्थी के दिन चक्की बराबर चलती रहती है) इसी ओर संकेत करती है। लोग इस लोकप्रिय उत्सव की प्रतीक्षा में रहते हैं और

स दिन के निकट पहुँचते ही इस प्रकार गाते रहते हैं -

ाल्या येयलो चोवतीचो दीस (कल है चौथ का दिन
ोवत आमची खेळांशी खेळांशी[१३८] चौथ हमारे आनन्द का दिन)

गणेश सभी देवताओं में श्रेष्ठ एवं लोकप्रिय देवता हैं। हिन्दी समाज में लोग प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर इस दिन गणेश प्रतिमा की पूजा करते हैं। गणेश प्रतिमा की प्रतिष्ठा के बाद उसका षोडशोपचार किया जाता है। बाद में धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल उन्हें समर्पित किया जाता है। उन पर २१ लड्डू चढाए जाते हैं। रात को चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की यथाविधि पूजा करके उन्हें अर्घ्य दिया जाता है। ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर गणेशजी का विसर्जन किया जाता है। हिन्दी की *गणेश चौथ की कथा*[१३९] और कोंकणी की *भटणीली चौथ*[१४०] गणेश महिमा एवं गणेश चतुर्थी की लोकप्रियता को ही दिखाती हैं। दोनों कथाओं में पंडित एवं पंडिताइन गरीब होने के कारण चतुर्थी को समुचित ढंग से नहीं मना पाते । कोंकणी कथा में पंडिताइन चार आनों की गणपति की मूर्ति ही खरीदती हैं और चौथ मनाती रहती हैं। हिन्दी की कथा में पंडित पंडिताइन अपनी दरिद्रता के कारण केवल चार लड्डू ही खरीद पाते हैं और वह भी उन्हें अपने बूढे अतिथि को खिलाने पड़ते हैं। लेकिन दोनों के यहाँ गणपति की उपस्थिति बराबर बनी रहती है। जो गणेश चतुर्थी मनाने के इच्छुक रहते हैं गणेश देव उनकी सब ओर से सहायता करते रहते हैं।

करवा चौथ

कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह व्रत किया जाता है। यह व्रत स्त्रियाँ अपने सौभाग्य के लिए करती हैं। स्त्रियाँ दीवार पर करवा चौथ बनाती हैं। पूजन करते समय चूडी, मेंहन्दी, बिन्दी, बिछुआ, महावर आदि रखकर पूजा करती हैं। करवा चौथ में सात भाइयों की इकलौती बहन भी बनाई जाती है। करवे, कुम्हारिन, महावर लगानेवाली नाइन, चूडी पहनानेवाली

मनिहारिन भी बनाई जाती हैं। इसकी एक प्रचलित कथा भी होती है। पूजा के समय गीत गाती रहती हैं --

करुवाले करुवाले
वीर पियारी करुवाले
बाप भाई की खट्टी खानी,
करुवाले करुवाले
धो ले नाडे, धो ले साढ़े
तेरौ जनम जाइयो [१४१]

महाशिवरात्रि

फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी को महाशिवरात्रि का व्रत मनाया जाता है । यह शिव का सबसे बड़ा व्रत है। इस दिन हिन्दी तथा कोंकणी समाज में लोग उपवास करते हैं और रात्रि में शिवदर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। रात्रि जागरण एवं शिवजी की आराधना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। त्रयोदशी के दिन से व्रत का आरंभ होता है। उस दिन एक बार भोजन करके दूसरे दिन निराहार व्रत का विधान होता है। वस्त्रों और पुष्पों से मंडप सजाकर पार्वतीसहित शिव की मूर्ति की स्थापना की जाती है। पुष्प, चन्दन आदि से इन मूर्तियों की पूजा करके बिल्वपत्र अर्पित किया जाता है। इस दिन शिव दर्शन एवं मूर्तिपूजन विशेष महत्व का माना जाता है। लोगों के बीच में प्रचलित शिवमाहात्म्य कहीं कहीं लोकसाहित्य में भी चित्रित मिलता है। शिव एवं पार्वति लोकसाहित्य के प्रिय देवता रहे हैं जो अपने भक्तों की रक्षा एवं सहायता के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में इनके कई संदर्भ देखे जाते हैं। शिवरात्रि के दिन गंगाजल से शिव की प्रतिमा का अभिषेक करना अत्यन्त पुण्यदायक माना जाता है।

सत्यनारायणव्रत

इस व्रत में सत्य की नारायण या ईश्वर के रूप में पूजा की जाती है। इसका कोई विशेष समय निर्धारित नहीं रहता, किसी भी तिथि को यह किया जा सकता है। एकादशी या पूर्णिमा को अक्सर इसका विधान होता है। इस व्रतकथा को सुनकर लोगों का विश्वास है कि मन की सारी मुरादें पूरी हो जाती हैं। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में इस व्रत के संदर्भ कहीं कहीं मिल ही जाते हैं। अधिकांश रूप में लोक कथाओं में ही ये संदर्भ देखने को मिलते हैं।

इस व्रत के विधान के प्रारंभ में गौरीगणेश तथा नवग्रहों की पूजा की जाती है। अनन्तर विष्णु भगवान का विधिवत् अर्चन व पूजन होता है। प्रसाद के रूप में फल, चीनीमिश्रित भूना हुआ आटा, मिष्टान्न तथा चरणामृत की व्यवस्था की जाती है। पूजा के बाद सत्यनारायण की कथा होती है। अन्त में भगवान की आरती की जाती है और प्रसाद वितरण होता है। इस व्रत में लोगों का बड़ा विश्वास रहा है। ऐसा माना जाता है कि सत्यनारायण की कथा सुनने से और व्रत ग्रहण करने से भगवान सन्तुष्ट होते हैं और मन की मुरादें पूर्ण करते हैं। लोगों का यह विश्वास लोकसाहित्य में भी चित्रित मिलता है। मौथिली कथा *बैंगन और मूली*[१४२] में सत्यनारायण भगवान की पूजा का संदर्भ मिलता है। यहाँ पर कोई किसान सत्यनारायण की पूजा करवाता है और गाँव भर को खाने पर निमंत्रित करता है। परंपरा का अनुसरण करते हुए लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार भिन्न भिन्न चीज़ों के साथ इस अनुष्ठान में भाग लेते हैं। कोंकणी कथा *भिकशेन राजालो* पुत्र नाम की कोंकणी कथा में[१४३] पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से राजा को सत्यनारायण की पूजा करते हुए चित्रित किया है। पूजा करने से उन्हें पुत्ररत्न प्राप्त होता

है और राजा को इस व्रत का फल तुरन्त प्राप्त हो जाता है।

इंत्रूज

यह गोवा में रहनेवाले कोंकणी समाज के ईसाई लोगों का ए उत्सव है जो बड़ा ही लोकप्रिय रहा है। गोवा में ईसाई समाज के अने व्यवहार हिन्दू समाज के जैसे होते हैं। धर्म के अनुसार चलनेवाला य समाज अनेक परंपरागत हिन्दू त्योहारों को अलग ही प्रकार से मनाता रहत है। इनकी संस्कृति भी अलग ही रहती है। इंत्रुज इसका प्रमाण प्रस्तु करता है। यह ईसाई धर्म से संबन्धित लोकोत्सव है। इसमें नाट्यात्मक आविष्करण ज्यादा रहता है। यह हिन्दू धर्मावलंबी लोगों के *शिगमा* उत्सव से मिलता जुलता एक उत्सव है। ईसाई धर्म के अनुसार ईसा के निर्वाण से संबन्धित चालीस दिन उपवास का अनुष्ठान होता है। पवित्र शुक्रवार, गुड फ्रायडे, के ये चालीस दिन उपवास व्रत के होते हैं। व्रतारंभ के पहले तीन दिन *इंत्रुज* के हैं। यह शब्द *एंत्रादु* (पुर्तगाली) शब्द से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ होता है उपवास व्रत में प्रवेश करना। आज के युग में यह उत्सव के रूप में बड़े ही रंग चढ़ाकर मनाया जाता है क्योंकि गोवा में पहुँचनेवाले पर्यटकों का इसमें विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है। नाच गान के साथ पश्चिम के ड्रम्स, बिगूल, ट्रंपेट आदि का प्रयोग इसमें होता है। इस उत्सव में स्त्रियाँ भाग नहीं लेतीं। *इंत्रुज* के विषय अधिकांशतः पारंपरिक ही रहे हैं। गायन में तो पाश्चात्य प्रभाव देखा जा सकता है। यह उत्सव *शिगमो* के आसपास फरवरी में ही मनाया जाता है। उत्सव के मंच पर होनेवाले खेल, घर घर के आंगन के खेल, रास्ते पर होनेवाले खेल,नाच एवं वाद्य, प्रत्येक घर से मिलनेवाले नारियल, मात्र पुरुषों का सहभागित्व, रंग बिरंगे पोशाक, रंग उड़ाना, अश्लील बोल,सब कुछ *शिगमो* या *होली* की याद

ɹलाते हैं। इसे यदि ईसाइयों का *शिगमो* कहें तो गलत नहीं होगा। र्मपरिवर्तन के पहले जो हिन्दू थे वे बाद में भी अपनी पुरानी हिन्दू संस्कृति गे लेकर आगे चल रहे हैं। यह सांस्कृतिक मेल मिलाप कोंकणी लोगों की ापनी विशेषता कही जा सकती है। हिन्दू और ईसाई संस्कृति का मेल देखानेवाला कोंकणी लोगों का और एक उत्सव है *सांज्यांव* जो लोगों के ीच बहुत ही प्रचलित रहा है। इसकी लोकप्रियता दिन ब दिन बढ़ती जा ही है।

ांज्यांव

सांज्यांव का अर्थ है संत जुआंव। पुर्तगाली शब्द आम लोगों के मुँह में आकर सांज्यांव के रूप में परिवर्तित हुआ है। कुछ लोग इस उत्सव को *ोजांव* या *शेज्यांव* भी कहते हैं। बाणावली गाँव में संत जुआंव बाप्तिश्त नाम के संत का गिरजा घर है। उनकी धार्मिक महत्ता को सब लोग मानते हैं। उनसे संबन्धित चमत्कारी कथाएँ लोगों के मुँह से आज भी सुनने को मिलती हैं। विश्वासी लोग जुआंव के इस उत्सव को कभी चूकने नहीं देते। यह जून २४ तारीख को होता है। जून २३ तारीख को लोग अपने घर की चौकी पर एक गुड्डा बनाके रख देते हैं। इसे *जुदेव* कहा जाता है। गाँव के बच्चे बड़े उत्साह से इसके सामने नाचने लगते हैं। बाद में गुड्डे को जलाया जाता है। घर की स्त्रियाँ इन बच्चों को मिष्टान्न खाने को देती हैं। दूसरे दिन, जून २४ तारीख को ईसाई लोग धर्मसभा में भाग लेने के लिए गिरजा घर जाते हैं। इसके बाद सांज्यांव उत्सव का आनन्द प्रवाह देखते ही बनता है।

जून २४ के दिन सबेरे गिरजाघर की प्रार्थना के बाद लोग किसी प्रमुख व्यक्ति के घर में एकत्रित होते हैं। वहाँ प्रार्थना चलती है, मोम बत्तियँ

जलाई जाती हैं और ओवियाँ गाई जाती हैं। इस समय कई लोकवाद्यों क भी उपयोग किया जाता है। इस उत्सव में भाग लेनेवाले पुरुष पत्र एवं पुष्प से नखशिखांत सजते रहते हैं। ये लोग नाचते हैं और गाते हैं। जैसे -

परबेचो दीस आयचो	(उत्सव का दिन यह
फाल्या मेळचो ना	कल नहीं रहेगा
तांबडी बन्दून पागडी	लाल पगडी बाँध कर
आमी जाववयां पेलतडी [१४४]	जायें हम उस पार)

सांज्यांव उत्सव में *पातोळ्यो* खाने को मिलती हैं। गरीब लोग भी इस दिन यह मिष्टान्न तैयार करते हैं। पके हुए कटहल के साथ चावल मिलाकर पीसा जाता है और नारियल एवं गुड मिलाकर पकाया जाता है। ऐसा विश्वास है कि सांज्यांव को यह मिष्टान्न बहुत पसन्द है। इस उत्सव के दिन युवा लोग *ओ रे शेज्यांव* कहकर ढोलक के साथ घर घर जाकर खेलते रहते हैं। इसके बाद शेज्यांव *पातळ्या* माँगकर खाता है। वह पैसे भी माँगता है। कहीं कहीं जाकर कटहल भी माँगता है। इन चीज़ों के अभाव में जो कुछ मिलता है उसे ले जाता है। इस उत्सव में नए जमाई का विशेष आदर किया जाता है। जमाई किसी भी घर का क्यों न हो, इतना ही बस है कि वह उसी गाँव का हो। उसके सामने गाते हुए उसको अनुग्रह प्रदान किया जाता है -

भांगराची सुरी	(सोने की छुरी
तेका रुप्याचे थोरू	उसकी रूपे की मूठ
सोयरे आमचे येयल्या	आये हमारे बंधु
तेचे देवान बरें कोरूँ[१४५]	ईश्वर उनका भला करे)

उत्सव में आनेवाले लोगों को तरह तरह के फल दिए जाते हैं। फिर शेज्यांव

एँ के पास जाकर एक एक करके फल कुएँ में फेंक देता है और स्वयं ्एँ में कूद पड़ता है। वहाँ से उसे बचाया जाता है। सब लोगों को पीने के ाए *फेनी* दिया जाता है।

नए बच्चे के नाम पर भी सांज्यांव खेला जाता है। नए बच्चे को ोकर माँ कुएँ के पास जाती है।· बच्चे के सिर पर सांज्यांव की डोरी ःक्षाकवच के रूप में बाँधी जाती है। गाँव के जमाई को हास्यात्मक, व्यंग भरी गालियाँ दी जाती हैं। सब लोग हँसते हँसते लोट पोट हो जाते हैं। गीत इस प्रकार चलता है --

आमी येयल्याय वोर्सानी	(हम वर्षों के बाद आए हैं
दुडू घालाय फोर्सानी	पैसे दे दें शक्ति भर
एक दो तीन चार	एक दो तीन चार
दवल्ले वाड्या भुरगे हुशार	दवले गाँव के बच्चे होशियार
आर्तुगाला पोर्तुगाला	आर्तुगाली पुर्तगाली
दाया गाजोता	दर्या गरजता है
दवल्लेचे चेडे आमी	हम दवले के लड़के
सांज्यांव घालोता[१४६]	सांज्यांव खेलते हैं)

आजकल सांज्यांव *उत्सव* को कुएँ में कूदकर मज़ा दिखाना ही माना जाता है। लेकिन सांज्यांव की कथा इस प्रकार है -- संत जुआंव बाप्तिश्त की माता इजाबेल ईसा की माँ की बहन थी। एक दिन ईसा की माता मरियम इजाबेल से मिलने जाती है। उस समय मरियम के गर्भ में ईसा है। इसे जानकर इजाबेल खुश होती है तो उसके गर्भ में संत जुआंव खुशी से उमडने लगता है। इसी के स्मरण में *सांज्यांव* उत्सव मनाया जाता है।[१४७] पूरे संसार में केवल गोवा प्रदेश में ही यह उत्सव इतनी धूम धाम से मनाया

जाता है। यहाँ के उत्सव पर भारतीय परंपरा का प्रभाव भी देखा जा सकता है। दीवाली का नरकासुर, चिकल कालो आदि सांज्यांव उत्सव में स्फूर्ति बढ़ानेवाले माने जाते हैं। पीढ़ियों से होकर चलनेवाले रीति-रिवाज इस उत्सव में देखे जा सकते हैं। आज सांज्यांव केवल आचार मात्र रह गया है। पैसे और फेनी की इच्छा ही इसके पीछे काम करती है। पुरानी संस्कृति के धागे आज टूटते जा रहे हैं और इस उत्सव पर नये वातावरण का प्रभाव आ गया है।

परंपराएँ ही हमारी संस्कृति है जिनका रूप हमें व्रत. पर्व एवं त्योहारों में मिलता है। धार्मिक अनुष्ठान की परंपरा सृष्टि के प्रारंभ से लेकर देखी जा सकती है। हमारी संस्कृति इन्हीं में जीवित रही है। लोकसाहित्य में चाहे वह हिन्दी का हो या कोंकणी का हो , यह परंपरा निर्बाध चली आ रही है। यहाँ पर हर पर्व, त्योहार, तिथि, मास, वार, पक्ष, सभी कुछ निश्चित हैं। उनकी पूजा के विधि विधान भी निश्चित हैं। उनको हर्षोल्लास से मनाने के त्योहार निश्चित हैं। नियमित दिनचर्या में ये परिवर्तन लाते हैं और ये मनुष्य को अलौकिक वातावरण में ले जाते हैं। इनमें नियम है, विधि-विधान है और आस्था एवं भक्ति है। सब मिलाकर ये उमंग भरे संदर्भ रहे हैं। मानव व्रत एवं उपवास करके सात्विक भावनाओं से पूर्ण परंपरा का निर्वाह करता है। व्रत एक नियम है जो शास्त्रों द्वारा व्यवस्थित है। यह पूजा से समन्वित एक धार्मिक कृत्य है। व्रत के प्रभाव से मनुष्य की आत्मा शुद्ध होती है। शरीर स्वस्थ रहता है। संकल्पशक्ति बढ़ती है। बौद्धिक विकास होता है। खान पान नियमित हो जाता है । हर त्योहार पर व्रत रखा जाता है । त्योहार तो आनन्द और उमंग के साथ देवता की विधिवत् पूजा रहता है। ये त्योहार, व्रत एवं पर्व ही हमारी सांस्कृतिक परंपराओं के प्रतीक हैं । लोकसाहित्य में इनका खूब वर्णन मिलता है। हिन्दी तथा कोंकणी संस्कृति

ी पृष्ठभूमि एक ही रही है और इसी कारण से दोनों समाजों में समान, त, पर्व एवं त्योहार प्रचलित रहे हैं. कहीं कहीं छोटे से परिवर्तन इधर उधर खे जा सकते हैं। फिर भी अन्तः सूत्र एक ही रहा है।

ोकनृत्य एवं लोकवाद्य

धर्मभावना से ओतप्रोत लोकसाहित्य में लोकगीतों एवं लोकनृत्यों की भरमार रहती है। इन गीतों एवं नृत्यों का साथ देनेवाले वाद्ययंत्र भी अनदेखे नहीं छोड़े जा सकते। लोकसाहित्य की धार्मिक भावना नृत्यों के अभिनय और गीतों के स्वरों के साथ शैलीविशेष के नर्तन द्वारा संपन्न की जाती है। लोकवाद्यों का इनमें महत्वपूर्ण स्थान है। अधिकांशतः ये परंपरा से जुड़े हुए हैं। शिवजी डमरू बजाने के लिए प्रसिद्ध हैं। विष्णु शंखधारी हैं। ब्रह्मा का संबन्ध ढोल से है। इस प्रकार प्राचीन काल से ही त्रिमूर्तियों के साथ ये लोकवाद्य जुड़े हुए हैं। हिन्दी और कोंकणी तोग परंपरा से ही इन त्रिमूर्तियों के आराधक रहे हैं । शिवजी से वे प्रारंभ से ही जुड़े हुए हैं। उत्सवों और पर्वों के अवसर पर लोगों में उत्साह बढ़ाने के लिए कई तरह के नाच, नाट्य एवं खेल किए जाते हैं। इन सबका प्रारंभ ईश्वर-प्रार्थना से होता है। लोगों के मन को आकृष्ट करने के लिए इनके साथ लोकवाद्य का प्रयोग भी किया जाता है। इसका खूब प्रभाव लोकसाहित्य पर भी पड़ा हुआ है। चाहे हिन्दी लोकसाहित्य हो या कोंकणी लोकसाहित्य इन लोकवाद्यों की प्रमुखता तो स्वयंसिद्ध है। लोकवाद्यों के सफल वादन से ही लोकगीत, लोकनाट्य तथा लोकनृत्य संपन्न किए जाते हैं। लोकवाद्यकार विभिन्न प्रकार के लोकनृत्यों का साथ देनेवाले बाजों को बजाने में कुशल रहते हैं। लोकसंगीत इन्हीं कुशल वाद्यकारों की वादनकला की लोकध्वनियों में सुरक्षित है। ये लोकधुनें परंपरावादी होती हैं। कुछ संस्कारगीतों एवं त्योहारगीतों को छोडकर शेष सभी में तरह तरह के वाद्यों का उपयोग होता है। हिन्दी

एवं कोंकणी लोकसाहित्य में मिलनेवाले ये लोकवाद्य कहीं कहीं समान होते हैं और कहीं कहीं भिन्नता भी लिए हुए हैं। हिन्दी लोकसाहित्य के वाद्यों में ढोल, दमौं, हुडकी, ढोलक, नगाडा, शंख, डमरू, बाँसुरी, रामसौर, अलगोजा, सिणाई, तुर्री, रणसिंगा, थाली, घंटी, घुँगरू, घाड, एकतारा, दुतारा और सारंगी प्रसिद्ध हैं।[१४८] कोंकणी लोकसाहित्य के वाद्यों में घुमट, समेळ, मोटा नगाड़ा, चौघडा, म्हादळें, ढोल, ढोलके, ताशा, कासाळें, जघांट, डायरा, डमरी, कोन्नो,बांको, शिंग, मृदंग, पखवाज, शंख, घंटा, टाळ, झाँझ आदि आते हैं।[१४९] इनमें अधिकाँश बाजों का प्रयोग हिन्दी तथा कोंकणी लोकनाट्यों में ही होता है। लोकनृत्य में भी कहीं कहीं इनका उपयोग किया जाता है। डौर, डमरू व थाली बजाकर देवताओं का यशगान करनेवाले, ढोल दमाऊँ बजाकर देवताओं का यशगान करनेवाले, कहीं डमरू के साथ काँसे की थाली, लकड़ी के डौंर की तरह बजाए जानेवाले, ढोल की तरह गले मे डालकर दाहिने हाथ से थाप देकर , बायें हाथ से डंडे से बजाये जानेवाले कई वाद्ययंत्र मिलते हैं। कहीं पर पंचनाम देवता से विनती की जाती है । जैसे -

जै जस दे धरती माता जै जस दे कुरम देवता
जै जस दे भूमि को भूम्याल जै जस दे गंगा की निर्मल धार
जै जस दे पंचनाम देवता [१५०]

कहीं खितरपाल जैसे ग्रामदेवताओं से अनुग्रह माँगा जाता है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में कहीं कहीं पांडवों को भी देवता के रूप में पूजा जाता है। इन सभी देवताओं के यशोगान में संगीत, लय एवं वाद्यों का प्रयोग होता है। हिन्दी के स्वांग नाटक में नृत्य अभिनय का प्रमुख माध्यम होता है। नृत्य के हाव भाव से इसके प्रदर्शन में निखार आता है। नृत्यमुद्राएँ इसको आकर्षक एवं संवेदनशील बनाती हैं। इस लोकनाट्य में वाद्यों की

मुखता रहती है। कोंकणी लोकनाट्यों में *जागर* में ढोलक, घुमट, नगाड़ा, ाँझ, कासाळें, *काला* में झाँझ, मृदंग, पखवाज़, *रणमाले* में घुमट, कासाळें, ढोल आदि का प्रयोग किया जाता है। इनके साथ साथ इंत्रुज के समय चलनेवाले खेलों में ट्रंपेट, क्लॉरोनेट, ड्रम्स आदि का उपयोग किया जाता है। कहीं कहीं हारमोनियम और तबला भी रहता है।

गढवाल का पांडवनृत्य हिन्दी लोकनाच में बहुत आकर्षक माना जाता है। पांडव नृत्य खुले मैदान में लोकरंजक नृत्य के रूप में अधिक व्यवहृत हो चला है जिसे लोकसमाज ने अपने आप में अधिक आत्मसात् कर लिया है। जैसे कोंकणी में *जागर* लोकनाट्य है वैसे ही गढ़वाल में भी देवी देवताओं से संबन्धित लोकगीतों को जागर कहा जाता है। दोनों का अर्थ देवताओं को जागृत करना होता है। कहीं कृष्ण को नागराज के रूप में पूजा जाता है। कृष्णकथा और उनकी अद्‌भुत लीलाओं से संबन्धित जागरगीत तो प्रसिद्ध हैं। ढोल-दमाऊँ और डौंर थाली के वाद्ययंत्रों के साथ भैंरों का नृत्य किया जाता है।[१५१] पंडौ का नाच असौज कार्तिक में खेती का कार्य समाप्त होते ही होता है। दीपावली के अवसर पर भी यह होता रहता है। मेले ठेलों में भी इसकी प्रमुखता रहती है। यह लोगों का इतना चहैता नृत्य है कि विधि विधान की सीमा का भी बंधन इसमें नहीं रहता। बाजगीर बजाने लगे तो नृत्त शुरू हुआ। कहीं कहीं ढोलिया की शिव के रूप में पूजा होती है जिससे बजानेवालों का महत्व आँका जा सकता है। पंडौ नृत्य के अतिरिक्त और कई नृत्य भी यहाँ देखने को मिलते हैं जिनमें प्रमुख हैं--थड्यानृत्य, चौंफला नृत्य, झुमैलो नृत्य, मयूर नृत्य, होली नृत्य, वसन्ती नृत्य, चाँचरी नृत्य, घुघती नृत्य, तलवार नृत्य, केदारा नृत्य, जात्रा नृत्य, साँपू नृत्य, शिव-पार्वती नृत्य, थालीनृत्य, दीपकनृत्य, नट-नटी-नृत्य, सुई नृत्य, राधाकृष्ण नृत्य आदि।[१५२] इनमें होली नृत्य में होलिका के स्थान से

टोली-नर्तक ढोलक, बाँसुरी और हारमोनियम लेकर पड़ोस में नाचने और गाने जाते हैं। ये सफेद रंग का चूडीदार पायजामा, सफेद कुर्ता एवं सफेद रंग की टोपी पहनकर, हाथ में रूमाल लेकर चलते हैं। होली के गीत और नृत्य किसी घर के सामने गाये या नाचे जाते हैं तो वह परिवार अपनी शक्ति के अनुसार नर्तकों को रुपया दे देता है। कहीं पर बकरा भेंट किया जाता है। गाँव के चौक पर नाच होता है तो गाँव की ओर से बकरा या उसके मूल्य का रुपया देने की प्रथा है। कोंकणी के *सांज्यांव* में भी ऐसा ही होता है। यहाँ पर बकरे के बदले कटहल दिया जाता है।

कोंकणी लोकनाच भी कई तरह के हैं। धर्म के आधार पर इन्हें दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। हिन्दू समाज के नाच और ईसाई समाज के नाच। हिन्दू लोकनाच अधिकांशतः धार्मिक अनुष्ठान से संबद्ध रहे हैं। उत्सव एवं पर्वों के समय नाचने की प्रथा इस समाज में वर्तमान है। इनमें पुरुषों और स्त्रियों के अलग अलग नाच होते हैं। स्त्रियों के नाच दो प्रकार के हैं। व्यवसायिक एवं अव्यवसायिक। व्यावसायिक नाच के अन्तर्गत कलावन्तों का नाच आता है। ये व्यावसायिक कलाकार हैं। ईश्वर की पालकी के सामने स्त्रियों के नाचने की यह प्रथा पुराने ज़माने में थी। हाथों के हाव भाव और पैरों की चाल चलन पर ही यह नाच प्रमुखतः आधारित था। अव्यवसायिक तौर पर चलनेवाले नाच हैं धालो और फुगडी। धालो के संबन्ध में पहले कहा जा चुका है और यहाँ पर फुगडी के संबन्ध में ही कहा जा रहा है। फुगडी में हाथ पाँव के अतिरिक्त लयबद्ध रूप से कमर हिलाकर भी हाव भाव प्रकट किए जाते हैं। इसमें वाद्यों का प्रयोग नहीं होता। हिन्दी क्षेत्र की फुगडी से इसका थोडा सा मेल बिठाया जा सकता है। इस नृत्य में तालियाँ बजाने एवं पैरों की चाल के लयात्मक एवं संगीतात्मक शब्द सुनने को मिलते हैं। फुगडी के गीत अधिकाँश रूप में

सामाजिक विषयों से संबन्धित होते हैं। चौथ के उत्सव पर फुगड़ी नाच धूम धाम से होता है। नागपंचमी, मंगळगौरी, एवं श्रावण मास के रविवार को भी यह नाच होता रहता है। फुगडी के चौदह प्रकार प्रचलित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - सादी फुगडी, भोंवरी फुगडी, बेबकी फुगडी, दोट्टी फुगडी, जोडी फुगडी, रगडो फुगडी, हा़थफेर्याची फुगडी, दांडावयली फुगडी, उबी फुगडी, धालो फुगडी, बसकी फुगडी, कळशी फुगडी, नागडी फुगडी, रंभा फुगडी।[१५३]

पुरुषों के नाच के अन्तर्गत धिंणल्याचो नाच, शिगम्या मेळाचो नाच, तालगडी, तोण्यां मेळ, गोफ, घोडे मोडणी, वीरभद्र, चपय, आदि। फाल्गुन के महीने में *शिग्मो* से संबन्धित पुरुषों का नाच कांसाळीं, ताशा, झाँझ आदि के ताल और लय में बीच बीच में *शबय* के आवाज़ के साथ होता है। इनका नाच केवल *शिगमो* के अवसर पर होता है। ढोल और ताशा नाच का प्रमुख आकर्षण रहता है। जितने ज़ोर से ढोल ताशे बजते हैं नाच में भी उतना ही जोर आता है।

इन लोकनृत्यों और लोकवाद्यों के पीछे लोगों का मूल्यवान योगदान रहता है। पर्वों और उत्सवों के ये प्राण होते हैं। धार्मिक उत्सवों से संबन्धित ही इनकी प्रस्तुति होती है। इनके पीछे पीढियों के प्रयत्न निहित हैं। यही इनकी महत्ता के कारण भी हैं। ये नृत्य और वाद्य आज भी अपने अपने गाँव की पुरानी संस्कृति के रक्षक रहे हैं।

संस्कार

संस्कार शब्द का अर्थ बहुत ही विस्तृत होता है। इसके अन्तर्गत शिक्षा, पवित्रता, पूर्णता, चाल-चलन, पवित्र अनुष्ठान, पवित्र विधान, श्रद्धा एवं पुण्य सबका समावेश रहता है। यह जीवन में व्यक्ति की आत्मा के

विकास की प्रक्रिया है जिसका अनुसरण करते हुए वह पुण्य कमाता है और पूर्णता प्राप्त करता है। ये संस्कार विश्वास के बल पर चलते हैं और व्यक्ति को समाज के साथ जोड़ते रहते हैं। संस्कारों के पालन से जीवन में बुरे प्रभाव नहीं आते और विविध अनुष्ठानों के ज़रिए भलाई आ जाती है। हिन्दी तथा कोंकणी का लोकजीवन अधिकांश रूप में ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट संस्कारों का अनुगामी रहा है। इसका प्रभाव इन दोनों भाषाओं के लोकसाहित्य पर भी देखा जा सकता है। जीवन से संबन्धित प्रमुख संस्कार लोकगीतों के बिना अधूरे ही रह जाते हैं इस प्रकार लोकसाहित्य एवं संस्कारों का अटूट संबन्ध रहा है। लोकगीतों के समान कई लोककथाओं में भी संस्कारों से संबन्धित विभिन्न संदर्भ देखने को मिलते हैं। यही नहीं कहावतों और पहेलियों में भी स्थान स्थान पर इनका संकेत मिलता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कार माने गये हैं। इन्हें मूल रूप से तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। जैसे--

१. पिताजी के द्वारा जिनका विधान किया जाता है जैसे उपनयन

२. स्वयं व्यक्ति के द्वारा जिनका विधान होता है जैसे विवाह

३. आनेवाली पीढ़ी के ज़रिए जिनका विधान किया जाता है जैसे अन्त्येष्टि

इस प्रकार संस्कार भूत, वर्तमान एवं भविष्य से जुड़े हुए हैं। जीवन में इनकी प्रमुखता रहती है। यों तो जन्म से मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कार माने गये हैं लेकिन लोकसाहित्य की दृष्टि से चार संस्कार ही प्रमुख रहे हैं । वे हैं - जन्मसंस्कार, उपनयनसंस्कार, विवाह संस्कार एवं अन्त्येष्टि संस्कार। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में किसी न किसी रूप में इन संस्कारों का समावेश देखा जा सकता है। बच्चे के जन्म के पूर्व दोहदोत्सव का भी विधान दोनों समाजों में रहता है जिसका विस्तृत विवरण इन लोकसाहित्यों

नें समान रूप से मिलता है। प्रत्येक संस्कार के दो रूप होते हैं। एक सैद्धान्तिक जो मूलत; पौरोहित्यसंबन्धी होता है। दूसरा व्यावहारिक जो लोकसंबन्धी होता है। यह मुख्य रूप से स्त्रियों से संबन्धित होता है जिसमें अधिकांशतः लोकगीतों का प्रयोग रहता है। स्त्रियाँ समूह बनकर परंपरागत एवं नये नये गीत सजाकर इस आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। पुंसवन संस्कार इसका उत्तम उदाहरण है। व्रज में इसे *साध पूजना* कहते हैं। लोक की प्रतीक शैली में इसे *चौक* भी कहते हैं। गर्भ के सातवें मास में यह संस्कार होता है। पति पत्नी को चौक पर बिठाकर यह संपन्न किया जाता है। इस समय गाये जानेवाले गीतों को *सोहर* कहते हैं। इन गीतों में गर्भिणी की प्रत्येक मास की दशा का वर्णन होता है। अवधी का एक गीत देखिए-

पहिला महीना जब से लागा घूमे मोर कपार मोरे राजा
तीसरा महीना जब से लागा गोड़वा मोर घहराय मोरे राजा
चौथा महीना जब से लागा, आम इमली के साधि मोरे राजा
पाँचवाँ महीना जब से लागा, माँसु, मछरी चित लाग मोरे राजा
सातवाँ महीना जब से लागा, मैके क खबर जनाव मोरे राजा
आठवाँ महीना जब से लागा, भीर भये जिउ घबराय मोरे राजा
नववाँ महीना जब से लागा, थर थर काँपे परान मोरे राजा

भिन्न भिन्न प्रदेशों में इनके भिन्न भिन्न रूप पाये जाते हैं फिर भी सब कहीं एक ही स्वर में ये गीत गर्भिणी की शारीरिक दशा एवं मानसिक स्थिति का वर्णन करते रहते हैं। कोंकणी में भी इस प्रकार के गीत मिलते हैं । जैसे -

तीनि मासांची देवकी गुरुबिणी	(तीन मास की देवकी गर्भिणी
दुवाळे पैं जाले दुवाळे	दोहद पे दोहद
उपनल्ला दत्तुगे तीये अंबे नींब्याचे	उत्पन्न हुए अंबिया औ निंबुआ के

हाडाय अंबे निंबेय दुवाळे पुरोया	लाएँ अंबिया औ नीबुआ देहदपूरण
दुवाळे दुवाळे देवके राणिय	दोहद देवकी रानी के
संपूर्ण कोरुया	पूर्ण करें
चारी मासाची देवकी गुरुबिणी	चार महीने की देवकी गर्भिणी
दुवाळे पैं जाले दुवाळे	दोहद पे दोहद
उपनल्ला दत्तुगे तीये पेर बोरांचे	उत्पन्न हुए अमरूद औ बेर के
हाडाय पेर बोरंय दुवाळो पुरोया	लाएं अमरूद औ बेर दोहदपूरण हो
दुवाळे दुवाळे देवके राणिये	दोहद देवकी रानी के
संपूर्ण कोरुया	पूर्ण करें
पांच मासांची देवकी गुरुबिणी	पाच मास की देवकी गर्भिणी
दुवाळे पैं जाले दुवाळे	दोहद पे दोहद
उपनल्ला दत्तुगे तीये खंड मंड्याचे	उत्पन्न हुए खांड मांठ के
हाडाय खंडे मंडेय दुवाळे पुरोया	लाएँ खाँड औ मांठ देहदपूरण हो
दुवाळे दुवाळे देवके राणिये	दोहद देवकी रानी के
संपूर्ण कोरुया	पूर्ण करें
सयि मासांची देवकी गुरुबिणी	छः मास की देवकी गर्भिणी
दुवाळे पैं जाले दुवाळे	दोहद पे दोहद
उपनल्ला दत्तुगे तीये कपड पीतांबर	उत्पन्न हुए साड़ी पीतांबर के
हाडाय कपड पीतांबर दुवाळो पुरोया	लाएँ साड़ी पीतांबर दोहदपूरणहो
दुवाळे दुवाळे देवके राणिये	दोहद देवकी रानी के
संपूर्ण कोरुया	पूर्ण करे
सात मासांची देवकी गुरुबिणी	सात मास की देवकी गर्भिणी
दुवाळे पै जाले दुवाळे	दोहद पे दोहद
उपनल्ला दत्तुगे तीय	उत्पन्न हुए

ब्रजूर,दराक्षि,चींच	खजूर,द्राक्षा इमली के
ग़डाय खजूर,दराक्षि,चींच	लाएँ खजूर, द्राक्षा, इमली
दुवाळे पुरोया	दोहदपूरण हो
दुवाळे दुवाळे देवके राणिये	दोहद देवकी रानी के
संपूर्ण कोरुया	. पूर्ण करे
अट्ठ मासांची देवकी गुरुबिणी	आठ मास की देवकी गर्भिणी
आयकूक बेसली कथा	बैठी सुनने कहानी
पोटांतुले बाळानिरे हुंकारु दिला	पेट में बच्चे ने दिया हुंकार
बाळा रे हुंकार दिल्ला म्हणुनी	बच्चे ने हुंकार दिया, इसका
कंसा पडनल्ली सुद्धि	कंस को हुआ भान
काय कोर्चें बुद्धिगे	बुद्धि से काम लेना है अब
आतां देवकीचे बाळा	देवकी के लल्ला
णव्व मासांची देवकी गुरुबिणी	नौ मास की देवकी गर्भिणी
दुवाळे पै जाले दुवाळे	दोहद पे दोहद
उपनल्ला दत्तुगे तीये कदळी केळ्याची	उत्पन्न हुए कदली के
हाडाय कदळी केळीं दुवाळे पुरोया	लाएँ कदली केले दोहदपूरण हो
दुवाळे दुवाळे देवकी राणये संपूरण	कोरुया दोहद देवकी के पूर्ण करें)[१५५]

जन्मोत्सव

पुत्रजन्म के अवसर पर बडा उछाह और उत्सव मनाया जाता है। कहीं शहनाई बजती है तो कहीं पौंरिया नाचता है। परिजन तथा पुरजन अनेक प्रकार की वस्तुएँ उपहार में लेकर उपस्थित होते हैं। इस अवसर पर सर्वत्र आनन्द छाया रहता है।[१५६] प्राचीन काल में पुत्रजन्म के अवसर पर प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए ब्राह्मणों और निर्धनों को अन्न और धन बाँटन

की प्रथा रही थी। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में इसके प्रमाण दे
जा सकते हैं। संतान के जन्म के समय देवी देवताओं की स्तुति, उनके प्र
कृतज्ञता ज्ञापन आदि से संबन्धित कई लोकगीत मिल जाते हैं। कहीं गणे
की वन्दना है तो कहीं शिव-पार्वती की कृपाकांक्षा। कहीं बालक में राम
गुणों की स्थापना है तो कहीं कृष्ण की मनोहारिता की। हिन्दी तथा कोंक
में समान रूप से यह चलता है। जन्म से संबंधित सोहरगीतों में जच्चे औ
बच्चे की मंगलकामना की जाती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के चा
सुप्रधान संस्कारों का वर्णन लोकसाहित्य में मिलता है। इनमें सोहरगी
सबसे प्रमुख हैं। गर्भधारण से लेकर पुत्रजन्म तक और उसके बाद ना
काटना, जन्मसंस्कार आदि का चित्रण इनमें मिलता है। हिन्दी में जित
गीत इस विषय पर मिलते हैं उतने कोंकणी में नहीं हैं। लेकिन कोंकर्ण
समाज में तो इन संस्कारों की चाल चलन तो है ही । इन अवसरों पर गीत
बहुत कम ही गाये जाते हैं। जन्म से संबन्धित संस्कारों को चित्रित
करनेवाला एक कोंकणी गीत इस प्रकार है -

दशरथ रायान तांका	(दशरथ राजा ने
जातकर्म केलें गा	उनका जातकर्म किया
वेदयुक्त मार्गान	वेद-विधान से
रायान जातकर्म केलें गा	राजा ने जातकर्म किया
सटिये दिवसि	छठी के दिन
रायान सष्टि पूजिली गा	राजा ने छठी की पूजा की
सर्वे प्रकारि	सभी प्रकार से
रायान सष्टि पूजिली गा	राजा ने छठी की पूजा की
धावे दिसा रामाक	दसवें दिन राम को
स्नान पै केलें गा	नहलाया गया

ावे दिसा रामाक बारहवें दिन राम को
सो पै केलो गा [157] अन्नप्राशन का संस्कार किया)

न, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के विधिवत् जन्मसंस्कार यहाँ वर्णित हैं। जन्म पर आनन्द मनाने की रीति दोनों समाजों में दिखाई देती है। राम जन्म पर अयोध्या में क्या होता है , इसका चित्रण देखिए -

जनमल चारों भैया हो राम अवध नगरिया में ।
केओ लुटावे राम, अन्न, धन, सोनवाँ,
केओ लुटावे हाथ के कंगनवां हो राम, अवध नगरिया में ।
राजा लुटावै रामा अन्न, धन, सोनवाँ, हो राम,
रानी लुटावै हाथ के कंगनवां हो राम, अवध नगरिया में ।
बाजे बजैया आजु किनके अंगनवां में,
सुर बरसावै सुमनवा हो राम, अवध नगरिया में ।[158]

खने की बात यह है कि पुत्रजन्म के अवसर जहाँ विभिन्न प्रकार से आनन्द नाया जाता है वहाँ पुत्री के जन्म पर ऐसा कहीं नहीं दिखाई देता। हाँ, कोंकणी लोकगीतों में एक स्थान पर सीता के जन्म के अवसर पर राजा जनक द्वारा शक्कर बाँटते हुए आनन्द मनाने की बात वर्णित है। देखिए

जनका राज्यांत शिता जन्मली (जनकराज्य में सीता का जन्म हुआ
जनका राजान साकर बाँटली[159] जनक राजा ने शक्कर बाँटी)

हिन्दी में *सधौरी, सोहर* आदि संस्कारगीतों के साथ साथ *बरुआ* गीत भी प्रचलित हैं। ये गीत उपनयन के अवसर पर गाये जाते हैं। कोंकणी समाज में भी उपनयन संस्कार का बड़ा महत्व है। लेकिन इससे संबन्धित गीत तो हिन्दी की अपेक्षा बहुत कम ही मिलते हैं।

उपनयन

उपनयन संस्कार में बटुक भिक्षार्जन द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पाल करके विद्याध्ययन के नियम को स्वीकार करते हुए आत्मनिर्भरता व संस्कार ग्रहण करता है। एक हिन्दी लोकगीत में इसका विवरण इस प्रका दिया है -

हाथ मा धरी छतरंगी, खखोरी चिपे पाटी हो,
बरुआ के बोलन मोर, बरुआ भीखमलाल
हमका ब्राह्मण बनावा हो[१६०]

पुत्र तो कुल को आगे ले जानेवाला माना जाता है। इसलिए लोग उर पाकर कई प्रतीक्षाएँ लेकर संतुष्ट रहते हैं। वह व्यक्ति के इहलोक को ह नहीं परलोक को भी सुधारता है। *पुतात् त्रायते इति पुत्रः* यही प्रमाण है औ लोक विश्वास भी। लोगों का यह भी विश्वास है कि पुत्र का जनेऊ संस्का देखकर पुरखे प्रसन्न होते हैं क्योंकि यही बच्चा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके कुल को आगे बढ़ाता है। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार है --

मड़वहि घृत ढराय गेल, स्वर्ग पितर आनन्द भेल
बाबू आब कुल बढ़त हे [१६१]

उपनयन बच्चे को ब्राह्मण बनाने का संस्कार होता है। इसी संस्कार से वह दूसरा जन्म ग्रहण करता है और द्विज कहलाता है।मनु के अनुसार मनुष्य जन्म से शूद्र रहता है और संस्कार से ही द्विज बनता है। *जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते*। जिस लड़के का उपनयन होता है उसे *बटुक* कहा जाता है। कोंकणी में उसे *मुंजा* कहते हैं। यह शब्द कोंकणी *मूँजि* शब्द से बना है। कोंकणी समाज में लोकजीवन में इस संस्कार को आदरपूर्वक देखा जाता है। कुल के गुरु की देखरेख में यह संस्कार संपन्न होता है। इस संस्कार के पिछले दिन व्रत रखा जाता है। संस्कार के पहले

समाज की सुमंगली स्त्रियाँ लड़के को हरिद्रातैलस्नान या हरिद्रालेपन कराती हैं। इसे कोंकणी में *खर्वटण* कहा जाता है। इसी दिन सबेरे दिया जलाकर गणपतिपूजन किया जाता है और उसके बाद अनेक बच्चों के साथ बटुक के भोजन का विधान है। उसके बाद हजामत होता है। पीला वस्त्र पहनकर हजाम आता है जिसे जनेऊ संस्कार के पहले बालक के सिर का बाल काटना होता है। इसके लिए नाई को दक्षिणा के रूप में धन दिया जाता है।दोनों समाजों में यह संस्कार समान रूप से चलता है। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

आवथु हजमा कि भैया ओजे, वैसथु माड़व चढ़ि हे
पहिरथु पियरन्ह धोतिया ओजे, लापरी मुड़थु हे[१६२]

कोंकणी में गीत का प्रचार नहीं है । शायद गीत लुप्त हो गया हो। अनुष्ठान तो बराबर चलता रहता है। इसके बाद मुंज घास की बनी करधनी बच्चे को पहनाई जाती है। गीत इस प्रकार है-

आरे पहिले पहिरे मूँज के डाँडा, तब मिरगछाला
तब पहिरे बरूआ रतन जनेउवा [१६३]

पलाशदण्ड तथा मृगछाला लाने का कार्य महत्वपूर्ण माना गया है -

को मोरे जइहै वृन्दावनु लइहै फरस दण्डु
को मोरे खेले अहेरिया मृगछाला चाहिअ [१६४]

पलाशदण्ड कोंकणी संस्कार में भी आता है। लेकिन इससे संबन्धित लोकगीत नहीं मिलते। इस प्रकार अनेक अनुष्ठानों के बीच जनेऊ संस्कार संपन्न होता है।

जैसे कि पहले हिन्दी लोकगीत की पंक्तियों में वर्णित है भीख माँगने कीं प्रक्रिया इस संस्कार का सबसे प्रमुख विधान रहता है। बटुक

सबसे पहले माँ से भीख ग्रहण करता है। समाज के सभी लोग उसे भि
देते हैं साथ ही अनुग्रह भी। कोंकणी लोकगीत की दो पंक्तियाँ इस आच
का वर्णन इस प्रकार करती हैं

मुंजीचे व्होरेताक विभूतेची रक्षा	(उपनयन के बटुक को विभूति की र
मावळेन घालि भिक्षा मोतयांची	मामी ने दे दी मोतियों की भिक्षा)[१६५]

अनुग्रह देते समय स्त्रियाँ शोभाने गीत का गायन करती हैं जिसमें बटु
को राम और कृष्ण के रूप में माना जाता है। जैसे

दशरथ रय्यागेरी जन्मु घेतल्याक	(दशरथ राजा से जन्म लेनेवाले की
दशमुख रावण नाशु केल्लेल्याक	दशमुखरावण का नाश करनेवालेकी
नाशु केल्लेले कंसाक	नाश करनेवाले कंस के
श्वासु सोळ्ळेल्याक	श्वास लेनेवाले की
नील मेघवर्ण कृष्णरुक्मिणीक	नील मेघवर्ण कृष्ण रुक्मिणी की
कुंकुम लाव्नु आर्ति दाक्कयायि -	कुंकुम के साथ आरती उतारी जाय
शोभाने ![१६६]	मंगल हो !)

आज के युग में अनुष्ठान का संपूर्ण स्वरूप देखने को नहीं मिलता। फिर
भी उपनयन संस्कार में कई लोकविधान ऐसे मिलते हैं जिनमें प्राचीन
परंपरा जीवित रहती है। वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद, स्मृति एवं पुराणों मे
इस संस्कार का महत्व वर्णित है। जैसे

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्
आयुष्यमग्र्यां प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः

इस संस्कार में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है जो बल एवं तेज उत्पन्न
करनेवाली होती है। लेकिन यह पावन संस्कार अब रूढ़ हो चुका है। लेकिन
थोडे लोकगीत हिन्दी एवं कोंकणी में इसके बचे हुए रूप को आज भी

अक्षुण्ण रखे हुए हैं। हिन्दी क्षेत्र में आज भी इस अनुष्ठान में स्त्रियाँ एकत्र होकर गीत गाती रहती हैं। इस समय गाये जानेवाले गीतों को जनेऊ गीत कहा जाता है। जैसे उबटन लगाते वक्त गाया जानेवाला एक गीत देखिए -

उबटनु दलिया मलिया मैलु छुटावै
बोलवो न बाबा कहहाँ यह सुख देखै जाय [१६७]

यज्ञोपवीत संस्कार में यह दिखाया गया है कि धर्म के पालन के लिए लोकसमाज में कितना बल दिया जाता था। यहाँ पर व्यक्ति व्यक्ति के बीच का संबन्ध सौहार्दपूर्ण रखा गया है। संस्कार के अनुष्ठान समूहगत होकर किए जाते हैं। माता पिता के अतिरिक्त चाचा-चाची, मामा-मामी, बहन आदि का अपना योग अलग अलग रहता है। किसी को भी इस अनुष्ठान से दूर नहीं रखा जाता।

विवाह

विवाह लोकजीवन का प्रमुख संस्कार है। संस्कारों में इसका सर्वाधिक महत्व है। यह धार्मिक महत्व की सामाजिक प्रक्रिया है। पति पत्नी एक साथ रहकर कई धार्मिक अनुष्ठान करते हैं और वंश को आगे बढ़ाते रहते हैं। यही विवाह का प्रमुख उद्देश्य भी है। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक पुरुष पर तीन प्रकार के ऋण होते हैं। इनसे उऋण होना उसका धर्म होता है। ये हैं ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण। कोई भी व्यक्ति धर्म के अनुसार अनुकूल वर्ण अथवा गुणवाली स्त्री से विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करते हुए पितृऋण से मुक्त हो जाता है। धर्मानुसृत विवाह के लिए अनुकूल वर्ण आवश्यक रहता है। वर्ण के साथ साथ विवाह में परिवार, गोत्र आदि का भी ध्यान रखा जाता है। समान गोत्रवालों के साथ विवाह संपन्न नहीं होता। कोंकणी लोकगीत कहता है -

जनन जल्या परांते	(जन्म लेने पर
संसार सुखांतु खेळुका म्हणु	संसारसुख के अनुभव के लिए
परगोत्री चलयेक तू	भिन्न गोत्रवाली लड़की से
हाडतरी पाव निरत सुख संतोषु तू[१६८]	विवाह करके तू सुखनिरत रह)

लोकसमाज में विवाह को पवित्र संस्कार माना जाता है। हिन्दी तथा कोंकणी समाज में आम तैर पर सामाजिक एवं धार्मिक मान्यता प्राप्त ब्राह्मविवाह का ही उल्लेख मिलता है। विधिवत् विवाहसंस्कार करने में कई अनुष्ठानों का पालन करना होता है। पुरोहित मन्त्रोच्चारण करता है और वेदविधि के अनुसार विवाहसंस्कार संपन्न होता है। यह संस्कार बड़े आनन्द एवं उत्साह के साथ होता है। नाते रिश्ते के लोगों की भीड़ एकत्र होती है। मंडप सजाया जाता है। खान पान एवं भोजन तैयार किया जाता है। सुमंगलियाँ कमर कसकर तैयार हो जाती हैं। जाँते घरघर करते रहते हैं और साथ ही विवाहगीतों का भी गायन होता है। सामान्य लोग इन गीतों में खूब रुचि लेते रहते हैं।

हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में विवाह के कई संदर्भ देखे जा सकते हैं। लोकगीतों की कोई बात ही नहीं। प्रारंभ से अन्त तक विवाह में तरह तरह के लोकगीत गाये जाते हैं। जैसे सगाई गीत, लगुन गीत, बधाया गीत, बन्नी गीत, भातगीत, उबटन गीत, घोड़ी गीत, रतजगा गीत, तेल चढ़ने का गीत, कन्यादान गीत, भाँवर गीत, विदाई गीत आदि [१६९] कहीं कहीं गाली गीत भी मिलते हैं जैसे --

काहे रामजी सांवर त लछुमन गोर हो
रानी कौसिल्याजी के रतिया में पड़ गेल भोर हो
राम हथिन दशरथ के त लछुमन अनकर हो

एहि से लछुमन गोर त रामजी सांवर हो [170]

विवाह में बारातियों को कन्यापक्ष की औरतें गाली देती हैं , खासकर द्वारपूजा के समय जब बारात दरवाज़े पर पहुँच जाती है तो समधी को लक्ष्य करके गालियाँ दी जाती हैं। ऊपर की पंक्तियों में इसीका चित्रण है। कोंकणी ओवियों में भी ऐसे ही विषय मिलते हैं।

कोंकणी में विवाह में गाये जानेवाले गीतों को सामान्यत: ओवी कहा जाता है। ओवियों का गायन कोंकणी समाज में विवाहसंस्कार का एक प्रमुख कार्यक्रम है। ये व्यंग्य भरी हास्यपूर्ण रहती हैं। इन्हें संदर्भ के साथ जोड़कर गाया जाता है। ये ओवियाँ विवाहोत्सव में तरह तरह के रंग भर देती हैं। दूल्हा -दुलहिन, नाते रिश्ते के लोग , पुरोहित, खाना पकानेवाले, सभी ओवियों के विषय बनते हैं। सगाई से लेकर गौने तक के सारे कार्यक्रम लोकगीतों को भी साथ लेकर चलते हैं। कोंकणी की ओवियों का माधुर्य निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा --

आबोलेचें फूल	(अबोले का फूल
ताबडें तांबडें दिसता	लाल लाल रहता है
बायले पोळोव्नु हासता	वधू को देखकर
व्होरेतु आमगेलो[171]	हमारा वर हँसता है)

प्रस्तुत पंक्तियों में वधू के रूप की तारीफ की गई है कि वह फूल के समान लाल रंग की, सुकुमार एवं सुन्दर रही है।

विवाह में कन्या के माता पिता योग्य वर का चुनाव करके ध १ और वस्त्राभूषण के साथ अपनी कन्या को उसे दान कर देते हैं। योग्य वर के चुनाव के बाद उसको रुपया देने का विधान है जिसे वरीक्षा[172] कहा जाता है । इसके बाद तिलक होता है। तिलक में कन्या के पिता परिजनों के साथ

वर के घर आता है और रुपया, बरतन, वस्त्र तथा फल धार्मिक अनुष्ठान से वर को दिया जाता है। कोंकणी समाज में इसको *वेस्त* (व्यवस्था) कहते हैं। इसी दिन से कन्या के धर सगुन के गीत गाये जाते हैं। विवाह की निश्चित तिथि के पूर्व हल्दी-धान भेजा जाता है और मंडप बनाया जाता है। इस समय मंडप गीत गाये जाते हैं। कोंकणी समाज में सगाई के बाद विवाह तक के समय में शुक्रवार के दिन सुमंगलियाँ आशीषपात्र लेकर आचारानुसार कन्या को आशीर्वाद देती हैं और उसके केशों में सुगन्धित फूल लगाकर उसे सजाने का कार्य करती हैं। आचारानुसार पाँच पान एवं बीडे, हलद, चन्दन, कुंकुम, चंपा, केतकी, मालती, जूही, बकुल आदि पाँच प्रकार के सुगन्धित फूलों से थाली सजाकर वर के संबन्धी अनुष्ठान का पालन करते रहते हैं। यही नहीं, रेशम की साड़ी, कुंकुम, कंकण, हारसी, सोने की माला, सब मिलाकर लक्ष्मीपूजन किया जाता है। विशेष रूप से चिड्डे का नैवेद्य किया जाता है। विवाह से संबन्धित सभी कार्यक्रमों में चिड्डे का बड़ा महत्व है। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं -

फोव्वां भितेरी फोवु फुल्लायलो फोवु
बायले मागा घोवु व्होरेतु आमगेलो[१७३]

विवाह के अवसर पर हिन्दी समाज में जो माटी-कोडाई होती है वह कोंकणी समाज में नहीं है । इससे संबन्धित गीत भी कोंकणी में नहीं मिलते। विवाहावसर पर किए जानेवाले रीति-रिवाज़ प्रचीन काल से ही लोग करते आए हैं। हिन्दी एवं कोंकणी लोकगीतों में इसी परंपरा का अनुवर्तन मिलता है। विवाह के पूर्व स्नान, हल्दी लगाना, कन्यादान, सप्तपदी, लाजाहोम, विवाहभोज, गृहप्रवेश सभी प्रथाएं दोनों समाजों में समान रूप से किंचित् परिवर्तन के साथ मिलती हैं। इनके साथ लोकगीत भी जुड़े हुए हैं। इन गीतों में विवाह की रीतियाँ निहित हैं। कोंकणी समाज

में विवाह के अवसर पर *शोभाने* (मंगलगीत) महत्वपूर्ण माना जाता है। जैसे-

श्रीलक्ष्मी बमुणाक बालमुकुन्दाक
जलां भितरि मत्स्य रूप घेतल्याक
बला खातीरी कूर्मु जान्नु व्यापिल्याक
नीलवर्ण श्री कृष्णरुक्मिणीक [१७४]
बल कोर्नु आरति दकेयाय शोभाने !

(लक्ष्मी के भरतार बालमुकुन्द की
जल के अन्दर मत्स्यरूप धरताकी
बल के खातीर कूर्म बने
नीलवर्ण श्रीकृष्णरुक्मिणी की
आरती उतारें, शोभाने !)

इसमें भगवान के नाम पर वर-वधू को आशीर्वाद दिया जाता है।

विवाह में वरवधू को हल्दी चढ़ाई जाती है। वरपक्ष में जिस दिन से तेल व हल्दी चढ़नी होती है उससे पूर्व रात्रि को रतजगा होता है। इस रात स्त्रियों द्वारा कितने ही अनुष्ठान किए जाते हैं। रात से लेकर प्रातः सूर्योदय के पूर्व भी गीत गाये जाते हैं। इस दिन पहला तेल चढ़ता है। कम से कम तीन या अधिक से अधिक पाँच तेल चढ़ाये जाते हैं। वर को बुलाकर दो पटरियों पर बिठाया जाता है। लड़के के साथ एक छोटी लड़की पास में बिठाई जाती है। तेल समस्त शरीर में मला जाता है। उसके पश्चात् दूब लेकर तेल में भिगोकर सीधे हाथ से बायें और बायें से सीधे पैरों को, फिर धुटनों को, फिर सर को स्पर्श करते हैं। इसी तरह हल्दी भी चढ़ाई जाती है।[१७५] बड़ी आयुवाले ही हल्दी चढ़ाते हैं जिसका तात्पर्य मांगलिक आशीर्वाद है। गीत इस प्रकार है-

सोना के ढ़कनी में हरदी परोसल,
ऊपरे लहलही दूब हो, सिरवा हरदी चढ़ावे
पहिले चढ़ावे सराहमन, अधन,
तब चढ़ावे सकल परिचार हो सिरवा हरदी चढ़ावे
पहिले चढ़ावे बाबा जे अप्पन, तब--

पहिले चढ़ावे चांचा जे अप्पन, तब-[१७६]

कोंकणी में इसको *खर्वटण* कहते हैं। लेकिन इस समय आम तौर पर गीत गाने का विधान नहीं हैं। इसलिए गीत बहुत कम ही मिलते हैं। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

एक पानी हळडूळी धर्तरे लिंगली
दोन पानी हळडुळी सुयेक गे गेली
तीन पानी हळडुळी दांड्याक गे गेली
चार पानी हळडुळी पानांक गे गेली
पांच पानी हळडुळी रंगाक गे गेली
चाफेल, धुपेल, खोबरेल गे तेल
तेल से चडयाल्यो सोळायो राणीयो
फाटीर वीणीयो काय रसीम गोंडे[१७७]

इसके बाद बारात जाने के पूर्व परीछन होता है। वर को दही और अक्षत का टीका लगाया जाता है। कन्या के घर पहुँचकर द्वारपूजा होती है और बारातियों का स्वागत किया जाता है। वरपक्ष से कन्या को आभूषण एवं वस्त्र देने से विवाह की विधि प्रारंभ होती है। शास्त्रीय विधि से कन्या के माता पिता कन्यादान करते हैं। फिर वर वधू को सिन्दूर देता है। विवाह के बाद कोहबर में जाना होता है। फिर कलेऊ और दूसरे दिन बिदाई। इन समस्त विधि विधानों के समय लोकगीत गाये जाते हैं।

हिन्दी तथा कोंकणी समाज में विवाह संस्कार पूरे शास्त्रोक्त विधान से संपन्न होता है। कन्यादान एवं सप्तपदी सबसे प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त स्तंभपूजा, गोत्रोच्चार, समंजन, प्रतिबंध, कंकणबंधन, पाणिग्रहण और अश्वारोहण संपन्न होता है। इन अवसरों पर लोकगीत भी गाये जात हैं । आज अनेक संस्कार लुप्तप्राय हैं, फिर भी सात फेरों का विधान हिन्दी

तथा कोंकणी विवाह संस्कारों के बीच समान रूप से चलता रहता है। कोंकणी में संस्कर तो चलता है, लोकगीत नहीं गाया जाता। हिन्दी का गीत इस प्रकार है --

पैलो फेरो फेरी लाडी, कन्या च कुंवारी,
दूजो फेरो फेरी लाडी, कन्या च मां की दुलारी
तीजो फेरो फेरी लाड़ी ,कन्या च भाईयों की लड्याली
चौथो फेरो फेरी लाडी , कन्या न मैत छोड्याली
पाँचो फेरो फेरी लाडी, सैसेर की च त्यारी
छठो फेरो फेरी लाडी, सासु की च ब्वारी
सातों फेरो फेरी लाडी, लाडी ह्वै चूके तुम्हारी

पहली भाँवर में कन्या कुमारी, दूसरी भाँवर में माँ की दुलारी, तीसरी भाँवर में कन्या भाइयों की दुलारी , चौथी भाँवर में कन्या मायके से बिछुडी, पाँचवीं भाँवर में वह ससुराल की तैयारी कर, छठी में वह सास की बहू बनकर, सातवीं भाँवर में वर का पत्नीत्व स्वीकार कर सबको छोड़कर उसीकी हो जाती है। १७८

विवाह के बाद विदाई प्रसंग एवं वधूप्रवेश आता है। इसे गृहप्रवेश भी कहा जा सकता है। हिन्दी और कोंकणी समाज में इस समय भावप्रवण लोकगीतों का प्रचलन है। विदाई विवाह का सबसे हृदयस्पर्शी मार्मिक, दर्दभरा समय होता है कि लड़की अपने घर के सभी लोगों को छोड़ अपने पिया के घर जाती है। इस अवसर पर गाया जानेवाला गीत है -

और रे कौरे गुड़िया ओ घोड़ी रोवत घोड़ी सहेली री
अपनो बाहुल कौदेस छोड्यो अपने ससुर के साथ चाली
लेनु बासुल घर आपनौ छोटे बिरन पकरौ रथ को डंडा

हमारी बहन कहाँ जाइ अपनी पराई पराई अपनी
जै कलियुग ब्यौहारु[१७९]

अर्थो हि कन्या परकीय एव, कन्या के पिता बारह वर्षों तक उसका पालन करते हुए समय आने पर कन्यादान करता है। इस दान को सर्वपापविनाशकारी एवं पुण्यसंपादन का कार्य माना जाता है। यही विवाह संस्कार की महत्ता है।

विवाह में ननद की प्रमुखता रहती है। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

आधे मांडों में गोत बैठें आधे में गोतिन बैठे हो
तबहूं न मडवा सोहावन एकरे ननद बिनु[१८०]

सृष्टि की परस्पर पूरकता एवं रिश्तों की बुनावट, यही विवाह में सहजता के साथ देखी जा सकती है। कोंकणी समाज में भाई-बहिन के रिश्ते को निभाने और उनके प्रेमपूर्ण जीवन के माधुर्य को लुटाने के लिए भाई को अपना सब कुछ न्योछावर करना पड़ता है। वधूप्रवेश के समय दूल्हे की बहिन नई दुलहिन का रास्ता रोककर बैठ जाती है और वह तब तक ऐसे ही बैठती रहती है जब तक वर-वधू दोनों एक साथ मिलकर प्रतिज्ञा करें कि उनकी पहली लड़की को बहू बनाकर वे बहिन के घर भेज देंगे, याने बहिन के लड़के से भाई की लड़की का ब्याह संपन्न होगा। लोकगीत यों चलता है --

इत्तेंगे वैनी तू,	(क्यों री भाभी,
मात्ते बाग्सूनु हास्ता !	तू सिर नीचा करके हँसती है !
मेगेले पुत्ताक पळैयल्या तूंवे !	क्या तूने मेरे पुत्र को देखा नहीं !
रुप्पान रंगान जोरु नैवे?	रूप रंग से क्या कुछ कम है ?

तुग्गेरि जाल्लेले पुत्रिक	तेरी बेटी की उससे शादी करा देना !
दित्ता म्हणु उत्तर दिल्यारी	यदि कह दे कि दे दूँगी तो
उत्तम म्हण उत्तर दिल्यारी	उत्तम कह दे तो
धुवे दिवंवचे मनकरी,	बेटी को देने का निश्चय कर ले
बोदु सांगतली ![१८१]	और सुना दे !)

हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में विवाह का वर्णन हमेशा वर के रूप में राम की और वधू के रूप में सीता की कल्पना करते हुए किया जाता है। *मोरी सिया रहती कुमारी हो राम,* (हिन्दी) और *सीताबायेचें लगनां, भट्ट आयले एकशें साठ* (कोंकणी) उदाहरण के रूप में दिया जा सकता है। कोंकणी विवाह में जाँता बडे ही महत्व का माना जाता है। जाँते का यह प्रतीक सुख दु:ख के प्रतीक के रूप में माना जाता है। जाँते के दो भाग, ऊपर एवं नीचे का, दुलहा एवं दुलहन को सूचित करते हैं। उसका दस्ता दुलहा-दुलहन के प्रेम का प्रतीक है। *दान्ते मंडाय उडीदु भरूया* (जाँता तैयार करें , उडद डाल दें) से शुरू करके गणेशपूजन के पहले ही विवाह के कार्यक्रम शुरू होते हैं। आशीषपात्र में रखा हुआ चावल संपन्नता का प्रतीक है। उसी प्रकार नारियल भी ऐश्वर्य का प्रतीक है। पु राने ज़माने में कोंकणी विवाह सात दिन का होता था और इसके सात प्रमुख विभाग भी माने जाते थे। आजकल यह सब एक ही दिन में समाप्त हो जाता है। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में लोकगीतों के अतिरिक्त लोककथाओं एवं कहावतों में भी विवाह से संबन्धित कई संदर्भ देखने को मिलते हैं। हिन्दी का *शिव-पार्वती-विवाह* [१८२] और कोंकणी का राजपुत्र आनीं कुल्ली [१८३], समाराधना,[१८४] म्हांतारे पोर आनी बायल[१८५] इसके उदाहरण हैं। कई कोंकणी कहावतें भी चलती हैं जो विवाह की ओर संकेत करती हैं जैसे - *मंत्र तंत्र भट्ट जाण, खाण जेवण हॉव जाण* (मंत्र तंत्र पुरोहित जाने, खाना, भोजन

करना मैं भी जानूँ), *व्होरता संगाती जेवण, व्होकले संगाती न्हाण मक्कण* (दुलहे के साथ खाना और दुलहन के साथ नहाना) आदि।

अन्त्येष्टि

मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्। मरण स्वाभाविक एवं निश्चित है। संसार भर में मृत्यु के अवसर पर संस्कार संपादित किए जाते हैं। भारत में मृत्युसंस्कार षोडश संस्कारों में एक माना जाता है। इसे अन्त्येष्टि भी कहते हैं। इसे अग्निसंस्कार और चरमसंस्कार भी कहते हैं। यह व्यक्ति का अन्तिम संस्कार होता है। हिन्दी तथा कोंकणी समाजों में विभिन्न विधि विधानों का संपादन होता रहता है। दोनों समाजों में आसन्नमृत्युवाले व्यक्ति को तुलसीदल के साथ गंगाजल पिलाया जाता है। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से मृतात्मा को सद्गति प्राप्त होती है। रोगी व्यक्ति के जीवित रहने की आशा जब समाप्त होती है तब हिन्दी समाज में गोदान कराया जाता है। अपनी अपनी संपन्नता के अनुसार लोग दुधारू गाय से बछड़े तक का दान करते रहते हैं। कोंकणी समाज में भी दान की प्रथा चलती है लेकिन गाय का दान बहुत कम ही किया जाता है। ऐसा विश्वास है कि मृत व्यक्ति को वैतरणी पार करनी पड़ती है जो अत्यन्त कठिन है। दान इस वैतरिणी को पार करने में सहायक रहता है।

ज़मीन पर कुश की *आसनी* बिछाकर अन्तिम घड़ियों में परिवारवाले व्यक्ति को ज़मीन पर लिटाते हैं। इसीको हिन्दी में *भुंयसेज* और कोंकणी में *दर्भ्यार काडप* कहा जाता है। मृतशरीर को कच्चे बाँसों से बनाई अरथी पर सजाया जाता है। इसे *टिकठी* भी कहते हैं। कोंकणी में इसे *किडबीडि* कहते हैं। कोंकणी में एक कहावत है, *आसतना वत्ता पालकेरि, मेल्या वत्ता वाश्यारि* (जब जीवित रहता है तब पालकी पर चलता है, जब मरता है तब

ाँसों पर चलता है।) अरथी पर उठा लेने के पहले मृतशरीर को नहलाया जाता है और नवीन कपड़ों से अच्छादित किया जाता है। फिर अरथी को फूलमाला से सजाया जाता है। मृत व्यक्ति के पुत्र या निकट संबन्धी अरथी को अपने कन्धों पर उठाकर उसे श्मशानघाट ले चलते हैं। अरथी को ढ़ोनेवाले नामोच्चारण करते रहते हैं। हिन्दी में *राम नाम सत्य है* और कोंकणी में *हरिनारायण* कहा जाता है। रास्ते में शव को पाँच स्थानों पर ज़मीन पर रखना आवश्यक माना जाता है और इस समय पिण्डदान भी किया जाता है। कोंकणी में कहावत यों है - *अशिल्ल्याक भुके दीना अन्न, मेल्लेल्याक पिण्डदान* (जीवित व्यक्ति को खाने को नहीं देता, मृत व्यक्ति को पिंडदान करता है।)

श्मशानघाट चलने पर शव को जलाने के लिए चिता बनाई जाती है। चन्दन की चिता पवित्र मानी जाती है। लेकिन साधारण लोग पैसे बचाने के लिए आम की लकड़ी का उपयोग करते हैं। कोंकणी कहावत यों है --*अंब्या राकडारि घालतकच बुद्धि येता* (आम की लकड़ी पर रखने पर बुद्धि आ जाती है।) शव को चिता पर सुलाया जाता है । फिर दाहसंस्कार शुरू होता है। मृत व्यक्ति का पुत्र या निकट संबन्धी जलती हुई आग को लेकर चिता की तीन या पाँच बार प्रदक्षिणा करता है और प्रत्येक बार उस अग्नि का मृत व्यक्ति के सिर से स्पर्श कराता है। इसको मुँह में आग देना कहते हैं। आग लगाने के पहले पिंडदान किया जाता है। इसी प्रकार के कई विधि विधान यहाँ पर संपन्न होते हैं। सभी विधियों में मन्त्रों का प्रयोग होता है जो सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाते हैं । जीवित संबन्धी मृतव्यक्ति को समय समय पर खाना पहुँचाने का और उसे किसी विघ्न के बिना निर्बाध रूप से यमधाम तक पहुँचाने का विशेष ध्यान रखते हैं। लाश के जलने के बाद मृतात्मा की अस्थियों का चयन होता है। ये अस्थियाँ मिट्टी

के नये पात्र में रखकर तीर्थस्थान की ओर ले जाते हैं। घडे में रखी हुई अस्थियों का भी मन्त्रोच्चारण के साथ संस्कार होता रहता है। स्नान के बाद दाही इन पर तिल और कुश से युक्त जलांजलि देता है। विश्वास है कि यह जल सीधे प्रेतात्मा को मिलता है। तिलाञ्जलि की प्रकिया नौ दिन तक रहती है। दसवें दिन को दशाह कहा जाता है जिस दिन हविष्य तैयार किया जाता है और मृतात्मा के लिए गोल गोल पिंड छोड़ा जाता है। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें दिन तरह तरह के व्यंजनों से युक्त ब्राह्मणभोज होता रहता है। श्राद्ध के दिन मृतात्मा के लिए तरह तरह के अनुष्ठान संपन्न करनेवाले ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए चावल, तरह तरह के व्यंजन, तरह तरह के फूल, इत्र, अनेक प्रकार की वस्तुएँ, आभूषण आदि दान किया जाता है।

समाज में संपन्न होनेवाले इन अनुष्ठानों का प्रभाव निस्सन्देह हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में देखा जा सकता है। हिन्दी में गीतों के रूप में यह मिलता है तो कोंकणी में कहावतों में ही इनके सन्दर्भ आते रहते हैं। हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में इन अनुष्ठानों के भिन्न संदर्भ देखने को मिलते हैं। हिन्दी लोककथा *आलसी आदमी* में मृत व्यक्ति का दाहसंस्कार पुण्य कमानेवाला कहा गया है। यहाँ पर दाह संस्कार के लिए पाँच कनस्तर घी, पाँच बोरा चावल, पाँच बोरा गेहूँ, पाँच बोरा गुड़ आदि सब चिता में आग लगाने के पहले ही तैयार किया जाता है।[१८६] कोंकणी लोककथा *भट, भटीण आनी वडे* में भी ऐसा एक संदर्भ आता है। यहाँ पर लोग भट और भटीण के दाहसंस्कार की तैयारियाँ करते हैं। किसी ने टिकठी तैयार की, किसी ने लकड़ी इकट्ठी की, मृतशरीर श्मशान में ले गए, वहाँ पर चिता तैयार की और शवशरीर उस पर रखा गया। रोते हुए उन्होंने उसको आग लगाई [१८७] अन्त्येष्टि से संबन्धित लोकगीत बहुत कम ही देखने

ो मिलते हैं। हिन्दी का एक गीत इस प्रकार है -

काए के कारण गऊ दई, काए के दिए गऊ दान
पार के कारन गऊ देई, और तारन कूँ दिये गऊदान [१८८]

यहाँ पर मृतात्मा को पार उतारने के लिए जो गोदान किया जाता है उसी की ओर संकेत किया गया है। कोंकणी में ऐसे गीत नहीं मिलते।

आचारलक्षणो धर्मः

मनु आचारों को बनानेवाले माने जाते हैं। मनु शब्द से ही मानव की उत्पत्ति हुई है। मनु ने मानव के रहन सहन के सामाजिक नियम निश्चित किए। भौतिकता से आपूर्ण मानव को उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा प्रदान की। ये ही धार्मिक मूल्य आगे चलकर आचारों के रूप में देखे जाने लगे। इस प्रकार मानव के चरित्र को व्यवस्थित बनाने का कार्य इन आचारों के द्वारा संपन्न किया गया। ये ही मानव के चारित्रिक मूल्य रहे जिनके ज़रिए मानव और मानव तथा मानव और दूसरे जन्तुओं में मेल बना रहा। इस प्रकार आपस में भलेपन को बाँटते हुए मानव जीवन में आगे बढ़ने लगा। लोकसाहित्य में मानव का यही चित्र प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी तथा कोंकणी लोककथाओं में जहाँ पर सामाजिक संदर्भों का वर्णन मिलता है, मानव के चरित्र का सही मूल्य देखने को मिलता है। यहाँ पर सत्य बोलने पर बल दिया गया है। सत्य माने ईश्वर। लोक ईश्वर को बहुत मानता है। वह सत्य की महत्ता को भी अच्छी तरह जानता है। अहिंसा, परोपकार आदि इन लोककथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। इन कथाओं के सभी पात्र दूसरों की सहायता बराबर करते रहे हैं। दान की महत्ता तो वे हरदम मानते आए हैं। पुनर्जन्म में विश्वास करनेवाले ये लोग दान का महत्व अच्छी तरह जानते हैं और ऐसा विश्वास करते हैं कि इस

जन्म में किए हुए दान का फल अगले जन्म में पुण्य बनकर व्यक्ति के पार रहता है। इस प्रकार सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान आदि मानव जीवन मे सदाचरण के विभिन्न रूप प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी तथा कोंकणी कहावतें में इसके खूब दर्शन होते हैं। जीवन में इसी भलेपन को आपस में बाँटते हुए लोकमानव आगे बढ़ा। उसके इस आचरण को दिखानेवाली कई कहावतें इस प्रकार हैं । कोंकणी की एक कहावत देखिए --*सुख जनाक सांगका दुःख मनाक सांगका* (सुख दूसरों के साथ बाँटना चाहिए और दुःख मन में ही रखना चाहिए) इसी आचरण में जीने के नियम समाए रहते हैं। हिन्दी तथा कोंकणी लोकसाहित्य में ऐसे ही आचरण पर बल दिया गया है। आकाश में तैरती हुई यह धरती जिन स्तंभों पर स्थिर है, वे हैं सत्य, तप, शुभकार्य, परोपकार, त्याग आदि। लोकसाहित्य कहता है -

अंबर में तिरती धरती किन थम्मा पै थम रही सै
ना पिंघल्लै ना नीच्चै धंस्सै गींड्डो सी टंग रही सै
पहला पाया लग्या साँच का हट्टै नहीं हटाया
सत नारायण नारायण सत एककै रूप बताया
दूज्जा पाया रित का लाग्या सूरज चाँद चलाए
धरू सरीखे अटल नेम सैं हट्टैं नहीं हटाए
तीज्जा पाया तप का लाग्या बणों सदा तपधारी
चोत्था पाया सुभ काम्मां का जाणों सब नर नारी
माणस चोल्ला जिसनैं पाया सब तप के अधिकारी
सुभ काम्मां में लौ राख्यां धरती अंबर नैं धारी[१८९]

धर्म के दस लक्षण निम्नलिखित श्लोक में इस प्रकार बताये गये हैं -

अहिंसा सत्यमास्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः

धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम्

धर्म मानव का आन्तरिक सदाचार है। इसका अर्थ है, उसमें अन्तर्निहित आचार जिनसे मानव का स्वयं का उत्थान तो होता ही है, साथ ही समाज का अभ्युत्थान भी होता है। इसलिए सामाजिक और लौकिक नैतिकता सापेक्षिक वस्तु है। इसका शुभ या अशुभ परिणाम शुभ या अशुभ कार्य पर ही निर्भर रहता है। आचार पर चंलते हुए हम दूसरों से अच्छे संबन्ध रख सकते हैं, निश्चिन्त होकर जी सकते हैं। कोंकणी की कहावत है -- *आचारु चलतल्याक विचारु ऊणें* (आचार का अनुसरण करनेवाले को कभी चिन्तित नहीं होना पड़ता) इस प्रकार के सुखी जीवन के लिए मनुष्य को मनसा, वाचा, कर्मणा दूसरों के मन को दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए। कोंकणी की कई कहावतें हमें इस ओर ले जाती हैं। जैसे -- *एक उतरान मोव्ळेलें मन धा उतरान सम जायना* (एक शब्द से तोड़ा गया मन दस शब्दों से ठीक नहीं होता।) *खोंचून उल्लोवंचाकय वेंचून उल्लोवंचें सस्सार* (व्यंग्य बाण चलाने से अधिक अच्छा है चुन चुन कर शब्दों का प्रयोग करना) *उपद्रा पसि उप्पास बरो* (उपद्रव करने से भी अच्छा है भूखे ही रहना) इन कहावतों से अच्छे आचरण की प्रेरणा अवश्य मिलती है। लोकसाहित्य हमेशा ऐसे ही आचरण को आदर्श मानता है, इसलिए कि वह धर्म को महत्व देता है। आचार ही सबसे महत्वपूर्ण धर्म है। हिन्दी की कहावत आप भला तो जग भला ऐसे ही सदाचरण की प्रेरणा देती है।

सत्य धर्म का आधार है। हिन्दी की कहावत है - *सत्य समान धर्म न दूजा।* सत्य एवं धर्म मनुष्य को जीवन में सफल बनाता है। संस्कृत का कथन *सत्यमेव जयते* इस संदर्भ में स्मरणीय है। सत्य मानव का सबसे बड़ा सहयोगी कहा जा सकता है। सत्य ही शाश्वत है, वही परम गति है। श्लोक

इस प्रकार चलता है -

सत्यं सत्सु सदा धर्म सत्यं धर्म सनातनः
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः

भारतीय संस्कृति में सत्य के महत्व को दिखानेवाली कई उक्तियाँ चलतं हैं। जैसे *सत्यं वद*, *सत्यं ब्रूयात* आदि। हिन्दी और कोंकणी की कइ कहावतें सत्य के महत्व को लेकर चलती हैं। *सत्याक सोळा वष* (सत्य वे सदा सोलह वर्ष रहते हैं), *सत्याक नाशु ना* (सत्य का कभी नाश नहीं होता आदि कोंकणी कहावतें सत्य के इसी महत्व को दिखाती हैं। हिन्दी कहावतों में *सत्य समान धर्म नहि दूजा, सत्य और सत्य का धन कभी नहीं डूबता* आदि इसी ओर लक्ष्य करती हैं। *सत्ये नास्ति भयं क्वचित्* । सत्य पर चलनेवाले को कभी डरने की आवश्यकता नहीं है। सत्य की सदैव विजय होती है।

दान और एक गुण है जो मानव को हमेशा ऊपर उठाता है। दान देनेवाला हाथ हमेशा ऊपर की ओर रहता है। कोंकणी की कहावत है *तुरत दान महापुण्य* (दान पुण्य कमानेवाला होता है)। हिन्दी की कहावतें भी इसी ओर संकेत करती है-- *दान पीछे कल्यान, दान में दान दे तीन लोक जीत ले* आदि। संस्कृत की उक्ति है -- *पात्रे दानं।* हिन्दी की कहावत है-- दान दीन को दीजिए, मिटे दरद अरु पीर। भारतीय संस्कृति में दान के महत्व को चित्रित करनेवाले कई संदर्भ मिलते हैं। दधीची, शिबि आदि इसके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। *म्हातारे पोर देवाक सोद्वंक वयता* नाम की कोंकणी लोककथा में दान के महत्व को चित्रित करते हुए कहा है - *म्हातार अज्जे, तू जाणां? ह्या जल्माक आमी लोकांक जितलें दितात तेच्या दुपट्टीन आमका देव फुडल्या जल्माक दिता !* [११०] (बूढ़ी माँ ! तुम जानती हो क्या?

इस जन्म में हम लोगों को जो कुछ देते हैं, अगले जन्म में भगवान उसका दुगुना हमें देते हैं)। हिन्दी की कहावत *दान ही काम आता है* इसी अर्थ में प्रयुक्त होती है। इन्हीं गुणों से भलाई उत्पन्न होती है। जो जीवन में ऐश्वर्य एवं आनन्द को लानेवाली होती है। इसके विपरीत क्रोध, काम, निराशा, असूया, अत्याग्रह घृणा आदि जीवन में दुःख उत्पन्न करनेवाले होते हैं। लोकसाहित्य इनके विरोध में स्वर उठाता है। कोंकणी कहावत यों चलती है - *न्यायु सोणु अन्याय करतल्यांक देवु हातु दीना* (न्याय छोड़कर अन्याय करनेवालों की ईश्वर सहायता नहीं करता।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकसाहित्य की आधारशिला धर्म की धरती पर टिकी हुई है। धर्म लोकजीवन का प्राण है, बल है। भारतीय जीवन धर्ममय है। भारतीय संस्कृति में यह घुल मिल गया है। हिन्दी एवं कोंकणी लोकसाहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि धर्म का आधार लेकर उसीके बल पर खड़ी है। इन दोनों साहित्यों में धार्मिक भावना का खूब प्रकाशन हुआ है। लोकसाहित्य की सभी विधाओं में धर्मसंबन्धी विचारों और भावनाओं का चित्रण मिलता है। यह हिन्दी एवं कोंकणी लोकसाहित्य में समान रूप से देखा जा सकता है। उत्सवों और अनुष्ठानों का चित्रण लोकसाहित्य में जो हुआ है वह इसीका द्योतक है। इसी धर्म ने ही आम जनता को लोकसाहित्य से इतना अधिक संबद्ध रखा है। भारतीय जीवन पूर्णतः धर्ममय होने के कारण लोकसाहित्य में भी धार्मिक जीवन का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। भारत की जनता जो भी कार्य करती है उसके मूल में कहीं न कहीं धर्म का बीज छुपा रहता है। यह धार्मिक भावना इतनी दृढ है कि युगों के बाद परिस्थितियों के बदलने पर भी यह अपेक्षाकृत कम बदली है। मूर्तिपूजा, वटपूजा, पीपलपूजा, सालिग्रामपूजा, सूर्यपूजा, गंगापूजा, तुलसीपूजा, देवी देवताओं की पूजा, भजन, कीर्तन आदि सब कहीं ज्यों का त्यों चला आ

रहा है। आज वैज्ञानिक भौतिकवादी युग में भी लोकमानस वैसा ही रहा है लोकसाहीत्य में धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति सहज एवं स्वाभाविक रू में हुई है। यहाँ पर धर्म की मर्यादा का पालन सिर्फ व्यक्तिगत या समाजगत धारणाओं से प्रक्षेपित होकर नहीं किया जाता बल्कि संपूर्ण चराचर जगत को ध्यान में रखकर किया जाता है। भारतीय धर्मसाधना पूर्णत: सर्वात्मवाद को लेकर चलती है और लोककथाओं में इसका स्पष्ट और व्यावहारिक रूप मिलता है। प्रत्येक कण में आत्मा और आत्मचेतन की मान्यता दिखाई जाती है। लोकसाहित्य के इस धार्मिक स्वरूप की ओर संकेत करते हुए कोंकणी के किसी लेखक ने इस प्रकार कहा है--

ह्या लोकनाचाक, लोककलेक	(इस लोकनाच एवं लोककला का
धार्मिकतेचें एकूच सरूप	एक ही रूप है, वह धार्मिकता का,
देवाक नमन करून सुरुवात जाता	ईशनमन से वह शुरू होता है
आनी देवाक नमन करून सोंपता[११]	ईशनमन से ही समाप्त होता है)

संदर्भ

१. कुमारसंभवम् - महाकवि कालिदास, ५ / ३८

२. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-३, सावित्री देवी वर्मा, पृ. ४४

३. भोजपुरी लोकगीत- एक अध्ययन - डॉ.पूनम, डॉ. सुधाकर, पृ. ६२

४. संस्कृति की धरोहर- डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी , पृ.१४१

५. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५०, ५१

६. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १९

७. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५१

८. लोकबिंब - जयंती नायक, पृ.३०

९. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १९

१०. कोंकणी लोकगीत- कोंकणी भाषा प्रचार सभा,कोच्ची, पृ. २१

११. कोंकणी लोकगीत- कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. १

१२. बिहार की लोककथाएँ - प्रकाशवती , पृ. ३७

१३. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २०३, २०४

१४. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-१, सावित्री देवी वर्मा, पृ. ३

१५. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १९

१६. लोक- परंपरा, पहचान एवं प्रवाह - श्यामसुन्दर दुबे, १०९

१७. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. २

१८. संस्कृति की धरोहर- डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी , पृ.१४४

१९. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ६९

२०. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५८

२१. लोककथा कोश- भाग - १ - संगीता, पृ. ३५

२२. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २३

२३. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १७

२४. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी , पृ. ६८

२५. कोंकणी लोककाणयो - जयंती नायक, पृ. २४४

२६. अमोणें- एक लोकजीण- जयंती नायक, पृ. ७०

२७. काणकोणची लोककला - अजित पैंगीणकार पृ. ७६

२८. Goa through the mists of History- from १०,००० B.C. - A. D. १९५८ - - Luis de Assis Correia, p.१०

२९. Mussol Dance of Chandor - Zenaides Morenas, p. ५६

३०. संस्कृति की धरोहर- डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी , पृ.१४४

३१. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ११

३२. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. २१९

३३. काणकोणची लोककला - एक दायज - अजित पैंगीणकार पृ. ६६
३४. भोजपुरी लोकगीत भाग-२ - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. १९४
३५. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५१
३६. काणकोणची लोककला - एक दायज - अजित पैंगीणकार पृ. ४८
३७. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. २२५
३८. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ४
३९. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-२, सावित्री देवी वर्मा, पृ. २५
४०. लोककाव्य के क्षितिज - डॉ. हरिसिंह पाल, पृ. १६१
४१. लोकसरिता- विष्णू विनायक खेडेकार , पृ. २२१
४२. लोकवेद - एक लोकजीण - श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. २४
४३. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ५५
४४. लोकसरिता- विष्णू विनायक खेडेकार , पृ. २१४
४५. लोककाव्य के क्षितिज - डॉ. हरिसिंह पाल, पृ. १६२
४६. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५०
४७. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ४८
४८. कोंकणी भास, साहित्य आनी संस्कृताय - कोंकणी भाशा-मंडल, गोंय, पृ. ४८१
४९. लोककाव्य के क्षितिज - डॉ. हरिसिंह पाल, पृ. १५४
५०. संस्कृति की धरोहर- डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी , पृ.१४६
५१. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५१
५२. काणकोणची लोककला - एक दायज - अजित पैंगीणकार पृ. १८
५३. काणकोणची लोककला - एक दायज - अजित पैंगीणकार पृ. ४७
५४. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ५६
५५. भोजपुरी लोकसंस्कृति - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. २३२
५६. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ४८

५७. अमोणें- एक लोकजीण- जयंती नायक, पृ. १९७
५८. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ६०
५९. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ६१
६०. भोजपुरी लोकसंस्कृति - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ३१०
६१. लोकवेद - एक लोकजीण - श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ४१
६२. लोकवेद - एक लोकजीण - श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५५
६३. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. २८
६४. कोंकणी भास, साहित्य आनी संस्कृताय - कोंकणी भाश-मंडल, गोंय, पृ. ४८१
६५. लोकसरिता- विष्णू विनायक खेडेकार , पृ. २३५
६६. Mussol Dance of Chandor - Zenaides Morenas, p. ५८
६७. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १३
६८. हिमाचल की लोककथाएँ - सन्तोष शैलजा, पृ. ११
६९. लोककथा कोश- भाग - १ - संगीता, पृ. १४६
७०. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ११
७१. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ११
७२. इन्द्रप्रस्थ भारती -लोकसंस्कृति विशेषांक पृ. ८२
७३. Religion $ Folklore of Northern India - William Crooke, p.९५
७४. अमोणें- एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. ६३
७५. लोकसरिता- विष्णू विनायक खेडेकार , पृ. ८४
७६. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ८
७७. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ७७
७८. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ७८
७९. इन्द्रप्रस्थ भारती -लोकसंस्कृति विशेषांक पृ. ८३
८०. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ७२

८१. अमोणें- एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. ६५

८२. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ७

८३. अमोणें- एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. ६८

८४. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १२०

८५. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १२१

८६. Wind of Fire-The Music and Musicians of Goa -Mario Cabral p.१५०

८७. Mussol Dance of Chandor - Zenaides Morenas, p. ६६

८८. Wind of Fire-The Music and Musicians of Goa -Mario Cabral p.१५०

८९. Wind of Fire-The Music and Musicians of Goa -Mario Cabral p.१५०

९०. Mussol Dance of Chandor - Zenaides Morenas, p. २३, २४

९१. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. २१३

९२. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. . २१६

९३. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ५०

९४. लोकवेद - एक लोकजीण - श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. १८

९५. कोंकणी लोकगीत समुच्चय- कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. २३

९६. कोंकणी लोकगीत केरल - कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. २६

९७. भोजपुरी लोकसंस्कृति - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. २१९

९८. लोकजीवन में नारीविमर्श - डॉ. गोपालबाहू शर्मा, पृ. ३९

९९. लोकजीवन में नारीविमर्श - डॉ. गोपालबाहू शर्मा, पृ. ३९

१००. लोकधन - शरतचन्द्र शणै , पृ. १७

१०१. लोकधन - शरतचन्द्र शणै , पृ. १६ ,१७

१०२. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. १३९

१०३. होळ्ळम्मालो काणियांचो पेट्टारो - वत्सला आर. शेणै, पृ. ८२

१०४. कोंकणी लोककाणयो -जयंती नायक, पृ. ८३

१०५. Religion & Folklore of Northern India - William Crooke, p. ४१

१०६. Religion & Folklore of Northern India - William Crooke, p.१४४

१०७. Religion & Folklore of Northern India - William Crooke, p. १९१

१०८. अमोणें- एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. ९२

१०९. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १५६

११०. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १४८

१११. बृहत् हिन्दी लोकोक्ति कोश - भोलानाथ तिवारी, पृ. ८७०

११२. Socio-Cultural Background of the Gowda Saraswath Brahman Community as Reflected in the Konkani Proverbs - Dr. L. Suneetha Bai, p. १२६

११३. बृहत् हिन्दी लोकोक्ति कोश - भोलानाथ तिवारी, पृ. २२७

११४. बृहत् हिन्दी लोकोक्ति कोश - भोलानाथ तिवारी, पृ. २२६

११५. Socio-Cultural Background of the Gowda Saraswath Brahman Community as Reflected in the Konkani Proverbs - Dr. L. Suneetha Bai, p. १५७

११६. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. १३९

११७. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ. ८५

११८. लूर - लोरी विशेषांक, २००४, पृ. ५५

११९. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. १८

१२०. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. १९

१२१. हिन्दी और गुजराती का लोरी साहित्य - हंसा प्रदीप कुमार, पृ. १२८

१२२. लोक - परंपरा, पहचान एवं प्रवाह - श्यामसुन्दर दुबे, पृ. १५

१२३. अमोणें- एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. १०१

१२४. भोजपुरी लोकसंस्कृति - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ३२५

१२५. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ३२

१२६. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ३२
१२७. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ७१
१२८. रथा तुज्यो घुडयो - जयंती नायक, पृ. ८०
१२९. लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति - उषा सक्सेना, पृ. १९५
१३०. लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति - उषा सक्सेना, पृ. १९१
१३१. लोकसाहित्य का लोकतत्व - डॉ. रामनिवास शर्मा, १८३
१३२. तळय उखल्ली खेळ्यांनी - जयंती नायक पृ. ९३
१३३. तळय उखल्ली खेळ्यांनी - जयंती नायक पृ. १०१
१३४. संस्कृति की धरोहर- डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी , पृ.२२४
१३५. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. १६०
१३६. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. १०४, १०५
१३७. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ७२
१३८. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. १२०
१३९. बिहार क़ी लोककथाएँ - प्रकाशवती, पृ. ३७
१४०. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. २०४
१४१. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ५०
१४२. मिथिला की लोककथाएँ - विभा रानी , पृ. २७
१४३. राजरत्नां - जयंती नायक, पृ, ८२
१४४. लोकसरिता- विष्णू विनायक खेडेकार , पृ. १०२
१४५. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ५८
१४६. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ५९
१४७. गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार - प्रा. श्याम वेरेंकार, पृ. ६०

१४८. गढवाल के लोकनृत्यगीत- शिवानन्द नौटियाल, पृ. ४४७

१४९. लोकसरिता- विष्णू विनायक खेडेकार, पृ. २४२

१५०. गढवाल के लोकनृत्यगीत- शिवानन्द नौटियाल, पृ. ६९

१५१. गढवाल के लोकनृत्यगीत- शिवानन्द नौटियाल, पृ. ९८

१५२. गढवाल के लोकनृत्यगीत- शिवानन्द नौटियाल, पृ.१२० - ३५६

१५३. अमोणें- एक लोकजीण - जयंती नायक, पृ. २३४, २३५

१५४. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. १०९

१५५. कोंकणी लोकगीत केरल - कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. २८, २९

१५६. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. ११०

१५७. गोड्डे रामायण - प्रो. आर. के. राव, पृ. ६,७

१५८. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ.४६

१५९. गोंयचें गिरेस्त दायज-श्रीनिवास प्रभूदेसाय, पृ. ७९

१६०. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. २६८

१६१. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. ६७

१६२. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. ६९

१६३. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. ६५

१६४. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. ६६

१६५. ता ता तिंगण - संतोषकुमार गुलवाडी, पृ.३९

१६६. कोंकणी लोकगीत केरल - कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. ५२

१६७. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. ६५

१६८. सुरग्या सर - ज्योत्स्ना कामत , पृ. ७८

१६९. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ४१ - ४७

१७०. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. १०५
१७१. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल)- कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. ५०
१७२. लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ.छोटेलाल बहरदार पृ. ७९
१७३. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल)- कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. ५०
१७४. कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल)- कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. ४६
१७५. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ४४
१७६. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. १०३, १०४
१७७. कणेर खुंटी नारी - जयंती नायक, पृ. १२, १३
१७८. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-१ डॉ. सुरेश गौतम, पृ. २४६
१७९. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ४७
१८०. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ. ६९
१८१. सुरग्या सर - ज्योत्स्ना कामत, पृ.८०
१८२. उत्तर भारत की लोककथाएँ - भाग-२, सावित्री देवी वर्मा, पृ. २४
१८३. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १२५
१८४. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १५९
१८५. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १७६
१८६. लोककथा कोश - भाग-१, संगीता, पृ. २१
१८७. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १४८
१८८. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ४७
१८९. दिल्ली अँचल की लोकसंस्कृति - डॉ. जयनारायण कौशिक, पृ. ४२
१९०. गाँवरान - जयंती नायक, पृ. १४
१९१. काणकोणची लोककला - अजित पैंगीणकार पृ.६

उपसंहार

लोक शब्द अपने में एक विशाल अर्थक्षेत्र को समेटता है। जो भी दृष्टि में आता है वही *लोक* है। इसका विस्तृत अर्थ है लोक में रहनेवाले मनुष्य, अन्य प्रणी और सब कुछ। ये सब प्रत्यक्ष अनुभव के विषय रहे। और भी व्यापक अर्थ में कहा जाय तो लोकव्यवहार, जिसके दर्शन हम लोकसाहित्य में कर सकते हैं। यहाँ पर भाषाभेद या प्रदेशभेद नहीं है। केवल *लोक* का सत्य ही निहित है जो सब कहीं समान रहा है। यही इस अध्ययन का मूल विषय भी है।

भारतीय परंपरा जो भारतीय संस्कृति की वाहक है , इहलोक और परलोक को मानती है। इहलोक के अन्तर्गत जो जो वस्तुएँ हैं, उन सब को वह अपना अपना स्थान देती रही है। नदी, कुआँ, ओषधियाँ, मिट्टी, पेड़-पौधे, तृण, फल-फूल, ऋतुएँ सब कुछ अपने अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं और लोकसाहित्य में हम इन्हें देखते हैं। इस प्रकार भारतीय परंपरा मनुष्य एवं प्रकृति के बीच, व्यक्त और अव्यक्त के बीच, संबन्ध स्थापित करती है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में इसका सुन्दर चित्रण मिलता है। शास्त्र को पमुखता देनेवाली भारतीय परंपरा किसी भी हालत में लोक की उपेक्षा नहीं करती। उच्च स्तर के शास्त्र सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए वह उदाहरण *लोक* से ही चुन लेती है। इसी का प्रमाण पाणिनी, पतञ्जलि आदि के ग्रंथों में *यथा लोके* के रूप में मिलता है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में *लोक* लोगों की चिन्तनधारा में हमेशा उनके साथ रहा। इसी अनुकूल वातावरण के कारण भारत में लोकसाहित्य खूब पनपा और उसकी शाखा प्रशाखाएँ विकसित हुईं जो निरन्तर लोगों के लिए मार्गदर्शक रहीं और

उनके ज्ञान के विकास का कारण बनीं। भारत के हर प्रदेश में इसका प्रतिफलन हुआ और हर प्रादेशिक भाषा में इसका स्वरूप अंकित हुआ। भाषा जो भी रहे या संस्कृति में अन्तर बना रहे तो भी लोकसाहित्य हर क्षेत्र में समान रूप से सहज एवं आकर्षक रहा। सामान्य लोगों की जीवन प्रक्रिया को लेकर वह आगे बढा। इसमें जीवन के यथार्थ का अंकन हुआ। इसी कारण आज के युग में भी उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

संपूर्णता और समग्रता भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। व्यष्टि से बढ़कर यहाँ पर समष्टि की प्रमुखता रही है। यहाँ के लोकसाहित्य में यही देखा जाता है। यहाँ सभी मानव एक रहे हैं। उनकी प्रवृत्तियाँ, भावनाएं, विचारधाराएँ, कल्पनाएँ एक रही हैं। सभ्यता एवं संस्कृति में अन्तर रहते हुए भी ये एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर रहे हैं। इसका चित्र लोकसाहित्य में मिलता है। इसके अध्ययन से प्रांतीयता मिटकर सब एक हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि एक ही आत्मा भिन्न संस्कृतियों में भिन्न भाषाओं में बोल रही है। इसी बात पर बल देकर कोंकणी में कहा गया है -

रूढि, परंपरा, निष्ठा,	(रूढ़ि, परंपरा, निष्ठा,
संस्कार, हांचो मेळ	संस्कार, इनका मेल
म्हळ्यारीच संस्कृताय	संस्कृति है
एका पिळगे कडल्यान	एक पीढ़ी से होकर
दुसर्या पिळगे कडेन	दूसरी पीढ़ी तक
गेली ती संस्कृताय	चली वह संस्कृति
जाति धर्म	जाति, धर्म
हाच्या पेल्यान वचपाचें	(आदि के पार जाना
काम ही संस्कृताय करता [1]	संस्कृति का कार्य है)

कोंकणी लोकनाट्य के प्रारंभ में गणपति की पूजा करते हुए गीत जो गाया जाता है वह इस बात की पुष्टि करता है।

आमी जातिचे ब्राह्मण (हम जाति के ब्राह्मण
आमचे सोयरे दायरे मुसलमान [2] हमारे बन्धु-बान्धव मुसलमान)

साझेदारी का यह निमंत्रण लोकदृष्टि को ही दिखाता है। यहाँ अच्छा-बुरा, अपना-पराया, प्रिय-अप्रिय का भेद नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी समाज में विवाह के मंगल अवसर पर मरे हुए दादा, परदादा को भी निमंत्रण दिया जाता है। लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए --

हे पाँच पान नौ नारियल
सरगै जे बाटे आजा पर पाजा दादा औ चाचा तुमारो नेवता
भुँइया भवानी पाटन के देवी, बिजलेस्वरी माता काली माई
डिहवार बाबा तुमरो नेवता, विन्ध्याचल के देवी तुमरौ न्योता
घर के देवी सायर भवानी, तुमरौ नेवता,
साँप गोजर, बिच्छी, कुछी तुमरौ नेवता[3]

कोंकणी समाज में भी इस प्रकार की प्रथा चलती है। सामाजिक सद्भाव ही यहाँ प्रकट हुआ है जो विवाह जैसे मांगलिक अवसर पर अभिव्यक्त होता है। इस मंगल अवसर पर कोई उपेक्षित न रह जाए, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। यहाँ की सामाजिकता मानव केन्द्रित नहीं है, उसका आधार समता है जो भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। *वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे सुखिनः सन्तु, पण्डिताः समदर्शिनः* का ही प्रतिफलन यहाँ पर हुआ है। ऐसे गीतों को किसी भी हालत में जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। वे जीवन में समाए हुए हैं। इनमें सत्य है, शिव है और सौन्दर्य है। इस उदात्त मानवीयता के अन्तर्गत कई बातें आती हैं, जैसे सामाजिक मूल्यों की रक्षा,

मूल्यों की रक्षा के लिए घोर संकल्प, सृष्टि के समस्त जीवों से स्नेह भरा बर्ताव, उनके प्रति घनी आत्मीयता, आसुरी शक्ति से दूर रहकर दैवी शक्तियों को विकसित करने का प्रयास, दया, मैत्री, वीरता, सौम्यता, निरहंकार, कर्तव्यपालन की अद्भुत क्षमता -- इन्हीं परंपरागत आदर्शों को लेकर हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य के पात्र हमारे सामने आते हैं। हमारी सांस्कृतिक मान्यता के अनुसार जो भीतर है वह बाहर भी है। आन्तरिक जगत् का संबन्ध बाह्य जगत् से स्थापित करना ही मानव धर्म है। लोकसाहित्य में इस धर्म को बराबर निभाया जाता है।

लोकसंस्कृति व्यक्ति का आन्तरिक संस्कार है जो उसे आनन्द से जीने की शक्ति प्रदान करता है। इसका अनुसरण करनेवाला व्यक्ति भूमि को मानता है, उससे प्रेम करता है, प्रकृति के साथ नाता जोड़ता है, उसका वन्दन करता है और उसकी रक्षा करने में सदा लगा रहता है। विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में *बबूल के नीचे मंडप छाने का उत्साह अभाव के घर में दूध दही के पनाले बहाने की कामना, धूल और गन्दगी के बीच चन्दन के छिड़काव की वासना, ननद और सास के दुर्व्यवहार का उत्तर पुत्रोत्सव के उल्लास में अपनी उदारता से देने का संकल्प, अचेतन जगत् में अपने चेतन जगत् की परछाई पाकर उसके प्रति मानवीय करुणा का उमड़ाव, गहन से गहन पंक में भी अपने मन को कमल की तरह ऊँचा रखने का व्रत इस लोकसाहित्य ने पाला है।*[४] ये ही मूल्य जीवन में आगे बढ़कर राष्ट्रचेतना की आन्तरिक ज्योति जलाते हैं। यह ज्योति अपने आप मूल्यों की स्थापना करती हुई जीवन में पवित्रता को बढ़ाती रहती है। लोकसाहित्य में, चाहे वह हिन्दी का हो या कोंकणी का, जीवन के आदर्श निहित हैं। इसलिए यह साहित्य मानव को मानव बनाने में समर्थ है। त्याग, तपस्या, कर्मसंस्कृति, क्षमा, परोपकार, आस्था आदि लोकसाहित्य में पोषित रहते हैं। आध्यात्मिकता

एवं नैतिकता का सुन्दर परिवेश इसमें रहता है। हिन्दी और कोंकणी का लोकसाहित्य हमारी संस्कृति को इस प्रकार जगाता रहता है कि वह स्वयं इस साहित्य के लिए सुन्दर पृष्ठभूमि तैयार करती है।

भारतीय संस्कृति परार्थकता में ही जीवन की सार्थकता मानती है। लोकसाहित्य में इसका खूब चित्रण मिलता है। एक हिन्दी लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए --

कुँअवा खनवले कवन फल, हे मोरे साहब,
झोंझवन भरे पनिहारिन, तबै फल होइहैं
बगिया लगाए कवन फल, हे मोरे साहब,
राही बाट अमवा जे खइ हैं, तबै फ़ल होइहैं।[5]

इसलिए लोकसाहित्य समाज धर्म के अनुसार चलने का उपदेश देता है। वह कहता है कि परमेश्वर के समक्ष नम्र रहो। यह दासता कल्याणमय है। मन की दासता से मुक्ति पाओ। यही सच्ची मुक्ति है। धर्म की उपेक्षा से विनाश होता है। लोकसाहित्य धर्म का पथ प्रशस्त करता है, व्यक्ति का चरित्र सुगठित करता है, समाज और राष्ट्र का कल्याण करता है। धर्म का मूल प्रयोजन मनुष्य को ईश्वरीय बनाना और उस पर अंकुश लगाना होता है कि वह बुराई करने से दूर रहे। सामाजिक जीवन के योग्य अनुशासनपूर्ण कार्य ही इसमें रहता है। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य अपने गीतों और कथाओं के ज़रिए इसी पर बल देता है। *लोक* में धर्म का यह मूल काफी पुराना रहा है। समूह के अस्तित्व को बनाए रखते हुए समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर बन्धन रखना कल्याणकारक होता है। लोकसाहित्य में इसीके प्रयत्न हम देख सकते हैं। कोंकणी की एक कहावत है - *ज्यांचे मन भोळें तांका देव दिता केळें, ज्यांचे मन फाड तांका देव दिता थापड़* (जिनका मन

भोला है उनको ईश्वर देते हैं केला, जिनके मन में है कपट उनको ईश्व देता है थप्पड़)। अच्छे व्यवहार के ईश्वर अच्छे फल देते हैं और बुरे व्यवहा के बुरे फल। कर्मफल का यह सिद्धान्त इतनी सुन्दर भाषा में सरलता वे साथ प्रस्तुत करना लोकसाहित्य में ही संभव होता है। पवित्र, अपवित्र पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, जन्म, पुनर्जन्म, सब प्रकार की कल्पनाएँ जं हमारी संस्कृति में उद्भूत हुईं वे सब लोकसाहित्य में भी स्थान ग्रहण करत गईं। लोकसाहित्य में आकर ये प्रभावकारी बन गईं और इनके गंभीर अर्थो का नियोजन यहाँ अत्यन्त सरल रूप में किया गया। कोंकणी लोकगीतों मे चित्रित ईसाई संस्कृति में भी इसके दर्शन होते हैं। अपने को असहाय एवं पूर्णतः ईश के अधीन माननेवाले लोगों का ईश्वर से वर्षा की माँग करने का लोक-संदर्भ इस प्रकार मिलता है -

सांत आंतोन पावस घाल,	(संत आंतोन वर्षा दे दे
पावस घाल	वर्षा दे दे
दोंगरावयले काळंगिणी	पर्वत की देवी, वर्षा दे दे
पावस घाल गे सायबिणी [६]	वर्षा दे दे)

प्राचीन काल में लोकसाहित्य धर्मप्रचार का सशक्त माध्यम रहा था। पर्व, उत्सव आदि लोकसाहित्य के विभिन्न अंग धर्म की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। इनके अध्ययन विश्लेषण से लोकसाहित्य में धर्म की गति को पहचाना जा सकता है। कोंकणी का *बनवड* काव्य इसका उत्तम उदाहरण है। मृत पितरों का आवाहन करके उनका आशीर्वाद लेने का उद्देश्य बनवड़ के गायन के पीछे रहा है। ईश्वर की प्रार्थना और उनसे कुछ माँग करने में न कहीं जातिभेद रहा है और न कहीं धर्मभेद । लोकदेवताओं की पूजा अर्चना हिन्दी तथा कोंकणी समाज में बिना जाति या धर्म के ही होती रही है। यह

मात्र लोकसमाज की विशेषता रही है। कोंकणी लोकसाहित्य में इसके चित्र अधिक मिलते हैं। इसका कारण यही है कि यहाँ पर ईसाई धर्मावलंबियों की संख्या अधिक रही है । यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह रही है कि ईसाइयों के ये धार्मिक आचार एवं व्यवहार हिन्दू आचारों को साथ लेकर ही चल रहे हैं। कोंकणी के धालो, फुगडी, तालगडी, तोणयां मेळ, मूसल आदि लोकनाच यहाँ पर विशेष-उल्लेखनीय हैं।

राम और कृष्ण लोगों के प्रिय आदर्श रहे हैं। इनका अक्षरशः अनुवर्तन भारतीय जीवन में होता है। हिन्दी और कोंकणी समाज इसके अपवाद नहीं हैं। भारतीय लोकसाहित्य के आवर्तक उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यापक रूप में इस देश के महान देवता राम और कृष्ण रहे हैं। जीवन की समृद्धि के प्रमाण इनके साथ जुड़े हुए हैं। लोकसाहित्य में स्थान स्थान पर इनका चित्रण रहता है। यहाँ पर ब्रह्म राम और कृष्ण के रूप में आए हैं। ये ही राम और कृष्ण लोकसाहित्य के आधार बने। जब जब धर्म की हानि होती है तब तब राम और कृष्ण को लोक में उतरना पड़ता है। यही भारतीय दर्शन है, उसकी संस्कृति है जो संपूर्ण रूप से लोक में समाई हुई है। इसीका विवेचन गीतों के रूप में, कहानियों के रूप में और अन्य विधाओं के रूप में भारतीय भाषाओं के लोकसाहित्य में आया है। निर्वासन में भी लोक के लिए राम विश्वात्मा के अधिपति रहे हैं। इसलिए उनके मुकुट के भीगने की चिन्ता साधारण जनता को सताए रहती है। एक हिन्दी लोकगीत की पंक्ति है --

राम के भीजै मुकुटवा लखन सिर पटुकवा हो राम

राम और लक्ष्मण के साथ सीता भी हैं। इसलिए लोगों को सीता के सिंदूर के भीगने की चिन्ता भी है। जैसे -

मोरी सीता के भीजै सेनुरवा लवटि घर आवइं हो राम

यहाँ राम मात्र दाशरथी राम नहीं हैं और कृष्ण मात्र नन्दनन्दन कृष्ण नहीं हैं। ये लोक की संपत्ति हैं। सीताजी लोकमाता हैं और श्री राम लोकपिता हैं। कोंकणी लोरियाँ इसके प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। जैसे

सीता लोकमाता	(सीता है लोकमाता
तीचि तुका आव्सु	वही तुम्हारी माता है
दिव्वो तुका पाव्सु सुवर्णाचो	दे दे तुझको सोने की वर्षा
रामालो तो भावु	राम का वह भाई
दिव्वो तुका आरोग्य	देगा तुम्हें आरोग्य
हेंच होड भाग्य हे जल्मांत[७]	यही इस जन्म में बड़ा भाग्य है)

इन पंक्तियों में सीतादेवी को सर्व ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली माना है और यह भी ध्वनित है कि उनकी पूजा आराधना सभी ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाली है। राम के भाई लक्ष्मण का त्याग तो लोकप्रसिद्ध है। वे आदर्श भ्राता रहे हैं। बच्चे के लिए गाई जानेवाली लोरी में बार बार इन बातों का उल्लेख बच्चे में अच्छे संस्कार बढ़ाने के लिए किए जाते हैं। माता की इच्छा यही रहती है कि उसका बेटा सर्वात्मना राम लक्ष्मण के समान हो। माता यहाँ पर भगवान के रूप में बच्चे को और बच्चे के रूप में भगवान को देखती रहती है। अबोध निर्दोष बालक भगवान ही होता है। बालक का पालना किसी भी माँ के लिए स्वर्गतुल्य है, सभी ऐश्वर्यों की खान है। राम और कृष्ण यहाँ शिशु पहले हैं और अवतार बाद में। शिशु के रूप में कृष्ण का चित्र इस प्रकार खींचा गया है --

चोय्यायी यशोदी एक गायक धार काडता	(देखो - यशोदा दूध दुहती है

खोल्लो धोर्नु एक चेर्डु रडता	लोटा ले एक बच्चा रोता है
दूध मग्गूनु पिवंचाक आशा करता	दूध पीने की वह आशा करता है
यशोदे गल्लाक उम्मा दित्ता'	यशोदा का मुँह चूमता भी है)

कृष्ण के इस बालक रूप पर हर कोई हावी हो जाता है। कृष्ण का ही नहीं, लोरी गानेवाली माता के लाडले का भी यही रूप है। इसके बाद उनका अवतारी रूप भी वर्णित है जिससे कृष्ण में आम जनता का विश्वास एवं आदर जैसे का तैसा बना रहता है और संस्कारों की अनुगूँज के साथ शिशु के विकास का वातावरण भी तैयार होता है।

लोकसाहित्य इसीका प्रमाण है कि संस्कृति आज के जैसे सभ्यता का अलंकार मात्र नहीं है, उसमें आत्मा भी निहित है। जिस शरीर में आत्मा नहीं रहती वह मुर्दा रहता है। यही आज की संस्कृति का स्वरूप है। लेकिन लोकसाहित्य इस मुर्दे में भी जीवन डाल देता है। लोककथाओं में मानव के स्वार्थादि प्रवृत्तियों के शिकार बने हुए मुर्दों को भी मंत्र पढ़कर, पानी छिड़ककर जिलाया जाता है। यहाँ पर हिन्दी, कोंकणी भाषा का या समाज का भेद नहीं रहता। सब कथाओं में समान रूप से मृत आत्माओं को जिलाने का कार्य होता रहता है। इस प्रकार निराशा में भी लोकसाहित्य नया जीवन शुरू करने की प्रेरणा प्रदान करता है। परिवेश के साथ समरसता लोकसाहित्य की विशेषता है। इस साहित्य में फूल-पत्ती, पक्षि-मृगादि, मानव की सहायता के लिए पहुँचते हैं, उसके दुःखों को दूर करते हैं। इस साहित्य में वृक्षों का चित्रण मानव के सहारे के रूप में हुआ है। इस हालत में वृक्षों को काटना वैसे ही है जैसे मानव के सहारे को नष्ट करना। आज के समाज में यही होता रहता है। लेकिन लोकसाहित्य इसके विरुद्ध आवाज़ उठाता है और प्रतीकों के माध्यम से मनुष्य में लक्ष्यबोध जगाने का काम करता है। यहीं पर लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य की असाधारण

क्षमता एवं जन जीवन के साथ प्रकृति के संबन्ध का चित्र प्रकट हो जाता है। लोकसाहित्य में दिखाई पड़नेवाली *विश्वबाज़ार की आँखों की यह किरकिरी* कभी दूर नहीं हो सकती। लोकसंस्कृति को सिर्फ निर्बुद्धिपरक मिथकीय तत्वों एवं अन्ध पुनरावृत्ति की संस्कृति मानना इसी किरकिरी को दूर करने की प्रक्रिया मात्र है। लोकसाहित्य के कलात्मक मानवीय तत्वों में जो प्रतिरोधात्मकता है उसे समझना ज़रूरी है। लोकसाहित्य का संरक्षण, संवर्द्धन एवं पुनर्निर्माण आज के युग की माँग है। पाश्चात्य सभ्यता और आधुनिकीकरण के प्रभाव से लोकसंस्कृति अपने प्रत्येक अंग में प्रचुर प्रमाण में दूषित होती चली आ रही है। इसे शोषण, दूषण, जो भी कहें, सामाजिक क्षेत्र, राजनीतिक क्षेत्र, धार्मिक विश्वास, अनुष्ठान, आर्थिक व्यवस्था सब कुछ बिगड़े हुए हैं। हमारे दार्शनिक विचारों एवं सिद्धांतों पर भी इनका प्रभाव पड़ा है। पाश्चात्य सभ्यता का चाकचिक्य लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है।

अध्ययन अध्यापन करनेवाले ब्राह्मण आजकल अपने धर्म को छोड़कर वाणिज्य और व्यापार में लगे हुए हैं। लोकसाहित्य में जिस ब्राह्मण का आदर किया गया है वह आज सब कहीं निरादर का पात्र बना हुआ है। जिस सामाजिक संगठन का चित्र इस साहित्य में मिलता है वह संयुक्त परिवार की प्रथा पर जीवन के मूल्यों को मानकर चलनेवाला है। मानव के चतुर्मुखी विकास में सहायक यह सामाजिक संगठन आज के युग में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। अनुशासन इस सामाजिक प्रथा का अभिन्न अंग रहा। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में ऐसे समाज का चित्र सब कहीं समान रूप से प्राप्त होता है। लोगों के बीच समानता का भाव एवं उपकारपरता की दृष्टि इस सामाजिक संगठन की रीढ़ रही जिसका अभाव आज हम अनुभव कर रहे हैं। मालिक की छत्रच्छाया में सुख की नींद सोनेवाले सेवक

भी आज कहीं दिखाई नहीं देते। आज मानव को जोड़ने के बदले तोड़ने की प्रक्रिया समाज में चल रही है। ऐसे समाज में लोकसाहित्य का प्रचार बड़ा ही लाभदायक रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। आज जब पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में आकर विघटित परिवार लोकसाहित्य में चित्रित संयुक्त परिवार के महत्व के बारे में सोचने के लिए हमें प्रेरित करता है। औद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि, पाश्चात्य प्रभाव, अणु परिवार, संचार एवं परिवहन का विकास, स्त्री शिक्षा, विघटित पर्यावरण सब मिलकर मानव को कुरेदते रहे हैं। ऐसे समय में केवल लोकसाहित्य ही उसका उद्धार कर सकता है। सामूहिकता जिस समाज में वैयक्तिकता में बदल जाती है तो इस बात में कोई सन्देह नहीं कि उस समाज का पतन निकट ही है। वायुयान, रेल, बस, मोटर आदि के आविष्कार ने मनुष्य का स्वास्थ्य बिगाड़ दिया है और सुख की खोज में मँडरानेवाले मनुष्य के लिए कुछ सोचने का समय नहीं रहता। वह अपना घर छोड़कर परदेश में कमाने के लिए दौड़ पड़ता है। लोकसाहित्य का मूल सन्देश चाहे वह हिन्दी लोकसाहित्य का हो या कोंकणी लोकसाहित्य का हो, प्रकृति की ओर लौटना है। जहाँ तक समाज में स्त्रियों की स्थिति है, आज की स्त्री परिवार के संगठन के बदले विघटन का कार्य अधिक कर रही है। परिवारों में स्त्री के कारण कलह एवं आन्तरिक विद्वेष बढ़ रहा है। स्त्रियों के आपसी झगड़े, बच्चों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काना, छोटी छोटी बातों के लिए लड़ना आम बात रह गई है। *मातृदेवो भव, पितृदेवो भव*, जो कि लोकसाहित्य में सब कहीं मिलता है, आज के समाज में नहीं मिलता। विघटित परिवार में माता पिता का अनादर होता है। बदली हुई आर्थिक स्थिति उनको साथ रखने नहीं देती। महँगाई और आय में कमी होने के कारण परिवार का ढाँचा ही बदल गया है। संस्कारों की और अनुष्ठानों की रौनक समाप्त हो गई है। खर्च को कम

करने के लिए कई अनुष्ठान एक साथ किए जाते हैं। जैसे यज्ञोपवीत एवं विवाह। कहीं कहीं सामान्य रूप में इन्हें अलग अलग ही किया जाता है। आज इन संस्कारों में भाग लेने के लिए न ही मामा हाथी पर चढ़कर आते हैं, न ही चाचा कनक चौकी पर बैठते हैं। बूढे माता पिता के लिए हिन्दी एवं कोंकणी लोकसाहित्य में वर्णित मचिया भी आज नहीं है, हिंडोला भी नहीं। ये बातें केवल पारंपरिक रह गई हैं। फिर भी धार्मिक विश्वास, परंपरा, रूढ़ि एवं आस्तिकता आज भी लोगों के मन में रही है। आज किए जानेवाले थोड़े अनुष्ठान इसके साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इन विश्वासों और अनुष्ठानों को लेकर आज एक तरह की खास संस्कृति ही जन्म लेती है जो हमारे रहन - सहन, कला, साहित्य, मनोरंजन सभी को प्रभावित कर रही है।

औद्योगिक सभ्यता के द्वारा निरन्तर उजाड़ फेंकते रहने पर भी हमारी लोकसंस्कृति में विवाह, मृत्यु, मेला, उत्सव, अनुष्ठान आदि के माध्यम से घर परिवार एवं सामाजिक संबन्धों की नैतिकता आज भी बनी हुई है। भौगोलीकरण के फलस्वरूप जो बाजारू संस्कृति व्यापक रूप में विकसित होती रही है, वह बड़े पैमाने पर सामाजिक भावना एवं लोकमंगल को नष्ट कर रही है। लोकसाहित्य के पुनर्जागरण से इस विध्वंस को दूर किया जा सकता है। *एक गन्दी मछली सारे पानी को गन्दा कर देती ह* वाली कहावत यहाँ सार्थक है। लोकसंस्कृति की शुद्धता में जानेवाले लोग भी आज बाज़ारूपन के प्रभाव में आकर नैसर्गिक शुद्धता को भी अशुद्धता में परिवर्तित कर देते हैं। लोकसंस्कृति का इस प्रकार का बाज़ारीकरण उसकी उर्वरता एवं निर्मलता पर गहरा आघात रहा है। *कभी विश्वमेले में लोककला रख दी जाती है, कभी तीजनबाई संभ्रांत शहरी जन के बीच गा देती है, कभी लावणी हो जाती है, कभी आँचलिक नृत्य हो जाते हैं। स्वाधीनता दिवस की परेड में कई झाँकियों के साथ लोकसंस्कृति की भी*

कुछ झाँकियाँ होती हैं।[१] आज लोकसंस्कृति यहीं पर खतम हो जाती है। लेकिन इस संस्कृति के रूप सिर्फ परंपरागत नाचगीत, चित्रकारी, रंगे चेहरे. किस्से कहावतें, पर्व त्योहार नहीं हैं। उसके भीतर हमारे देश के लोगों ने उन्नत जीवन शैली भी विकसित की है, कई मानवीय गुण अर्जित किए हैं। हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य में इन्हीं गुणों की खोज के प्रयत्न प्रस्तुत शोधकार्य में किए गए हैं।

आज चक्की मरती जा रही है, जाँता लोगों का साथ छोड़ता जा रहा है, सब कहीं मशीन ही मशीन हैं। इनका मानवता से कोई नाता नहीं। लोकसाहित्य किसी भी भाषा का क्यों न हो, कठिन श्रम के समय मनुष्य के साथ रहते हुए उसको तसल्ली देता रहा है। इसमें हमारी प्राचीन संस्कृतिरूपी संपत्ति निहित है, एक तरह का अपनापन है। इस मूल्यवान परंपरा को छोड़कर मशीनों के पीछे भागना जान बूझकर मानवता के गुणों को नष्ट करना होता है। लोकसाहित्य, हिन्दी में भी और कोंकणी में भी जीवन की सच्ची कहानी कहता है। इसमें यशस्वी आत्मा की पुकार सन्निहित है, संस्कृति का उज्ज्वल इतिहास अभिव्यक्त है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारों का मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रण, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक एवं भौगोलिक महत्व इसकी विशेषता है। किसी ने इसको अपभ्रष्ट माना, किसी ने असंस्कृत वन्य समाज का अवशेष कहा, मनोवैज्ञानिक तौर पर इसे यौन प्रतीकवाद का रूप माना। आज के युग में इस साहित्य के महत्व को अंकित करते हुए इसे निश्चित समुदाय की आकांक्षाओं, मनोवृत्तियों और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। हिन्दी और कोंकणी का लोकसाहित्य इसका प्रमाण है। दोनों साहित्यों में हम सामान्य रूप से अपनी प्रचीन परंपरा के जागृत चित्र देख सकते हैं। काल के प्रवाह में पड़कर दोनों समाजों में आचार विचार में थोड़े

से परिवर्तन आ गए हैं, लेकिन ये नगण्य ही कहे जा सकते हैं।

संदर्भ

१. काणकोणची लोककला - अजित पैंगीणकार, पृ. ८

२. काणकोणची लोककला - अजित पैंगीणकार, पृ. ११

३. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ.३०

४. लोक और लोक का स्वर -विद्यानिवास मिश्र, पृ. ८४

५. लोक और लोक का स्वर - विद्यानिवास मिश्र, पृ. २९

६. लोकबिंब - जयंती नायक, पृ. ६२

७. ता ता तिंगण - संतोषकुमार गुल्वाडी, पृ. १२८

८. कोंकणी लोकगीत केरल - कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोच्ची, पृ. २३

९. भारतीय लोकगीत- सांस्कृतिक अस्मिता -भाग-२ - डॉ. सुरेश गौतम, पृ. ८

संदर्भ ग्रन्थसूची

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक	वर्ष
हिन्दी			
अवधी का लोकसाहित्य	सरोजनी रोहतगी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९७१
अवधी - लोकरंग	कमला सिंह(स्व)	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहावाद	२०००
अशोक के फूल	हज़ारीप्रसाद द्विवेदी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	२००६
आधुनिक निबंधावली	सं.विद्यानिवास मिश्र	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	१९७६
आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व	डॉ. वीरेन्द्र द्विवेदी	विद्या प्रकाशन, कानपुर	१९९१
आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन	डॉ. नीना शर्मा	आस्था प्रकाशन, भोपाल	१९९९
आल्हा - ऊदल	परमहंस प्रमोद	किताव घर, नई दिल्ली	२००५
इक्कीसवीं सदी की ओर	डॉ.सुमन कृष्णकांत	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	२००१
उत्तर प्रदेश की लोककथाएँ	सावित्री देवी वर्मा	राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली	१९७८
उत्तर प्रदेश के प्राचीनतम नगर	अशोक कुमार सिंह	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली	२००५
उत्तर भारत की लोक कथाएँ	श्री चन्द्र जैन	विकास पैपर वैक्स, नई दिल्ली	२००७

उत्तर भारत की लोक कथाएँ,भाग-१	सावित्री देवी वर्मा	आत्माराम एन्ड सन्स दिल्ली	१९६१
उत्तर भारत की लोक कथाएँ,भाग-२	सावित्री देवी वर्मा	आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली	१९६०
उत्तर भारत की लोक कथाएँ,भाग-३	सावित्री देवी वर्मा	आत्माराम एन्ड सन्स दिल्ली	१९५८
उत्तरांचल गढ़वाल में जनश्रुतियां-विश्वास	पुष्कर सिंह कण्डारी	अकादमिक एक्सेलेन्स, दिल्ली	२००५
कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक		गीताप्रेस, गोरखपुर सं	२०६४
कृष्णकथा और लोक साहित्य	डॉ.जयनारायण कौशीक	हिन्दी बुक सेन्टर,दिल्ली	१९९६
केरल की संस्कृति पर केरल के लोकगीतों का प्रभाव	डॉ. एन.आर.एलेडम	जवाहर पुस्तकालय,उ.प्र	१९९१
खडीबोली का लोक साहित्य	डॉ.सत्यागुप्ता	हिन्दुस्थानी अकादमी, इलाहाबाद	१९६५
गढ़वाली मुहावरों-कहावतों का बृहद संग्रह	पुष्कर सिंह कण्डारी	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली	२००३
गढ़वाल के लोक नृत्यगीत	शिवानन्द नौटियाल	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	२००३
गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन	मोहनलाल बाबुलकर	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	२००३
चिन्तन-अनुचिन्तन	डॉ.एल.सुनीताबाई	सुकृतीन्द्र प्राच्यविद्या शोध संस्थान, कोच्चिन	२००२

छत्तीसगढ़ का इतिहास	विनोद वर्मा	मैत्रेय पब्लिकेशन, नई दिल्ली	२००३
छत्तीसगढ़ की गौरवशाली परंपरा	विनोद वर्मा	शब्द सृष्टि, नई दिल्ली	२००३
छत्तीसगढ़ की संस्कृति	विनोद वर्मा	परंपरा पब्लिकेशन, नई दिल्ली	२००३
छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का लोकतात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	डॉ.हनुमंत नायडू	विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर	१९८७
जनजातियों की बोली,समाज और संस्कृति	डॉ.वी.एन भालेराव	आराधना ब्रदेर्स, कानपुर	२०००
जनजातीय लोकगीत एक अध्ययन	डॉ. सत्यनारायण व्यास	अंकुर प्रकाशन, राज़स्थान	२००२
तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य	इन्द्रनाथ चौधरी	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली	२००६
दिल्ली अंचल की लोक संस्कृति	डॉ.जयनारायण कौशिक	हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली	१९९८
नागवंश-मिथक,इतिहास और-लोकसाहित्य	विमलेश्वरी सिंह	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली	२००३
नाट्यशास्त्रम्			
पंचतंत्र की श्रेष्ठ कहानियाँ	राजकुमारी श्रीवास्तव	सुनिल साहित्य सदन, नई दिल्ली	२००५
पंचतंत्र (संस्कृत भाषा का गौरवग्रन्थ)	आचार्य विष्णु शर्मा	भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली	२००६

परंपरा, इतिहास-बोध और संस्कृति	श्यामाचरण दुबे	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९९५
पूर्वांचल के सांस्कारिक लोकगीत	डॉ. कमला सिंह	परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९२
पूर्वांचल के श्रम लोकगीत	डॉ. कमला सिंह	परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९१
प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास	सुमन गुप्ता	स्वामीप्रकाशन, नई दिल्ली	२०००
बिहार की लोककथाएँ	प्रकाशवती	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	१९७७
बिहार की विरासत	सं. शिवदयाल	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	२००६
बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछआयाम	प्रसन्न कुमार चौधरी	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	२००१
बुन्देली समाज और संस्कृति (प्राचीन एवं मध्यकालीन संदर्भ)	प्रो. बलभद्र तिवारी	बुन्देली पीठ, मध्यप्रदेश	१९९५
भारत की श्रेष्ठ लोक कथाएँ	श्री चन्द्र जैन	किताब घर, नई दिल्ली	२००६
भारत की श्रेष्ठ लोक कथाएँ	महेश भरद्वाज	सुनिल साहित्य सदन, नई दिल्ली	२००७
भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, भाग-१	डॉ. रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन प्रा. लिमिटेड नई दिल्ली	१९८१
भारतीय लोकगीत-सांस्कृतिक अस्मिता	डॉ.सुरेश गौतम	शव्दसेतु, दिल्ली	२००२
भारतीय लोकनाट्य	डॉ.वशिष्ठनारायण त्रिपाठी	वाणीप्रकाशन, नई दिल्ली	२००१

भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश- भाग १	रामविलास शर्मा	किताब घर, नई दिल्ली	१९९९
भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश- भाग २	रामविलास शर्मा	किताब घर, नई दिल्ली	२००६
भारतीय लोकसाहित्य	श्याम परमार		
भारतीय संस्कृति और हिमाचल प्रदेश	पद्मचन्द्र कश्यप	हिमाचल पुस्तक भंड़ार, नई दिल्ली	२००३
भाषा का लोकपक्ष	डॉ. रामस्वार्थ ठाकुर	नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली	२००३
भोजपुरी लोक गाथा	सत्य व्रत सिंह	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	१९५७
भोजपुरी लोकगीत एक अध्ययन	पूनम, सुधाकर	विकास प्रकाशन, कानपुर	२००५
भोजपुरी लोकगीत भाग -१	कृष्णदेव उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	१९९०
भोजपुरी लोकगीत भाग २	कृष्णदेव उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन,इलाहाबाद	१९९९
भोजपुरी लोक-साहित्य सांस्कृतिक अध्ययन	श्रीधर मिश्र	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	१९७१
भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन	डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	१९६०
भोजुपरी लोक संस्कृति	कृष्णदेव उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	१९८९

भोजपुरी लोरिका भाग २	श्याम मनोहर पाण्डेय	साहित्य भवन, (प्रा.लि), इलाहाबाद	२००१
मगध की लोककथाएँ - अनुशीलन	रामप्रसाद सिंह	मगधी अकादमी, बिहार	१९९६
मध्यकालीन लोकचेतना	रविकुमार (अनु)	संजय प्रकाशन,नईदिल्ली	२००६
मध्यदेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक-सिंहावलोकन	धीरेन्द्र वर्मा	राष्ट्रभाषा परिषद, बिहार	१९५५
मध्यप्रदेश की लोककथाएँ	रमेश बख्शी, अचला शर्मा	राजपालएण्डसन्स,दिल्ली	१९७८
महाभारत में भारतीय संस्कृति	श्रीमती सुजाता कुमारी	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली	२००२
मालवी लोक-साहित्य	श्याम परमार	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	१९६९
मिथिला की लोककथाएँ	विभा रानी	परिदृश्य प्रकाशन	१९९७
रत्न कंबल	शान्तिलाल भंडारी	विकास पैपर बैक्स, नई दिल्ली	२००५
राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएँ	ठाकूर मदनसिंह देवड़ा	शिवानी बुक्स,नई दिल्ली	२००६
राजस्थान की लोककथाएँ	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	आत्मारामएण्डसन्स,दिल्ली	१९६४
राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत	डॉ. सौलीला कर्वा	शालजा प्रकाशन, कानपुर	२००६
रामकथा और लोक साहित्य	डॉ.जयनारायण कौशीक	हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली	१९९६
रावुलवेल और उसकी भाषा	माताप्रसाद गुप्त	मित्र प्रकाशन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद	१९६२
रास साहित्य का लोक-तात्विक अध्ययन	डॉ. शिवाजी देवरे	विद्याप्रकाशन,कानपुर	१९९५

(शहादा संभाग के विशेष संदर्भ में)			
रीतिमुक्त कवि बोधाकृत माधवानल काम	श्री चन्द्र मिश्र	ज्ञानमार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली	२००२
कन्दला चरित्र में लोक संस्कृति			
लोक और लोक का स्वर	विद्यानिवास मिश्र	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली,	२०००
लोककथाओं के कुछ रूढ़ तन्तु	डॉ,कन्हैयालाल सहल	किताब महल, इलाहाबाद	१९६५
लोककथा कोश	सं. संगीता	प्रेम प्रकाशन मंदिर,दिल्ली	१९९०
लोक-कथा सागर भाग - १	सं. डॉ.विजयअग्रवाल	अकादमिक प्रतिभा,दिल्ली	२००८
लोक-कथा सागर भाग - २	सं. डॉ.विजयअग्रवाल	अकादमिक प्रतिभा,दिल्ली	२००८
लोक-कथा सागर भाग - ३	सं. डॉ.विजयअग्रवाल	अकादमिक प्रतिभा,दिल्ली	२००८
लोक-कथा सागर भाग - ४	सं. डॉ.विजयअग्रवाल	अकादमिक प्रतिभा,दिल्ली	२००८
लोक-कथा सागर भाग - ५	सं. डॉ.विजयअग्रवाल	अकादमिक प्रतिभा,दिल्ली	२००८
लोक काव्य के क्षितिज	डॉ. हरिसिंह पाल	अनंग प्रकाशन, दिल्ली	२००५
लोकगीत की सत्ता	सं.सुरेश गौतम	शब्दसेतु, नई दिल्ली	२००२
लोकसरिता	विनायक विष्णुखेडेकार	कला अकादमी, गोवा	१९९३
लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. श्रीमति विनोदतिवारी	साहित्यवाणी, इलाहाबाद	१९८७
लोकगीतों में समाज	पूर्णिमा श्रीवास्तव	मंगल प्रकाशन, जयपुर	१९९१
		इलाहाबाद	

लोक गीतों का समाज शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. छोटोलाल बहरदार	भारती प्रकाशन, नई दिल्ली,	२०००
लोकजीवन में नारी विमर्श	डॉ. गोपालबाबू शर्मा	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा	२००८
लोक धारा के नये आयाम	डॉ. भीमसिंह मलिक	पल्लव प्रकाशन, दिल्ली	२००२
लोक - परंपरा, पहचान एवं प्रवाह	श्यामसुन्दर दुबे	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	२००४
लोक महाकाव्य लोरिकायन (लोरिका और चन्दा की लोक कथा)	श्याम मनोहर पाण्डेय	साहित्य भवन (प्र.लि), इलाहाबाद	१९८५
लोक संस्कृति विशेषांक(इन्द्रप्रस्थ भारती)	सं.डॉ.रामशरण गौड़	हिन्दी अकादमी, दिल्ली	१९९८
लोक संस्कृति और इतिहास	बद्रीनारायण	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९४
लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति	उषा सक्सेना	राजभाषा प्रकाशन, दिल्ली	२००७
लोकसाहित्य का लोकतत्व	डॉ. रामनिवास शर्मा	निर्मल पब्लिकेशन्स,दिल्ली	२००३
लोकसाहित्य और संस्कृति	दिनेश्वर प्रसाद	जयभारती प्रकाशन	१९८९
लोकसाहित्य विज्ञान	डॉ. सत्येन्द्र	शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी (प्रा)लिमिटेड,दिल्ली	१९६२
लोकसाहित्य विविध आयाम एवं नयी दृष्टि	डॉ. जयश्री गावीत	विद्या प्रकाशन, कानपुर	२००७
व्रज की लोक कथाएँ	श्रीनिवास आर्य	किरण प्रकाशन, दिल्ली	२००७
व्रज संस्कृति और साहित्य	डॉ.मलखान सिंह सिसौदिया	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा	२००७

शिव संकल्प	सं. यशपाल शक्ति	आर्यपरिवार योजना, नई दिल्ली	२००५
श्रेष्ठ जातक कथाएँ	श्री व्यथित हृदय	सुनिल साहित्य सदन, नई दिल्ली	२००६
संस्कृति की धरोहर	डॉ. कन्हैया लाल अवस्थी	आशीष प्रकाशन, कानपुर	२००६
संस्कृति के चार अध्याय	रामधारीसिंह दिनकर	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	२००६
हरियाणा की लोककथाएँ	देवीशंकर अवस्थी	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	१९७८
हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य	डॉ. शंकरदयाल यादव	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	२०००
हितोपदेश (लोक व्यवहार का अद्वतीय गौरव ग्रन्थ)	पं. नारायण शर्मा	भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली	२००६
हिन्दी और गुजराती का लोरी साहित्य	हंसा प्रदीप कुमार	दीर्घा, दिल्ली	१९९५
हिन्दी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ.राजेन्द्रप्रसाद सिंह	भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली	१९९१
हिन्दी प्रदेश के लोकगीत	कृष्णदेव उपाध्याय	साहित्य भवन प्र.लि	१९९०
हिन्दू संस्कृति अंक	सं. हनुमान प्रसाद पोद्दार चिम्मनलाल गोस्वामी शास्त्री केशोराम अग्रवाल	गीता प्रेस, गोरखपुर	२०००
हिमाचल की लोककथाएँ	सन्तोष शैलजा	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	

अंग्रेज़ी

A Garland of Mando Dulpods & Dekhni	C.M.Estibeiro	Dept.of information & Publicity, Govt. of Goa	1998
A Konkani Saga	Dr.Balagopal T. S. Prabhu	Saraswat Academi of Higher Education, Kozhikode	2004
Alphabet of Reality-1 Sri Ganesh	Srik	Integral Books, Kerala	2004
Collected Works of Sri.R.G. Bhandarkar Vol IV		Bhandarkar oriental Research institute, Pune.	1929
Culture and Cognition	Norbert Ross	Sage Publications,Delhi	
Culture and Society	Raymond Williams	Chatto & Windus London	1960
Dakshinatya Saraswats	V.N.Kudva	Samyukta Gauda Saraswata Sabha, Madras	1978
Fairs and Festivals of India		Hindology books	2006
Fifty Years of Bliss	Dr. Gopal.S.Hattiangadi	Published by the Author	1965
Folklore Notes Folklore of Gujrat Vol(1)	R.E.Enthoven complied by A.M.T.Jackson	Asian Educational Services, Delhi	1989
Folklore Notes Folklore of	R.E.Enthoven complied	Asian Educational	1989

Konkan Vol(2)	by A.M.T.Jackson	Services, Delhi	
Folklore of Kerala	Kavalam Narayana Panikar	National Book Trust, India	1991
Folktales from India	A.K.Ramakrishnan	Penguin Books,Delhi	1994
Goa-A Daughters Story	Maria Aurora Couto	Penguin Books, India	2005
Goa	Romesh Bhandari	The Lotus Collection Roli books, Delhi	1999
Goa Hindu Temples and Deities	Victor Pereira tra.Antonio Raigomes	Printwell Press, Panaji Goa	1978
Goa through the mists of	Luis De Assis Correia	Maureen Publication, Goa	2006
Goan society In transition	Bentograliano Dsouza	Popular Prakashan, Bombay	1975
Gayatri, Saraswati, Bagdevi	Chitralekha Singh	Crest Publishing House, Delhi	1999
Hindu Samskaras	Rajbali Pandey	Motilal Banarasidas, Delhi	2006
Historical Background of the Konkani Language with Special Reference to its Relationship with Sanskrit and Prakrit - Phonological Study	Dr.L.SuneethaBai	Sukrtindra Oriental Research Institute, Thammanam	2004
Hymns to the Goddess and Hymn to Kali	Sir.John Woodroffe	Ganesh & Co., Madras	2001

Indian Folktales	Anupalal	Scolastic India, New York	2005
Indian Folktales and Legends	Pratibanath	Puffin Books, Delhi	1995
Indian Mythology	Veronica Ions	Paul Hamlyn, London	1968
Kaleidoscopic Goa	Pandurang Phaldesai	Vasantarao Dempo Education & Research Foundation, Goa	2004
Konkani, A Language	Jose Pereira	Karnatak University, Dharwar,	1971
Konkani Proverbs and Idioms with Riddles Lullubies and Nursery songs	S. S. Talmaki	Popular Book Depot	1991
Legends of Goa	Mario Cabral E SA illust-rations by Mario De Miranda	India Book House Ltd, Mumbai	1998
Mussol Dance of Chandor	Zenaides Morenas	Clarissa Vaz e Morenas	2002
Ocean of the Story	Charles Henry Tawney	1070	
Religion & Folklore of Northern India	William Crooke	Rupa & Co,Delhi	2005
Snapshots of Indo Portugeese	Vasco Prinho	Published by the	2007

History		Author, Goa	
Song of Goa - Mandos of Yearning	Jose Pereira and Micael Martins	Aryan Books international, Delhi	2000
Socio Cultural Background of the Gouda Saraswat Brahmin Community as Reflected in the Konkani Proverbs	Dr. L. Suneetha Bai	SORI, Thammanam	2004
Temples and Legends of Bihar	P.C.Roy Choudhary	Bharatiya Vidya-Bhavan,Bombay	1988
The Mamais and Goas Neigh-bours Commercial Links and Allied Interests	Dr.S.K.Mhamai	Published by the Author	2007
The Konkani Language	Dr.V.Nithyananta Bhat& Dr. L.Suneetha Bai	SORI, Thammanam	2004
The Third Culture Some Aspects of the Indo Portugese Cultural Encounter	Alberto De Norenha	Third millennium, Goa	2006
The Vedic Law of Marriage	A. Mahadeva Sastri	Asian Educational Service, Delhi	1988
The Wonder that was India	A.L.Basham	Rupa &Co,Delhi	2003

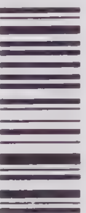
Tribal Lore of south India (with Gadaba and Irula Text)	B.Ramakrishna Reddy	Fossils	2004
Vivah - The Hindu wedding	R. Ragunath Rao	Cosmo Publication	2003
Vrata Sacred Vows and Traditional Fasts	M.N.Dutt	Indigo Books, Delhi	2002
Wedding Ceremonies	Ashwini Kumar Benzal	Fengshai point, Delhi	2003
Wind of Fire - The Music and Musicians of Goa	Mario Cabral esa	Promilla&Co, Delhi	1997
Women in Indian Folklore	Sanker Sen Gupta	Indian Publications Calcutta	1969

कोंकणी

अमोणें - एक लोकजीण-	जयन्ती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी	१९९३
एदेच कोंकणी लोकगीत	कोंकण जनता, कोची		२००८
ओव्यो गावुया	बस्ती वामन शेणै	बस्ती विशन, तुंबा	
कथा भारती	चन्द्रकान्त केणी	कुळागर प्रकाशन, गोवा	२००६
म्हणी फाटली काणी - २	कमलादेवी राव देशपांडे	हरिश्चन्द्र नागवेंकार,	१९९८
कणेर खुंटी नारी (अमोणेचीं लोकगीतां)	जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९२
कर्लेची बनवड (फॉक पॉयट्री)	जयन्ती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोवा	२००२
कांसावालेचें रायां फेस्त	चन्द्रकान्त केणी	गोवा कोंकणी अकादमी,	१९९६
काणकोणची लोककला - एक दायज	अजित पैंगणिकार	अनुजित प्रकाशन, गोवा	२००१
कोंकणी चळवळ आनी माधव मंजुनाथ शानबाग	सं. गोकुलदास प्रभु	अखिल भारतीय कोंकणी परिषद, गोवा	२००५

कोंकणी धातु मंजरी भाग -१	सं. जेजवित स्वामी सुप्रिय	विवेक प्रगति, उत्तर कन्नड	१९९५
कोंकणी भक्ति गीतां (ए ट्रेशरी ऑफ गोवन हिम्स)	सं. पाण्डुरंग भांगी	गोवा कोंकणी अकादमी, पणजी	२००४
कोंकणी भास साहीत्य आनी संस्कृताय	श्याम वेरेंकर, माधवी सरदेसाय कमलाकार म्हाळशी	कोंकणी भाशा मंडल,गोंय	२००३
कोंकणी म्हण्यां सोरू	सं.आर.एस.प्रभु	केरल कोंकणी अकादमी कोचिन	१९८५
कोंकणी म्हणी सागर	मनोहर पै धुंगट	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००३
कोंकणी लोककाणयो	सं, जयन्ती नायक	साहित्य अकादमी, दिल्ली	२०००
कोंकणी लोकगीत समुच्चय (केरल)		कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोची	१९९८
कोंकणी लोकगीत (केरल)		कोंकणी भाषा प्रचार सभा, कोची	१९७६
कोंकणी हुमिण्यो	सी. सी ए पै एस. जे.	शताब्दी प्रकाशन, बैंगलोर	१९८१
गांवरान	जयन्ती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी	२००५

गोंयकारांची गोंया भायली वसणूक	वा.र.वर्दे वालावलीकार	गोमंतक छापखानो,मुंबै	१९२८
गोंयचीं बालगीतां नाचगीतां आनी खेल गीतां (भाग - १)	तुकाराम शेट	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२०००
गोंयचीं बालगीतां नाचगीतां आनी खेल गीतां (भाग - २)	तुकाराम शेट	गोवा कोंकणी अकादमी	२०००
गोंयचें गिरेस्त दायज	श्रीनिवास प्रभू देसाय	आबू प्रकाशन, रिवण	२००४
गोंयच्या लोकवेदाचो रुपकार	श्याम वेरेंकार	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९१
गोयांतले पारंपरिक खेल	प्रो.भूषण भावे	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००५
गोड्डे रामायण	सं. प्रो. आर. के. राव	कोंकणी लेंगुएज इन्स्टिट्यूट, कोची	
जागरण - कोंकणी चळवळ - भाग-२	पॉल मोरायस	कोंकणी इन्स्टिट्यूट मंगळूर	२००७
ता ता तिंगण	सन्तोष कुमार गुलवाडी	बस्ती प्रकाशन, बंटवाल	१९९५
तळय उखल्ली खेलानीं (अमोणोचीं	जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी	१९९२



शिगम्याचीं गीतां)		गोंय	
तियात्राचो इतिहास (१८९२-१९९२)	प्रकाश थळी	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९३
तियात्रांचो झेलो	सी.अलवारिस,रेम्मी.जे.कोलाको जोन क्लारो फेरनान्डस,एम.बोयर	गोवा कोंकणी अकादमी गोंय	१९९३
तियात्रांचो झेलो	जोवो ए गोस्तिन्हो फेरनान्डस अल्कसिन्हो डी कान्डोलिन जे.पी.सूज़ालिन, ए.आर.सूज़ा फेरारो, किड बोक्सर	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९३
पुत्तु शेटिच्यो काणयो	आन्सी पालड्का	प्रिया प्रकाशन, थाने	२००३
पेडणेचो दसरो	जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९५
मनालीं गीतां	सं. जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९३
मुखावरां/मोवालां भाग-१	जे.बी. सेक्यूरा	कोंकणी प्रकाशनालय	१९९५
रथा तुझ्यो घुडयो (अमोणेचीं धालो गीतां)	सं. जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९२

राजरत्नां (फॉकटेल्स)	जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००५
लोकधन	शरत्चन्द्र शेणै	शरत्चन्द्र शेणै, कोच्ची	२००४
लोकबिंब (एस्सेय्स ऑफ फॉकटेल्स)	जयंती नायक	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	१९९८
लोकवेद - एक लोकजीण	श्रीनिवास प्रभू देसाय	आबू प्रकाशन, गोंय	२००३
लोकसरिता	विनोयक विष्णु खेडेकार	कला अकादमी, गोंय	२००३
समग्र शेणै गोंयबाब, खंड - १	सं. शान्ताराम वर्दे वलावलीकार	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००३
समग्र शेणै गोंयबाब, खंड - २	सं. शान्ताराम वर्दे वलावलीकार	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००३
समग्र शेणै गोंयबाब, खंड - ३	सं. शान्ताराम वर्दे वलावलीकार	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००३
समग्र शेणै गोंयबाब, खंड - ४	सं. शान्ताराम वर्दे वलावलीकार	गोवा कोंकणी अकादमी, गोंय	२००३
सुरग्या सर	डॉ.ज्योत्स्ना कामत	बस्ती प्रकाशन, बंटवाल	२००५
श्री सत्यनारायण व्रत कथा	गोश्रीपुरम हरिकुमार	गोश्रीचैतन्य, कोच्ची	
होळ्ळम्मालो काणियांचो पेटारो	वत्सला आर शेणै	शेणै प्रकाशन, कोच्ची	२००६
हुकमाची राणी	चन्द्रकांत केणी	कुळागर प्रकाशन, गोंय	२००६

कोश ग्रन्थ

कहावत कोश	डॉ.भुवनेश्वर मिश्र माघव श्री विक्रमादित्य मिश्र	बीहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	१९६५
कोंकणी समांतर कोश		कर्णाटक कोंकणी अकादमी, मंगळोर	२००५
कोंकणी शब्दसागर,भाग-२	सं. पांडुरंग भांगी	गोवा कोंकणी एकेडेमी,	१९९२
कोंकणी हिन्दी मलयालम कोश	डॉ. एल. सुनीता बाय	कोचीन विश्वविद्यालय,	१९८७
कोंकणी विश्व कोश	मनोहरराय सर देसाय,	गोवा विश्व विद्यालय,	१९९१
प्राचीन चरित्र कोश	सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव	भारतीय चरित्र कोश मंडल, पूना	१९६४
बृहत हिन्दी लोकोक्ति कोश	सं.भोलानाथ तिवारी	किताब घर, नई दिल्ली	२००५
वाचस्पत्यम्			
शब्दकल्पद्रुमम्			

Rajhauns English Konkani Dictionary, Prakash G,.Thali,Panaji, 2003

Rajhauns Konkani - English - Illustrated Dectionary, Mukesh P. Thali, Damodar-K Ghanekar, Vol-1, Vol-2, Panaji , 2001, 2003

Rajhauns New Generation Konkani-English-dictionary, Mukesh p. Thali, Damodar.K..Ghanerkar

A Classical Dictionary of Hindu Mythology and Religion, Johndowson, Dek. Printworld, Delhi, 2000

English - Konkani Dictionary, Manohar Rai Sar Dessai, Goa Konkani Akademi, Goa, 2003

T.S.K.K. Linguistic Glossary English - Konkani- Konkani- English, Matthew Almeida S.J, Prata Naik S.J., Thomas Stephans Konkani Publication, Goa.

V. S. Aple's Sanskrit - English Dictionary

मलयालम

Keralathile Basha Nyunapakshangal	Paul Manalil	Mathrubhumi,Kozhikode	2006
Malayalam Folklore	Dr.Raghavan Payyanadu	State Institute K.K, TVM	2006
Tharathamya Sahitya Peetika	Ed. Comparative literature society Trivandrum	Kerala Bhasha Institute Trivandrum	1999
Sampoorna Shodasha Samskarangal	A.R.Balakrishna Prabhu	Vaishnava Ratne, Kochi	2007

पत्र - पत्रिकाएँ

इन्द्रप्रस्थ भारती	सं.नानक चंद	हिन्दी अकादमी, दिल्ली	
लोकसंस्कृति विशेषांक	सं,डॉ.रामशरणगौड		जुलाई-सितंबर १९९८
कोंकण जनता			मई १९८३
चिन्तन अनुचिन्तन त्रैमासिक	सं.बी.बी.कुमार	आस्था भारती, दिल्ली,	जनवरी-मार्चा २००७ अंक ३
तद्भव अंक १६ जुलाई २००७	सं.अखिलेश	१८/२०१ लखनऊ	

लूर साहित्यिक, सांस्कृतिक अर्द्धवार्षिक पत्रिका,लोरी विशेषांक-सं. डॉ.जयपाल सिंह राठौड अंक ५-६-
जनवरी-सितंबर, राजस्थान फोकलोर स्टडी एण्ड रिसर्च सोसाइटी, जोधपुर, २००५

वागर्थ - अंक ७७ नवंबर २००१	भारतीय भाषा परिषद्	कलकत्ता	प्रभाकर क्षैत्रीय
All India Saraswat	Ed. G.P. Murdeswar, Vasant Naik, R.K.Prabhu All India Saraswat Brahaman Sabha		



डॉ. एल. सुनीता बाय

जन्म : २४ मई, १९४४

शिक्षा : बी. ए. (संस्कृत), एम. ए. (हिन्दी), पी-एच. डी. सन् १९६६ से हिन्दी भाषा एवं साहित्य के शोध में लगी हूई हैं। इनके निर्देशन में अभी तक सोलह शोधप्रबन्ध तैयार किए गए हैं। सोलह पुस्तकें और कई शोधपत्र प्रकाशित। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान एवं भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में विशेष रुचि। गत पचीस वर्षों से हिन्दी और कोंकणी के तुलनात्मक अध्ययन में रत। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से शोध के लिए जूनियर रिसर्च फेलोशिप, सीनियर रिसर्च फेलोशिप एवं केरियर एवार्ड प्राप्त। सन १९८३ में यू जी सी केरियर एवार्ड के अन्तर्गत इन्होंने कोंकणी-हिन्दी मलयालम कोश तैयार किया है। कोश की भूमिका में कोंकणी शब्दावली के विकास के इतिहास का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत। कोचीन विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग की सेवा निवृत्त प्रोफसर। ई. २००७ में इन्हें यू. जी. सी. मेजर रिसर्च फेलोशिप प्राप्त। इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में हिन्दी और कोंकणी लोकसाहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत। यही अध्ययन अब पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। आज कल ये हिन्दी एवं कोंकणी की मूलभूत एकता एवं कोंकणी भाषा के ऐतिहासिक महत्व को लेकर विशेष शोधकार्य में रत हैं।